हिंदी का समस्यापूर्ति-काव्य

[लखनऊ विश्वविद्यालय की पी-एच० डी० उपाधि
के लिये स्वीकृत शोध प्रबंध]

डॉ० दयाशंकर शुक्ल एम्० ए०, पी-एच० डी०
प्राध्यापक हिंदी-विभाग
म० स० विश्वविद्यालय
बड़ौदा

गंगा पुस्तकमाला कार्यालय, लखनऊ

मूल्य . रु० २५.००

प्रथम संस्करण जून, सन् १९६७ ई०

●

प्रकाशक

श्रीदुलारेलाल भार्गव

अध्यक्ष गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय

लखनऊ

●

मुद्रक

श्रीदुलारेलाल भार्गव

अध्यक्ष गंगा-फ़ाइनआर्ट-प्रेस

लखनऊ

पूज्य पितृव्य

स्वर्गीय पं० महेशदत्तजी शुक्ल

की

पावन स्मृति में

'कुर्वन्ति कवय शक्ता समस्यापूरणादिकम्' ।

*　　　　*　　　　*

कवि की परिच्छा तो समस्या ही से कीनी जात,
कैसी है उडान, पहुचानि कितो ऊँची है ।

*　　　　*　　　　*

मधु माखन दाखन पाई कहाँ मधुराई रसाल की घातन मे,
समताई अनारन की को कहै, कमताई अँगूर के गातन मे ।
'ललित' करो कद को मद जबै, तबै का है तमोल के पातन मे,
रस कौन सुधा मैं सुधा न कहो रसु जौन कवीन की 'बातन में' ।

दो शब्द

डॉ० दयाशंकर शुक्ल की पुस्तक 'हिंदी में समस्यापूर्ति' विषयक कृति देखी। यह उनके पी-एच० डी० के शोध प्रवंध का ही रूपांतर है। डॉ० शुक्ल ने ऐतिहासिक भूमिका पर समस्यापूर्तियों का समग्र इतिवृत्त प्रस्तुत किया है और, समस्यापूर्ति के काव्यीय गुणों की चर्चा की है। यद्यपि समस्यापूर्ति के माध्यम से महान् काव्य की सृष्टि नहीं हो सकती, परंतु कई भूमिकाओं पर उसकी उपयोगिता और रूपसंघटन से अस्वीकार नहीं किया जा सकता। प्रायः समस्यापूर्ति से आरंभ कर ही कतिपय कवि आशु कवि वन जाते हैं—यह भी समस्यापूर्ति की एक उपलब्धि स्वीकार करनी ही है। सामाजिक अवसरों पर, साहित्यिक अभ्यास के लिये तथा अन्य अनेक प्रयोजनों से समस्यापूर्ति श्रेष्ठ कवियों के निर्माण में सहायक होती है तथा श्रेष्ठ कवि भी इसका प्रयोग करते देखे जाते हैं।

डॉ० शुक्ल ने परिश्रम-पूर्वक समस्यापूर्ति के सभी अंगों पर प्रकाश डाला है। अपने विषय की इस प्रामाणिक पुस्तक का समस्त हिंदी-संसार स्वागत करेगा—यह मेरी दृढ़ आशा और विश्वास है।

इस पुस्तक के प्रणयन के लिये डॉ० शुक्ल को मेरी हार्दिक शुभाशंसा समर्पित है।

वर्ष प्रतिपदा सं० २०२४
उपकुलपति
विक्रम विश्वविद्यालय
उज्जैन

—नंददुलारे वाजपेयी

प्रास्ताविक

समस्यापूर्ति की गणना चौंसठ कलाओं में की जाती है और भारतीय साहित्य के अंतर्गत समस्यापूर्ति की बड़ी पुरानी परम्परा है। समस्यापूर्ति-काव्य का संबंध विशेष रूप से चमत्कार और उक्ति वैचित्र्य से रहता है, परंतु इसका यह अर्थ नहीं कि इस कोटि के काव्य में भावगत गांभीर्य वैचारिक चेतना और सामाजिक स्थिति का सन्निवेश न हो। समस्यापूर्ति काव्य जीवन और जगत् के किसी भी अंग को विषय बना सकता है पर इसका वैशिष्ट्य यह है कि जिस विषय को भी यह स्पर्श करेगा उसमें एक चमत्कार या नव्यता का समावेश हो जाता है। इसलिये समस्यापूर्ति-काव्य स्मरणीय काव्य है।

इसके अतिरिक्त समस्यापूर्ति का समाज के गठन और रहन-सहन से भी संबंध है क्योंकि यह गोष्ठी काव्य है। यह इस प्रकार का नहीं है कि किसी एक व्यक्ति ने रचना की, वह प्रकाशित हुई और किन्हीं अन्य व्यक्तियों ने उसे पढ़ा और उसका आनंद प्राप्त किया। इसका तो वास्तविक आनंद किसी अटपटी समस्या को चतुराई से छंद में चमत्कारी ढंग से बैठाने में है, और किसी सामान्य लगनेवाली समस्या में किसी वैचित्र्य-पूर्ण कल्पना या अप्रत्याशित भावना को भरकर चमत्कार की सृष्टि करने में है। इसलिये गोष्ठी में बैठकर जब हम किसी समस्या की अद्भुत और विलक्षण पूर्ति सुनते हैं तो हम जो आनंद प्राप्त करते हैं वह विशिष्ट होता है। उसमें चमत्कार भी रहता है और प्रभाव भी। प्रायः पूर्तिकार का प्रयास यह रहता है कि वह उस समस्या को लेकर ऐसे छंद की रचना करे, जिसके अंतर्गत प्रतिफलित भाव, विचार या कल्पना का अनुमान भी गोष्ठी में बैठे श्रोतासमाज को न हो सके। कभी-कभी उन पूर्तियों में विचित्र भाव के समावेश के साथ लोग चकित रह जाते हैं। इसी में पूर्तिकार की विलक्षण सफलता निहित रहती है।

किसी भी समस्या को देखकर हम प्रायः उसके छंद और भाव का अनुमान कर लेते हैं परंतु कुछ पूर्तिकार ऐसे होते हैं जो उसमें ऐसे छंद और भाव का समावेश करते हैं जिसका अनुमान नहीं किया जा सकता। पूर्तिकार यह कार्य आगे पीछे शब्द जोड़कर छंद परिवर्तन और भाव-परिवर्तन द्वारा अथवा अकल्पित प्रसंग को जोड़ कर करता है। जैसे 'हारी मैं' समस्या की भावना को नितांत बदला जा सकता है, यदि इसे शब्द जोड़कर निम्न लिखित प्रकारों में प्रस्तुत किया जाय— 'बिहारी मैं', 'रिपुदल सहारी मैं", 'श्रमहारी मैं', 'तिहारी मैं', "परिहारी मैं' आदि। इसी प्रकार 'वन में' इस समस्या को अनेक प्रकार से प्रस्तुत किया जा सकता है। जैसे, 'सावन में', 'छिपावन में', "दुलरावन में", 'भयावन" में

आदि। कहने का तात्पर्य यह कि समस्यापूर्ति काव्य मे प्रमुख बात अप्रत्याशित चमत्कार की योजना होती है और इस प्रकार का चमत्कार चित्त को एक अद्भुत प्रसन्नता प्रदान करता है।

कुछ लोगों का विचार है कि काव्य मे चमत्कार की आवश्यकता नही है। परंतु यह बात स्वीकार करना कठिन है, क्योंकि काव्य की नित नवीनता का रहस्य ही चमत्कार है। सामान्य वस्तु, व्यक्ति या कथन इसीलिये काव्य में विशेष आकर्षक हो जाता है क्योंकि उसके वर्णन में कोई-न-कोई चमत्कार रहता है। कविता के अंतर्गत यह चमत्कार प्रत्येक युग में रहता है और रहेगा। कविता की समस्त पुरानी परिपाटियों के विरुद्ध नई भूमि तैयार करने का दावा करनेवाली नई कविता में भी चमत्कार है। वास्तव में नई कविता का प्रदेय ही चमत्कार सृष्टि में है। जब पूर्ववर्ती काव्य-रचनाएँ बासी पड़ गईं, तो उसमे ताजगी लाने का कार्य नई कविता ने किया और यह कार्य चमत्कार-सृष्टि के द्वारा ही किया गया।

यहाँ यह बात भी स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि चमत्कार की योजना का एक निश्चित मार्ग नहीं रहता। उसके अनेक रूप हो सकते हैं और इन्हीं में से किसी-न-किसी को कविता अपनाती रहती है। चली आती परिपाटी मे नया मोड़ उपस्थित करने में भी चमत्कार की आवश्यकता है, नई शब्दावली के निर्माण में भी चमत्कार का योग रहता है तथा नए अप्रस्तुत विधान को सँजोने में चमत्कार का ही हाथ होता है। अतएव कविता मे यह चमत्कार सदैव रहता ही है। चमत्कार और लय—यही कविता के दो भेदक तत्त्व है। ये दोनों तत्त्व किसी-न-किसी रूप में कविता के भीतर वांछनीय हैं। जब सभी प्रकार की काव्य-प्रवृत्तियों में चमत्कार का योग है, तब समस्यापूर्ति में उसका योग होना कैसे अवांछनीय माना जा सकता है।

समस्यापूर्ति काव्य की एक बड़ी उपादेयता काव्य-प्रतिभा के स्फुरण में सहायता देने में है। यदि इस प्रकार का काव्य चलता रहता है, तो बहुत से प्रतिभा-संपन्न व्यक्तियों को कविता लिखने का प्रोत्साहन प्राप्त होता है। अनेक व्यक्ति ऐसे भी हो सकते हैं, जो इस प्रकार के अवसर और मार्ग न मिलने से शायद कुछ भी काव्य-रचना न कर सकें, परंतु गोष्ठियों में बैठकर काव्य को सुनने, चमत्कार संयोजन के विविध रूपों को हृदयंगम करने से उनकी काव्य-प्रतिभा स्वतः अंकुरित हो उठती है। इसके अतिरिक्त इस प्रकार के काव्य से शब्द-प्रयोग और शब्द-निर्माण-संबंधी कवि का आत्मविश्वास बढ़ता है और वह शब्द-प्रयोग की बारीकियों को विशेष रूप से पहचानने की क्षमता प्राप्त करता है, इसलिये समस्यापूर्ति एक प्रकार का कविता-संबंधी प्रशिक्षण है।

यह आवश्यक नही कि समस्यापूर्ति करनेवाला कवि कोई विशाल ग्रथ या महाकाव्य न लिखे। वह लघु, दीर्घकाय किसी भी प्रकार के काव्य को लिखने

में स्वतन्त्र है। हरिऔध प्रसाद रत्नाकर-जैसे कवि इसके प्रमाण हैं। वरन यहाँ तक कहा जा सकता है कि किसी विशाल काव्य को लिखने के लिये समस्यापूर्ति के अभ्यास द्वारा शब्द के कलात्मक प्रयोग तथा घटना के चमत्कारिक संगठन की उसको विशेष क्षमता प्राप्त हो जाती है और उसके महाप्रबंधों में भी कलात्मक चेतना अधिक जागरूक रह सकती है क्योंकि समस्यापूर्ति इस चेतना को प्रसन्न और प्रशस्त करती है। यदि हम इन अनेक बातों को स्वीकार करते हैं, तो आज भी समस्यापूर्ति काव्य के लिये सम्यक क्षेत्र ढूँढ़ा जा सकता है।

हिंदी-साहित्य के इतिहास-ग्रंथों में प्रायः समस्यापूर्ति काव्य की उपेक्षा की गई है। यत्र-तत्र थोड़-बहुत परिचयात्मक विवरण के अतिरिक्त अधिक कुछ इसके विषय में नहीं मिलता। परंतु प्राप्त तथ्य और परंपराएँ इस बात का सम्यक निर्देशन करती हैं कि हिंदी काव्य की यह धारा बड़ी समृद्ध रही है। हिंदी साहित्य के जिन युगों में हमें लिखित रूप में बहुत अधिक सामग्री नहीं मिलती उन युगों में भी समस्यापूर्ति के रूप में काव्य रचना-संबंधी क्रिया-कलाप प्रगतिमान रहे हैं। हमारे निकट अतीत के भारतेंदु और द्विवेदी युगों में तो समस्यापूर्ति-संबंधी काव्य रचना प्रचुर मात्रा में होती रही परंतु अभी तक हिंदी काव्य की इस प्रवृत्ति का सम्यक अनुशीलन नहीं हो पाया।

यह बड़े संतोष और प्रसन्नता की बात है कि काव्य के इस महत्त्व-पूर्ण अंग का सम्यक उद्घाटन और अध्ययन प्रस्तुत ग्रंथ के लेखक डा० दयाशंकर शुक्ल ने किया। कहा जा सकता है कि इस प्रकार से हिंदी के समस्यापूर्ति काव्य का उद्धार इन्होंने इस ग्रंथ से किया। इन्होंने इस काव्य-राशि का परिपूर्ण परिचय प्रस्तुत ग्रंथ में दिया है जो रोचक होने के साथ साथ ज्ञानवर्द्धक भी है। उनका महत्त्व-पूर्ण कार्य समस्यापूर्ति काव्य की परंपरा खोजने में है। इस परंपरा में उन्होंने हिंदी के साथ-साथ संस्कृत उर्दू फारसी और मराठी समस्यापूर्ति काव्य पर भी प्रकाश डाला है और उनकी विशिष्टताओं का उद्घाटन किया है।

इस ग्रंथ में डॉ० शुक्ल ने समस्यापूर्ति काव्य के कला भाव तथा सामाजिक एवं सांस्कृतिक पक्षों का भी अनुशीलन किया है जिसका अपना महत्त्व है। परंतु जो विशेष उपयोगी कार्य हुआ है वह है समस्यापूर्ति-संबंधी विभिन्न संगठनों का परिचय—ये संगठन अपने समय में काव्य चेतना के विकास में बड़ा महत्त्व-पूर्ण कार्य करते रहे। इन संगठनों में विशेष महत्त्व-पूर्ण थे—काशी कवि समाज काशी कविमंडल बिसवाँ-कविमंडल कानपुर रसिक समाज प्रयाग रसिक कविमंडल तथा श्रीद्वारिकेश कविमंडल (कांकरोली)। इन संगठनों से विस्तृत कविमंडलों का पता लगता है जिन पर अलग से कार्य किया जा सकता है। इसके साथ-ही-साथ लेखक ने जो समस्यापूर्ति काव्य के विविध रूप प्रस्तुत किए हैं वे भी अत्यंत उपयोगी और महत्त्व-पूर्ण हैं।

हिंदी-साहित्य के शोध-कार्य के अंतर्गत इस प्रकार के कार्य का विशिष्ट महत्त्व है, क्योंकि इसमें न केवल नवीन तथ्य व सूचनाएँ है, वरन् साहित्य का एक नया क्षेत्र आगे कार्य करने के लिये उद्‌घाटित हुआ है। डॉ० शुक्ल बड़े अध्यवसायी एवं निष्ठावान् लेखक हैं। मुझे आशा है. उनके द्वारा इसी प्रकार के और महत्त्व-पूर्ण कार्य संपन्न होंगे। उनके लिये मेरा आशीर्वाद है।

मकर संक्रांति १९६७
प्रोफ़ेसर तथा अध्यक्ष हिंदी-विभाग
सागर-विश्वविद्यालय, सागर

—भगीरथ मिश्र

आमुख

प्रत्येक जाति का साहित्यिक कृतित्व विविध धाराओं में प्रवाहित होता है। कुछ धाराएँ बड़े वेग से आगे बढ़ती हैं और अपना चिरस्थायी महत्त्व स्थापित कर लेती हैं। कुछ तीव्र गति से प्रवहमान होती हुई भी कालांतर में उपेक्षित भी हो जाती हैं। हिंदी का समस्यापूर्ति-काव्य कुछ इसी पिछली कोटि की धारा के अंतर्गत आता है।

हिंदी-साहित्य के प्रसंग में यह काव्य प्रवृत्ति, विशेषतया अपने विकास क्रम में रीति काल से संबंधित है। जब हिंदी का रीति-काव्य समाप्तप्राय हो चला था और हिंदी काव्य में गत्यवरोध के लक्षण परिलक्षित होने लगे थे उस समय समस्यापूर्तिकारों ने ही स्नेह पूर्ण दीप सँजोकर वाणी के काव्य मंदिर को ज्योति से जगमगा दिया था।

इन समस्यापूर्तिकार कवियों की काव्य रुचि, उनका उत्साह कविता प्रचार की लगन तथा हिंदी-साहित्य के प्रति अटूट अनुराग—सभी कुछ श्लाघनीय हैं। इनकी कुछ चुनी हुई समस्यापूर्तियाँ हिंदी की सुंदर काव्य मणियाँ हैं। किंतु विडंबना यह रही है कि इस प्रकार का ललित काव्य साहित्य के इतिहास और आलोचना-क्षेत्र दोनों में उपेक्षित रहा। इस विषय पर हिंदी के प्रमुख विद्वान् एवं शीर्षस्थ आलोचकों ने पर्याप्त प्रकाश नहीं डाला है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने अपने 'हिंदी-साहित्य के इतिहास' में भारतेंदु बाबू के प्रसंग में समस्यापूर्ति का केवल उल्लेख भर कर दिया है।[1] इसके अतिरिक्त डॉ॰ श्यामसुंदरदास ने अपने हिंदी-साहित्य ग्रंथ में समस्यापूर्ति-परंपरा की कटु आलोचना की है। उनकी दृष्टि में समस्यापूर्ति एक हृदय-हीन मशीन है।[2] डॉ॰ श्यामसुंदरदास के उपर्युक्त उल्लेख में न तो समस्यापूर्ति-परंपरा के विकास पर ही विचार किया गया है और न समस्यापूर्ति रूप में निर्मित काव्य की समालोचना ही की गई है।

समस्या एवं समस्यापूर्ति विषय पर श्रीजगन्नाथप्रसाद 'भानु' तथा डॉ॰ रामशंकर शुक्ल 'रसाल' ने कुछ प्रकाश अवश्य डाला है। 'भानु'जी ने समस्या

१—हिंदी-साहित्य का इतिहास—आचार्य रामचंद्र शुक्ल (पृष्ठ ६४७)
२—हिंदी-साहित्य—डॉ॰ श्यामसुंदरदास (पृष्ठ ३०७-३०८)

पूर्ति के विविध भेदों को निरूपित किया है, और डॉ० 'रसाल' ने समस्या के अनेक भेदोपभेद किए। डॉ० 'रसाल' ने समस्या के इस वर्गीकरण को अत्यंत वैज्ञानिक रीति से निरूपित किया है, किंतु उक्त विद्वद्वय का यह विवेचन समस्यापूर्ति-काव्य से संबंधित नहीं है और, जहां तक अपना विचार है, इस संबंध में किसी प्रकार का भी तात्त्विक विवेचन नहीं हुआ है। अतएव समस्यापूर्ति-रूप में निर्मित काव्य के आलोचनात्मक एवं गवेषणात्मक अध्ययन की आवश्यकता थी, और इसी आवश्यकता की पूर्ति के रूप में प्रस्तुत प्रबंध की रचना हुई है।

हिंदी के समस्यापूर्ति-काव्य का अध्ययन अनेक दृष्टियों से महत्त्व-पूर्ण है। साहित्य के अंचल में चिरकाल तक संचित समस्यापूर्ति-काव्य केवल मनोरंजन की सामग्री-मात्र बनकर रह गया था, उसके काव्यगत वैशिष्ट्य की ओर विद्वानों की दृष्टि नहीं गई थी। इसी कारण साहित्य में समस्यापूर्ति-रूप में निर्मित काव्य को हेय दृष्टि से देखा गया था। किंतु, इस प्रबंध में गवेषणात्मक दृष्टि से समस्यापूर्ति-काव्य का अध्ययन और उसकी काव्यगत विशेषताओं का विवेचन करने का प्रयत्न किया गया है।

भावों की विविधरूपता और मनोरम कल्पनाओं के सहज उन्मेष से युक्त समस्यापूर्ति-काव्य हिंदी-काव्य-साहित्य में अपना विशेष महत्त्व रखता है। काव्य के विषय में जहां भावों की गरिमा गाई गई है, वहीं चमत्कार-चारुत्व का महत्त्व भी प्रतिपादित हुआ है। काव्य में दोनों की स्थिति आवश्यक एवं आनंदप्रद मानी गई है। समस्यापूर्ति-काव्य में चमत्कार-चारुत्व की प्रधानता होते हुए भी भाव-गांभीर्य का अभाव नहीं है। चमत्कार हम अनेक रूपों में देखते है—कहीं नए उपमान और नए प्रसंग की उद्भावना करके चमत्कार की सृष्टि की गई है, और कहीं प्रसंग-वैचित्र्य एवं उक्ति की वक्रता का आश्रय लिया गया है, जिससे 'पूर्ति' में चमत्कार आ गया है। अनूठी सूझ एवं अभिनव उत्प्रेक्षाओं से जहां समस्यापूर्ति-काव्य में कौतूहलोत्पादन किया गया है, वही वाग्विदग्धता द्वारा कवि की सहज प्रतिभा का भी आभास करा दिया गया है।

समस्यापूर्ति-काव्य की इन समस्त विशेषताओं का विश्लेषण प्रस्तुत प्रबंध में हुआ है। इस प्रबंध का इस दृष्टि से भी महत्त्व है कि इसमें रस, ध्वनि, छंद एवं अलंकार-निरूपण द्वारा समस्यापूर्ति-काव्य का काव्यात्मक मूल्यांकन किया गया है।

'हिंदी का समस्यापूर्ति-काव्य'-शीर्षक प्रस्तुत प्रबंध की सामग्री एकत्र करने में लेखक को अत्यधिक प्रयास करना पड़ा है। समस्यापूर्ति-रूप में निर्मित छंद किसी एक ही ग्रंथ में संगृहीत नही मिल गए, वरन् इसके लिये उन अनेकानेक दुर्लभ पत्रिकाओं की खोज करनी पड़ी, जिनमें समस्यापूर्तियां प्रकाशित हुआ

करती थी। 'काव्य-सुधाधर' एवं 'कविता प्रचारक' जैसी अनेक समस्यापूर्ति विषयक पत्रिकाओं की खोज में लेखक को अनेक स्थानों में जाना पड़ा। कभी-कभी दत्त प्रयत्न करने पर भी जब सामग्री हाथ न लगती तो बड़ी निराशा होती। गोरखपुर, काशी, मथुरा, इलाहाबाद, रायगढ़ एवं पूना आदि स्थानों में प्रबंध की सामग्री एकत्र करने के लिये जाना पड़ा।

इस सामग्री में केवल समस्यापूर्ति विषयक छंद ही प्राप्त हो सके। समस्यापूर्ति-संबंधी कोई आलोचनात्मक ग्रंथ न मिल सका। समस्यापूर्ति की परंपरा अधिकांशतया मौखिक रही है अतएव समस्यापूर्तिकार कवियों के अनेकानेक बार दर वाजे खटखटाने पड़े, कभी-कभी निराश भी होना पड़ा, किंतु श्रद्धेय गुरुवर की सतत प्रेरणा से यथेष्ट सामग्री एकत्र कर ली गई और वह प्रस्तुत प्रबंध के रूप में साकार हो सकी।

प्रस्तुत प्रबंध के प्रथम अध्याय में समस्यापूर्ति-काव्य का स्वरूप स्पष्ट किया गया है। इस प्रसंग में काव्य के अंतरंग और बहिरंग के आधार पर मुक्तक काव्य के दो भेद निरूपित किए गए हैं—१ भाव मुक्तक और २ चमत्कार-मुक्तक। समस्यापूर्ति का संबंध चमत्कार-मुक्तक से स्थापित किया है और साथ ही समस्यापूर्ति-काव्य में भाव और चमत्कार के संबंध पर भी प्रकाश डाला गया है। इस विवेचन में प्रयुक्त उद्धरणों को छोड़कर अन्य सभी कुछ मौलिक है। इसी अध्याय में समस्यापूर्ति के लक्षण, उद्देश्य एवं विशेषताओं पर भी विचार किया गया है। समस्यापूर्ति के लक्षण अग्निपुराण, कामसूत्र की जयमंगला टीका, शब्द-कल्पद्रुम आदि संस्कृत-ग्रंथों एवं भानु कवि कृत 'काव्य प्रभाकर' ग्रंथ पर आधारित हैं, किंतु इनका विश्लेषण एवं निष्कर्ष लेखक का मौलिक प्रयास है। समस्यापूर्ति के उद्देश्य एवं विशेषताओं का निरूपण भी अधिकांशतः मौलिक है।

द्वितीय अध्याय में समस्यापूर्ति की परंपरा तथा संस्कृत-समस्यापूर्ति की प्रवृत्तियों का विवेचन किया गया है और साथ-ही-साथ मराठी-समस्यापूर्ति का उल्लेख भी इस कारण कर दिया गया है कि संस्कृत-समस्यापूर्ति की प्रवृत्तियों का सर्वाधिक प्रभाव मराठी-समस्यापूर्ति पर ही पड़ा है और यह परंपरा मराठी में अब भी विद्यमान है। समस्यापूर्ति की परंपरा का निर्धारण एवं संस्कृत तथा मराठी में समस्यापूर्ति की प्रवृत्तियों का विवेचन सर्वथा मौलिक है, इसमें किसी प्रकार की भी सहायता नहीं ली गई है।

प्रबंध के तीसरे अध्याय में उर्दू एवं फारसी में 'तरह' के स्वरूप को स्पष्ट किया गया है। प्रसंग-वश उर्दू एवं हिंदी भाषा के संबंध पर भी प्रकाश डाला गया है, जो प्रस्तुत प्रबंध में उर्दू 'तरह' के सन्निवेश के औचित्य को स्पष्ट कर देता है। उर्दू के तरह-काव्य की प्रवृत्तियों को हिंदी-समस्यापूर्ति काव्य के समक्ष रखकर

तुलनात्मक दृष्टि से भी आँका गया है। दोनों काव्यों में प्रवृत्तियों का यह तुलनात्मक अध्ययन लेखक की निजी उपलब्धि है।

चतुर्थ अध्याय ही इस प्रबंध का प्रमुख एवं वृहद्काय अध्याय है। इसी अध्याय में हिंदी-समस्यापूर्ति के इतिहास की संक्षिप्त रूप-रेखा निर्धारित करने का प्रयास हुआ है। विविध कवि-संस्थाओं के उल्लेख के अंतर्गत प्रमुख पूर्तिकारों का संक्षिप्त परिचय भी दे दिया गया है तथा साथ में उदाहरणार्थ उनकी पूर्तियाँ उद्धृत की गई हैं। यत्र-तत्र एक ही समस्या पर दो या कुछ अधिक पूर्तिकारों की पूर्तियाँ देकर तुलनात्मक विवेचन भी किया गया है। उद्धृत अंश एवं कतिपय पूर्तिकारों के परिचय को छोड़कर शेष निरूपण मौलिक है।

पंचम अध्याय में समस्या एवं समस्यापूर्ति के विविध भेदोपभेद किए गए है, जो समस्यापूर्ति के रचना-विधान को स्पष्ट करने में सहायक हुए हैं। यह विवेचन मौलिक नहीं है, केवल निष्कर्ष-मात्र ही मौलिकता पर आधारित है।

षष्ठ अध्याय में समस्यापूर्ति-काव्य के कला-पक्ष पर प्रकाश डाला गया है। कला-पक्ष में भाषा, छंद, अलंकार, ध्वनि एवं उक्ति-वैचित्र्य तथा कल्पना-वैभव को ग्रहण किया गया है। समस्यापूर्ति-काव्य में भाषा-प्रयोग की दृष्टि से ब्रज-भाषा को ही महत्त्व मिला है। छंद, अलंकार तथा ध्वनि का विवेचन शास्त्रीय ग्रंथों पर आधारित है, अतएव इनसे संबंधित लक्षणों को छोड़कर शेषांश मौलिक है। उक्ति-वैचित्र्य एवं कल्पना के विषय में भी यही कहा जा सकता है।

सप्तम अध्याय में समस्यापूर्ति-काव्य के भाव-पक्ष का निरूपण हुआ है। प्रारंभ में भाव एवं रस के संबंध पर संक्षिप्त प्रकाश डाला गया है, और अंत में विभिन्न उद्धरणों द्वारा समस्यापूर्ति-काव्य में रस की स्थिति स्पष्ट की गई है। भाव एवं रस से संबंधित शास्त्रीय परिभाषाओं एवं लक्षणों को छोड़कर शेष विवेचन मौलिक है।

अष्टम अध्याय में समस्यापूर्ति-काव्य और समसामयिक समाज का संबंध स्पष्ट किया गया है। एक प्रकार से यदि कहा जाय, तो इस अध्याय द्वारा समस्यापूर्ति का सामाजिक महत्त्व अधिक स्पष्ट हो सका है। इस अध्याय में समसामयिक राजनीतिक, आर्थिक एवं सामाजिक तथा सांस्कृतिक स्थिति पर ही प्रकाश नही डाला गया है, वरन् देश-भक्ति तथा जन-आंदोलनों तक का चित्रण हुआ है। यह अध्याय लेखक का पूर्णतया निजी एवं मौलिक प्रयास है।

अंतिम अर्थात् नवाँ अध्याय इस प्रबंध का उपसंहार है, जिसके अंतर्गत गुण-दोष-विवेचन के अतिरिक्त सिंहावलोकन भी प्रस्तुत किया गया है, जो एक ही दृष्टि में संपूर्ण प्रसंग की रूप-रेखा मानस-पटल पर अंकित करा देता है।

प्रस्तुत प्रबंध-लेखन में अनेक विद्वानों का साहाय्य एवं सत्परामर्श प्राप्त हुआ

है। इस संबंध में स्वर्गीय पं० कृष्णबिहारीजी मिश्र के प्रति लेखक अत्यंत श्रद्धावनत है, जिन्होंने न केवल परामर्श और प्रोत्साहन ही दिया, वरन् अपने ब्रजराज-पुस्तकालय से अत्यधिक दुर्लभ सामग्री भी प्रदान की, तथा प्रबंध का अधिकांश भाग देख कर संतोष व्यक्त किया। उन्हीं के समकालीन स्वर्गीय पंडित रूपनारायणजी पांडेय भी लेखक के श्रद्धास्पद हैं, जिन्होंने अपने अनेक समस्यापूर्ति विषयक साहित्यिक संस्मरण सुनाए और छंद लिखवाए। काशी हिंदू विश्वविद्यालय के आचार्य (संप्रति मगध विश्वविद्यालय में हिंदी विभागाध्यक्ष) पंडित विश्वनाथप्रसाद मिश्र का लेखक हृदय से आभारी है, जिन्होंने न केवल प्रबंध का विषयानुक्रम ही देखा है, वरन् प्रबंध का कुछ अंश सुनकर सुझाव एवं सत्परामर्श भी प्रदान किया है। श्रद्धेय डॉ० रामशंकर शुक्ल 'रसाल' के लेख से प्रस्तुत प्रबंध के लिखने में अत्यधिक सहायता मिली है एतदर्थ लेखक उनका बड़ा आभारी है। श्रद्धेय डॉ० बलदेवप्रसादजी मिश्र एवं स्वर्गीय डॉ० ब्रजकिशोरजी मिश्र ने लेखक को समस्यापूर्ति-संबंधी सामग्री-प्राप्ति के अनेक स्थान निर्देशित किए हैं, अतएव लेखक इनका हृदय से आभार मानता है।

प्राच्य विद्या विभाग (लखनऊ-विश्वविद्यालय) के विद्वद्वय श्री पं० रुद्रदत्तजी अवस्थी एवं पंडित श्री आनंद झा ने प्रस्तुत प्रबंध में 'संस्कृत-समस्यापूर्ति'-संबंधी अध्याय के लिखने में सहायता पहुँचाई है, एतदर्थ लेखक उनका बड़ा कृतज्ञ है। उर्दू-फारसी विभाग के प्रोफेसर श्रीवाई० एच० मौसवी एवं प्रोफेसर एहतिशामहुसैन (संप्रति प्रयाग विश्वविद्यालय में उर्दू विभाग के अध्यक्ष) ने 'उर्दू तरह'-संबंधी सामग्री प्राप्त करने तथा फारसी लिपि पढ़ने में सहायता दी है, अतएव लेखक इनके प्रति हृदय से आभार प्रकट करता है। लेखक बंधुवर पंडित कृष्णबिहारीजी शुक्ल का कृतज्ञ है जिन्होंने अपने निजी पुस्तकालय से अनेक बहुमूल्य पुस्तकें प्रदान कर सहायता पहुँचाई है। इस प्रसंग में लेखक अपने पूज्य अग्रज पंडित राममनोहरजी शुक्ल का नाम कैसे विस्मरण कर सकता है, जिन्होंने कई-कई महीने साथ रहकर सामग्री एकत्र करने में सहायता दी है।

लखनऊ-विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग के प्रोफेसर एवं अध्यक्ष डॉ० दीनदयालुजी गुप्त एम्० ए०, एल्-एल्० बी०, डी० लिट्० का लेखक अत्यंत आभारी है, जिन्होंने प्रस्तुत विषय को प्रबंध रूप में ग्रहण करने की न केवल स्वीकृति ही दी, प्रत्युत प्रेरणा एवं उत्साह-वृद्धि भी की है। प्रस्तुत प्रबंध के निर्देशक पूज्य गुरुवर डॉ० भगीरथ मिश्र (अध्यक्ष हिंदी विभाग सागर विश्वविद्यालय,) के प्रति लेखक किन शब्दों में आभार प्रकट करे, जिन्होंने अपने सन्निर्देशन से प्रस्तुत प्रबंध में प्राण प्रतिष्ठा की है। एक प्रकार से इस प्रबंध की रचना में लेखक तो केवल निमित्त-मात्र रहा है, जो कुछ है, वह गुरुदेव की कृपा और सत्परामर्श का फल है। यह बात दूसरी है— 'चढ़ि पिपीलिकउ परम लघु, बिनु श्रम पारहिं जाहिं।'

परम श्रद्धेय आचार्य पं० नंददुलारेजी वाजपेयी का लेखक अत्यंत कृतज्ञ है जिन्होंने अपने अति व्यापृत जीवन से कुछ समय निकालकर प्रस्तुत ग्रंथ के लिये आशीर्वचन लिखने की महती कृपा की।

लेखक गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय के व्यवस्थापक श्रीसोहनलालजी भार्गव का भी आभारी है, जिन्होंने प्रस्तुत शोध प्रबंध के प्रकाशन में विशेष रुचि ली। इस संबंध में मुद्रण-व्यवस्था में विशेष रूप से सहायक पं० श्रीदत्तजी अवस्थी को धन्यवाद देने का लोभ भी लेखक संवरण नहीं कर सकता।

यह ग्रंथ विद्वज्जन के समक्ष इस आशा से प्रस्तुत है कि वे इस लघु प्रयास को 'परिहरि वारि विकार' की भाँति अपना लेंगे।

लेखक उन सभी विद्वानों के प्रति हृदय से कृतज्ञता प्रकट करता है, जिनकी कृतियों से यत्किंचित् सहायता ली गई है।

प्रस्तुत प्रबंध में मुद्रण-संबंधी जो अशुद्धियाँ प्रयत्न करने पर भी रह गई हैं, उनके लिये लेखक क्षमा चाहता है।

जून, १९६७
हिंदी-विभाग, म० स० विश्वविद्यालय
बड़ौदा

—दयाशंकर शुक्ल

विषयानुक्रम

पृष्ठ

१

अध्याय

समस्यापूर्ति-काव्य का स्वरूप

आचार्य वात्स्यायन ने चौसठ कलाओं के अंतर्गत समस्यापूर्ति का परिगणन करते हुए लिखा है—'श्लोकस्य समस्यापूरणम् क्रीडार्थम् वादार्थम् च[१]।' परंपरा के देखने से भी ज्ञात होता है कि उसके अंतर्गत समस्यापूर्ति का विशिष्ट स्थान है। संस्कृत-काव्य के विभिन्न युगों में समस्यापूर्ति रोचक और चमत्कारिक प्रभाव डालनेवाली रचना के रूप मे प्राप्त होती है। राजसभा में पाण्डित्य और कवित्व-शक्ति-प्रदर्शन करनेवाले अनेक प्रसंगों और वर्णनों में यह काव्य-विधा अपना महत्त्व-पूर्ण स्थान रखती है। हिंदी के भी दरबारी और गोष्ठी-काव्य में समस्या-पूर्ति-संबंधी रचनाएँ प्रचुर मात्रा मे हुईं। इस समय समस्यापूर्ति का बड़ा प्रचलन था। इन सबका विस्तृत विवरण आगे यथास्थान दिया जायगा।

वस्तु-वर्णन की दृष्टि से काव्य के दो भेद किए गए हैं—प्रबंध काव्य और मुक्तक काव्य। समस्यापूर्ति काव्य के मुक्तक भेद के अंतर्गत आती है। प्रबंध से उसका कोई संबंध नही है। समस्यापूर्ति के मुक्तक काव्य से संबंधित होने के कारण हमें यहाँ मुक्तक काव्य के स्वरूप पर भी विचार कर लेना चाहिए।

मुक्तक शब्द दो अर्थों में प्रयुक्त होता है। एक तो अनिबद्ध काव्य के रूप में और दूसरा अनिबद्ध काव्य के उस भेद के रूप में, जो एक छंद में ही पूर्ण होता है और जो अन्य छंदों का मुखापेक्षी नहीं होता। कुछ आचार्यों ने काव्य के भेद करते हुए निबद्ध और अनिबद्ध को प्रबंध और मुक्तक कहा है[२]। इनका यह मुक्तक भेद अनिबद्ध के लिये आया है, किंतु कुछ आचार्यों ने अनिबद्ध काव्य

१—देखिए कामसूत्र, अधि० ३ (वात्स्यायन)।

२—(क) 'मुक्तकं कुलकं कोषः संघात इति तादृशः।' काव्यादर्श, १।१३ (दण्डी)।

(ख) अनिबद्ध मुक्तकादि—८।१०, काव्यानुशासन।

(ग) 'मुक्तक श्लोक एवैकश्चमत्कारक्षमः सताम्', अग्नि० ३९।३३७

(घ) तत्र मुक्तकेषु रसबन्धाभिनिवेशिनः कवेस्तदाश्रयमौचित्यम्।
मुक्तकेषु प्रबंधेष्विवरसबन्धाभिनिवेशिनः कवयो दृश्यन्ते॥
तृतीयोद्यौत 'ध्वन्यालोक'।

के अनेक भेद किए हैं[१]। जैसे—मुक्तक, युग्मक, सन्दानितक, कलापक, कुलक और पर्यायबन्ध। इनमें मुक्तक वह रचना है जो एक छन्द में ही परिपूर्ण होती है। उसके पूर्णार्थ-द्योतन के लिये अन्य छन्दों से संबंध आवश्यक नहीं होता। ये मुक्तक विभिन्न कृतियों में संगृहीत होते हैं जैसे—शतक, दशक, अष्टक, बीसी, पचीसी, बत्तीसी, चालीसा, पचासा, शतक, सतसई, हजारा आदि। परन्तु इन संग्रहों के बीच भी मुक्तक छन्द का अपना निजी महत्त्व है।

कुछ आचार्य मुक्तक के अकेले छन्द में चमत्कार की स्थिति पर शंका करते हैं। इस प्रसंग का उल्लेख आचार्य वामन ने अपने काव्यालंकार सूत्र में इस प्रकार किया है—

'क्रमसिद्धिस्तयोः स्रगुत्तंसवत्।
क्वचिदनिबद्ध एव पर्यवसितास्तद्रूपणार्थमाह—
नानिबद्धं चकास्त्येकतेजः परमाणुवत्।
न खल्वनिबद्धं काव्यं चकास्ति दीप्यते। यथैकतेजः परमाणुरिति।
अत्र श्लोकः— असंकलितरूपाणां काव्यानां नास्ति चारुता।
न प्रत्येकं प्रकाशन्ते तैजसाः परमाणवः'[२]॥

चमत्कार के प्रसंग में उपर्युक्त सूत्रों और उनकी व्याख्याओं में अग्नि के कण का उदाहरण देकर यह अवश्य सिद्ध किया गया है कि वह अकेले सुशोभित नहीं होता वरन् समूह के साथ उसकी शोभा है। माला और उत्तंस का उदाहरण भी उसी बात की पुष्टि करता है कि अकेले पुष्प या मणि की शोभा नहीं वरन् सूत्रबद्ध होकर समूह के रूप में ही उनकी शोभा है। परन्तु अकेले फूल, अँगूठी जड़े अकेले नग और दीपक की अपनी ज्योति भी अपने आपमें सुशोभित होती है। उदाहरण से यह भी सिद्ध है और मुक्तक रचनाओं के प्रसंग में भी यह तथ्य है। समस्यापूर्ति इसी प्रकार का मुक्तक है जो अपने छन्द में ही चमकता है प्रत्युत यह कहा जा सकता है कि मुक्तक अर्थात् एक छन्द में पूर्ण रचना की समग्र चमत्कृति का विकास समस्यापूर्ति में ही हुआ है।

मुक्तक काव्य के उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि समस्यापूर्ति काव्य का उससे घनिष्ठ संबंध है। यदि इन दो काव्य रूपों में कुछ भेद है तो वह

१—मुक्तकसन्दानितकविशेषककलापककुलकपर्यायबन्धप्रभृत्यनिबद्धम्।
(काव्यानुशासनम् ८।१०—हेमचन्द्र)

२—काव्यालंकार-सूत्र १।३।२८,२९ पृष्ठ ११, १२ (वामन)

यही कि मुक्तक काव्य के अधिकांश रूपों और विशेष रूप से गीति-काव्य के अंतर्गत कवि का निजी ऐकांतिक अनुभव व्यक्त होता है, जब कि समस्यापूर्ति-काव्य में कवि का सामाजिक एवं तटस्थ अनुभव चमत्कार-पूर्ण ढंग से प्रकट किया जाता है। गीति-काव्य से यह इस बात में अपनी विशिष्ट भिन्नता रखता है कि उसमें निजी अनुभूति का सीधे, सरल ढंग से प्रकाशन होता है, जब कि समस्यापूर्ति में चमत्कार एवं वैचित्र्य-पूर्ण प्रकाशन आवश्यक है। समस्यापूर्तिकार कवि जीवन के अनुभवों को रोचक संदर्भों के माध्यम से उपस्थित करके समस्या की पूर्ति करता है।

काव्य के अंतरंग और बहिरंग के आधार पर मुक्तक काव्य के दो भेद किए जा सकते हैं। १. भाव मुक्तक और २. चमत्कार मुक्तक। भाव मुक्तक के अंतर्गत गीति-काव्य को ले सकते हैं और चमत्कार मुक्तक के अंतर्गत समस्यापूर्ति-काव्य को ग्रहण किया जा सकता है। मुक्तक काव्य के इस प्रकार दो विभेद कर लेने के पश्चात् हमारे समक्ष यह प्रश्न उठता है कि क्या चमत्कार मुक्तक में भाव नहीं हो सकता अथवा भाव मुक्तक चमत्कार-युक्त नहीं हो सकता है ?

समस्यापूर्ति-काव्य के स्वभाव का स्पष्टीकरण करते हुए हम देख सकते हैं कि समस्यापूर्ति-काव्य के रूप में भाव-सृष्टि कम और चमत्कार-सृष्टि अधिक हुई है। इसका प्रमुख कारण यह है कि समस्यापूर्तिकार कवि दी हुई समस्या की एक ही छंद में पूर्ति करता है। वहाँ पर उसका मुख्य उद्देश्य होता है अपने श्रोता अथवा पाठक के हृदय को चमत्कृत कर देना। अतएव समस्यापूर्ति में वह ऐसी चमत्कार-पूर्ण उक्ति रखता है, जिसका सुननेवाले के हृदय पर तुरंत प्रभाव पड़े। दूसरा कारण यह भी है कि समस्यापूर्ति के एक ही छंद में न तो भावों का पूर्ण उत्कर्ष और न रस-निष्पत्ति ही सदैव पूर्ण रूपेण हो सकती है। परंतु यहाँ पर ध्यान देने की बात यह है कि रस के साथ चमत्कार का कोई निषेध नहीं है। चमत्कार का प्राधान्य होते हुए भी काव्य में रस की स्थिति हो सकती है, और रस का प्राधान्य होते हुए भी, काव्य में चमत्कार का महत्त्व है। चमत्कार काव्य की वह विशेषता है, जो सबसे पहले श्रोता पर प्रभाव डालती है। वास्तव में चमत्कार किसी भी वस्तु के दृश्य-सौंदर्य के समान है। सौंदर्य को देखकर जिस प्रकार हमारा मन उसकी ओर आकृष्ट होता है, उसी प्रकार चमत्कार-युक्त काव्य से हमारा मन खिंच जाता है। सौंदर्य के साथ यदि गुणों का भी किसी व्यक्ति में समावेश है, तो उस वस्तु या व्यक्ति के प्रति आकर्षण स्थायी रहता है। वही दशा रस से युक्त चमत्कार-काव्य की है। यह काव्य की एक आवश्यक विशेषता है। आगे कुछ भाव-पूर्ण एवं चमत्कार-युक्त उद्धरण दिए जाते हैं, जिससे समस्यापूर्ति काव्य में भाव और चमत्कार की स्थिति और स्पष्ट हो जायगी—

बीते दिन सात भए हरि के शिथिल गात,
घटिगो प्रकाश मुख चंद री जुन्हैया को,
ह्वै है कहा दया! दिन जैहैं बालगैयाँ नहिं
संकट हरैया कोऊ साँकरी समैया को।
शंकर सुकवि जोरि बैठो ह्वै अथैया खात—
माखन मिठैया तजि सब मुरैया को,
थाभा दौरि भैया करो कछुक सहैया, गिरि
गिरन चहत कर काँपन कन्हैया को"।

उपर्युक्त छंद में कवि ने वात्सल्य भाव का सुंदर परिस्फुरण किया है। एक पिता को अपने पुत्र के कुशल-क्षेम की आशंका सदैव बनी रहती है इस भाव का लेकर कवि ने कर काँपन कन्हैया की समस्या की भाव पूर्ण एवं सरस पूर्ति की है। अब एक ऐसी पूर्ति देखिए जिसमें केवल चमत्कार चारुत्व ही है—

दस लूटि खायो, तीन पेट में अजीरन भो,
धन-ज्वर बढ्यो महावैद्य सहयोग है,
दिन दिन बाढ्यो बढ़ गाढ़ो भयो छिन-छिन—
राग भो उरधगम रोगी भो अधोग है।
वात को प्रकोप कैधौं, वात को प्रकोप आय,
सीत भे अभीत, महापथ भ्रम-योग है,
बैरिन के चित्त चिंता-चिता पै जराय दीन्हो,
गाँधी जमराज है असहयोग रोग है।

प्रस्तुत छंद में कवि ने गाँधी जमराज है—असहयोग रोग है इस समस्या की पूर्ति करने के लिए ही ब्रिटिश शासन को एक रोगी के रूप में चित्रित करके चमत्कार भर दिया है। इस छंद में समस्या की अवयपूर्ति के साथ-साथ चमत्कार-चारुता ही प्रमुख रूप में पाई जाती है। समस्यापूर्ति रूप में कुछ ऐसी भी रचनाएँ हुईं, जिनमें भाव-संपत्ति और चमत्कार-संपत्ति दोनों का समान रूप से समावेश हुआ है। जैसे कि निम्न लिखित छंद में—

आए भौंर रूप ह्वै किते धौं ब्रज-कुंजन कूँ,
झाँवर परे ह्यां लता-द्रुम-बगियान मैं,

१—शंकर कवि (हरिद्वार)—कृत, काव्य सुधाधर (त्रैमासिक) षष्ठ वर्ष, १९६१ वि०।

२—श्रीअनूप शर्मा रचित।

सूनी ब्रज बीथिन निहारि दृग वारि-धार,
उमड़ि रही है घर-घर गलियान मैं।
ऊधौ या विलोकि कहियो सँदेस सूधो सो यौं—
पाइयो इकंत कान्ह जब ब्रज-ध्यान मैं;
कान्ह सँग गयो है बसंत अब गोपिन के,
ग्रीषम हिए मैं, बरखा है अँखियान मैं[१]॥

प्रस्तुत छंद में वियोग-भाव का उत्कर्ष है, और साथ में चमत्कार यह है कि प्यारे कृष्ण के चले जाने से ब्रज-मंडल में बसंत नहीं रह गया, वह भी उन्हीं के साथ चला गया। यहाँ तो केवल 'ग्रीषम' और 'बरखा' का ही निवास है।

उपर्युक्त विवेचन से समस्यापूर्ति-काव्य में भाव एवं चमत्कार की स्थिति स्पष्ट हो गई है। अब समस्यापूर्ति के स्वरूप और उसके क्षेत्र को स्पष्ट करने के लिये समस्यापूर्ति के संबंध में विभिन्न विद्वानों के विचारों की समीक्षा आवश्यक है। इस दृष्टि से हमारे सामने सर्व-प्रथम विवेचनीय लक्षण अग्निपुराण का है। पुराणकार ने समस्या को चित्रकाव्य के अंतर्गत रक्खा है, और चित्र-काव्य का लक्षण इस प्रकार दिया है—

गोष्ठ्यां कुतूहलाधायी वाग्बन्धश्चित्रमुच्यते[२]।

अर्थात् गोष्ठी में पढ़ने-मात्र से कुतूहल उत्पन्न करनेवाला कवि का वाग्बंध (शब्द-गुंफन) चित्र कहलाता है। इस चित्र-काव्य के पुराणकार ने सात भेद बतलाए हैं, जिनमें समस्या भी आ जाती है—

प्रश्नः प्रहेलिका गुप्तं च्युतं दत्तं तथोभयम्।
समस्या सप्त तद्भेदा नानार्थस्यानुयोगतः[३]।

अर्थात् नाना अर्थों के अनुयोग से इसके सात भेद होते हैं—प्रश्न, प्रहेलिका, गुप्त-पद, च्युत पद, दत्त पद, च्युत दत्त पद और समस्या। आगे चलकर पुराणकार ने प्रत्येक भेद का लक्षण भी दिया है। समस्या के लक्षण-निरूपण करते हुए उन्होंने कहा है—

सुश्लिष्टपद्यमेकं यन्नानाश्लोकांश निर्मितम्;
सा समस्या परस्याऽऽत्मपरयोः कृति संकरात्[४]।

१—अवध सा० परिषद् में दी हुई समस्या की पूर्ति,
पूर्तिकार—डॉ० भगीरथ मिश्र।

२—देखिए अग्नि पुराण अ० ३४३

३— ,, ,, अ० ३४३। २३

४— ,, ,, अ० ३४३। ३१

विभिन्न श्लोकांशों से निर्मित एवं आत्म तथा पर की कृति से समन्वित पद्य समस्या कहलाता है। पुराणकार ने समस्या के मुख्य लक्षण पर उपर्युक्त श्लोक में प्रकाश डाला है। यहाँ पर उन्होंने समस्यापूर्ति के लिये समस्या शब्द का प्रयोग ही उपयुक्त माना है। अभी तक इन संस्कृत के आचार्यों ने समस्या का केवल यही अर्थ लगाया है कि समस्या वह है जिसमें अपनी एवं दूसरे की रचना का सगठन अथवा समन्वय हुआ हो किंतु आगे चलकर समस्या को कठिन एवं उलझन के अर्थ में प्रयुक्त किया जाने लगा जिसमें पूर्ति शब्द जोड़ने की भी आवश्यकता का अनुभव किया गया। इस तथ्य पर आगे प्रकाश डाला जायगा।

कामसूत्र दूसरा संस्कृत ग्रंथ है, जिसमें समस्यापूर्ति की चौंसठ कलाओं में गणना की गई है किंतु समस्या के लक्षणों पर प्रकाश नहीं डाला गया है। काम सूत्र के टीकाकार यशोधर ने अपनी जयमंगला टीका में समस्यापूर्ति के ऊपर कुछ प्रकाश डाला है। उन्होंने समस्या शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार दी है—

सम उपसर्ग पूर्वक असु क्षेपण धातु से ण्यत प्रत्यय होकर समस्या शब्द बनता है। णित परे रहते उपधावृद्धि ता सनापूर्वक विधिरनित्यत्वम् इस सूत्र के कारण नहीं हुई। इसका तात्पर्य यह है कि संज्ञा को लेकर होनेवाली विधि नित्य नहीं है यही कारण है कि उपधा संज्ञा को लेकर होनेवाली वृद्धि न हुई। अथवा कृत्य ल्युटो बहुलम सूत्र से यहाँ न होनेवाला भी यत् हो जाता है जिसमें वृद्धि का बखेड़ा नहीं रहता। सामान्यरूप से संक्षेप में किसी पदार्थ को कह देने का नाम समस्या है।[1] यहाँ पर समस्या समास की धारणा से संबंधित रूप में देखी गई है जो व्याकरणिक दृष्टि से स्वाभाविक है पर समस्या एक विशेष प्रकार की काव्य रचना कला के अर्थ में प्रयुक्त होकर प्रायः रूढ़ि-सी हो गई है। इस तथ्य पर टीकाकार ने प्रकाश नहीं डाला है। साधारण रूप से किसी वस्तु का संक्षिप्त कथन कर देना समस्या के वास्तविक लक्षण का द्योतक नहीं। अतएव टीकाकार समस्या शब्द की व्युत्पत्ति देते हुए भी उसके साहित्यिक लक्षणों पर प्रकाश नहीं डाल सके। संस्कृत का तीसरा ग्रंथ है शब्द-कल्पद्रुम जिसमें 'समस्या' का लक्षण इस प्रकार दिया गया है—

समस्या—स्त्री० समसन उक्त्या संक्षेपणम।
सम्-अस् ण्यत।
संज्ञापूर्वकत्वात् वृद्धयभाव।

१—कामसूत्र (वात्स्यायन) जयमंगला टीका (यशोधर) अधि० १, अ० ३

अर्थात् सम् उपसर्ग एवं ण्यत् प्रत्यय के योग से अस् धातु समस्या शब्द को निर्मित करती है। यहाँ पर संज्ञा पूर्व में होने के कारण वृद्धि नहीं हुई है। इसका विवेचन ऊपर किया जा चुका है। इसके आगे कोषकार ने व्युत्पत्ति को अधिक स्पष्ट करते हुए लिखा है—

समस्यते संक्षिप्यतेऽनया समस्या, अस्युइर्'क्षेपे'शी व्रजयजेत्यादिना क्यप् भिन्नाभिप्रायस्य, श्लोकादेस्तदीयत्वेन प्रत्यभिज्ञानायमानानां भागानां स्वकृतेन परकृतेन वा भागान्तरेण समसनं संघटनं समस्यते। (माधवी)

श्लोकस्य पादेनैकेन द्वाभ्याम् त्रिभिर्त्वापूरणम्। यथा—

मुमूर्षाः किं तवाद्यापि चित्र कानन नागरैः।
स्मर नारायणं येन त्रेतायां रावणो 'हतः'।

इत्यादि श्लोकादौ पादे पूरण रूपेणायमित्येके।[1] (रायमुकुटः)

अर्थात् जिससे किसी पदार्थ का संक्षेप में कथन हो, उसे 'समस्या' कहते है। कोपकार का यह मत 'जयमंगला टीका' के समान है। किंतु, कोपकार अपनी व्याख्या को और सुस्पष्ट करने के लिये 'अस्युइर्क्षेपेशीव्रजयजेत्' पाणिनि के इस सूत्र को उद्धृत करते है। इस प्रकार भिन्न अभिप्रायवाले व्यक्ति के द्वारा उच्चारित वाक्य के आदि अथवा अंत के जो शब्द हों, उन्हें अपने शब्दों के द्वारा एक पाद, दो पाद अथवा तीन पाद से स्पष्ट कर देना 'समस्या' कहलाता है। अपने मत की पुष्टि के लिये कोषकार रायणाचार्य द्वारा लिखित धातु पाठ की माधव-नामक विद्वान् द्वारा लिखी 'माधवी' टीका एवं अमरकोष की टीका पदचंद्रिका के लेखक रायमुकुट का भी उल्लेख करते है। उपर्युक्त श्लोक इसी प्रसंग में उद्धृत किया गया है, जिसका आशय है कि 'ऐ मृतप्राय प्राणी, तेरे लिये आज चित्र आदि का क्या (प्रयोजन है)। इस समय तुझे नारायण का स्मरण करना चाहिए, जिन्होंने त्रेता युग में रावण का वध किया था।' यहाँ पर अंतिम पद 'त्रेतायां रावणो हतः' को समस्या रूप में रखकर ही उपर्युक्त श्लोक की पूर्ति की गई है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट हुआ कि समस्यापूर्ति के संबंध में जो धारणा अग्निपुराण की रही है, वही शब्द-कल्पद्रुम में भी स्पष्ट की गई है। अर्थात् समस्या-पूर्ति वह है, जिसमें कि अपने और दूसरे की रचनाओं का एक साथ 'समन्वय या संगठन हुआ हो।' यह उपर्युक्त उद्धरण के 'स्वकृतेन परकृतेन वा भागान्तरेण समसनं संघटनं समस्यते'—वाक्यांश से भी स्पष्ट हो जाता है। अब हम प्राकृत शब्दकोश 'अभिधान-राजेंद्र' में समस्या-संबंधी लक्षण पर विचार करेंगे। प्राकृत कोपकार ने लिखा है—

१—शब्दकल्पद्रुम ५वाँ कांड, (पृष्ठ २७०-२७१)

समस्या—समस्या—स्त्री० । समस्यते-संक्षिप्यतेऽनया । सम अस-अदम् संभेदेन उक्तस्य श्लोक पदादे परकृतम् स्वकृतम् वा अवसाधन भागान्तरेण समस्यार्थ पूर्ते प्रश्ने[1] ।

अर्थात् समस्त रूप से कथित श्लोक एवं पदों को दूसरे से अथवा स्वयं रचित अवांतर से संबद्ध स्थापित करने के लिए प्रश्न किए जाने पर । कोशकार ने अपने विवेचन को अधिक संक्षिप्त करने में समस्या शब्द के तात्पर्य को भी अस्पष्ट कर दिया है । कोशकार की यह व्याख्या अधिक स्पष्ट नहीं हो पायी है ।

उपर्युक्त संस्कृत एवं प्राकृत भाषा के आधार पर समस्यापूर्ति का यह तात्पर्य निकलता है कि वह किसी दूसरे या स्वयं अपने द्वारा रचित पद्यांश का स्वरचित पद्यांश द्वारा पूर्ति है। इसमें संक्षिप्तता का ध्यान रक्खा जाता है और दोनों अंशों का समन्वय होता है । इसमें किए गए प्रश्न का उत्तर भी आ सकता है । अब हम आगे समस्यापूर्ति-संबंधी हिन्दी ग्रन्थकार एवं प्रमुख विद्वानों का भी मत प्रस्तुत करेंगे—

चौदहवीं शताब्दी में ज्योतिरीश्वर ठाकुर द्वारा प्रणीत 'वर्ण रत्नाकर'[2] में चौंसठ कलाओं के विवरण के अंतर्गत समस्या-पूर्ति का 'समस्यापूरण' रूप में केवल नामोल्लेख मिलता है । लक्षण आदि नहीं । समस्यापूर्ति-संबंधी लक्षण अन्य प्रसिद्ध प्राचीन हिंदी-साहित्य के ग्रंथों में प्राप्य नहीं है । संभवतः १८वीं शताब्दी में बाल कृष्ण कवि द्वारा लिखे गए 'रसचंद्रिका' ग्रंथ में समस्या-पूर्ति-संबंधी उल्लेख निम्न लिखित प्रकार से मिलता है—

अथ समस्यालक्षण— अर्द्ध चरन के अर्द्ध लघु तासु अर्द्ध है तुक ।
देत जु कवित बनाइ को ताहि समस्या उक्त[3]॥

अर्थात् एक चरण का अष्टमांश 'तुक' होता है और उसे कवित्त बनाने के लिये दिया जाता है अतएव उसे 'समस्या' कहते हैं ।

रस चंद्रिका की उपर्युक्त परिभाषा लघु व्याप्ति-दोष-युक्त जान पड़ती है क्योंकि समस्या की व्याप्ति पूर्ण चरण, चरणार्द्ध एवं चरण चतुर्थांश आदि में भी देखी जाती है । इन्होंने चरणांश को देकर छंद रचना करना या कराना को समस्यापूर्ति के रूप में स्वीकार किया है और उपर्युक्त सभी स्थितियों का स्पर्श नहीं किया है ।

यहाँ पर इस बात पर प्रकाश डाल देना आवश्यक है कि 'समस्या' के संबंध में पूर्व संस्कृत आचार्यों की जो धारणा रही है उसका धीरे धीरे हिन्दी-काव्य में रूप बदल गया । अग्निपुराणकार आदि विद्वानों ने समस्या का अर्थ 'जाल' एवं 'पर

१—अभिधान राजेन्द्र कोष ७ भाग (पृष्ठ ६२३)

२—वर्ण रत्नाकर (ज्योतिरीश्वर ठाकुर) ४ कल्लोल २४ (ख), संपादक—डॉ० सुनीतिकुमार चटर्जी प्रकाशक—रायल एशियाटिक सोसायटी कलकत्ता ।

३—रसचंद्रिका (बालकृष्ण) श्लोक ९६८वां अपूर्ण (ना० प्र०स० पुस्तकालय काशी)

की कृति का संघटन अथवा समन्वय ही लगाया था और पूर्ति शब्द को समस्या के साथ एक प्रकार से अनावश्यक ही समझा था। किंतु, कालांतर में, हिंदी के कवियों एवं विद्वानों ने 'समस्यापूर्ति' शब्द के द्वारा ही अपने मंतव्य को प्रकट किया। उनके लिये 'समस्या' शब्द संभवतः पर्याप्त न था। द्वितीयतः संस्कृत के किसी भी ग्रंथ में यह देखने को नहीं मिला कि दी हुई समस्या केवल अंतिम पद, पदांश अथवा चरणांश ही हो, जबकि हिंदी समस्यापूर्ति के लिये यह आवश्यक हो गया कि समस्या सदैव अंतिम पद या पदांश के रूप में होनी चाहिए।

समस्या तथा उसकी पूर्ति के लक्षण 'काव्य प्रभाकर' के प्रणेता जगन्नाथ-प्रसाद 'भानु' ने इस प्रकार दिए हैं—

"समस्या शब्द का साधारण अर्थ किसी भी छंद के पूर्ण होने के लिये शब्द अथवा वाक्य-निर्माण करना तथा पूर्ति का अर्थ परा करना है। अर्थात् किसी भी छंद के दिए हुए शब्द अथवा वाक्य को उसके पूर्व अथवा पश्चात् सार्थक शब्दों की योजना करके पूरे छंद के रूप में कर देना[1]। प्रस्तुत लक्षण-निरूपण में हिंदी मे प्रचलित धारणा को प्रकट किया गया है। संस्कृत कोषों की धारणा का उतना ध्यान नहीं है। इसी विचार को लेकर अन्यत्र भी कहा गया । हिंदी-विश्व-कोष में 'समस्या' तथा समस्यापूर्ति के लक्षण इस प्रकार दिए गए हैं—

समस्या—(सं० स्त्री०) समसनं उक्ता संक्षेपणम् सम्+अस्-ण्यत्। १—किसी श्लोक या छंद आदि का वह अंतिम पद या टुकडा, जो पूरा श्लोक या छंद बनाने के लिये तैयार करके दूसरों को दिया जाता है और जिसके आधार पर पूरा श्लोक या छंद बनाया जाता है। पर्यायः समासार्था, समस्यार्था, समाप्तार्था। २—संघटन, ३—मिश्रण (मिलाने की क्रिया), ४—कठिन अवसर या प्रसंग। समस्यापूर्ति—किसी समस्या के आधार पर कोई छंद या श्लोक आदि बनाना[2]। कोषकार ने उपर्युक्त व्याख्या में समस्या एवं समस्यापूर्ति के सर्वमान्य लक्षण ही निरूपित किए है। इस विवेचन से समस्या-संबंधी धारणाएँ और उसके लक्षण स्पष्ट हो गए है। अब हम समस्यापूर्ति-काव्य के उद्देश्यों पर भी प्रकाश डाल देना आवश्यक समझते हैं।

समस्यापूर्ति का काव्य से घनिष्ठ संबंध है, अतएव काव्य के उद्देश्यों पर यहाँ प्रकाश डालना आवश्यक नही प्रतीत होता। समस्यापूर्ति के उद्देश्य काव्य के शास्त्रोक्त उद्देश्यों में से विशेषतया अर्थ और यश हैं। आचार्य मम्मट ने कहा ही है—'काव्यं यशसेऽर्थकृते'। यश-प्राप्ति का यह काव्य अत्यंत सुगम साधन रहा है। अनेक कवियों ने राजसभाओं एवं कवि-सम्मेलनों तथा कवि-गोष्ठियों में अपनी विलक्षण समस्यापूर्तियों के द्वारा यश प्राप्त किया है। इन गोष्ठियों एवं सभाओं का

१—काव्य-प्रभाकर, ११वी मयूख।

२—हिंदी-विश्वकोष, भाग २३।

मध्य-युग मे बडा प्रचलन था जिनमे सरस एव सुदर समस्यापूर्तियाँ तथा छन्द विधान करनेवाले कवियो को अपूर्व सम्मान दिया जाता था जिससे कविगण यशस्वी होते थे। 'सन् ईसवी के प्रारभ से लेकर सैकडो वर्ष बाद तक कवियो के सम्मान के लिये सरस्वती भवन वात्स्यायनन मे विदग्ध गोष्ठियाँ बैठा करती थी उनमे अप्रस्तुतक बिंदुमती समस्यापूर्ति आदि मे सम्मानित होनेवाले व्यक्ति को राजा लोग पद से सम्मानित ही नही करते थे कभी-कभी उन्हे रथ मे बैठाकर स्वय खीचकर सम्मान भी दिया करते थे[1]। इस प्रकार की गोष्ठियो का उल्लेख आचार्य दडी ने भी अपने काव्यादर्श ग्रथ मे किया है[2]। गोष्ठियो का विशद वर्णन एव राजसभा मे उनका स्थान राजशेखर के काव्य-मीमासा ग्रथ मे देखा जा सकता है[3]। उन दिनो राजसभाओ मे चामत्कारिक उक्तियो से प्रतिद्वद्वी कवि को पछाडने का एक दूसरे मे बडा चाव रहता था तथा आशु कवित्व द्वारा सभा को चकित करके ये कवि यशस्वी होते थे। इन कवियो को यश के साथ-साथ धन की भी प्राप्ति होती थी। इस प्रकार वे यश और धन दोनो के भागी होते थे। अतएव समस्यापूर्ति का एक उद्देश्य है—यश और धन की प्राप्ति कराना[4]।

जिज्ञासा मानव की सतत प्रेरक शक्ति रही है। मानव-सृष्टि का इतिहास इसी का रहस्योद्घाटन करने पर प्रस्फुटित होता है। जब मनुष्य प्रकृति के विराट प्रागण मे शैशव की अठखेलियाँ करता है तो वह नील-नभ मे झिलमिलाते हुए तारामडल को उत्सुक नेत्रो से देखने लगता है। यह उत्सुकता शिशुओ के लिये तो स्वाभाविक है ही किंतु प्रौढ व्यक्तियो मे भी इसकी कमी नही। इस प्रकार के अनेक उदाहरण साहित्य से दिए जा सकते हैं। रामचरित-मानस का एक प्रकरण देखिए—

राम सागर पार करके ससैन्य विराजमान हैं इतने मे सध्या हुई। पूर्व दिशा मे उदित होता हुआ निशाकर दीख पडा। उसे देखकर राम के हृदय मे जिज्ञासा उत्पन्न होती है कि चद्रमा के बीच मे कालिमा क्या है? इस जिज्ञासा का जो साहित्यिक समाधान किया जाता है वह भी द्रष्टव्य है—

कह प्रभु ससि महुँ मेचकताई कहहु काह निज निज मति भाई।
कह सुग्रीव सुनहु रघुराई ससि महुँ प्रगट भूमि कै झाई॥
कोउ कह जब बिधि रति मुख कीन्हा सार भाग ससि कर हरि लीन्हा।
छिद्र सो प्रगट इदु उरमाही तहि मग दखिअ नभ परिछाही॥

१—साहित्य का मर्म आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी।
२—काव्यादर्श १।१०५।
३—काव्य-मीमासा अ० १०।
४—पडित अविकादत्त व्यास को समस्यापूर्ति के द्वारा ही यश और धन की प्राप्ति हुई थी। देखिए संस्कृत के विद्वान और पडित—रामचद्र मालवीय

कह हनुमंत सुनहु प्रभु, ससि तुम्हार प्रिय दास।
तव मूरति बिधु उर बसति, सोई स्यामता अभास ॥[१]

राम के हृदय में जिज्ञासा थी अतएव वही समस्या देनेवाले हैं, सुग्रीव एवं हनुमान् आदि पूर्ति करनेवाले है। हनुमान् की विलक्षण पूर्ति राम की जिज्ञासा का पूर्णतया शमन कर देती है[२]। इससे स्पष्ट हो जाता है कि समस्यापूर्ति मानव-हृदय में अप्रतिहत गति से उठनेवाली जिज्ञासाओं का शमन करती एवं एक वस्तु को अनेक दृष्टियों से देखने का भाव जाग्रत् करती है।

समस्यापूर्ति का मुख्य उद्देश्य मनोरंजन है—'श्लोकस्य समस्यापूर्णम् क्रीडार्थम् वादार्थम् च[३]।' समस्यापूर्ति का उपयोग क्रीडा एवं वाद-विवाद के लिये किया जाता है। इसका उल्लेख कामसूत्रादि संस्कृत ग्रंथों में मिलता है। मनोरंजन के इस साधन का प्रचार अधिकतर राजसभाओं एवं साहित्यिकों की गोष्ठियों में था। साहित्यिक रुचि के व्यक्तियों के लिये मनोरंजन का यह उत्कृष्ट साधन था। वर्तमान समय में साहित्यिक गोष्ठियों का रूप कुछ भिन्न हो गया है। जहाँ पहले समय में साहित्यिक गोष्ठियाँ राजसभाओं एवं जनता के बीच में हुआ करती थीं, और इस प्रकार सर्व साधारण में मनोरंजन के साथ-साथ काव्य-रुचि को सजग बनाए रखती थीं, वहाँ अब साहित्य-गोष्ठियाँ थोड़े-से साहित्यिकों के बीच ही हो पाती हैं। अब समस्यापूर्ति इने-गिने साहित्यकारों के ही मनोरंजन का साधन-मात्र रह गई[४]।

एक प्रमुख उद्देश्य समस्यापूर्ति का है—'कवि-परीक्षा।' इसके द्वारा कवि की काव्य-शक्ति, उसका प्रत्युत्पन्नमतित्व, अनूठी सूझ, कलात्मकता एवं कल्पना की उड़ान आदि की भली भाँति जाँच हो जाती है। कवि-परीक्षा की परिपाटी भारतीय साहित्यिक-समाज मे अति प्राचीन काल से प्रचलित थी। राजशेखर ने अपने

१—रामचरित-मानस, लं० (१२क) गीता-प्रेस, गोरखपुर।

२—युद्ध के पूर्व राम तथा रावण के दलों में जो मनोविनोद की रीतियाँ हैं, वे भी सुंदर विरोधाभास से पूर्ण है। एक ओर तो मदिरा और मांस उड़ रहा है। तथा तामसिक गान हो रहा है तथा दूसरी ओर चंद्रमा के स्याह धब्बे पर ललित काव्य की समस्याएँ पूरी की जा रही है। राजबहादुर लमगोड़ा। देखिए, माधुरी वर्ष ५, खंड १, सं० ५, १९२६ ई०।

३—कामसूत्र, अधि० ३।

४—अवध-साहित्य-परिषद्, लखनऊ में समस्यापूर्ति-संबंधी गोष्ठी भी कभी-कभी होती है, जिसमें पुराने खेवे के कविगण एवं आधुनिक शैली के कवि, दोनो समान रूप से भाग लेते है।

काव्य-मीमांसा-ग्रंथ में भारत के दो महानगरों का उल्लेख किया है जिनमें विविध परीक्षाओं का आयोजन होता था। काव्यकार-परीक्षा उज्जयिनी में और शास्त्रकार-परीक्षा पाटलिपुत्र में होती थी। १—महानगरेषु च काव्यशास्त्र परीक्षार्थं ब्रह्मसभा कारयेत्। तत्परीक्षोत्तीर्णानां ब्रह्मरथयानं पट्टबन्धश्च।

श्रूयते चोज्जयिन्यां काव्यकार परीक्षा—

इह कालिदास मेण्ठावत्रामररूपसूर भारवय
हरिचन्द्र चन्द्रगुप्तौ परीक्षिताविह विशालायाम्।"

श्रूयते च पाटलिपुत्र शास्त्रकार परीक्षा—

अत्रोपवर्षवर्षाविह पाणिनिपिङ्गलाविह व्याडि।
वररुचिपतञ्जली इह परीक्षिता ख्यातिमुप जग्मु॥'
इत्थं सभापतिर्भूत्वा य काव्यानि परीक्षते।
यशस्तस्य जगद्व्यापि स सुखी तत्र तत्र च' ॥

राजशेखर का कथन है कि इस प्रकार सभापति होकर जो काव्य की परीक्षा लेता है उसका संसार में यश होता और वह सुखी होता है। इसके अतिरिक्त मध्यकाल में अनेक राजाओं की सभाओं में भी कवि परीक्षा हुआ करती थी। इस प्रसंग में महाराजा भोज की सभा का उल्लेख किया जा सकता है। भोज की राजसभा के अनेक रोचक प्रसंग समस्यापूर्ति के विषय में मिलते हैं। सम्पूर्ण भोज प्रबंध इस प्रकार के सन्दर्भों से भरा पड़ा है। एक प्रकार से भोज प्रबंध समस्यापूर्ति के लिये ही रचा गया जान पड़ता है। इसमें न केवल समस्यापूर्ति का ही विवरण मिलता है अपितु महाराजा भोज की गुणग्राहकता एवं काव्य मर्मज्ञता का भी परिचय मिलता है।

एक समय का उल्लेख है कि राजा भोज के दरबार में विलोचन नाम के ब्राह्मण ने आकर राजा की प्रशंसा की। भोज ने उसे सात लाख दान में दिए, और पूरे ब्राह्मण परिवार को सम्मुख खड़ा देखकर एक समस्या 'क्रियासिद्धि सत्वे भवति महतां नोपकरणे' पूर्ति के लिए दिया। वृद्ध ब्राह्मण की पूर्ति इस प्रकार है—

घटो जन्मस्थानं मृग परिजनो भूर्जवसनं
वनं वासः कन्दादिकमशनमेवंविधगुण।
अगस्त्यः पाथोधिं यदकृत कराम्भोज कुहरे
क्रियासिद्धिः सत्वे भवति महतां नोपकरणे॥

जिनका घर ही जन्मस्थान है मृग ही परिवार के व्यक्ति हैं भोजपत्र ही वस्त्र है वन ही वास स्थान है कंद-मूल भोजन है ऐसे अगस्त्य मुनि ने समुद्र को

१—काव्य मीमांसा पृष्ठ ५५, अ० १० (राजशेखर)

आचमन कर लिया। इससे स्पष्ट है कि महान् पुरुषों की कार्य-सिद्धि शक्ति पर आधारित है, सामग्री पर नहीं। इसके पश्चात् राजा ने ब्राह्मण को संतुष्ट करके ब्राह्मणी से भी पूर्ति करने का आग्रह किया। ब्राह्मणी की पूर्ति देखिए—

रथस्यैकं चक्रं भुजगयमिताः सप्त तुरगाः
निरालम्बो मार्गश्चरणविकलः सारथिरपि।
रवियात्येवातं प्रतिदिनमपारस्य नभसः
क्रियासिध्दिः सत्वे भवति महतां नोपकरणे॥

जिसके रथ में एक ही पहिया है और जिसके रथ के सातों घोड़े सर्पों से बँधे हैं एवं जिसका मार्ग निरवलंब है तथा जिसका सारथी भी पंगु है, ऐसा सूर्य अनंत आकाश को पार कर देता है। इससे सिद्ध होता है कि महान् पुरुषों की कार्य-सिद्धि आत्म-शक्ति पर निर्भर है, सामग्री पर नहीं। इसके पश्चात् राजा ने ब्राह्मण-कुमार से पूर्ति करने को कहा। ब्राह्मण-कुमार की पूर्ति इस प्रकार है—

विजेतव्या लंका चरण तरणीयो जलनिधि—
र्विपक्षः पौलस्त्यौ रणभुवि सहायाश्च कपयः।
पदातिर्मर्त्योऽसौ सकलमवधीद्राक्ष सकुलं
क्रियासिध्दिः सत्वे भवति महतां नोपकरणे॥

लंका को जीतनेवाले, सागर को चरणों से पार करनेवाले, विपक्ष में रावण-जैसे शत्रु के होने पर भी केवल बंदरों की सहायता से पैदल ही रामचंद्रजी ने संपूर्ण राक्षस-कुल का वध कर दिया। इससे प्रकट है कि महापुरुषों के कार्य पौरुष से होते है, सामग्री से नहीं। अंत में ब्राह्मण-पुत्र-वधू ने भी अपनी रचना प्रस्तुत की—

धनुः पौष्पं मौर्वी मधुकरमयी चंचलदृशां
दृशा कोणो वाणः सुहृदपि जडात्मा हिमकरः।
स्वयं चैकोऽनंगः सकल भुवनं व्याकुलयति
क्रियासिध्दिः सत्वे भवति महतां नोपकरणे॥[1]

अर्थात् पुष्परूपी धनुष को धारण करनेवाला, भ्रमररूपी प्रत्यंचावाला, चंचल नेत्रवाली स्त्रियों के नेत्रकोण-रूपी बाणवाला, जडात्मा चंद्रमा का मित्र, अंग-हीन, अनंग नामवाला कामदेव समस्त भुवनों को व्याकुल कर देता है। इससे विदित होता है कि महापुरुषों की क्रियासिद्धि पुरुषार्थ में होती है, साधन एवं सामग्री से नहीं।

१—देखिए भोजप्रबंध, श्लोक १६७, १६८ १६९ और १७० (वल्लालसेन)

राजा भोज ब्राह्मण-परिवार की काव्य परीक्षा लेकर अत्यंत प्रसन्न हुए और प्रत्येक पात्र को यथोचित दान देकर संतुष्ट किया। काव्य परीक्षा के इस प्रकार के अनेक प्रसंग साहित्य में मिलते हैं। कुछ अन्य प्रसंग भी देखिए—

हिन्दी-काव्य में आचार्य केशवदास की कविता अत्यन्त क्लिष्ट मानी गई है। मध्ययुग में जब कभी किसी कवि की कविता सुनकर राजदरबार प्रसन्न नहीं होता था अथवा कवि उत्कृष्ट कविता नहीं रच पाता था तो उसे विदाई न देने के लिए उससे केशव की कविता का मर्म पूछा जाता था—

कवि को देन न चहे बिदाई
पूछे केशव की कविताई।

उपर्युक्त उक्ति से स्पष्ट हो जाता है कि कवि परीक्षा का क्रम सदैव से चला आ रहा है जो समस्यापूर्ति का मुख्य उद्देश्य था।

पंडित अंबिकादत्तजी व्यास दस वर्ष की आयु में ही कविता करने लगे थे, किन्तु इनकी कवित्व शक्ति पर किसी को विश्वास न होता था। एक बार जोधपुर के राजगुरु ओझा नृसिंहदत्त ने भी पंडितजी की काव्य परीक्षा लेने के लिये एक समस्या दी—

'मूंदि गईं आँख तब लाखें कौन काम की।'

व्यासजी ने उसकी तत्क्षण पूर्ति इस प्रकार की—

चमकि चमाचम रहे हैं मनिगन चारु,
सोहत चहूँधा धूम धाम धन - धाम की।
फूल फुलवारी फल फैलि के फबे हैं तऊ,
छवि छटकीली यह नाहिन अराम की।
काया हाड़ चाम की ले, राम की बिसारि सुधि,
जाम की को जाने बात करत हराम की।
अंबादत्त भाखैं अभिलाखैं क्या करत झूठ,
मूंदि गईं आँखें तब लाखें कौन काम की'।

कवि-काव्य प्रतिभा एवं आशु कवित्व दोनों की परीक्षा लेकर ओझाजी अत्यन्त प्रसन्न हुए और सवांग के दिव्य वस्त्र तथा प्रशंसा पत्र देकर गुण-ग्राहकता प्रकट की। इसी प्रकार एक बार पंडित महावीरप्रसाद द्विवेदी ने पंडित रूपनारायण पांडेय की परीक्षा ली थी। द्विवेदीजी ने पांडेयजी को दो समस्याएँ पूर्ति के लिये दी—

१ 'अगना अनंग की' तथा २ 'ढोल की पोल'।

१—देखिए संस्कृत के विद्वान् और पंडित—रामचन्द्र मालवीय पृष्ठ ६६

इनमें से पहली समस्या की पूर्ति देखिए—

शंकर की सेवा में उमा को उपस्थित देख
काम ने वसंत ने, चढ़ाई एक संग की ;
योगिराज का भी मन चंचल हुआ, पर
रोक दी प्रवृत्ति वहीं वढ़ती उमंग की।
रोष से तृतीय नेत्र खोलकर देखते ही
राख ही दिखाई पड़ी मदन के अंग की ;
होकर अचेत, त्यों ही जड़ से उखाड़ी गई
लता के समान गिरी अंगना अनंग की[1]।

इस संबंध में अधिक उदाहरण देने की आवश्यकता नहीं। समस्यापूर्ति के उद्देश्य पर प्रकाश डालते हुए सरस्वती के वर्तमान संपादक प० श्रीनारायण चतुर्वेदी लिखते है—"इधर हमारे नए कवि समस्यापूर्ति को वहुत ही हेय समझने लगे है, किंतु कवि की प्रत्युत्पन्नमति, सूझ और काव्य-अधिकार का प्रमाण जितना समस्यापूर्ति से मिलता था, उतना अन्य किसी माध्यम से नहीं[2]। इस कथन की पुष्टि में एक कवि ने भी लिखा है—

कवि की परिच्छा तो समस्या ही से कीनी जात,
कैसी है उड़ान, पहुचानि किती ऊँची है।

काव्य-परीक्षा के अतिरिक्त समस्यापूर्ति के कुछ महत्त्व-पूर्ण उद्देश्य और भी हैं। समस्यापूर्ति के द्वारा काव्य-रचना और काव्य-श्रवण दोनो के प्रति अभिरुचि जाग्रत् होती तथा काव्य-साहित्य की वृद्धि होती है। समस्यापूर्ति के द्वारा धार्मिक, सांस्कृतिक एवं राजनीतिक विचारधाराओं का प्रचार भी किया जाता है। अनेक ऐसे प्रसंग मिलते हैं, जिनमें भक्ति-भाव अथवा धर्म-संवंधी समस्याएँ दी गई है, और अनेक कवियों ने उसी भाव से संबंधित अपनी रचनाएँ की है। इस प्रकार से धर्म अथवा भक्ति-धारा का प्रचार किया गया है। राजनीतिक दृष्टि से भी समस्यापूर्तियों का उपयोग किया गया है। कभी महारानी विक्टोरिया के प्रति 'चिरजीवी रहो विक्टोरिया रानी' कहकर मंगल-कामना प्रकट की गई है और कभी 'नागरी प्रचारि करि दीन्हो है' समस्या देकर भापा-संवंधी प्रचार भी किया गया है। अतएव प्रचार भी समस्यापूर्ति का एक विशेष उद्देश्य रहा है।

उपर्युक्त विवेचन से निष्कर्प निकला कि समस्यापूर्ति के प्रमुख उद्देश्य हैं—
१—जिज्ञासा-वृत्ति का शमन एवं एक वस्तु को अनेक दृष्टि से देखने का भाव।

१—देखिए 'सरस्वती', सितंवर १९५६ ई०

२— " " " "

२—मनोरंजन (आधुनिक समय में समस्यापूर्ति का विशेष प्रयोजन मनोरंजन ही है। समय-सम्मानित प्रणाली को किसी प्रकार बनाए रखने के लिए ही अब प्राय समस्याएँ दी जाती हैं और उनकी पूर्ति मनोविनोद के लिए की जाती है।)

३—काव्य प्रतिभा की परीक्षा।

४—साहित्य की वृद्धि करना।

५—काव्य रचना एवं काव्य श्रवण के प्रति अभिरुचि जाग्रत् करना।

६—प्रचार।

समस्यापूर्ति-काव्य अपने इन्हीं उद्देश्यों के कारण समस्त मध्यकाल एवं हिंदी साहित्य के भारतेंदु-युग और द्विवेदी-युग के संधि काल में विशेष रूप से प्रतिष्ठित रहा और आज भी सरस्वती की गुप्त धारा के समान काव्य-साहित्य के अंतराल में विद्यमान है। समस्यापूर्ति-काव्य के उद्देश्यों के साथ-साथ यदि इसकी प्रमुख विशेषताओं का भी उल्लेख कर दिया जाय तो इसका स्वरूप और भी स्पष्ट हो जायगा।

जैसा कि प्रारंभ में ही कहा जा चुका है कि साहित्य-क्षेत्र में समस्यापूर्ति काव्य अपना विशिष्ट स्थान रखता है। यह काव्य साहित्यिक प्रवृत्तियों का प्रतिनिधित्व एक सीमित क्षेत्र में ही कर सका है। संभवत इसीलिये विद्वानों ने इस शुद्ध काव्य के अंतर्गत नहीं रक्खा था[१]। यद्यपि यह बात किसी अंश में सत्य है कि समस्यापूर्ति-काव्य में सार्वभौमिक प्रवृत्तियों का पूर्णतया दर्शन नहीं होता और यह भी सत्य माना जा सकता है कि यह काव्य मानव की एक प्रवृत्ति विशेष (मनोविनोद) का ही परिचायक है तथापि समस्यापूर्ति-काव्य के विषय में यह धारणा कि यह काव्य पूर्णतया एकांगी एवं महत्त्व-हीन है निराधार है। इस संबंध में स्वर्गीय पं० कृष्णविहारी मिश्र ने लिखा है—

कवित्व शक्ति के विकास के लिये समस्यापूर्ति का ही एकमात्र सहारा लेना अनुचित है परंतु उसका सर्वथा तिरस्कार भी अनावश्यक है[२]।

समस्यापूर्ति रूप में रची कविता भी अपने संकुचित क्षेत्र में ही कुछ प्रमुख विशेषताएँ रखती है। प्राचीन मनीषियों ने जब कवि को परिभू स्वयंभू आदि विशेषणों से युक्त किया था तो उनके मस्तिष्क में कवि-स्वातंत्र्य का विचार भी संभवत रहा होगा। कवि के लिये किसी प्रकार का बंधन वांछनीय नहीं। कवि की आत्मा जितनी ही मुक्त होगी उतने ही सुंदर भावों का कवि-हृदय में परिस्फुरण होगा। किंतु जो कवि बंधनों के आल जाल को पार करके भी सुंदर

१—अग्नि पुराण आदि संस्कृत-ग्रंथों में समस्यापूर्ति को चित्र काव्य के अंतर्गत रक्खा है।

२—माधुरी वर्ष ९ खंड १ सं० ६ पृष्ठ ४२०। जनवरी-जून १९३१ ई०

भाव-युक्त रचना का सृजन करता है, वह अत्यंत प्रतिष्ठा एवं यश का भागी होता है। समस्यापूर्तिकार कवियों के विषय में यह सदैव ध्यान में रखना होगा कि ये कवि समस्याओं की उलझन में पड़कर भी सुंदर रचनाएँ प्रस्तुत कर सके। यह काव्य उक्ति-वैचित्र्य, सूझ एवं प्रत्युत्पन्नमतित्व आदि गुणों से युक्त है। ये विशेषताएँ काव्य के प्रमुख तत्त्वों पर ही आधारित है, अतएव संक्षिप्त रूप से उनका विवेचन भी कर देना आवश्यक है।

काव्य के मुख्यतया पाँच तत्त्व पौर्वात्य एवं पाश्चात्य विद्वानों ने माने हैं—१. शब्द, २. अर्थ, ३. भाव, ४. कल्पना एवं ५. विचार अथवा बुद्धि। ये तत्त्व काव्य-शरीर में उसी भाँति परिव्याप्त हैं, जैसे—"छिति जल पावक गगन समीर" मानव-शरीर में विद्यमान है। अंतर केवल इतना ही है कि काव्य-तत्त्वों में से किसी तत्त्व के न रहने पर भी काव्य-शरीर बना रहता है, किंतु मनुष्य-शरीर में पंच-तत्त्व का रहना अनिवार्य है। उपर्युक्त पंच-तत्त्वों से युक्त काव्य उत्कृष्ट काव्य माना जाता है, किंतु काव्य में ये सर्वत्र नहीं पाए जाते है। शब्द और अर्थ तो प्रत्येक काव्य के लिये अनिवार्य है, क्योंकि इनका सम्मिलन ही साहित्य है। महाकवि कालिदास ने इसी विचार से वाणी और अर्थ का संबंध समझाते हुए 'पार्वती और परमेश्वर' की वंदना की थी[1] तथा 'कार्लाइल' को भी यह कहना पड़ा था कि 'देह और आत्मा, शब्द और अर्थ, यहाँ-वहाँ सर्वत्र आश्चर्य-रूप से सहगामी है[2]।' अतएव शब्द और अर्थ समस्यापूर्ति-काव्य के भी अनिवार्य तत्त्व हैं। तीसरा तत्त्व है—भाव। भाव के अंतर्गत रमणीयता, रस, अलंकार तथा गुण सभी कुछ आ जाते हैं। अर्थात् भावतत्त्व ही काव्य-तत्त्वों में प्रमुख तत्त्व है। इस भावतत्त्व से ही रस-निष्पत्ति होती है। रससिद्ध कवि हमें किसी भी रस में वहा सकते है, किंतु समस्यापूर्ति-काव्य में भावों की गंभीरता, प्रभावशीलता, मृदुलता एवं उत्कृष्टता सर्वत्र नहीं पाई जाती है। कुछ उत्कृष्ट कवियों की पूर्तियों को छोड़कर अन्य कवियों में यह विशेषता नहीं दीख पड़ती। हाँ, भावों की विविधता सर्वत्र मिलेगी। अतएव 'भाव-वैविध्य' समस्यापूर्ति-काव्य की अपनी निजी विशेषता है।

भाव के पश्चात् कल्पना तत्त्व आता है। भाव के समान कल्पना का भी काव्य में समुचित महत्त्व है। समस्यापूर्ति के संबंध में यदि हम अनुभूतिमूलक कल्पना को न लेकर अनूठी सूझ को ही लें, तो यह सर्वव्याप्त विशेषता इस काव्य

१—वागर्थाविव संपृक्तौ वागर्थप्रतिपत्तये
जगतः पितरौ वंदे पार्वती परमेश्वरौ॥ रघुवंश १।१ (कालिदास)

२—For body and soul, word and idea go strangely together, here and every where (The Hero as Poet)—'Carlyle'

न मिलेगी। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि अनुभूतिमूलक कल्पना का इस काव्य में प्रयोग नहीं हुआ है। यहाँ पर व्यापकता के कारण ही अनूठी सूझ को विशेषता के रूप में ग्रहण किया गया है वरन् अनुभूतिमूलक कल्पना का भी प्रयोग किया गया है। अनूठी सूझ का प्रयोग समस्यापूर्ति-काव्य में हम दो रूपों में देखते हैं—एक तो नये उपमान जुटाने में और दूसरे अभिनव प्रसंगों के उपस्थित करने में। समस्यापूर्ति-काव्य की यह सब प्रधान विशेषता कही जा सकती है। एक ही समस्या की पूर्ति के लिये विभिन्न कवि नए-नए प्रसंगों की कल्पना करते हैं और अभिनव उपमानों को जुटाते हैं। प्रसंगों के अभिनव प्रयोग के साथ-साथ प्रसंग-वैचित्र्य भी इस काव्य में व्यापक रूप से देखने को मिलता है। अतएव प्रसंग-वैचित्र्य भी समस्यापूर्ति-काव्य की विशेषताओं के अन्तर्गत आ जाता है।

बुद्धि एवं विचार तत्व पर आधारित उक्ति-वैचित्र्य और कौतूहल प्रदान इस काव्य में अधिकाधिक मिलता है। उक्ति-वैचित्र्य समस्यापूर्ति काव्य की अपनी विशेषता है। समस्यापूर्ति का सम्पूर्ण ढाँचा उक्ति-वैचित्र्य पर ही आधारित है। यदि समस्या की पूर्ति के लिये केवल तुकबन्दी कर दी गई है तो श्रोता अथवा पाठक के ऊपर उस रचना का कुछ भी प्रभाव न होगा। अतएव पूर्ति करने में सदैव उक्ति का बाँकापन अपेक्षित है। यदि उक्ति में वैचित्र्य नहीं, बाँकापन नहीं अथवा कौतूहल जाग्रत कर सकने की सामर्थ्य नहीं तो समस्यापूर्ति व्यर्थ है। तुकबंदी करनेवाले कवियों की पूर्तियों को सुनने के लिये कोई व्याकुल न होगा, अतएव समस्यापूर्ति-काव्य में कवियों ने उक्ति-वैचित्र्य एवं कौतूहलोत्पादन पर विशेष ध्यान दिया। इसी कारण उक्ति-वैचित्र्य एवं वाग्वैदग्ध्य के दर्शन इस काव्य में अधिकता से होते हैं। अतएव इसे हम समस्यापूर्ति-काव्य की प्रधान विशेषता के रूप में ग्रहण करते हैं। समस्यापूर्ति-काव्य की उपर्युक्त विशेषताओं को हम इस रूप में भी देख सकते हैं—

१—भाव-वैविध्य।

२—अनूठी सूझ (दो रूपों में—१—नये उपमान २—नये प्रसंग।)

३—प्रसंग-वैचित्र्य।

४—नव्यता।

५—कौतूहलोत्पादन।

६—उक्ति-वैचित्र्य।

७—वाग्वैदग्ध्य प्रदर्शन।

समस्यापूर्ति-काव्य की प्रस्तुत विशेषताओं के अतिरिक्त हम रस, अलंकार, भाषा एवं छंद सम्बन्धी विशेषताओं का भी यदि संकेत यहाँ कर दें तो प्रासंगिक ही होगा। रस, अलंकार, भाषा एवं छंद का विस्तृत विवेचन अन्यत्र किया जायगा। यहाँ तो केवल इतना ही कहा जा सकता है कि समस्यापूर्ति-काव्य में रस के रूप

में श्रृंगाररस का संयोग-पक्ष विशेष रूप से ग्रहण किया गया है। अधिकांश हिंदी-पूर्तियाँ इसी रूप में मिलती है। अतएव इसे हम इस काव्य की विशेषता के रूप में ले सकते है। अलंकारों में चमत्कार उत्पन्न करनेवाले अलंकार ही अधिकतर लिये गए है। अंत्यानुप्रास तो समस्यापूर्ति के अभिन्न अंग के रूप में प्रयुक्त हुआ है। भाषा के सम्बंध में ब्रजभाषा ही इस काव्य के अधिक अनुकूल रही है। रीति-काल से विरासत के रूप में ब्रजभाषा ही समस्यापूर्ति काव्य को मिली थी। (यहाँ पर यह ध्यातव्य है कि उपर्युक्त भाषा-सम्बंधी विवेचन केवल हिंदी-समस्यापूर्ति-काव्य के विषय में ही हुआ है।)

समस्यापूर्ति-काव्य का सम्बंध केवल मुक्तक-काव्य से है, प्रबंध अथवा गीति-काव्य से नही। अतएव इस काव्य की रचना के लिये अधिकतर उन्ही बड़े छंदों का प्रयोग किया गया है जिनमें प्रवाह एवं संगीत दोनों हैं तथा भाव की एकरूपता भी जिनमें बराबर पाई जाती है। इसीलिये कुछ छंद तो समस्यापूर्ति के अपने हो गये है। इनमें कवित्त और सवैया मुख्य है। ऐसे छंदो की विशेषता यह है कि इनका सारा रचना-कौशल, उक्ति-वैचित्र्य एवं चमत्कार-चातुर्य छंद की अंतिम पंक्ति मे ही एक प्रकाश-स्तंभ की भाँति दूर से झलकता है।[1] छंद-सम्बंधी यह विशेषता अन्य काव्य-रूपों में कम ही देखने को मिलेगी। किंतु समस्यापूर्ति-काव्य में यह विशेषता सर्वत्र मिलती है।

इस विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि समस्यापूर्ति-काव्य, साहित्य में अपना महत्वपूर्ण स्थान रखता है। समस्यापूर्ति की परंपरा ही इस बात का प्रमाण है कि इस प्रकार का ललित-काव्य जो मध्यकाल में राजाओं से लेकर सर्व साधारण जनता के बीच में भी अपनाया जाता रहा है मानव के लिये आज भी वांछनीय है। राजदैनिन्दनी में जिसको स्थान मिला हो, साहित्यकारों की गोष्ठियों में जिसका प्रचलन होता रहा हो एवं काव्य-प्रतिभा-परीक्षा का जो मुख्य साधन हो, ऐसी काव्य-विधा को हम आज भी समुचित रीति से अपना सकते हैं। समस्यापूर्ति-काव्य के उपर्युक्त उद्देश्य ही इस बात के प्रमाण है कि यह काव्य मनुष्य की रागात्मक-वृत्ति को तुष्ट करनेवाला, काव्याभिरुचि को जाग्रत करनेवाला एवं काव्य-रचना की प्रेरणा देनेवाला है।

१—गोस्वामी तुलसीदास की कवितावली के अनेक छंद समस्यापूर्ति-जैसे लगते हैं।

देखिए बालकांड के छंद-संख्या ३-४ तथा अयोध्याकांड के छंद-संख्या १-२।

१

अध्याय

समस्यापूर्ति की परम्परा

भारतीय साहित्य की यह विशेषता रही है कि यह देश म वहत आज के साम्प्रदायिक एव धार्मिक साहित्य तक प्राय पद्यमय ही रहा है। आयुर्वेद दर्शन एव राजनीति क ग्रथ भी पद्यमय ही हैं। मनुष्य की प्रवृत्ति है कि वह सदैव प्रवाह पूर्ण एव गेय तत्त्वो को शीघ्रता से ग्रहण कर लेती है और चिरकाल तक उसे स्मरण रखती है। मनुष्य की यह प्रवृत्ति किसी एक देश तक सीमित नहीं अपितु यह बडी व्यापक है और विश्व के लगभग प्रत्येक देश म इसके दर्शन होते हैं। विश्व का अधिकाश प्रारम्भिक वाङ्मय पद्यमय है। उस पद्यात्मक साहित्य मे काव्य कला का पूर्ण विकास हुआ है। ऋग्वेद म ही हम इस कला का विकास पाते हैं। उसके अनेक सूक्तों में पहेलिया एव गूढार्थ मत्रो के दर्शन होते हैं। ये मत्र और उपनिषदो क वाक्य ब्राह्मण भाग क ऐतिहासिक वर्णन और गाथाएँ परम उत्कृष्ट ध्वनि काव्य हैं[१]।

समस्यापूर्ति क अध्ययन म स्पष्ट हो जाता है कि प्रारभ में इसका रूप आज क वर्तमान रूप से अधिक भिन्न था। समस्यापूर्ति क वर्तमान स्वरूप को देखकर इसकी प्रारभिक अवस्था का अनुमान लगाना टेढी खीर होगा। समस्यापूर्ति का सर्वप्रथम उल्लेख हम अग्निपुराण म मिलता है। पुराणकार समस्यापूर्ति का वर्णन शब्दालकार के ही अन्तर्गत करता है। इसस स्पष्ट हो जाता है कि वह इस काव्य का भेद अथवा शैली न मानकर शब्दालकार का ही एक उपभेद मानता है[२]।

कुछ विद्वानो ने समस्यापूर्ति को एक कला माना है और काव्य से उसका प्रथम भेद किया है। ऐसे विद्वानो में अग्रगण्य हैं भारतीय कामतत्त्व विवेचक महामुनि वात्स्यायन। इन्होंने अपने कामसूत्र ग्रथ म काम की उपायभूत चौसठ कलाओं का उल्लेख किया है— तयाप्यौपरिकी चतुःषष्टिमाह[३]। इन कलाओं में समस्यापूर्ति को विशेष महत्त्व मिला है। समस्यापूर्ति-कला का वात्स्यायन क समय में व्यापक प्रचार था क्योकि समस्या क्रीडा को समुचित रीति स करने के लिये

१—देखिए 'हिंदुत्व' अध्याय १९ (रामदास गौड)

२—देखिए अग्निपुराण अध्याय ३४३ (पृष्ठ २३१)

३—देखिए कामसूत्र', अधि० १ अध्याय ३

उसका कुछ विशेष समय भी निश्चित कर दिया गया था। यह कामसूत्र के कुछ सूत्रों से ज्ञात होता है—समस्याक्रीड़ा आह यक्षरात्रि। कौमुदीजागरः। सुवसंतक ॥ २७[1] ॥ अर्थात् समस्याक्रीड़ा यक्षरात्रि, कौमुदी जागर और सुवसंतक में होती है। वात्स्यायन के द्वारा समस्यापूर्ति को कला के अंतर्गत मान लेने से संभव है कि कुछ विद्वान इसे काव्य का अंग न स्वीकार करें। अतएव इस विषय पर भी कुछ संक्षिप्त प्रकाश डाल देना उचित होगा।

विद्वानों ने कलाओं के दो मुख्य भेद किए हैं—१. उपयोगी कला, २. ललित कला। उपयोगी कलाओं में बढ़ई, लुहार, कुम्हार, राज आदि के व्यवसाय आते हैं तथा ललित कलाओं में वास्तु-कला, मूर्ति-कला, चित्र-कला, संगीत-कला और काव्य-कला ये पाँच भेद आते हैं। उपयोगी कलाओं का संबंध मनुष्य के शरीर से है और इनसे मनुष्य की आवश्यकताओं की पूर्ति होती है, किंतु ललित कलाएँ मानव के अलौकिक आनंद की विधात्री हैं और उसके मानसिक विकास से सम्बंधित है। कलाओं के इस संक्षिप्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि समस्यापूर्ति उपयोगी कलाओं के अंतर्गत नहीं आ सकती। ललित कलाओं में—वास्तु, मूर्ति तथा चित्र-कला से भी इसका सम्बंध नहीं जोड़ा जा सकता, क्योंकि इन कलाओं में ईंट, चूना, प्रस्तर-खंड, रंग तथा तूलिका आदि स्थूल आधारों की नितांत आवश्यकता रहती हैं तथा ये केवल नेत्र-ग्राह्य है। कर्णेंद्रिय का इनमे कुछ भी उपयोग नहीं होता। सगीत के लिये वाद्य-यंत्र, स्वरों का आरोह-अवरोह आदि अपेक्षित है। अतएव यह कला भी समस्यापूर्ति को अपने अंतर्गत समाहित नही कर सकती। अंत में काव्य ही एक ऐसी कला है, जिसके अंतर्गत समस्यापूर्ति को ग्रहण किया जा सकता है; क्योंकि जिस प्रकार काव्य के लिये किसी मूर्त आधार की आवश्यकता नही रहती, उसी प्रकार समस्यापूर्ति में भी पद, पदांग, चरण आदि के अतिरिक्त किसी मूर्त आधार की आवश्यकता नही। कलाओं के मूर्तत्त्व एवं अमूर्तत्त्व आधार पर ही उपर्युक्त विवेचन किया गया है और अधिकतर विद्वान् इसी आधार पर कला की उत्कृष्टता का निरूपण करते है। जिस कला में मूर्तत्त्व जितना अधिक होगा वह उतनी ही निकृष्ट कोटि की मानी जायगी, इसके विपरीत जिस कला में मूर्तत्त्व जितना ही कम होगा, वह उतनी ही उत्कृष्ट होगी[2]। इस दृष्टि से समस्या-पूर्ति को हम काव्य का ही एक रूप मानते हैं, जैसा कि इसके लक्षण-निरूपण के सम्बंध में माना गया है। इस विषय में कविवर जयशंकर 'प्रसाद' जी का मत जान लेना उचित होगा। वह लिखते हैं—

१—देखिए 'कामसूत्र', अधि० १, अध्याय ३

२—विशेष विवरण के लिये देखिए डॉ० श्यामसुंदरदास का 'ललित कलाएँ'-सम्बंधी लेख

कला की भारतीय दृष्टि में उपविद्या मानने का जो प्रसंग आता है उससे यह प्रकट होता है कि यह विज्ञान से अधिक सम्बन्ध रखती है। उसकी रेखाएँ निश्चित सिद्धान्त तक पहुँचा देती हैं। सम्भवतः इसीलिए काव्य समस्यापूरण इत्यादि भी छन्द शास्त्र और पिंगल के नियमों के द्वारा बनने के कारण उपविद्या कला के अन्तर्गत माना गया है[1]।

प्रसाद जी के उपर्युक्त कथन का तात्पर्य यही प्रतीत होता है कि विज्ञान में किसी वस्तु का एक निश्चित नियम एवं सिद्धान्त में बँधा हुआ पाते हैं अतएव जिन कलाओं में किसी सिद्धान्त अथवा नियम तक पहुँचना होता है वह विज्ञान की कोटि में आ जाती है और इसीलिए उन्हें उपविद्या भी कहा जाता है। समस्यापूर्ति में भी समस्या के पद, पदांश आदि की पूर्णतः पूर्ति करनी होती है अतएव इसे भी कला अथवा उपविद्या के अन्तर्गत रखना होगा। यदि प्रसादजी का कथन यही तात्पर्य होता तो इसमें किसी अंश में सन्तोष हुआ जा सकता था किंतु 'प्रसाद' जी का यह कथन—कि छन्द शास्त्र और पिंगल के नियमों के द्वारा बनने के कारण समस्यापूर्ति को उपविद्या-कला के अन्तर्गत माना गया है—स्पष्ट नहीं हो पाता है। छन्द शास्त्र और पिंगल के नियमों का पालन तो लगभग सभी मध्यकालीन एवं प्राचीन हिन्दी-काव्य में किया गया है। इस दृष्टि से तो यह समस्त काव्य उपविद्या कला के अन्तर्गत आ जायगा। अतएव छन्द शास्त्र और पिंगल के नियमों के द्वारा बनने के कारण ही हम समस्यापूर्ति को उपविद्या-कला के अन्तर्गत नहीं मान सकते। इसे हम काव्य का ही एक स्वरूप मानते हैं।

प्रसादजी के समय में समस्यापूर्ति का जो स्वरूप था सम्भवतः उसको देख करके ही प्रसादजी ने यह समझा कि यह केवल किसी पद, चरण अथवा पदांश को लक्ष्य करके ही उसकी पूर्ति मात्र है किन्तु जिस प्रकार पिंगल में लक्षण देकर रचना की जाती है वैसा समस्यापूर्ति में नहीं पाया जाता है। छन्द की जो शास्त्रीयता है जिसको कि प्राचीन अर्थ में कला के रूप में लोगों ने ग्रहण किया है वह इसका शास्त्रीय स्वरूप है। यह शास्त्रीय रूप समस्यापूर्ति काव्य में सब प्रधान रूप नहीं है। यह कहा जा सकता है कि यह अन्य काव्य-रूपों की अपेक्षा समस्यापूर्ति-काव्य में अधिक प्रधानता ग्रहण करता है क्योंकि एक शब्द, पद या चरण को पूरे छन्द के साँचे में बैठाने का प्रयत्न समस्यापूर्तिकार का रहता है। इतना होते हुए भी उसका मुख्य प्रयास यदि केवल तुक या पद पूर्तिवाली छन्द रचना मात्र है तो उसे समस्यापूर्ति कहना अधिक समीचीन नहीं प्रतीत होता। ऐसी अवस्था में उसका नाम भी समस्यापूर्ति न होकर छन्द पूर्ति जैसा कुछ होना चाहिए और वह कोटि केवल अभ्यास-लभ्य हो सकती थी परन्तु समस्यापूर्तिकार कवि का

१—देखिए—काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध पृष्ठ १९ (जयशंकर प्रसाद)

मुख्य लक्ष्य समस्या में दिए हुए शब्द, पद या चरण को किसी पूर्ण भाव या विचार का अंग बना देना है, उसको विकसित करके चमत्कार के साथ उसे पूर्णता प्रदान करनी है। अतः उसका प्रमुख प्रयास भाव और अर्थ की सिद्धि बन जाता है। कल्पना का कार्य भी इसमे प्रधानतया विद्यमान है, जिसे केवल अभ्यास से प्राप्त नही किया जा सकता। अतएव शिल्प का महत्त्व रखने के साथ-साथ इसमें रचना या सृष्टिपरक महत्त्व भी कम नहीं होता। ऐसी स्थिति में इसको काव्य के अंतर्गत परिगणित कर देना ही समीचीन होगा।

आचार्य दण्डी, जो ईसा की ७वीं शती के माने जाते हैं, अपने 'काव्यादर्श' ग्रंथ मे कलाओं के विषय में "नृत्यगीत प्रभृतयः कला कामार्थ संश्रयाः" (३-१६२) लिखते हुए इनकी संख्या भी चौसठ मानते है—"इत्थं कला चतुःषष्ठि विरोधः साधुर्नीयताम्" (३-१७१)।

इससे स्पष्ट हो जाता है कि दंडी के समय में समस्यापूर्ति का व्यापक प्रचार रहा होगा। दूसरे, संस्कृत-साहित्य का यह काल शब्द-चमत्कार की दृष्टि से अत्यंत महत्त्वपूर्ण था। भारवि, माघ आदि के महाकाव्य शब्द-चमत्कार से भरे पड़े है। यहाँ तक कि एक ही शब्द के आधार पर पूरे-पूरे श्लोक रच डाले गए हैं। यह परंपरा क्षीण नहीं हो गई थी। आगे चलकर श्रीहर्ष आदि ने भी शब्द-चमत्कार को अपने काव्य में पूर्ण स्थान दिया। कहने का तात्पर्य यही है कि समस्यापूर्ति के लिये यह काल सर्वथा उपयुक्त था।

संस्कृत के काव्य-ग्रंथों में समस्यापूर्ति के विषय में किसी प्रकार का वैज्ञानिक विवेचन नहीं मिलता। 'अग्निपुराण' ही वह ग्रंथ है, जिसमें इसका सर्वप्रथम उल्लेख मिलता है, किंतु वैज्ञानिकता का उसमें भी पूर्ण अभाव है। काव्य-मीमांसा के समय तक समस्यापूर्ति की यही स्थिति रही। विद्वद्वर राजशेखर ने अपने 'काव्य-मीमांसा' ग्रंथ में कवि-परीक्षा का वर्णन किया है, किंतु समस्यापूर्ति के विषय में कुछ भी नही कहा है। काव्य-मीमांसा से पता चलता है कि भारत के दो प्राचीन महानगरों में दो प्रकार की परीक्षाएँ होती थीं—१. काव्यकार-परीक्षा उज्जयिनी में और २. शास्त्रकार-परीक्षा पाटलिपुत्र में। इससे यह भी स्पष्ट हो जाता है कि संभवतः कवि-प्रतिभा-परीक्षा के लिये ही सर्वप्रथम समस्यापूर्ति का उद्भव हुआ हो, जो विकसित होते-होते राजशेखर के काल तक आकर चूड़ांत विकास को पहुँच गई। कवि-परीक्षा के अनेकानेक प्रसंग भोज-प्रबंध में मिलते हैं।

राजशेखर राजाओं के नियतकाल का उल्लेख करते हुए लिखते हैं—

"स प्रातरुत्थाय कृतसंध्यावरिवस्यः सारस्वतं सूक्तमधीयीत। ततो विद्यावसथे यथासुखमासीनः काव्यस्य विद्या उपविद्याश्चानु-

शीलयदाप्रहरात्। न ह्यवविधम य प्रतिमा हेतुर्यथा प्र थम गहरा -
द्वितीय काव्य विद्यात्। उपमध्याह्न स्नायादविरुद्ध भुञ्जीत च।
भोजनान्ते काव्यगोष्ठी प्रवर्तयत्। कदाचिच्च प्रश्नोत्तराणि
भिन्दीत। काव्यसमस्याधारणा मातृकाभ्यास चित्रयोगा
इत्यायामत्रयम्। चतुर्थ एकाकिन परिमित परिषदा वा पूर्वाह्ण
भाग विहितस्य काव्यस्य परीक्षा[1]।

अर्थात् वह प्रात सन्ध्या वन्दन करके सरस्वती स्तुति पढ़े। इसके पश्चात् सुख पूर्वक बैठकर शास्त्र विद्या तथा उपविद्याओं का अनुशीलन करे। प्रतिभा के विकास की अन्य कोई विधि नहीं है जैसा कि नित्य अभ्यास है। द्वितीय प्रहर में काव्य रचना करे। उपमध्याह्न काल में स्नान करके अनुकूल भोजन करना चाहिए। भोजनोपरान्त काव्य-गोष्ठी का आयोजन करना चाहिए। कभी-कभी प्रश्नोत्तर किए जायें। तृतीय प्रहर में काव्य-समस्या मातृकाभ्यास चित्रयोग आदि का आयोजन हो। चतुर्थ प्रहर में कुछ व्यक्तियों का परिषद का आयोजन किया जाय तथा पूर्वाह्न में रचे गए काव्य की परीक्षा की जाय। कवि-परीक्षा का यह विधान एवं राजदैनंदिनी में समस्यापूर्ति की चर्चा होना इसके विकास का ही द्योतक है। संवत् १३६१ वि० में मेरुतुंग सूरि रचित प्रबन्ध चिन्तामणि समस्यापूर्ति के विकास क्रम में एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण ग्रंथ उपलब्ध होता है। मेरुतुंगाचार्य ने 'प्रबन्धचिंतामणि' में हेमचंद्र सूरि, रामचंद्र तथा विद्वत्वर पंडित की अनेक समस्या-पूर्तियों का उल्लेख किया है। इसके साथ ही कवि-परीक्षा एवं गोष्ठी-आयोजन की भी विस्तृत रूप से चर्चा की है। आचार्य हेमचंद्र के विषय में उल्लेख मिलता है—

अन्यदा सपादलक्षक्षितिपतिना—

ओली तवि न अणुहरइ गोरीमुहकमलस्स।

इति समस्यादोधकार्द्धमत्र प्रहितम्। तस्मिं कविभिरपूर्यमाणे

अदिट्ठी विम आमियइ पडि पयली चन्दस्स॥

इति उत्तरार्द्धेन श्रीहेमचंद्रो मुनीन्द्रस्तापूरयामास[2]।

अर्थात् एक बार सपादलक्ष के राजा ने— उगी हुई चंद्रकला तो गोरी के मुख कमल की समता नहीं कर सकती। इस प्रकार की समस्यावाला आधा दोहा यहाँ पर (पाटन में) भेजा। अन्याय कवियों द्वारा उसकी पूर्ति न करने पर—

१—देखिए काव्य-मीमांसा दशमोध्याय राजशेखर पृष्ठ ५२

२—प्रबन्धचिन्तामणि तृतीय प्रकाश, पृष्ठ ६८ १०२।१४७ (मेरुतुंगाचार्य)

"और जो अदृष्ट है, ऐसी प्रतिपदा की चंद्रकला की उपमा कैसे दी जाय।"

इस प्रकार का उत्तरार्द्ध कहकर मुनींद्र हेमचंद्र ने उसको पूर्ण किया। हेमचंद्र के विषय में दूसरा प्रसंग देखिए—

कदाचिद्देवश्रीकुमारविहारे नृपाहूताः प्रभवः श्रीकपर्दिना दत्तहस्तावलम्वा यावत्सोपानमारोहन्ति तावन्नर्त्तक्याः कंचुके गुणमाकृष्यमाणं विलोक्य श्रीकपर्दी—

सोहग्गिउ सहिकञ्चुयउ जुत्तउ ताणु करेइ।

एवमुक्त्वा तावद्विलम्वते।

पुट्ठिहिं पच्छइ तरुणीयणु जसु गुणगहणु करेइ॥

इतिश्री प्रभुपादैरुत्तराद्‌र्धमपूरि[1]।

अर्थात् किसी समय कुमार विहार-देवमंदिर में राजा द्वारा आमंत्रित होकर प्रभु श्रीहेमचंद्र, कपर्दी मंत्री द्वारा हाथ का सहारा पाकर, जव सोपान पर चढ़ रहे थे (वहाँ पर नृत्योद्यत), नर्तकी के कंचुक की कसनी को तनती हुई देखकर कपर्दी ने कहा—

"हे सखि! तेरा यह कंचुक सौभाग्यशाली है, इसलिये इसका यह तनना युक्त ही है।" यह कहकर उसे जव आगे वोलने में विलंव करते देखा, तो प्रभु ने उत्तरार्द्ध इस प्रकार कह दिया—

"जिसके गुण का ग्रहण पीठ-पीछे तरुणीजन करता है।"

हेमचंद्र के अतिरिक्त उनके शिष्य-मडल के अन्य कवियों ने भी पुष्कल-रूप से समस्यापर्ति की है। नाट्यदर्पण के रचयिता महाकवि रामचंद्र ने भी सुंदर पूर्तियाँ की हैं। उनकी "समस्यापूर्ति की शक्ति भी प्रखर थी। वह प्राचीन कवियों को अत्यंत प्रिय ऐसे शीघ्र कवित्व में निष्णात थे[2]।" प्रवंधचिंतामणि में उल्लेख मिलता है—

एकदा श्रीसिद्धेन रामचंद्रः पृष्ठः—"ग्रीष्मे दिवसाः कथं गुरुतराः?"

रामचंद्रः प्राह—देव! श्रीगिरिदुर्गमल्ल भवतो दिग्जैत्रयात्रोत्सवे धावद्वीर तुरङ्गवलगनखुरक्षुण्ण क्षमा मंडली।

वातोद्धूतरजोमिलत्सुरसरित्संजातपंकस्थली—

दूर्वाचुम्वन चंचुरा रविहयास्तेनैव वृद्धं दिनम्[3]॥

अर्थात् एक वार श्रीसिद्धराज ने रामचंद्र कवि से पूछा—"ग्रीष्म-ऋतु में दिन क्यों वड़े होते है?"

१—प्रवंधचिंतामणि चतुर्थः प्रकाशः, पृष्ठ ८९,१५०,१९८

२—हेमचंद्राचार्य का शिष्यमंडल, पृष्ठ ९, हिंदी अनु०, (भोगीलाल सांडेसरा)

३—प्रवंधचिंतामणि तृतीयः प्रकाशः पृष्ठ ६६३,९७।

दिया करती हैं; इसलिये आँखमिचौनी के खेल में अपनी चारो ओर विद्यमान सखियों के बीच में बैठी हुई वह बाला (खेलने से) रोक दी गई है, और इसलिये वह अपने मुख और आँखों को रो रही है।"

इस समस्यापूर्ति की प्रतिभा से प्रसन्न होकर उस कवि ने पचास हजार की क़ीमत का अपने गले का हार निकालकर कपर्दी के कंठ में यह कहते हुए डाल दिया कि 'यह तो श्रीभारती का पद (स्थान) है।'

इन कवियों के अतिरिक्त 'उल्लाघ राघव' नाटक के प्रणेता सोमेश्वर, 'काव्य कल्पलता' के रचयिता अमरचंद्रसूरि तथा अमात्य वस्तुपाल के मंडल के लगभग सभी कवियों ने समस्यापूर्ति की है[1]। गुजरात के कुमारपाल तथा सिद्धराज जयसिंह आदि नरेशों ने एवं वस्तुपाल-जैसे मंत्रियों ने अपने यहाँ काव्यगोष्ठियों का आयोजन किया था, और उसमें समस्यापूर्ति के द्वारा कवि-परीक्षा लेने का भी विधान बना रक्खा था। इन सबके यथेष्ट प्रमाण तत्कालीन साहित्य में मिलते हैं। संस्कृत-साहित्य के इसी युग से संबंधित महाकवि क्षेमेंद्र भी अपने ग्रंथ 'कवि-कण्ठाभरण' में समस्यापूर्ति को कवि के लिये आवश्यक बतलाते हैं। वह इसी ग्रंथ मे कवि-शिक्षा के प्रसंग में लिखते हैं—

व्रतं सारस्वतो यागः पूर्वं विघ्नेशपूजनम्।
विवेक शक्तिरभ्यासः सन्धानं प्रौढ़िसम्भ्रमः॥
वृत्तपूरणमुद्योगः पाठः पर कृतस्य च।
काव्यागं विद्या(?)धिगमः समस्यापरिपूरणम्[2]॥

'कविकण्ठाभरण' के पश्चात् हमें वल्लालसेन-कृत भोज-प्रबंध ग्रंथ में समस्यापूर्ति के अनेक प्रकरण मिलते है, जिनसे समस्यापूर्ति का चरमोत्कृष्ट विकास परिलक्षित होता है। राजा भोज द्वारा दी हुई समस्या—'क्रिया सिद्धिः सत्वे भवति महतां नोपकरणे' संस्कृत-साहित्य में विशेष रूप से उद्धृत की गई है। इसकी पूर्तियाँ इसी ग्रंथ के प्रथम अध्याय में दी जा चुकी है। समस्यापूर्ति के विकास का यह क्रम बराबर चलता रहा है। संस्कृत-साहित्य के परवर्ती काल के अलंकार-ग्रंथ 'अलंकार-शेखर' में भी समस्यापूर्ति का कुछ विवेचन मिलता है। शेखरकार लिखता है—

"कुर्वन्ति कवयः शक्ताः समस्यापूरणादिकम्[3]।

१—वस्तुपाल का विद्या-मंडल तथा हेमचंद्र का शिष्य-मंडल,
हि०-अनु० (भोगीलाल सांडेसरा)

२—देखिए कविकंठाभरण द्वितीय संधि, पृष्ठ ७ (क्षेमेंद्र)

३—देखिए अलंकार-शेखर, पृष्ठ ६३, (केशव मिश्र)

अर्थात समय कवि समस्यापूर्ति करते हैं। शेखरकार ने कठिन समस्या के अभिप्राय से समस्या के अनेक प्रकार बतलाए हैं किंतु जिस सूत्र-शैली का प्रयोग किया गया है वह अत्यन्त अस्पष्ट है। शेखरकार समस्या प्रकरण के प्रारंभ में ही लिखता है—

इदन्तु कठिन समस्याभिप्रायेण। तदुक्तम्— कवय गता इति। तत्रैव प्रकार —

प्रश्नोत्तरात्पदभंगात्पूर्वस्मिन्नाद्ययोजनात्।
मिथ्याभिधायसावेवमेव सार्वत्रिक क्रम[1]॥

अर्थात समस्यापूर्ति इन रूपों में होती है—प्रश्नोत्तर से पदभंग से शब्दों के प्रारंभ में अक्षरों के जोडने से। इन क्रमों में मिथ्याभिधान नहीं होना चाहिए यही क्रम सार्वत्रिक है।

प्रश्नोत्तर रूप में समस्यापूर्ति का उदाहरण देते हुए आचार्य केशव मिश्र लिखते हैं—

प्रश्नेति। हारामहादेवरतातमात इत्यत्र—

क मण्डयन्ति स्तन मण्डलानि कीदृश्युमा चंद्रमस कुत श्री।
किमाह सीता दशवक्त्रनीता हारामहादेवरतातमात[2]॥

अर्थात् हारामहादेवरतातमात यह समस्या दी गई है। इसकी पूर्ति प्रश्नोत्तर रूप में इस प्रकार की गई है—

स्तन-मण्डल को कौन सुशोभित करते हैं? हार।
उमा किस प्रकार की हैं? महादेवरता (शंकरजी से प्रेम करनेवाली हैं)
चन्द्रमा की शोभा किससे होती है? तमात (अन्धकार से)।
रावण द्वारा ले जाई जाती हुई सीता ने क्या कहा? हा राम! हा देवर! हा तात माता!

इस प्रकार उपर्युक्त समस्या की पूर्ति प्रश्नोत्तररूप में की गई है। पदभंग रूप में कुछ उदाहरण इस प्रकार दिए गए हैं—

समस्या— मृगात्सिंह पलायते।

शेखरकार ने इस समस्या का अर्थ इस प्रकार सूचित किया है—

मृगमत्ति मृगात स पलाय मासाय इत्यर्थ करणादित्यर्थ।

पूर्तियाँ—

पराजितश्चेद्भगवाजरासंधेन जन्तुना।
प्रतीतिरद्यमेजाता मृगात्सिंह पलायते॥

1—देखिए अलंकार शेखर पृष्ठ ६५ केशव मिश्र १३वीं मरीचि
2—देखिए अलंकार शेखर १९वीं मरीचि पृष्ठ ६५ (केशव मिश्र)

मा सम्भावय शल्येन फाल्गुनस्य पराभवम्।
कः प्रतीयाकुरुश्रेष्ठ मृगात्सिंहः पलायते ।।
नहि गाण्डीव कोदण्ड मृगात्सिंहः पलायते ।
तत्किं कमल पत्राक्ष मृगात्सिंहः पलायते[1] ।।

उपर्युक्त उद्धरणों से स्पष्ट हो जाता है कि अलंकार-शेखर के रचयिता ने अपने पूर्ववर्ती सभी आचार्यो से अधिक समस्यापूर्ति-विषयक विवेचन प्रस्तुत किया है, किंतु जैसा ऊपर कहा जा चुका है कि यह विवेचन अत्यंत अस्पष्ट है, इसमे समस्या का वैज्ञानिक विवेचन नही हो पाया है । जहाँ कही किसी असाधारण या असंभव व्यापार का उल्लेख समस्यापूर्ति रूप में हुआ है, वही उसका एक विशेष प्रकार वतला दिया गया है । शेखरकार स्वयं कहता है—'कासांचित्समस्यानां नाना भुवनीय संसर्ग विषयत्वात्तत्प्रकाराः प्रदर्श्यन्ते ?'—

जगतः प्रलये भूमिर्द्यौर्गरुत्मत्सुधोद्धता ।
वलीष्ठौ हाटकेशीय यात्रायां द्वौ रसातले[2] ।।

अलंकार-शेखर के पश्चात् १३वीं शती का एक दूसरा ग्रंथ 'काव्य कल्पलतावृत्ति' हमें मिलता है, जिसमें समस्यापूर्ति का सर्वाधिक विवरण प्राप्त होता है। यह विवरण भी समस्या के प्रकार एवं रूपों से ही सम्बधित है । संस्कृत-साहित्य में 'समस्या' का अर्थ केवल कठिन वस्तु से लिया गया प्रतीत होता है। किसी भी कठिन से कठिन प्रश्न का उत्तर संभव एवं असंभव सभी प्रकार के व्यापार के माध्यम से दे देना लक्ष्य रहा है । समस्यापूर्ति के विषय में भी इसी रीति का अनुकरण किया गया है । 'काव्यकल्पलतावृत्ति' के रचयिता ने इसी दृष्टि से समस्या की पूर्ति के लिये अनेक प्रकार की दूरारूढ़ कल्पनाएँ की है, जिनके माध्यम से समस्याओं की पूर्ति की गई है। कही लघु पदार्थ की कल्पादि कल्पना से गुरुता दिखाकर समस्या की पूर्ति की गई है, कहीं वर्णविपर्यय से समस्या की पूर्ति की गई है। कही-कहीं गुरु पदार्थ की समय अथवा स्थान की दूरी को दृष्टि में रखकर लघुता वतलाकर समस्या की पूर्ति संभव हो सकी है —

'अथ समस्या क्रमः—

कल्पादि सिंधुलघुभिर्गुरुता

लघोः पदार्थस्य कल्पादिकालेन सिंधुना लघुभिश्च गुरुता विधेया ।

१—देखिए अलंकार-शेखर, १९वीं मरीचिः, पृष्ठ ६७ (केशव मिश्र)

२—देखिए अलंकार-शेखर, १९वी मरीचिः, पृष्ठ ६५ से ६८ तक (केशव मिश्र)

इत्यादि गुरुतरपदार्थैर्गुरुपदार्थस्य लघुता विधेया। एवं रीतित्रयमध्याद्यत्र या रीतिरौचित्याद् घटते तत्र तया रीत्या लघुता विधेया।"

उपर्युक्त उद्धृत अंश से यह स्पष्ट हो जाता है कि किसी समस्या की पूर्ति मे किन-किन उपायों से काम लिया जाता है। 'पिपीलिका राजति शैलतुल्या' इस समस्या की पूर्ति के लिये आदि कल्प की कल्पना की गई। यह मान लिया गया कि आदि कल्प में सभी वस्तुएँ विशालकाय होती थी। अतएव चींटी भी शैलतुल्य हो गई और अन्य पर्वत-मालाएँ भी सुमेरु पर्वत-सदृश हो गईं। तात्पर्य यह है कि समस्या की पूर्ति के लिये किसी भी प्रकार की कल्पना की जा सकती है। आगे इस ग्रंथ में यह बतलाया गया है कि वात्सल्य एवं स्वप्न आदि की कल्पना करके किस प्रकार समस्या की पूर्ति की जाती है। देखिए—

"वात्सल्येन समस्यापूर्यते। यथा—

अतुच्छसुतवात्सल्यपिच्छलीभूतचेतसा ।
सोममूर्तिः क्षमी व्याघ्रो जनन्या मन्यते ध्रुवम् ॥

स्वप्नेन समस्या सिद्ध्यति। यतः स्वप्नेऽघटितमपि सर्वं घटते। यथा—

निद्रामुद्रापरिचयलवान्मुद्रितोनन्तचिन्ता ,
चित्ते चित्ते निभृतममृतज्योतिषिम्लान धाम्नि ।
प्रातः स्वप्नेऽरुणकपिशितं प्राग्दिशैकोऽथ कस्मा-
दाकाशस्थं जलचरपदं दृष्टिहीनो ददर्श[1] ॥"

स्वप्न में न घटित होनेवाली बातें भी घटित हो जाती हैं, ऐसा मान करके समस्या की पूर्ति की जा सकती है। इस संपूर्ण विवेचन से यही निष्कर्ष निकलता है कि संस्कृत-साहित्य में समस्यापूर्ति किसी महान् उद्देश्य की पूर्ति में सहायक न सिद्ध हो सकी और न संस्कृत के आचार्यो ने ही समम्यापूर्ति के विषय में किसी प्रकार का वैज्ञानिक विवेचन प्रस्तुत किया। संस्कृत-साहित्य में समस्या को एक अति कठिन प्रश्न के रूप में ग्रहण किया गया और उसकी पूर्ति किसी प्रकार से भी कर देने का संकल्प किया गया प्रतीत होता है। इसीलिये 'काव्यकल्प लतावृत्ति'-जैसे ग्रंथो में समस्या की पूर्ति के लिये अनेक दूरारूढ़ कल्पनाएँ कर लेने की बात कही गई है।

१—उपर्युक्त उद्धत संस्कृत अंश के लिये देखिए—काव्यकल्प लतावृत्ति, अमर चंद्रयति प्रतान—४, स्तवक ६-७, पृष्ठ १४८-१५४ तक।

संस्कृत समस्यापूर्ति की प्राचीन परंपरा अब भी किसी-न किसी रूप में प्रचलित ही है। काशी-संस्कृत विश्वविद्यालय की आचार्य परीक्षा के तृतीय प्रश्न पत्र में समस्यापूर्ति के लिये समस्याएँ दी जाती हैं। संस्कृत के विद्वान् और काव्य प्रेमी अब भी अपनी साहित्यिक गोष्ठियों में समस्यापूर्तियाँ किया करते हैं।

संस्कृत समस्यापूर्ति की यह परंपरा जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है परवर्ती काल में भी बराबर चली आई। यहाँ तक कि हिंदी तथा अन्य प्रान्तीय भाषाओं[1] के काव्यों को भी इसने प्रभावित किया और उनमें समस्यापूर्ति की परंपरा प्रचलित हो गई। हिंदी का आदिकाल अधिकांशत वीरगाथात्मक रहा है। इस काल में वीर वाणी के उद्घोष ही प्राय सुन पड़ते थे। अशान्तिमय जीवन था। ऐसे समय में समस्यापूर्ति जैसे ललित-काव्य के लिये उपयुक्त अवसर न था। किंतु पृथ्वीराज और चंदबरदायी के पारस्परिक प्रश्नोत्तर में इसका स्वरूप देखने को मिल जाता है। हिंदी का मध्यकाल पूर्ण वैभव एवं संपन्नता का युग था जिसमें समस्यापूर्ति का अधिक विकास हुआ। अकबर के दरबार में एक समस्या का उल्लेख मिलता है 'करी मिलि आस अकब्बर की'। रीति-काल में समस्यापूर्ति की इस परंपरा के पालनेवाले कवियों में पद्माकर बोधा तथा द्विजदेव आदि के नाम लिए जा सकते हैं।

आधुनिक काल तो समस्यापूर्ति के चूडान्त विकास का काल माना जा सकता है। इस युग में समस्यापूर्ति के सूत्रधार भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्र हैं। भारतेंदु-मंडली के अधिकांश कवियों ने समस्यापूर्ति की। इन कवियों में विशेष उल्लेखनीय श्रीठाकुर जगमोहनसिंह अंबिकादत्त व्यास लछिराम भट्ट चौधरी बदरीनारायण 'प्रेमघन' तथा प्रतापनारायण मिश्र आदि हैं। द्विवेदी-युग में समस्यापूर्ति की परंपरा विकास की पराकाष्ठा पर पहुंच गई। अनेक कवि-समाज एवं रसिक-समाजों की स्थापना हुई इन कवि-मंडलों की विशेषता यह थी कि इनमें दूर-दूर के कवि एक निश्चित समस्या की पूर्ति करके भेजते थे और वे पूर्तियाँ निश्चित कार्यक्रम के अनुसार कवि-मंडल में पढ़ी जाती थीं, तदुपरांत उनका प्रकाशन कर दिया जाता था। ऐसे अनेक स्थान थे जहाँ पर ये कवि-मंडल स्थापित हुए और समस्यापूर्तियों की पत्रिकाएँ प्रकाशित हुईं। काशी कानपुर दिमर्दा देवरी (सागर), दमोह कालाकाँकर कामगा तथा आजमगढ़ ऐसे ही स्थान थे। पश्चिम में गुजरात से लेकर पूर्व में पटना (बिहार) तक तथा उत्तर में गढ़वाल से लेकर दक्षिण में सागर (मध्यप्रदेश) तक इसका प्रचार था।

१—संस्कृत समस्यापूर्ति का प्रभाव हिंदी के अतिरिक्त मराठी काव्य पर अधिक पड़ा।

रत्नाकरजी के 'उद्धवशतक' तथा हरिऔधजी के 'रस-कलश' ग्रंथ में समस्या-पूर्तियों के अनेक छंद संगृहीत मिलते है। कविवर 'प्रसाद', किशोरीलाल गोस्वामी, सुधाकर द्विवेदी, पंडित नाथूराम 'शंकर' शर्मा, गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही', व्रजराज, द्विज वल्देव, नवनीत चतुर्वेदी, द्विज वेनी तथा श्रीललिताप्रसाद त्रिवेदी और राय देवीप्रसाद 'पूर्ण' आदि ऐसे ही कवि थे, जिन्होंने समस्यापूर्ति की प्रथा को प्रश्रय दिया, और उसे उन्नति की चरम सीमा पर पहुँचाया। किंतु खेद की वात यह है कि जिस काव्य-परंपरा का इतना व्यापक प्रचार एवं विकास हुआ हो, उसके विषय में कोई भी विवेचनात्मक ग्रंथ न हो। किसी भी ग्रंथ में समस्यापूर्ति का वैज्ञानिक निरूपण नहीं किया गया। इस दिशा में सर्वप्रथम जगन्नाथप्रसाद 'भानु' ने अपने 'काव्य-प्रभाकर'[1] ग्रंथ में कुछ विवेचन किया है, किंतु वह अधिकतर समस्यापूर्ति के भेदों के विषय में ही है। डॉ० रामशंकर शुक्ल 'रसाल' ने अपने दो लेखों में समस्या एवं समस्यापूर्ति का कुछ अधिक तर्क-संगत एवं वैज्ञानिक विवेचन किया है। ये दोनो लेख माधुरी (पत्रिका) में प्रकाशित हुए है। यह विवेचन भी कुछ अधिक खोज-पूर्ण नही कहा जा सकता, तथापि डॉ० 'रसाल' का यह कार्य सराहनीय ही माना जायगा। इसके अतिरिक्त पं० दुर्गादत्तजी व्यास ने अपने 'समस्यापूर्ति-प्रकाश' ग्रंथ में भी समस्याओं के कुछ भेद निरूपित करने की चेष्टा की है। किंतु जिस प्रकार का निरूपण उपर्युक्त ग्रंथ में मिलता है, वह अत्यंत शिथिल एवं अवैज्ञानिक ही है।

इस प्रकार हम देखते है कि गोविंद गिल्लाभाई ने 'समस्यापूर्ति प्रदीप', पं० गंगाधर 'द्विजगंग' ने 'समस्याप्रकाश', अंविकादत्त व्यास ने 'समस्यापूर्ति सर्वस्व', किशोरीलाल गोस्वामी ने 'समस्यापूर्ति मंजरी,' कालीप्रसाद त्रिवेदी ने 'समस्या-पूर्ति पच्चीसी', राजा रामपालसिंह ने 'समस्यापूर्ति प्रकाश', सूर्यनारायणसिंह ने 'समस्यापूर्ति,' आनंदलाल साह गंगोला ने 'समस्या' तथा पंडित दुर्गादत्तजी व्यास ने 'समस्यापूर्ति-प्रकाश' नाम के ग्रंथों की रचना की।

वर्तमान समय में समस्यापूर्ति की परंपरा समाप्त हो चुकी है, किंतु उसकी आंतरिक प्रवृत्ति अव भी साहित्य के विविध रूपों में कार्य कर रही है, जो कि समस्या-पूर्ति के महत्त्व की ही द्योतक है। इस प्रकार हम देखते है कि यह काव्य-प्रवृत्ति हिंदी-साहित्य में दीर्घकाल तक विद्यमान रही और इसने अपनी काव्य-मणियों से हिंदी-काव्य-साहित्य को अलंकृत किया।

संस्कृत-समस्यापूर्ति की प्रवृत्तियाँ

विश्व के प्राचीनतम साहित्य में संस्कृत-साहित्य की गणना की जाती है, और उत्कृष्टता एवं संपन्नता की दृष्टि से तो इसे शीर्ष स्थान दिया गया है।

१—देखिए काव्य-प्रभाकर ११वीं मयूख ('भानु')।

जिस साहित्य का आदि काव्य ही विश्व के उच्चतम महाकाव्यों का आदर्श काव्य हो उसके समुन्नत काल की कल्पना सहज ही की जा सकती है। व्यास वाल्मीकि आदि कवि-पुंगव ने जिस काव्य-श्री को संस्कृत-साहित्य में उपलब्ध किया था उसको महाकवि कालिदास अश्वघोष भारवि माघ भवभूति तथा श्रीहर्ष ने अपनी अलौकिक काव्य प्रतिभा से अत्यधिक समृद्ध कर लिया। शब्द और अर्थ भाव तथा रस भाषा एवं छंद सभी काव्य तत्वों का सुंदर समन्वय इस साहित्य में देखने को मिलता है। विश्व-साहित्य की कोई भी ऐसी प्रवृत्ति न होगी जो संस्कृत-साहित्य में न पाई जाती हो।

महाकवि कालिदास तथा भवभूति आदि ने यदि सुन्दर भाव-गांभीर्य एवं अर्थ व्यंजना का अपने काव्यों में समन्वय करके काव्य-साहित्य की भाव प्रवणता का द्योतन किया तो दूसरी ओर संस्कृत-साहित्य की अनुपम शब्द राशि को भारवि माघ तथा दंडी और श्रीहर्ष ने अपने काव्य-ग्रंथों में बिखेर दिया। भारवि का किरातार्जुनीयम तथा माघ का शिशुपालवधम अपने शब्द-चमत्कार के लिये समस्त संस्कृत-साहित्य में प्रसिद्ध ही हैं। भारवि ने तो केवल एक ही अक्षर 'न' की पुनरावृत्ति से श्लोक की रचना करके अपने शब्द ज्ञान का परिचय दिया था और माघ के लिये तो यह प्रसिद्ध ही है कि नवसर्ग गते माघे नवशब्दो न विद्यते।

भाव यह है कि संस्कृत-साहित्य में चमत्कार प्रदर्शन की प्रवृत्ति बड़ी व्यापक थी। शब्द-कौशल कवि के लिये आवश्यक-सा हो गया था। ऐसे उपयुक्त वातावरण में समस्यापूर्ति के विकास की अधिक संभावना थी। यह तो पिछले पृष्ठों में बतलाया जा चुका है कि संस्कृत-साहित्य में समस्यापूर्ति क्रीडार्थ वादार्थं च के उद्देश्य को लेकर ही सर्वप्रथम अवतरित हुई थी। संस्कृत-साहित्य के अध्ययन से भी ऐसा प्रतीत होता है कि इस साहित्य में समस्यापूर्ति किसी उदात्त काव्योद्देश्य को अपने विकसित काल में भी न स्थापित कर सकी। मनोविनोद एवं मानसिक व्यायाम ही मूलतः इस साहित्य की प्रवृत्ति रही। जब आचार्यों ने चित्रकाव्य को मान्यता प्रदान कर दी और प्रहेलिका को अलंकार का एक भेद स्वीकार कर लिया तब तो कवियों को समस्यापूर्ति रूप में भी अच्छी शब्द क्रीड़ा करने का अवसर मिला।

समस्यापूर्ति अवकाश के क्षणों को यापित करने तथा स्वस्थ-मनोरंजन की एक व्यापक कार्यवाही हो गई। संस्कृत समस्यापूर्ति का न तो विकास ही किसी क्रांति-काल का सूचक है और न कवियों ने ही किसी काव्य-वृद्धि की दृष्टि से समस्यापूर्ति की। यह प्रवृत्ति तो अधिकतर हिंदी-समस्यापूर्ति की थी जिसका अगले किसी अध्याय में हम उल्लेख करेंगे। संस्कृत समस्यापूर्ति अलंकृत काव्य-शास्त्र परंपरा की परिणति है। इसमें शब्दाडंबर एवं अतिरंजित कल्पनाओं का आश्रय अधिक लिया गया है। इसी से संस्कृत-समस्यापूर्ति के रूप में निर्मित किसी उत्कृष्ट

काव्य-साहित्य के दर्शन नहीं होते । इसके अतिरिक्त समस्यापूर्ति का पृथक् विषय के रूप में कोई वैज्ञानिक अध्ययन नहीं किया गया। जैसा कि पीछे बतलाया जा चुका है कि अग्नि-पुराणकार ने समस्या को प्रहेलिका के सात भेदों में से एक भेद माना है[1]।

परवर्ती काल में 'अलंकार शेखर' तथा 'काव्य-कल्प-लतावृत्ति' ये ही दो ग्रंथ हैं, जिनमें समस्यापूर्ति के ऊपर भी कुछ संक्षिप्त प्रकाश डाला गया है। 'काव्य-कल्पलतावृत्ति' में 'समस्या' के ऊपर लगभग छः पृष्ठों में विवेचन किया गया है। इस विवेचन से तत्कालीन समस्यापूर्ति की प्रवृत्तियाँ स्पष्ट हो जाती है। किंतु इस विवेचन में भी किसी प्रकार की वैज्ञानिकता का आभास नही मिलता । ग्रंथकार ने समस्या को एक अत्यंत कठिन प्रश्न के रूप में ग्रहण करके उसकी पूर्ति के अनेक प्रकार बतलाए हैं । इन पर पीछे प्रकाश डाला जा चुका है। ये प्रकार न तो समस्या के भेदों से सम्बंधित हैं और न उसकी रूप-रेखा को ही स्पष्ट कर सके है। ग्रंथकार ने कहीं आदि कल्प की कल्पना द्वारा समस्या की पूर्ति करने को कहा है, कही लघु पदार्थ से गुरुता का आरोपण करके, कहीं गुरु पदार्थ से लघुता का आरोपण करके और कहीं समय एवं स्थान की दूरी की कल्पना करके गुरु पदार्थ से लघुता का आरोपण करके समस्यापूर्ति करने का ढंग बतलाया है । जैसे—

कल्पांतकालनलिनीकृतदेहदेशः "शैलोविभर्ति परमाणुसमत्वमेषः ।
पूर्वं युगादिसमये विभराम्बभूव योजातरूपधरणीधरसन्निभत्वम्[2]॥

कल्पांत में सभी वस्तुएँ लघु प्रतीत होती है। अतएव कल्पांत का कल्पना द्वारा ही गुरु पदार्थ का लघुत्व आरोपित किया गया है । उपर्युक्त उद्धरण में समस्या है—

"शैलोविभर्ति परमाणुसमत्वमेषः"

अर्थात् पर्वत 'परमाणु-सदृश हो गया' की पूर्ति कल्पांत की कल्पना द्वारा की गई है। इसी प्रकार तप की कल्पना द्वारा भी समस्या की पूर्ति की जा सकती है। ग्रंथकार कहता है—"तपसाऽपि सर्वं साध्यते"[3] अर्थात् तप के द्वारा सभी कुछ सिद्ध हो सकता है। जैसे—

यद्दूरं यद्दुराराध्यं यच्च दूरे व्यवस्थितम् ।
तत्सर्वं तपसा साध्यं तपोहि दुरतिक्रमम्[4] ॥

१—देखिए 'अग्निपुराण' अ० ३४३ तथा इसी प्रबंध के प्रथम अध्याय की पाद-टिप्पणी ।

२—देखिए 'काव्य-कल्पलतावृत्ति', प्रतान ४, स्तवक ६-७ (अमरचंद्रयति)

३— ,, ,, ,, ,, ,,

४— ,, ,, ,, ,, ,,

अतएव समस्या की पूर्ति के लिए असम्भव और साधारण रूप से अघटित होनेवाले व्यापारों को भी तप की कल्पना द्वारा योजित किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त अन्य अनेक रूपों में भी किसी समस्या की पूर्ति की जा सकती है। इनमें पद भंग और प्रश्नोत्तर-रूप से अधिकांश में पूर्तियाँ की जाती हैं। 'काव्य कल्पलतावृत्ति' के अनुसार— पदभंगभावादपि समस्या पूर्यते । यथा—"मृगात्सिंह पलायते, मृगमत्तीति मृगात् सिंह विशेषणम् पलाय मासाय ते सर्व'।

अयं मृग समायाति मृगात्सिंह पलायते'।
ततो बगाल पलायस्व त्वरितं त्वरितं पदं'॥

अर्थात् पद भंग भाव से भी समस्या की पूर्ति हो सकती है। जैसा कि मृगात् सिंह पलायते इस समस्या का पद भंग करके समस्या-पूर्ति की गई है। प्रश्नेन समस्यापूर्यते। यथा—(अर्थात्) प्रश्न के द्वारा समस्या की पूर्ति किस प्रकार हो सकती है। देखिए—

कस्तूरी जायते कस्मात् को हन्ति करिणां कुलम्।
किं कुर्यात् कातरो युद्धे 'मृगात् सिंह पलायते'॥

अर्थात् कस्तूरी कहाँ से पाई जाती है?—मृग से। हाथियों के समूह कौन नष्ट कर देता है?—सिंह। कायर व्यक्ति युद्ध में क्या करता है?—भाग जाता है। इस प्रकार मृगात् सिंह पलायते समस्या की पूर्ति प्रश्न-रूप में की गई है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि आकार नगर तथा काव्य कल्पलतावृत्ति के काल तक उपर्युक्त प्रकार की समस्यापूर्तियों में अर्थगत विशेषता नहीं थी अर्थात् अर्थ की सिद्धि किसी परिस्थिति के चित्रण द्वारा नहीं की गई थी। समस्या को एक अत्यन्त कठिन प्रश्न-सा मान लिया गया था जिसकी पूर्ति के लिए किसी भी साधन का प्रयोग किया जा सकता था। समस्यापूर्ति रूप में शब्द क्रीड़ा करने की प्रवृत्ति अधिक व्यापक प्रतीत होती है। इसके अतिरिक्त समस्या को श्लोक के आदि मध्य अथवा अन्त में कहीं रक्खा जा सकता था। यह प्रवृत्ति संस्कृत-समस्या पूर्ति-काव्य में अधिक व्यापक रूप में पाई जाती है। संस्कृत-समस्यापूर्ति-काव्य में अवास्तविक एवं कल्पनात्मक व्यापारों को समाविष्ट करने की प्रवृत्ति अधिक दिखाई पड़ती है। वास्तविक एवं तथ्यपूर्ण बातों पर प्रकाश बहुत ही कम पड़ता है। संस्कृत-समस्यापूर्ति की प्रवृत्तियों को और अधिक स्पष्ट करने के लिए कुछ समस्या पूर्तियाँ उद्धृत कर देना समीचीन होगा। कुछ कारणमूला समस्याएँ दी गयी हैं, जिनमें किसी कारण की खोज की गई है—

१—देखिए काव्य-कल्पलतावृत्ति, प्रतान ४ स्तबक ६-७ (अमरचन्द्रयति)
२— " " " " "

समस्या—"कुतोस्ति विद्वान्सततं दरिद्री"

पूर्ति—नारायणस्तोत्रपरः सुशील सत्कर्म धर्म्मप्रवणः कुलीनः ।
सरस्वती सेवन कृन्नवेद्मि कुतोऽस्ति विद्वान्सततं दरिद्री"[1] ॥

अर्थात् नारायण का स्तोत्र पढ़नेवाला, सुंदर शील-युक्त, सत्कर्म करनेवाला, धर्मप्रवण, कुलीन एवं सरस्वती की सेवा करनेवाला विद्वान् सदैव दरिद्र क्यों रहता है ?—नहीं जानता हूँ ।

समस्या—"सूर्योदये रोदिति चक्रवाकी"

पूर्ति—विलोक्य बालामुख चन्द्रविम्बं कण्ठे च मुक्तावलिहारताराः ।
पुनर्निशायां भयभीतभीता 'सूर्योदये रोदिति चक्रवाकी"[2] ॥

अर्थात् सूर्योदय के समय चक्रवाकी पक्षी एक नवयुवती के मुख को चंद्र तथा गले में पड़े हुए मोतियों के हार को तारा समझकर 'पुनः रात्रि आ गई' इस भय से रो रही है । प्रस्तुत पूर्ति में कवि ने एक विरुद्ध बात को भी उक्ति से युक्ति-संगत बना दिया है । इस प्रकार की एक और पूर्ति देखिए ।—

समस्या—"सौभाग्यचिह्नं विधवा ललाटे"

पूर्ति—कस्तूरिका चंदन कुंकुमानि सौभाग्य चिह्नानि विलासिनीनाम् ।
प्रयागमृत्स्नातिलकक्रियैव "सौभाग्यचिह्नं विधवा ललाटे[3] ॥"

हिंदू विधवा स्त्री के मस्तक में सौभाग्य-चिह्न का होना असंभव है, क्योंकि कस्तूरी, चंदन, कुंकुम आदि के चिह्न तो विलासिनी सधवा स्त्रियाँ ही अपने मस्तक में लगाती है, किंतु प्रयाग में स्नान करके गंगा की पावन मिट्टी से विधवा ने भी अपने मस्तक मे सौभाग्य-चिह्न धारण कर लिया है । प्रयाग में स्नान करना एक सौभाग्य का ही लक्षण है । इस प्रकार एक असंभव व्यापार को भी संभव कर दिया ।

समस्या—"शतचंद्रं नभस्तलं"

पूर्ति—"या प्रीतिर्जायते शाह, मुख चंद्रं निरीक्ष्यते ।
पश्येयं चेन्न साप्रीतिः "शतचंद्रं नभस्तलं[4] ॥"

१—देखिए 'सुभाषितसुधारत्नभाण्डागार' पंचम् भाण्डम्, पृष्ठ ५२२
२—,, ,, ,, ,, ५२१
३—,, ,, ,, ,, ५२२
४—देखिए 'राधामाधवविलास चंपू' षष्ठोल्लास, पृष्ठ २२८ (जयराम पिंड्ये)

प्रस्तुत समस्या महाराज शहाजी ने दी थी, जिसको जयराम कवि ने पूरा किया था ।

अर्थात्—हे नाह ! तुम्हारे चन्द्रमुख को देखकर जो प्रसन्नता होती है वैसी प्रसन्नता तो आकाश में सौ चन्द्रों को देखने से भी नहीं होती ।

कुछ वार्तालाप-सम्बन्धी रोचक पूर्तियाँ भी की गई हैं, जो स्वयं में एक संदर्भ लिए हुए हैं । इस प्रकार की एक पूर्ति देखिए—

समस्या—"सूच्यग्रे कूपषट्कं तदुपरि नगरी तत्र गंगाप्रवाहः ।"

पूर्ति—कश्चित्तत्यान्यस्तृषार्तः पथि तपनरुचौ गम्यमानोऽन्यपान्थम् ।
पप्रच्छान्दलीनो वद पथिक कुतो जह्नुकन्याप्रवाहः ।
तेनासौ शीघ्रवाचा प्रत्युत्तरमनसा विप्रवर्येण चोक्ते ।
"सूच्यग्रे कूपषट्कं तदुपरि नगरी तत्र गंगाप्रवाहः" ॥

अर्थात् ग्रीष्म ऋतु में मार्ग से जाते हुए किसी तृषित पथिक ने दूसरे पथिक से पूछा हे पथिक ! बताओ गंगा का प्रवाह कहाँ है ? उस दूसरे पथिक ने भी शीघ्र वाणी से ब्राह्मण के तेज के समान उत्तर दिया—सुई के आगे छः कुएँ हैं, उस पर नगरी है वहीं पर गंगा का प्रवाह है । प्रस्तुत पूर्ति में हठयोग-साधना के संबंध में षट्चक्र-भेदन और उसके ऊपर ब्रह्मांड में गंगा के प्रवाह का वर्णन प्रतीकात्मक शैली में किया गया है ।

समस्या—"हुताशनश्चन्दनपंकशीतलः"

पूर्ति—सुतं पतन्तं प्रसमीक्ष्य पावके न बोधयामास पतिं पतिव्रता ।
तदा ह्यसौ तद्धृतशक्तिपीडितो "हुताशनश्चन्दनपंकशीतलः" ॥

अर्थात् जब पुत्र को अग्नि में गिरते हुए देखकर भी पतिव्रता अपने पति को न जगा सकी, तब वह अग्नि स्वयं उसके पातिव्रत की शक्ति से व्याकुल होकर चंदन-जैसा शीतल हो गई ।

समस्या—"कान्ताऽऽननं वा निशि चन्द्रबिम्बम्"

पूर्ति—पद्मानि संकोचयति प्रसह्य कामोदयं दर्शनतः करोति ।
ज्योत्स्नां दधाति द्वयमेव लोके 'कान्ताऽऽननं वा निशि चन्द्रबिम्बम्'" ॥

संसार में दो ही ज्योत्स्ना को धारण करनेवाली वस्तुएँ हैं—एक स्त्री का मुख-मंडल और दूसरे रात्रि में चन्द्रमंडल, जिनके देखने से कमल संकुचित हो जाते हैं और कामनाओं की वृद्धि होने लगती है । (स्त्री के कमल-मुख के सामने कमल क्या चीज है ?) और कुछ पूर्तियाँ देखिए, जिनकी पूर्ति कविराज जयराम पिंड्ये ने शाहाजी के दरबार में की थीं—

१—देखिए सुभाषित सुधारत्न भाण्डागारम् पंचम् भाण्डम्, पृष्ठ ५२८ ।
२— " " " , पृष्ठ ५२२ ।
३— " " " " "

समस्या—"वाराणसी नगरनाथ किमाचरामि"

पूर्ति—सत्कर्म धर्म नख़ दान दया सुशील,
वेदान्त शास्त्र परिशीलन पंडितेन ;
चांडालकोऽपि समतां भजतेति काले,
"वाराणसी नगरनाथ किमाचरामि"[1] ॥

समस्या—"वल्लवी चरणयोरभिसारे पल्लवीयति भुजंगमभोगः ।"

पूर्ति—आलि याहि न विचारय राधे कालियाहि दमनस्य समीपं ।
"वल्लवी चरणयोरभिसारे पल्लवीयति भुजंगमभोगः"[2] ॥

समस्या—"अजनि रजनि मध्ये मडलं चंडभानोः ॥"

पूर्ति—अजनि रजनि मध्ये मंडलं चंड भानो-
र्जलनिधिमथनोत्थं कौस्तुभं संदधाने ॥
सजल जलद नीले वक्षसा वासुदेवे ।
असुर सुर मुनीन्द्रैर्ज्ञातिमित्थं तदानीं ॥
विरह विकलराधा हंत वाधाधिका यत्
पिहितमपि सखीभिर्मन्दिरे चंद्रविम्वं ।
गदितमिति गवाक्षातत्तथा वीक्ष्य साक्षा-
"दजनि रजनि मध्ये मंडलं चंडभानोः[3] ॥"

समस्या—"गतागतेरेव गता त्रियामा ।"

पूर्ति—रामायणं वा श्रवणेनयेयं रामायणे वा नयनं विधेयं ।
इत्यर्ध वृद्धस्य जनस्य वृत्तेर्गतागतेरेव गता त्रियामा[4] ॥"

समस्या—"कर्पूरेण स्थगयति कुचौ शीत भीतामृगाक्षी ।"

पूर्ति—पूर्वं घर्मे दिनकर कराक्रान्त देहा सतीया,
सद्यः शैत्यं परिकलयता ज्ञात पूर्वेण तूर्णः;
हेमंते सा मदन दहनस्वान्त दग्धापि मुग्धा,
"कर्पूरेण स्थगयति कुचौ शीत भीतामृगाक्षी"[5] ॥

१—'राधामाधवविलास चम्पू', षष्ठोल्लासः, पृष्ठ २२८ (समस्यादाता नारो पंडित दीक्षित)
२— " " " " (नरहरि कवि)
३— " " " " (विष्णुज्योतिर्विद्)
४— " " " २३० (प्रह्लाद सरस्वती कवि)
५— " " " " (वीरेश्वर भट्ट)

समस्या—"चन्द्रस्य बिम्बे कदलीफलानि"

पूर्ति—कस्यास्ति साम्यं सुतनोर्मुखस्य रागोपलम्भोप्यधरस्य कस्मिन् ।
प्रियाणि तस्याः कथमाशु दूति "चन्द्रस्य बिम्बे कदली फलानि"[1] ॥

समस्यापूर्ति के उपर्युक्त उदाहरणों एवं संपूर्ण विवेचन से संस्कृत-समस्यापूर्ति की प्रवृत्तियाँ बहुत कुछ स्पष्ट हो जाती हैं । संस्कृत में समस्याएँ प्रायः जटिल दी जाती रही हैं । जिनकी पूर्ति में वर्ण विपर्यय आदि का सहारा लिया गया है । इस प्रकार पूर्तिकारों में चमत्कारोत्पादन की प्रवृत्ति अधिक रही । एक प्रकार से संस्कृत समस्यापूर्ति मनोरंजन एवं बुद्धि-कौशल प्रदर्शन की प्रवृत्ति के अधिक समीप जान पड़ती है । दी हुई समस्या को छन्द के आदि में भी रखकर पूर्ति करना संस्कृत-समस्यापूर्ति की विशिष्ट प्रवृत्ति रही है, जिसका प्रभाव अधिकांश में मराठी समस्या-पूर्ति पर पड़ा है । यहाँ पर हम मराठी की कुछ समस्यापूर्तियाँ उद्धृत कर देना समीचीन समझते हैं क्योंकि इससे संस्कृत-समस्यापूर्ति की उपर्युक्त प्रवृत्ति को समझने में अधिक सहायता मिलेगी ।

समस्या—"झनक - झनक जव पैंजण वाजे"

पूर्ति—"झनक - झनक जव पैंजण वाजे"
ममस्मृती चे कपाट उघडे
पाही ये ता मजला दुरुनी ।
मला बिलगण्या एती धाउनि
दुड दुड धावत एता वाजे
झनक - झनक तव पैंजण तीचें
काल दुष्ट तिज घेउनि गेला ।
स्मृती शलाका ठेउनि मजना[2] ॥

अर्थात् जब झनक-झनक पायल बजते हैं, तब मेरी स्मृति के कपाट खुल जाते हैं । मुझे दूर से आता हुआ देखकर मुझसे मिलने के लिये जो दौड़कर आती थी, और तब उसके पैरों में बँधे बजते हुए पायलों को मैं देखता था । दुष्ट काल उसे उठा ले गया और मेरे मन में स्मृति-शलाका छोड़ गया ।

१—'राघवमाधव-विलास चम्पू', षष्ठोल्लास पृष्ठ २३१, (समस्याकर्ता, दीप पंडित)

२—देखिए—'संजय' मासिक (मराठी), दिसंबर, १९५८, पृष्ठ ७४, पूर्तिकार ज० द० जोगलेकर ।

समस्या—"हेंचि दान देगा देवा"
पूर्ति—"हेंचि दान देगा देवा"
संपादक संतोषावा
माझ्या समस्यापूर्तीला
लाभ बक्षि साचा व्हावा !
हेंचि दान देगा देवा।
माझा विसर न व्हावा
संपादकें कृपावंते
अंक तरी पाठवावा[1] !

अर्थात् हे भगवान्, यह दान दीजिए कि संपादक संतुष्ट हो जाय और मेरी समस्यापूर्ति लेकर मुझे पुरस्कार दे दे। हे भगवान्, मुझे यही दान दो कि संपादक मुझे भूल न जाएँ और कम-से-कम एक अंक तो भेज ही दें।

पूर्ति—हेंचि दान देगा देवा।
पाव्हणा बाहेरीं जावा ॥
त्यानें दिला फार त्रास।
आम्हां लागे गळफांस ॥
त्यानें केली धूळधाण।
राहिलें ना आतां त्राण ॥
एक आस हाचि जावा।
हेंचि दान देगा देवा[2] ॥

अर्थात् हे भगवान्, मुझे यही दान दो कि मेरे घर आया हुआ पाहुन अब चला जाए, इससे हमें बड़ा कष्ट मिला है। मेरे गले में फाँसी पड़ गयी है। सब कुछ धूल में मिल गया है। इससे मुझे एक यही आशा है कि हे भगवान्, आप मुझे यही दान दीजिए कि पाहुना चला जाय।

उपर्युक्त पूर्ति में बंबई आदि घने बसे हुए नगरों में रहने के स्थान की कितनी कमी है और किसी अतिथि के आ जाने पर घरवालों को कितना कष्ट होता है, इसका स्पष्ट आभास मिलता है। उपर्युक्त उद्धृत पूर्तियों में दी हुई समस्यापूर्ति के पहले चरण मे ही समाहित कर ली गई है, जो संस्कृत-समस्यापूर्ति की प्रवृत्ति के प्रभाव स्वरूप ही है।

१—देखिए 'संजय' फ़रवरी, १९५५, पृष्ठ ९३, (पूर्तिकार बसंत पाटिल, मुंबई)
२—„ „ „ „ पृष्ठ ९२, (पु० कृ० गोडबोले, दादर)

समस्या—'हेमंत ऋतू तिल ऊन कोवलें पिवले,
पूर्ति—हेमंत ऋतू तिल ऊन कोवलें पिवले
भरघोस ज्वारिच्या शेता वरतीं पडलें
पाहून बोलला "भारत भाग्य विधाता"
"शेतात माझिया सोने सोने पिकले'।

अर्थात् हेमन्त ऋतु की धूप कोमल और पीत वर्ण की है। ज्वार के भुट्टों पर इसे पडा हुआ देखकर भारत भाग्य विधाता (किसान) बोला, मेरे खेत में स्वर्ण पका है।

समस्या—"ती गर्भ रेशमी तिची कंचुकी वधुनी"
पूर्ति—ती गर्भ रेशमी तिची कंचुकी वधुनी
त्या दुकानात मी, शिरलो लगबग करुनी
"रे, सांभालोनी, कुणी बोलले मजला
ती नव्हेच ललना, जसेच निर्जीव पुतला'।"

अर्थात् उसकी उस महीन हरी-हरी, चोली कंचुकी देखकर उस दुकान में मैं जल्दी से घुसा। इतने में कोई मुझसे चुपके से बोला, ज़रा सँभलकर जाइए, वह स्त्री नहीं है, निर्जीव पुतला है।

समस्या—"कंठी रुद्राक्षमाला"
पूर्ति—कंठी रुद्राक्षमाला श्रवत शिरि जला शोभते भस्म भाला,
घाली पद्मासनाला दशकर तुजला पांच तोंडे शिवाला,
पंधरा डोले जयाला, सुरवर सकला वंद्य तू ची जगाला,
ऐसा देवेश त्याला नमन करूं चला भक्ति ने शंकराला'।

अर्थात् जिसने कंठ में रुद्राक्ष-माला धारण की है, और जिसने अपने ललाट पर भस्म रमाया है, जो पद्मासन पर विराजमान है तथा जिनके पांच मुख और दस भुजाएँ एवं पन्द्रह नेत्र हैं, ऐसे हैं शंकरजी, आप सकल संसार में सुरवर है। ऐसे देवेश शंकर की मैं भक्ति-भावना से वंदना करता हूँ। उसी प्रकार आप भी उनकी वंदना कीजिए।

१—'संजय' दिसंबर, १९५५, पृष्ठ ७३ (पूर्तिकार गुणवंत तावरे)
२— „ जनवरी, १९५६, पृष्ठ ८८ „ यो० बी० अभ्यंकर।
३— „ मई, „ पृष्ठ १२७ „ म० वा० अघोर।

मराठी समस्यापूर्ति में दी हुई समस्या को छंद के बीच में रखकर पूर्ति करने की एक भिन्न प्रवृत्ति भी पाई जाती है। यह प्रवृत्ति संस्कृत एवं हिंदी समस्या-पूर्ति में संभवतः बिलकुल ही नही पाई जाती। मराठी की उपर्युक्त प्रवृत्ति-द्योतक कुछ पूर्तियाँ देखिए—

समस्या—"न्हालेली युवतीच कीं जणुं गमेही हर्पदा मेदिनी"
पूर्ति—आषाढी घन काजली बरसतां अंगावरी झेलुनी।
"न्हालेली युवतीच कीं जणुं गमेही हर्षदा मेदिनी!"
देहीं गंधित तेज आज, हिरवी साडी दिसे शोभुनी,
अंबाड्यामधिं कांत इंद्रधनुची वेणी सुरंगी खनी[1]!

अर्थात् आषाढ़ के काले बादलों की वर्षा को अपने शरीर पर सहकर पृथ्वी सद्यःस्नाता तरुणी की भाँति आनंददायिनी प्रतीत होती है। पृथ्वी से निकलनेवाली सोंधी सुगंध तरुणी की कांति-सदृश है। धरती पर लहलहाती हुई घास तरुणी की हरी साड़ी है तथा आकाश में निकला हुआ इंद्रधनुष मानो पृथ्वी-रूप नायिका की वेणी है। कवि ने प्रस्तुत पूर्ति में एक सद्यःस्नाता का बड़ा ही मनोरम एवं चित्रात्मक वर्णन किया है।

समस्या—"परिस्थिती ची जहरी नागिण"
पूर्ति—वासुकी ची दोरी बाँधून
वडवानलाचे दाबलें नरडे
हलाहलाच्या वमनामागून
स्त्रवले अमृताचें कुंभ
वाल्या कोल्याचें विपारी जीवन
कधीं तरी झालें पावन
वाहूं लागली रामायणाची गंगा
देत जगाला संजीवन
परिस्थितीची जहरी नागिण
कशाला वालगसी तिची भीति
हो आरूढ़ तिच्या सहस्र फण्यांवर
आणि दिसेल तुजला

१—'संजय', सितंबर, १९५६, पृष्ठ १०० (पूर्तिकार बापूगान मोटे, शोलापुर)

जहरी नागिणीच्या जिभेतून
ठिबकले मधाचे थेंब[1] ॥

अर्थात् वासुकी की डोरी बाँधकर मन्दराचल की गर्दन कसी गई, हलाहल व मन्थन से अमृत के कुम्भ निसृत हुए। वाल्मीकि अपना विषमय जीवन से प्रशान्त पावन हो गए और रामायण की पवित्र गंगा निसृत हुई, जो संसार को संजीवन दे रही है। अन्त में कवि कहता है, तुम परिस्थिति की जहरीली नागिन का इतना भय क्यों रखते हो। नागिन के सहस्र फणों पर आरूढ़ हो जाओ, और तब तुम्हें भी उसकी जिह्वा से मधु-बिन्दु निकलते दीख पड़ेंगे।

इस प्रकार हम देखते हैं कि समस्यापूर्ति की परंपरा का इतिहास अतीव प्राचीन है। यह लगभग वर्तमान काल में भी किसी-न-किसी रूप में अब भी प्रचलित है। उपर्युक्त विवेचन से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि संस्कृत समस्यापूर्ति की प्रवृत्तियों का प्रभाव मराठी एवं अन्य साहित्यों पर भी पड़ा।

१—'संजय', दिसंबर, १९२६ ई०, पृष्ठ ११९

३

अध्याय

उर्दू एवं फ़ारसी में समस्यापूर्ति का स्वरूप

उर्दू-काव्य-साहित्य में 'तरह' का स्वरूप—काव्य की कुछ मूल प्रवृत्तियाँ प्रायः प्रत्येक साहित्य में किसी-न-किसी रूप में पायी जाती है। उनके वाह्य आकार-प्रकार एवं स्वरूप में कुछ भी भेद हो सकता है, परंतु आंतरिक भाव-धाराएँ अधिकतर एक ही रहती है। यदि भारत का कवि 'रामायण' और 'महाभारत' की रचना करता है, तो योरप में 'इलियड' और 'ओडेसी' का भी प्रणयन होता है। यदि फ़ारस में प्रेम-काव्यों का वाहुल्य रहा, तो भारत में भी इनकी कमी नहीं। इसी प्रकार शैलीगत विशेषताओं में भी समानता देखने को मिलती है। प्रबंध एवं स्फुट काव्य-रचना की प्रवृत्ति भी वड़ी व्यापक है। विश्व के उत्कृष्ट काव्य-साहित्यों में दोनों प्रकार की रचनाएँ उपलब्ध होती है।

प्रवृत्तियों की समानता का आधिक्य उन साहित्यों मे और भी होता है, जो एक ही भूमि पर जन्मे है। हिंदी और उर्दू दोनों साहित्य भारत-भूमि पर ही अवतरित भाषाओं के फल-स्वरूप है, परंतु उर्दू के हिंदी से पृथक् अस्तित्व पर बड़ा मतभेद है। कुछ विद्वानों का कथन है कि उर्दू एक अलग भाषा है। उसका हिंदी मे इस दृष्टि से कुछ भी सम्बंध नहीं, परंतु कुछ विद्वान् उक्त मत के विपरीत यह कहते है कि उर्दू हिंदी की एक शैली है[1], जो फ़ारसी-लिपि में लिखी जाती है। अतएव इस विवाद पर भी कुछ संक्षिप्त प्रकाश डाल देना उचित ही होगा।

उर्दू तुर्की भाषा का शब्द है, जिसका अर्थ है लश्कर अथवा छावनी। मुग़ल शासक शाहजहाँ के काल में इस शब्द का सर्व-प्रथम प्रचलन हुआ। दिल्ली मे लाल क़िले के सामने शाही छावनी को उर्दू बाज़ार कहा जाने लगा। इस बाज़ार में सभी प्रकार की भाषा बोलनेवाले व्यक्ति एकत्रित होते थे, अतएव इनके सम्मिलन से एक मिश्रित भाषा का जन्म हुआ, जिसे छावनी के नाम पर ही उर्दू-भाषा कहा जाने लगा। रेख़्ता और उर्दू में कुछ ऐसी विशिष्टताएँ दीख पड़ी कि दोनो

१—वावू पुरुषोत्तमदासजी टंडन का ही यह सर्व-प्रथम मत था कि उर्दू हिंदी की एक शैली है।

'देशभाषा' अथवा 'भाषा' इन शब्दों का प्रयोग हिंदी ही नहीं, अन्य प्रादेशिक भाषाओं के प्राचीन कवियों ने भी किया है[१]। गोस्वामी तुलसीदास ने 'भाषा' शब्द का प्रयोग किया है—

भाषा बद्ध करब मैं सोई,
मोरे जिय प्रबोध जेहि होई।

तथा आचार्य केशवदास ने भी निम्न-लिखित पंक्तियों में—

'भाषा बोलि न जानहीं, जिनके कुल के दास ;
भाषा कवि में मंद मति तेहि कुल केशवदास।'

भाषा शब्द का ही प्रयोग किया है। परंतु सबसे आश्चर्य की बात तो यह है कि उपर्युक्त हिंदी-कवियों से पूर्व मुसलमान कवियों ने तो इसी 'भाषा' को हिंदी या हिंदवी कहा है। अमीर खुसरू कहते हैं—

'मुश्क काफूरस्त कस्तूरी कपूर।
हिंदवी आनंद शादी और सरूर।
सोज़नो रिश्ता बहिंदी सूई ताग।'

तथा जायसी का कथन है—

'तुरकी अरबी, हिंदवी, भाषा जेती आहि ;
जामे मारग प्रेम का सबै सराहै ताहि।'

मुसलमान कवियों एवं संतों द्वारा अभिहित इसी 'देश-भाषा' को आगे चलकर उर्दू कहा जाने लगा, और भारतीय वन, पर्वत, नदी, नद, पशु, पक्षी एवं अन्य अनेक प्राकृतिक वर्ण्य वस्तुओं का परित्याग कर अरब एवं फ़ारस के रेगिस्तानी दृश्यों का वर्णन किया जाने लगा। अरबी एवं फ़ारसी शब्दावली को अत्यधिक परिमाण में ग्रहण कर लेने के साथ-साथ अरबी एवं फ़ारसी-साहित्य की लगभग सभी परंपराएँ एवं कवि-रूढ़ियाँ भी अपना ली गईं। इस प्रकार 'उर्दू' नामधारी भाषा 'देश-भाषा' हिंदी से पृथक् क़रार दे दी गई। उर्दू एवं हिंदी के इस संक्षिप्त सम्बंध-विवेचन के पश्चात् यहाँ पर उर्दू की मिसरये-तरह शायरी के प्रसंग मे ही फ़ारसी में 'मिसरये-तरह' के द्वारा रचित शायरी पर भी संक्षिप्त प्रकाश डाल देना आवश्यक है।

१—देखिए डॉ० उदयनारायण तिवारी : हिंदी का उद्गम और विकास, पृष्ठ १४०-४२।

संस्कृत एवं हिंदी का काव्य जिस प्रकार राजसभाओं एवं राजदरबारों से सम्बंधित रहा है, उसी प्रकार अध्ययन करने पर पता चलता है कि फारसी काव्य का सम्बंध भी बहुत कुछ राजाओं एवं नवाबों के दरबारों से रहा है। प्रारंभिक काल में कवि-सम्मेलन एवं मुशायरे नहीं हो पाते थे, इसका पता साहित्य के अध्ययन करने से चल जाता है। कवियों का घनिष्ठ सम्बंध राजाओं से रहता था, और वे उन्हीं के आश्रय में रहकर अपने काव्य का सृजन किया करते थे। राजाओं के दरबारों में जहाँ मंत्री ज्योतिषी एवं वैद्य अथवा हकीम की उपस्थिति अनिवार्य थी, वहीं कवियों का भी विशिष्ट स्थान था। इसका विवरण हम मुसलमान राजाओं के विवरण के साथ मिलता है[१]।

दरबार में अनेक कवि रहा करते थे किंतु राजा का विशेष कृपापात्र उनमें से कोई एक ही कवि होता था। ऐसी दशा में कवियों में प्रतिस्पर्द्धा की भावना का होना स्वाभाविक था क्योंकि प्रत्येक कवि राजा का विशेष कृपापात्र बनना चाहता था। अनेक अवसरों पर राजाओं को कवियों की काव्य प्रतिभा की परीक्षा लेनी पड़ती थी। कभी-कभी ऐसा भी होता था कि कविगण स्वयं कोई 'तरह' दे देते थे और सभी उस पर मिसरे लगाते थे अथवा कभी-कभी ऐसा भी होता था कि शेर का एक मिसरा एक शायर कहता था और दूसरा शायर अन्य मिसरा लगाकर शेर पूरा कर देता था। इस प्रकार के अनेक रोचक संदर्भ फारसी-काव्य में मिलते हैं।

महमूद गजनवी के दरबार के प्रसिद्ध फ़ारसी शायर फिरदौसी के विषय में एक उल्लेख मिलता है कि किस प्रकार गजनवी के दरबार के कवियों ने फिरदौसी की काव्य प्रतिभा की परीक्षा ली। फिरदौसी अपने गाँव से गजनी आया, और शहर में जिन लोगों से उसका परिचय था उनको अपने आने की सूचना दे दी। चलते चलते वह उस बाग में पहुँच गया जहाँ महमूद के दरबार के प्रसिद्ध कवि अनसरी फरुखी और असजदी मदिरा-पान में लीन थे। इन कवियों को फिरदौसी का उधर से निकलना अच्छा न लगा, और कुछ उसे वहाँ से भगा देने को उद्यत हुए किंतु अंत में निश्चय यह किया गया कि रुबाई का एक मिसरा 'तरह' दिया जाय जिस पर सभी अपनी-अपनी प्रतिभा का प्रकाशन करें। अगर यह (फिरदौसी)

१—Chahar Maqala (Four discourses) of Nizami i Arudi of Samarqand Translated by Edward Brawne (Cambridge University Press) 1921 Second discourse on poets from page No 27 to 59 Anecdote XII–XX

भी मिसरा लगाए, तो अपनी जमात में सम्मिलित कर लिया जाय, अन्यथा स्वय ही लज्जित होकर चला जायगा[1]।

अनसरी ने प्रारंभ करते हुए मिस्रा लगाया—

चूँ आरिज़े तू माह न बाशद रोशन ।

अर्थात् चंद्र भी तेरे कपोलों के समान आभा-युक्त नही है।

असजदी ने कहा—

मानिंदे रुख़त गुल न बुवद दर गुलशन ।

अर्थात् तेरे मुख के समान वाटिका मे कोई पुष्प नहीं है।

फ़र्रुख़ी ने कहा—

मिज़गानत गुज़र हमीं कुनद अज़ जोशन ।

अर्थात् तेरी पलकें कवच को इस प्रकार से भेदती है।

क़ाफ़िया में शीन (ش) का रखना आवश्यक था, और इस अनिवार्यता के साथ कोई सुंदर क़ाफ़िया शेष न रह गया था, तथापि फ़िरदौसी ने अंतिम मिस्रे को तुरंत पूरा करते हुए कहा—

मानिंदे सनाने गीव दर जंगे पिशन ।

अर्थात् जिस प्रकार पिशन के युद्ध में गीव का भाला कवच को भेद गया था।

सबने 'गीव' और 'पिशन' की व्याख्या करने को कहा। फ़िरदौसी ने उसकी सविस्तार व्याख्या की। तब सबने उसे अपनी जमात में मिला लिया।" इसी प्रकार के कुछ अन्य प्रसंग भी मिलते है।

१—(क) 'शैरुल अजम' प्र० भाग, पृष्ठ ९६-९७ (ले० शिबली नामानी)

(ख) 'बहारेस्ताने जामी' लेखक जामी (१४१४ ई० से १४९२ ई०)

چون عارض تو ماه نباشد روشن - عنصری گفت مصرع
مانند رخت گل نبود در گلشن - عسجدی گفت مصرع
مژگانت گذر همی کند از جوشن - فرخی گفت مصرع
مانند سنان گیو در جنگ پشن - فردوسی گفت مصرع

एक समय का उल्लेख है कि जेबुन्निसा (मख्फ़ी) अपने महल के झरोखे से बाहर देख रही थी इतने में नासिरअली सरहिन्दी जो कि स्वयं एक शायर थे उधर से आ निकले। मख्फ़ी ने अपने ख़वास से कहलवाया—मिर्ज़ा थाम ! (ए मिर्ज़ा ! ठहर जा।) और उसे मिसरे की पूर्ति के लिये एक तरह दी—

ओ कदर अज़ ख़्वेशतन रफ़्तम् कि मी आयम् हुनूज़

(इस क़दर मैं आपसे गुज़र गई हूँ कि अभी तक अपने में नहीं आ पाई।)

मिर्ज़ा ने मिसरे की पूर्ति करने के लिए शर्त रक्खी— अगर शाहज़ादी चिलम ख़ुद बाला कुनद मिसरा मी गोयम।

अर्थात् अगर शाहज़ादी पर्दा हटा लें तो मैं मिसरा कहता हूँ।

शाहज़ादी का पर्दा हटाना था कि नासिरअली ने उसकी पूर्ति इस प्रकार कर दी—

आ परी दर पर्दा शुद महव तमाशायम् हुनूज़।

(वह परी पर्दे में हो गई और मैं उसकी ओर देख रहा हूँ।)

इसी प्रकार एक दूसरा उल्लेख भी मख्फ़ी के विषय में मिलता है। एक बार जेबुन्निसा ने दासी से दर्पण लाने को कहा। दासी जल्दी में दर्पण ला रही थी अचानक वह हाथ से गिरकर टूट गया। दासी ने डरते हुए दीन भाव में उसे यह सूचना दी—

अज क़ज़ा आईनए चीनी शिकस्त।

अर्थात् आसमान पर चीनी का आइना टूट गया।

यह सुनकर जेबुन्निसा ने भयभीत दासी को आश्वासन देते हुए कहा—

ख़ूब शुद असबाब ख़ुद बीनी शिकस्त।

अर्थात् अच्छा ही हुआ ख़ुदबीनी का असबाब—अहंकार का एक साधन—टूट गया।

इसी प्रकार कहा जाता है कि एक बार एक बुड्ढे को जिसकी कमर झुक गई थी मार्ग में जाते हुए देखकर जहाँगीर ने नूरजहाँ से कहा—

चराख़ुम गश्त मी गरदन्द पीरान जहाँ-दीदा।

(अर्थात् बुढ़ापे में पता क्या जाने क्या झुक जाते हैं बुड्ढे।)

नूरजहाँ ने दूसरे पद की पूर्ति इस प्रकार की—

बज़ेरे ख़ाक मी जोयन्द अय्यामे जवानी रा।

अर्थात—जवानी के दिनों को ढूंढते मिट्टी में हैं बुड्ढे।

फ़ारसी-साहित्य में अनेकानेक संदर्भ इसी प्रकार के मिलते हैं, जिससे इस बात की पुष्टि हो जाती है कि फ़ारसी-साहित्य मे 'तरह-मिसरा' पर शायरी बराबर होती रही है। आशु कविता, जिसे हम समस्यापूर्ति का ही एक रूप मानते है, फ़ारसी-साहित्य में अधिक पाई जाती है। मुस्लिम सम्राटों के दरबारों में फ़िल्वदी शायरी (आशु-कविता) का प्रचलन अत्यधिक प्राचीन काल से होता रहा है। फ़िल्बदी अथवा बदीह-गोई द्वारा ही शायरों की क़ाब्लियत का पता लगाया जाता था। उपर्युक्त उद्धृत उदाहरणों से इसकी पुष्टि हो जाती है। इस फ़िल्बदी शायरी का प्रारंभ प्रायः महमूद ग़ज़नवी के काल से माना जाता है। 'मिसरे-तरह' शायरी का संबंध ग़ज़ल से ही रहा है, अतएव यहाँ ग़ज़ल पर सक्षिप्त प्रकाश डाल देना भी आवश्यक है।

ग़ज़ल फ़ारसी-काव्य के सबसे प्राचीन रूप 'क़सीदा' से निकला हुआ काव्य का एक रूप है, जिसे कवियों ने प्रेम-काव्य लिखने के लिये अपनाया। ग़ज़ल में प्रायः प्रेम और वासनामूलक भाव प्रकट किए गए हैं, किंतु इसमें जीवन की दुख-भरी कहानियाँ, निराश प्रेमियों की आहें, रमणियों का सौंदर्य, प्रेम की हार-जीत, प्रकृति की छटा एवं सुंदर दृश्यों का वर्णन भी किया गया है। लौकिक तथा पारलौकिक, दोनो प्रकार के प्रेम में डूबे हुए प्रेमियों का वर्णन भी मिलता है। कहीं-कहीं सूफ़ियों ने इसे सूफ़ियाने रंग में रँगने का यत्न किया, और कही-कहीं भक्तों ने भी अपनी भक्ति-भावना भी ग़ज़ल द्वारा प्रकट की। तात्पर्य यह कि ग़ज़ल का क्षेत्र अत्यंत व्यापक रहा है।

ग़ज़ल का प्रत्येक शेर अपना पृथक् अस्तित्व रखता है और अपने आप में पूर्ण होता है। तथा अर्थ-द्योतन में पूर्णतया सक्षम होता है। ग़ज़ल रुबाई को छोड़कर छंद के किसी भी रूप में लिखी जा सकती है। इसके शेरों की संख्या ५ से १७ तक मानी गई है, किंतु उत्तर काल में डेढ़ सौ शेरों तक की ग़ज़लें लिखी हुई पाई जाती हैं। ग़ज़ल में उनवान (विषय) नहीं रहता, अतएव इसे हम 'प्रबंधात्मक काव्य' के लिये नही अपना सकते। इसका प्रयोग मुक्तक काव्य के लिये ही होता है। ग़ज़ल का जो स्वरूप है, वह स्वयं इस प्रकार का है कि उसमें एक विषय पर पूरी ग़ज़ल सरलता-पूर्वक नहीं कही जा सकती है। ग़ज़ल का स्वरूप इस बात की पूर्ण अपेक्षा रखता है कि उसका प्रत्येक शेर दूसरे शेर से भिन्न भाव रक्खे, क्योंकि शेर का क़ाफ़िया शायर को मुख़्तलिफ़ ख़याल की ओर ले जाता है, अतएव ग़ज़ल ही एक ऐसा काव्य-रूप है, जिसमें हमें प्रतियोगितात्मक भावना अधिकता से मिलती है, जो कि 'तरह' शायरी का प्रेरक तत्त्व माना जा सकता है। यही कारण है कि 'मिसरे-तरह' देकर फ़िल्बदी मुशायरे आगे चलकर उर्दू के क्षेत्र में भी होने लगे और अनेक शायर उसी ज़मीन (आधार) और उन्हीं क़ाफ़िए और रदीफ़ की पाबंदी

करते हुए गजल कहने लगा। मुशायरे आप प्रतियोगितात्मक होते हैं जिनमें शायरों की काबिलियत का पता लगाया जाता है और यह देखा जाता है कि एक ही काफिए को हर शायर ने किस अन्दाज और किस मयार से बाँधा है। फारसी काव्य की यह परपरा और काव्य के अपने प्राचीन रूप गजल को उर्दू-काव्य में ज्यों-का-त्यों अपना लिया गया। मिसरे-तरह पर गजल लिखना आगे चलकर उर्दू शायरों के लिये फैशन हो गया। अब उर्दू काव्य में तरह मिसरे शायरी का स्वरूप देखिए—

जिस प्रकार हिन्दी की समस्यापूर्ति राजदरबारों तथा कवि-सम्मेलनों से अधिक सबधित रही उसी प्रकार उर्दू तरह का भी प्रचलन अधिकांशत मुशायरों में ही हुआ। हिन्दी तथा संस्कृत में समस्यापूर्ति के जो उद्देश्य रहे हैं और फारसी में भी जिस भावना मिली है वही उद्देश्य लगभग उर्दू के तरह-काव्य के भी रहे हैं। उर्दू में भी कवि की काव्य प्रतिभा की परीक्षा लेने मनोरंजन करने तथा काव्य की गति को मुखरित रखने के उद्देश्य से ही तरह का उपयोग किया जाता रहा है। इसके लिये मुशायरे का आयोजन होने के पूर्व ही तरह का मिसरा घोषित कर दिया जाता था और विभिन्न कवि अपनी-अपनी काव्य प्रतिभा के अनुकूल उसकी पूर्ति किया करते थे। कुछ साधारण कवियों को छोड़कर अन्य कवियों ने उत्कृष्ट पूर्तियाँ की हैं जिनमें उनकी काव्य प्रतिभा का परिचय मिल जाता है।

उर्दू काव्य में तरह के रूप में शायरी करने का तरीका हिन्दी से कुछ भिन्न है। जहाँ हिंदी में दी हुई समस्या को छन्द के अंतिम चरण में उसी रूप में रखना आवश्यक है, वहाँ उर्दू में इस प्रकार का नियम सर्वत्र लागू नहीं होता। हाँ कभी-कभी कुछ शायर मिसरे तरह में अपना मिसरा लगाकर गजल पूरा कर देते हैं किन्तु इस रूप को उर्दू में गिरह लगाना कहा जाता है। तरह का यह रूप हिंदी-समस्यापूर्ति के समान है। मुशायरों में शायरी सुननेवाले उस्ताद 'गिरह' पर अधिक ध्यान देते हैं। कुछ उदाहरण देखिए—

तरह— दिल भी पहलू में फड़कता है जिगर की सूरत।
शेर — किसी करवट नहीं अब चैन हज़ी फुरकत में।
दिल भी पहलू में फड़कता है जिगर की सूरत॥[1]

उपर्युक्त शेर में शायर ने मिसरे तरह पर गिरह लगाकर गजल पूरी की है। यह 'गिरह-बन्दी' कहलाता है। एक दूसरा उदाहरण देखिए—

१—देखिए गुलदस्ता-ए-शोअरा १९ दिसबर १८५९ ई० (मीर अलीहुसन हज़ी)

तरह—है यह वह दर्द, जो शर्मिन्दये दर्मां न हुआ।
शेर —क़ौम की राह में सर देके जो क़ुर्बां न हुआ।
मुज़ग़ये गोश्त हुआ वह तो फिर इन्साँ न हुआ॥
ज़िन्दगी मौत से बदतर है हमारे हक़ में।
मुल्क का अपने ग़र इक़बाल दरख़शाँ न हुआ॥
दावये हुब्बे वतन तेरे लिये है बेसूद,
तार खद्दर का अगर मिस्ले रगेजाँ न हुआ॥
मुल्क के इश्क़ का पर लुत्फ़ बयाँ क्या कीजे,
"है यह वो दर्द, जो शर्मिन्दये दर्मां न हुआ[1]॥"

उर्दू 'तरह' शायरी में 'मिस्‌रे-तरह' के रदीफ़ और क़ाफिए पर अधिक बल दिया जाता रहा है। शेर में 'मिस्‌रे-तरह' के क़ाफ़िए और रदीफ़[2] होने आवश्यक समझे जाते हैं। दो मिसरों में जो शब्द अंत में आते हैं, उन्हें रदीफ़ कहते है। क़ाफ़िया शेर का मुख्य आधार है और यह रदीफ़ के पहले आता है। अधिकतर क़ाफ़िए में केवल ध्वनि साम्य ही पाया जाता है, किंतु रदीफ़ सदैव 'मिस्‌रे तरह' का ही रहता है। कभी-कभी 'मिस्‌रे तरह' के क़ाफ़िए के नीचे क़ाफ़ (ق) और रदीफ़ के नीचे रे (ر) लिखा रहता है, जिसका आशय यह होता है कि 'मिस्‌रे तरह' पर शेर लिखनेवाले शायर और चिह्नित क़ाफ़िए और रदीफ़ शेर में अवश्य रक्खें। जैसे—

मिस्‌रे तरह—"मगर एक चश्मे शायर है कि पुरनम होती जाती है।"
ق ر

प्रस्तुत 'मिस्‌रे-तरह' में 'नम' के नीचे 'काफ़' लिख दिया गया है, जिससे स्पष्ट है

१—देखिए—'तरान-ए-कफ़स', पहला मुशायरा, २० जनवरी, १९२२ ई०।
'तरह-मिस्‌रा' कविवर 'हसरत' के शेर का है।

२—قافیہ Is the name given to one word, which is the basis of the verse. It is also called حرف روی i. e, rhyme letter. قافیہ has nine letters, whose names and positions are shown below. ردیف is the name given to one or more words, which are repeated at the end of the verses after the قافیہ and stand by themselves.

—Life of Persian Poetry—B. D. Verma. (P. 9-10)

कि शायर को अपने शेर में 'नम' काफिया अवश्य रखना होगा। इसी प्रकार रदीफ के लिए भी आवश्यक है कि शेर में 'होती जाती है' रदीफ अवश्य रक्खा जायगा। एक प्रकार से 'क़ाफ़' और 'रे' निभना 'तरह' में आवश्यक-सा हो गया।

उर्दू 'तरह शायरी' में 'गिरह-बंदी' के समान 'मिस्रे तरह' पर शेर लिखना विभिन्न रूपों में पाया जाता है। कुछ यहाँ दिए जाते हैं—

मुसल्लस—यह तीन पंक्तियों का 'मिस्रे तरह' पर शायरी करने का एक स्वरूप है जिसकी पहली पंक्ति 'तरह मिस्रा' पूरा करनेवाले शायर की होती है, और अंतिम दोनों पंक्तियाँ अर्थात् पूरा शेर किसी और बड़े शायर का होता है।

शेर—(तरह मिस्रा)—

"मुद्दत हुई कि गालिब मर गया पर याद आता है,
वह हर इक बात पर कहना कि यूँ होता तो क्या होता।"

पूर्ति—खुदा बख्शे 'रसा' उसका खयाल अब तक सताता है,
हुई मुद्दत कि गालिब मर गया पर याद आता है।
वह हर इक बात पर कहना कि यूँ होता, तो क्या होता।[1]

उपर्युक्त मुसल्लस में पहली पंक्ति कविवर 'रसा' की है, जिसे उन्होंने गालिब के शेर पर मुसल्लस रूप में लिखी है।

तख्मीस—यह पाँच पंक्तियों का काव्य रूप है। पहली तीन पंक्तियाँ कवि स्वयं लिखता है और अंतिम दो पंक्तियाँ अर्थात् पूरा शेर किसी अन्य बड़े शायर का होता है।

शेर—(तरह मिस्रा)—

दिल से तेरी निगाह जिगर तक उतर गई,
दोनों को इक अदा में रजामंद कर गई।

पूर्ति—शोखी कहाँ से सीख नजर में ये भर गई,
बरके बला की तरह किधर से उधर गई।
मैं क्या कहूँ जो मुझ पे कयामत गुजर गई,
दिल से तेरी निगाह जिगर तक उतर गई,
दोनों को इक अदा में रजामंद कर गई ॥१॥

१—देखिए 'रिसाल ए-आलमगीर', पृष्ठ ५३, मार्च १९३७ ई० (मुसल्लस बरज़मीनए गालिब)

क्या शौक़े दीद है दिले हसरत मावका
रहता नहीं ख़याल भी शरमो - हिजाब का ।
डाली निगाह पी के जो साग़र शराब का,
नज्ज़ारे ने भी काम किया वा नक़ाब का,
मस्ती से हर निगाह तेरे रुख़ पर बिखर गई ॥२॥

क्या भूल-चूक थी किसी नाकरदहकार की ।
नावाक़फ़ी से मेहरो वफ़ा आश्कार की ॥
सौ का शुमार कुछ है न गिनती हज़ार की ।
हरबुल हवस ने हुस्नपरस्ती शार की ।
अब आबरूए शेव पै अहले नज़र गई ॥३॥[1]

उपर्युक्त तीनों 'तख्मीस' के अंतिम शेर महाकवि ग़ालिब के हैं, और ऊपर की शेष तीनों पंक्तियाँ कविवर दाग़ के शागिर्द अख्तर नगीनवी की है। अख्तर साहब ने ग़ालिब के शेर पर 'तख्मीस' लिखकर 'तरह शायरी' का रूप प्रस्तुत किया है। यहाँ पर यह स्पष्ट कर देना है कि उर्दू में 'तख्मीस' का ही दूसरा नाम 'खम्स:' भी है। खम्स: के विषय में अपना मत व्यक्त करते हुए एक उर्दू पत्र-संपादक कहते हैं—

"खम्स: लिखना आसान काम नहीं है। शायर का कमाल यह होता है कि वह किसी उस्ताद या बड़े शायर की कल्पना की उड़ान तक पहुंच जाय और शुरू में ऐसी तीन पंक्तियाँ (मिस्रे) लगाए, जिनके जोड़ या पेवंद का शक पैदा न हो, बल्कि साफ़ तौर पर यह महसूस हो कि अस्ल शेर का मफ़हूम (मतलब) इन तीन पंक्तियों के बग़ैर पूरा नहीं होता। बड़े मश्शाक शायर ही इस मैदान में चल सकते हैं।"[2]

कविवर ग़ालिब के शागिर्द मीर मेंहँदी हुसैन मजरूह के दो खम्स: (तख्मीस) देखिए, जो ग़ालिब की शेरों पर लिखे गए हैं—

दे खुदा रहम इन हबीबों को—
कि जलायें न बदनसीबों को।

१—देखिए 'आलमगीर', पृष्ठ ३०-३१, एप्रिल १९३७ ई० (तख्मीस बर-ग़ज़लए ग़ालिब)

२—देखिए 'रहनुमाए तालीम', संपादक, जोश मलसियानी, पृष्ठ ४५-४६ जनवरी, १९२९ ई० (खम्स: बरग़ज़लए ग़ालिब)

रंज देते हो हम गरीबों को,
जमा करते हो क्यों रकीबों को।
इक तमाशा हुआ गिला न हुआ ॥१॥

फिक्र की दिस्मन आजमाने की,
याने उस शोख को बुलाने की।
यह सुनो बात दिल जलाने की,
है खबर गर्म उनके आने की।
आज ही घर में बोरिया न हुआ ॥२॥

उपर्युक्त दोनों खम्स गालिब के शेर का अर्थ अपने में पूर्णतया मिला लेने में सफल हुए हैं। यही शायर की कला है और यही उसकी कला की कसौटी भी कि ग़ालिब जैसे महाकवि के प्रसिद्ध शेरों पर खम्स लिखे तथा भाव में किसी प्रकार की भी कमी न आने पाए और न यही पता चल पाए कि कहीं कोई जोड़ या पैबंद भी है।

जोश मलिहाबादी के दो शेरों पर मौलाना आजाद के खम्स देखिए—

[1]कोसों है दूर कुल्फतो रंज और मुसीबतें।
इसरत की बज रही हैं हर इक सिम्त नौबतें॥
निखरी हुई है चाँदनी रातों की तल्अतें।
हर शै पे आसमाँ से बरसती हैं जीनतें॥
हर जर्रं कायनात का इक नाजनी है आज ॥१॥

[2]मैखान-ए-अलस्त के दस्तों की धूम है।
तौबा के टूटने से शिकस्तों की धूम है॥
आजादिए खयाल के मस्तों की धूम है।
हर सू दिलेर बादः परस्तों की धूम है॥
छुप छुप के पीनेवालों की पुरसिशन नहीं आज ॥२॥

पहले खम्स में जोश की शेर का भाव है— आज आकाश से सौंदर्य की वर्षा पृथ्वी की प्रत्येक वस्तु पर हो रही है अतएव धरती का कण-कण एक सुंदरी

१—देखिए आलमगीर (खास नम्बर पृष्ठ १९१ दिसंबर सन् १९३७ ई०) 'बसन्त की रात' उनवान (शीर्षक)।
२—देखिए आलमगीर (खास नम्बर पृष्ठ १९१ दिसंबर १९३७)

के रूप में हो गया है।" इसी भाव-साम्य पर 'आफ़ाक़' की उपर्युक्त तीन पंक्तियाँ भी हैं। दूसरे खम्स: में भी कविवर आफ़ाक़ ने जोश साहब के शेर के भाव का पूर्णतया समावेश अपनी पंक्तियों में कर दिया है। यह 'खम्स:' की सबसे बड़ी विशेषता है, और इसीलिये उर्दू 'तरह' काव्य भी बहुत कुछ उत्कृष्ट हो सका है। 'तरह मिस्रे' द्वारा रचे जानेवाले काव्य का तीसरा रूप है तज्मीन।

तज्मीन—यह खम्स: के अनुरूप ही है, किंतु इसमें यह निश्चित नहीं रहता कि शेर के ऊपर और कितनी पंक्तियाँ लिखी या जोड़ी जायँ। किसी दूसरे के मशहूर शेर को अपने क़लाम में मिलाना तज्मीन कहलाता है।[1]

उदाहरण—

ख़ुश तो हैं हम भी जवानों की तरक्क़ी से मगर
लबे खंदा से निकल जाती है फ़रियाद भी साथ ॥१॥
हम समझते थे कि लाएगी फराग़त तालीम
क्या ख़बर थी कि चला आएगा इल्हाद भी साथ ॥२॥
घर में परवीज़ के शीरीं तो हुई जल्वानुमा
लेके आई है मगर तेशये फ़रहाद भी साथ ॥३॥ (इक़बाल)
तुख्मे दीगर व कफ आरीमवबे कारीम ज़े नव
काँचे किश्तीम ज़े ख़िजलत न तवा कर्द दो रव ॥४॥[2] (अर्शी)

(हम दूसरा बीज लेकर फिर से बोएँ, ताकि हमें अपने बोए हुए को शर्मिंदगी के साथ न काटना पड़े।) डॉ० इक़बाल ने 'अर्शी' साहब के शेर का भाव अपने शेरों में इस प्रकार भर दिया है कि यदि अर्शी के शेर फ़ारसी में न होते, तो इक़बाल के शेर से पृथक् कर सकना अत्यंत कठिन होता। नई तालीम के ऊपर उन्होंने जो व्यंग्य किए हैं, वे उनके देश-प्रेम के द्योतक है।

उपर्युक्त उद्धरणों एवं विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि उर्दू में 'तरह शायरी' के विभिन्न रूप है, कुछ का प्रचलन अधिक हुआ है और कुछ केवल प्रयोग-रूप में ही अपनाए गए हैं।

कुछ दिनों पश्चात् 'उर्दू तरह' का रूप कुछ भिन्न हो गया। उसमें कुछ अधिक व्यापकता का समावेश किया गया। सन् १८७४ ई० में मेजर फोलर की अध्यक्षता में 'अंजुमन-ए-पंजाब'-नामक एक संस्था की स्थापना लाहौर में हुई। इसके संस्थापकों में मुख्य थे—मौलाना मोहम्मद हुसैन 'आज़ाद', प्यारेलाल 'अशोभ'

१—देखिए 'फरहंगे आमेर', पृष्ठ १२७ (मौ० अब्दुल्लाखाँ)
२—बांगेदर (पृष्ठ २२७ तज्मीन वर शेरे मुल्ला डॉ० इक़बाल)

तथा मौलाना अल्ताफ़ हुसैन 'हाली'। इन विद्वानों ने मुशायरों में 'तरह' के रूप में विषय देने का निश्चय किया, जिससे भिन्न भिन्न विषयों पर रचनाएँ होने लगीं। 'तरह' के लिये कभी एक विषय दिया जाता था और कभी अनेक। अँगरेज़ी काव्य से प्रभावित होने के कारण उर्दू के कवि अब प्रकृति से भी अपने काव्य का विषय चुनने लगे। इसका परिणाम यह हुआ कि उर्दू काव्य में भी प्रकृति वर्णन किया जाने लगा। उर्दू में प्रकृति-वर्णन अधिकांशतः मुक्तक काव्य में ही पाया जाता है। आगे चलकर नैतिक विषय, वर्षा ऋतु, अँधेरी रात, देश भक्ति (हुब्बेवतन), न्याय एवं दया, वाद विवाद, इम्तहान, निजारत तथा आशा पर भी तरह दी जाने लगी। इससे उर्दू-काव्य में विविधता आई और 'तरह' के रूप में कविता करने का लक्ष्य भी पूरा हो गया। उपर्युक्त अंजुमन ने तो वही कार्य किया, जो हिंदी-साहित्य में भारतेंदु तथा उनकी मंडली ने किया था। उर्दू काव्य में तो विविधता आई, किंतु 'उर्दू तरह' में हिंदी की भाँति विविधरूपता न आ सकी। 'तरह' का एक मिस्रा दे दिया जाता था और विभिन्न शायर 'रदीफ़' और 'क़ाफ़िए' के साम्य पर पूर्तियाँ किया करते थे। कभी-कभी ऐसे मिस्रे पूरे किए जाते थे, जिनमें क़ाफ़िया तो भिन्न रहता था, किंतु रदीफ़ सदा वही रहता था। जैसे—

तरह—मुजदा ऐ शौक कि फिर तुरफा तमाशा ठहरा।
पूर्ति—मर ही जाता शबे हिजरों में तेरा तालिबे वस्ल।
जिंदगानी का सबब वादये फ़र्दा ठहरा ॥१॥
यार ने आज हमें घर से बुला भेजा था।
बातें क्या-क्या हुईं ऐ 'औज' कहाँ क्या ठहरा'[1] ॥२॥

उपर्युक्त दोनों शेरों से यह स्पष्ट हो जाता है कि 'मिस्रे-तरह' का रदीफ़ 'ठहरा' दोनों में पाया जाता है, किंतु क़ाफ़िया 'तमाशा' दोनों में भिन्न है। पहले में क़ाफ़िया 'फ़र्दा' है और दूसरे में 'क्या' है, जो कि तरह के क़ाफ़िए से भिन्न है। इसमें केवल 'आ' ध्वनि का साम्य पाया जाता है। इसे उर्दू में 'हर्फ़े रवी' कहते हैं।

स्वरूप की एक भिन्नता और पाई जाती है। हिंदी में समस्या के लिये चरण, पद, पदांश, वाक्य अथवा शब्द दिए जाते रहे हैं, किंतु उर्दू-काव्य में 'तरह' का यह रूप नहीं पाया जाता। उर्दू में तो तरह के लिये एक पूरा मिस्रा दे दिया जाता था, जिसमें शायर को केवल दूसरा शेष मिस्रा ही बनाना पड़ता था। इस प्रकार उर्दू में 'तरह शायरी' करनेवाले शायरों के लिये एक प्रकार की सरलता रहती थी,

---

१—देखिए—'गुलदस्त ए-शोअरा', जिल्द १, पहली जनवरी, सन् १८६० ई० (मतबा अवध अख़बार, लखनऊ) अशरफ़अली 'औज'।

क्योंकि मिस्रे से वह 'तरह' देनेवाले की आंतरिक इच्छा का पता लगा लेते थे और तदनुकूल उसकी पूर्ति करते। ऐसी पूर्तियों को सुनकर श्रोतागण आश्चर्य-चकित होते और शायर की कला की प्रशंसा करते थे। यहाँ कुछ 'मिस्रे तरह' और उनके शेर दिए जा रहे हैं, जिनसे उपर्युक्त विवेचन अधिक स्पष्ट हो सकेगा—

तरह—"मुज़दा ऐ शौक़ कि फिर तुरफ़ा तमाशा ठहरा"
शेर—ख़त न गो उसने लिखा वस्ल का वादा तो किया
कुछ तो क़ासिद मेरे जीने का सहारा ठहरा ॥१॥
मैं वह शायर हूँ, जो हस्ती से गया सूये अदम
बुलबुले गुलशने फिरदौसे मुवल्ला ठहरा[1] ॥२॥

—अब्दुलक़रीमखाँ 'हिना'

तरह—"गिरियाँ बरंगे शमा रहे हम तमाम शब"
शेर— रोते हैं उनके हिज्र में जब हम तमाम शब।
आते हैं ग़श पे ग़श हमें पै हम तमाम शब॥

—आग़ाहसन 'अज्ञल'

ऐसे शेर, जिनमें रदीफ़ और क़ाफ़िया दोनों मिस्रों में समान रहें, उन्हें 'मतला' कहा जाता है। उपर्युक्त शेर मतला है। ग़ज़ल का पहला शेर 'मतला' होता है।

भूले न यादे गेसुए पुरग़म तमाम शब।
उलझा किया कमाल मेरा दम तमाम शब।

—काज़िमहुसैन 'सुरूर'

महताब आफताबे लबे बाम बन गया।
उस माह से जो हम रहे वाहम तमाम शब[2]।

—मोहसनअली 'साक़ी'

तरह—"ऐ आसमाँ ये बोझ उठेगा जमीं से कब?"
शेर—जाता है दागे ग़म दिले अन्दोहगीं से कब।
मिटता है वे मिटे हुए धब्बा नगीं से कब॥

—मुज़फ्फ़रअलीखाँ 'असीर'

१—देखिए 'गुलशन-ए-शोअरा' जिल्द १, जनवरी १८६० ई०
(मतव अवध गज़ट, लखनऊ)
२— वही (१९ दिसंबर, १८५९ ई०) ,, ,,

निकले निखर के साथ अगर चौदहवीं का चाँद।
ऐ मेहरबाँ मिलेगा तुम्हारी जबाँ से कब।
—मीरअलीहुसैन 'हज्री'

निकला गमो अलम दिले अन्दोहगीं से कब,
खाली रहा मकान हमारा मकीं से कब॥[1]
—नवाब बुरहानुद्दीन हैदरखाँ

तरह—"दिल भी पहलू में फड़कता है जिगर की सूरत",
शेर— चश्म कम से किसी बेजर को न देख ऐ जरदार,
आँखें फिर जाएँगी एक रोज नजर की सूरत।
—मीर मुजफ्फरअलीखाँ 'असीर'

किसी करवट नहीं अब चैन 'हज्री' फुरकत में,
'दिल भी पहलू में फड़कता है जिगर की सूरत।'
—मीरअलीहुसैन 'हज्री'

गजल के अन्तिम दो चरणों में शायर जब अपने उपनाम का प्रयोग करता है, तब इन्हीं दोनों चरणों को 'मक्ता' कहते हैं। उपर्युक्त शेर में शायर ने 'मिस्रे तरह' पर गिरह लगाकर 'गिरह-बंदी' की है।

उम्र गुजरी है मेरी वादिये गुरबत में मगर,
अब तलक याद है कुछ-कुछ मुझे घर की सूरत॥[2]

तरह—'दिखला रही है रंग चमन में बहार आज',
शेर— फादश बर्कर बल से जो पहलू नहीं है गर्म
दिल ढूँढता है यार को बेअख्तियार आज॥[3]
—'हज्री'

१—देखिए 'गुलशन-ए-शोअरा' (जिल्द १, १५ जनवरी, १८६० ई०)
टि०—सन् १८५९ ई० से १८६१ ई० तक 'गुलशन ए शोअरा' की जितनी मासिक पत्रिकाएँ मिली हैं, उनमें विज्ञापन के लिये 'तरह' दे दी जाती थी, और पत्र के मुख पृष्ठ पर सदैव अंकित रहता था—
बाद दो हफ्ते के अब दूसरा जलसा ठहरा—
मुजदा ए शौक कि फिर तुर्फा तमाशा ठहरा॥
२—देखिए 'गुलशन-ए-शोअरा' (१९ दिसंबर, १८५९ ई०)
३—वही (११ मार्च, १८६० ई०, संख्या ९)

तरह—"ये ऐसा काम था जिसको किया लेकिन न कर जाना",

शेर—दो रोज़ा ज़िंदगी का ऐशो-इशरत में गुज़र जाना—
ये ऐसा काम था जिसको किया लेकिन न कर जाना।

—'गुलशन'

बहुत दुश्वार था मैदाने हस्ती से गुज़र जाना,
बड़ी मुश्किल से सीखा उम्र-भर में हमने मर जाना।

—'वेख़ुद देहलवी'

संसार में जीना तो सरल है, किंतु वहादुरी के साथ इस जीवन-क्षेत्र से विदा लेना अत्यंत कठिन है। इसीलिये शायर कहता है कि मैंने जीवन-भर बड़ी कोशिशो से मरना सीखा है।

दमे आख़िर निखर कर आये तुम मेरी अयादत को
जो मुम्किन हो तो मेरा भी सँवरना देखकर जाना।

—'सिराज' इलाहाबादी

कहीं अपनी निगाहें आशनाएँ ग़ैर होती हैं,
तुम्हें देखा अगर देखा तुम्हें जाना अगर जाना।

—'वेवाक' शाहजहाँपुरी

किसी के इश्क़ में वे लुत्फ़ जीना दरदे सर जाना।
बताया ग़म ने मर जाने से पहले हमको मर जाना[१]।

—'नूह' नारवी

मुशायरों के अतिरिक्त कुछ ऐसे रोचक प्रकरण भी मिलते हैं, जिनमें 'तरह' शायरी की गई है। इन प्रसंगों से 'तरह' काव्य की व्यापकता पर अच्छा प्रकाश पड़ता है। इस प्रकार के कुछ प्रसंग दिए जाते है—

कविवर ज़ौक़ का नाम उर्दू के कवियों में बड़े आदर के साथ लिया जाता है। ये वड़े ही प्रत्युत्पन्नमति एवं प्रातिभ कवि थे। एक समय एक फ़क़ीर यह सदा (आवाज़) लगाता हुआ सड़क पर जा रहा था—

"कुछ राहे खुदा दे जा, जा तेरा भला होगा!"

बादशाह अकवर शाह को यह सदा पसंद आ गई। उन्होंने ज़ौक़ को आज्ञा दी कि इस सदा पर वारह दोहरे लगा दो। ज़ौक़ ने तुरंत वारह दोहरे लगा

१—देखिए 'वागे निशात'।

दिए। कहा जाता है, वे दोहरे इतने अच्छे बन पड़े कि बहुत दिनों तक दिल्ली की गली-कूचों में गाए जाते रहे। इसलिए—

दुनिया है सरा इसमें तू बैठा मुसाफिर है।
जो जानता है यां से जाना तुझे आखिर है॥
कुछ राहे खुदा दे जा, जा तेरा भला होगा।
जो रब ने दिया तुझको सो नाम पे रब के दे।
गर यां न दिया तूने वां देवेगा क्या बंदे॥
कुछ राहे खुदा दे जा, जा तेरा भला होगा[1]।

कविवर ज़ौक़ के विषय में कुछ अन्य प्रसंग देखिए—

एक दिन एक बुड्ढा चूरन की पुड़िया बेचता फिरता था, और आवाज़ देता था— 'ले, तेरे मन-चले का सौदा है—खट्टा और मीठा।'

बादशाह अकबर शाह के कान में यह आवाज़ पड़ी। उन्होंने कुछ पद्य लिख कर ज़ौक़ के पास भेज दिए। ज़ौक़ ने उसी 'तरह' पर दस दोहरे लगा दिए। उनमें से दो बंद ये हैं—

ले तेरे मन-चले का सौदा है—खट्टा और मीठा।
कुंजड़े की-सी हाट है दुनिया जिसमें है सारी इकट्ठी।
मीठी चाहे मीठी ले ले, खट्टी चाहे खट्टी।
ले तेरे मन चले का सौदा है—खट्टा और मीठा॥१॥
रूप रंग पर भूल न दिल में देख अक्ल के बैरी।
ऊपर मीठी, नीचे खट्टी अंबुआ की-सी कैरी।
ले तेरे मन-चले का सौदा है—खट्टा और मीठा[2]॥२॥

ज़ौक़ बड़े प्रत्युत्पन्न मति भी थे। वह आशु कविता भी कर लेते थे। एक बार ज़ौक़ अकबर शाह के दरबार में बैठे थे। एक साहब किसी बेगम का कोई पैगाम लेकर आए, और बादशाह के कान में कहकर चले गए। हकीम अहसानुल्ला साहब ने पूछा— 'इतनी जल्दी?' यह सुनकर उन्होंने कहा—

"अपनी खुशी न आए न अपनी खुशी चले।"

बादशाह अकबर शाह ने ज़ौक़ की ओर देखा और कहा—'उस्ताद, देखना, क्या साफ़ मिसरा है।" ज़ौक़ ने तत्काल निवेदन किया—

१—'सुभाषित और विनोद' (गुरुनारायण शुक्ल)
२— " " " "

"लाई हयात आये क़ज़ा ले चली चले।"

'तरह' शायरी का प्रचलन मुख्यतः शांतिकालीन वातावरण में ही रहा है, किंतु कुछ ऐसे अवसर भी आए, जब कवियों और शायरों ने प्रतिकूल परिस्तिथियों में भी 'तरह' शायरी की। 'तरह' शायरी की यह विशेषता रही है कि इसमें एक ही 'तरह' पर विभिन्न कवि और शायर अपने-अपने भाव पृथक्-पृथक् रूप में प्रस्तुत करते हैं। भारतीय स्वतंत्रता-संग्राम में भाग लेनेवाले भारतीय जेलों में बंद कर दिए जाते थे। इन स्वातंत्र्य प्रेमियों में जो शिक्षित होते और जिन्हें कविता से प्रेम होता, वे जेल के भीतर भी कवि-सम्मेलन और मुशायरे आयोजित करते और उसके माध्यम से अपने भावों को व्यक्त करते थे। इन मुशायरों में विशेषता यह होती थी कि इनमें अधिकांशतः राष्ट्रीय भावों से भरी हुई 'तरहें' दी जाती थी अथवा उन 'तरहों' में किसी सामाजिक सुधार का संकेत ही रहता था। इसका परिणाम यह होता था कि लोग इस प्रकार की 'तरहों' पर अपने शेर लिखते और मुशायरे में सुनाकर लोगों के दिलों में राष्ट्रीयता के भाव जाग्रत् करते थे। यहाँ पर आगरा जेल में आयोजित इसी प्रकार के मुशायरों की कुछ तरहें एवं उनके शेर देखिए—

तरह—"है यह वो दर्द जो शर्मिंदए दर्मा न हुआ"
शेर— किसको सौदा तेरा ऐ ज़ुल्फ़ परेशाँ न हुआ।
कौन पाबंदे बलाये हिजराँ न हुआ॥
बस कि सीने में छुपा ली थी तुम्हारी तस्वीर।
हमसे वहशत में कभी चाक गरेवाँ न हुआ॥

तू वो क़तरा था कि पोशीदा था दरिया जिसमें—
तेरी नादानी कि बरपा कभी तूफाँ न हुआ॥
मैं वो ज़र्रा हूं कि पोशीदा है सहरा जिसमें।
क़ैद होकर भी असीरे, ग़में ज़िंदा न हुआ॥

—अब्दुल मजीद ख्वाजा 'शैदा'

क़ौम की राह में सर देके जो क़ुर्बां न हुआ।
मुज़ग़ये गोश्त हुआ वह तो फिर इंसाँ न हुआ॥
ज़िंदगी मौत से बदतर है हमारे हक़ में।
मुल्क का अपने ग़र इक़बाल दुरख़शाँ न हुआ॥

१—'सुभाषित और विनोद' (गुरुनारायण सुकुल)

दावए हुब्बे वतन तेरे लिये है बेसूद।
तार खद्दर का अगर मिस्ले रगेजाँ न हुआ॥
मुल्क के इश्क का पर लुत्फ बयाँ क्या कीजे।
है यह वो दर्द जो शर्मिंदये दर्मां न हुआ॥[1]

—प० कृष्णकान्त मालवीय

शायर ने प्रस्तुत शेरों मे अपने राष्ट्रीय भावों को व्यक्त किया है। जो व्यक्ति अपनी जाति और देश पर अपने को न्यौछावर न कर दे, वह मनुष्य नहीं है। शायर का कहना तो यहाँ तक है कि उस व्यक्ति का जीवन तो मृत्यु से भी हेय है, जो अपने देश की सहायता नहीं करता और न उसका पक्ष ही लेता है।

शायर खादी प्रचार पर बल देता हुआ कहता है—'ऐ इसान! अगर तू खद्दर के तारों का इस्तेमाल नही करता अर्थात् खद्दर नही पहनता, तो तू जो देश प्रेम का सकल्प किए हुए है, व्यर्थ है। अन्तिम पक्ति मे शायर ने 'मिसरे तरह' पर 'गिरह' लगाई है।

तरह—"दिया है दर्द गर तूने तो उसको लादवा कर दे।
शेर—निगाहे शौक में वह बात हुस्ने खुदनुमा कर दे।
जो हर नजर को आलम में तेरे नाजुक अदा कर दे॥

—'फिराक'

जमाना आ गया हिंदोस्ता पर जाँ फिदा कर दे,
मिटा दे अपनी हस्ती को वतन का हक अदा कर दे।
हमारे खून से तर दामने जुर्मे वफा कर दे,
गुनहगारान उल्फत का सितमगर फैसला कर दे।

—सैयद मोहम्मद 'टोंकी'

हमारे नख्ले आजादी को फलता-फूलता कर दे,
इलाही हिंद में पैदा बहारे जाँ फिजाँ कर दे।
'हफीजे' गमजदा गर जान जाती है चली जाये,
वतन आजाद हो जाये कही ऐसा खुदा कर दे।[2]

—मौ० हफ़ीजुर्रहमान

१—देखिए 'तरानए कफ़स' (पहला मुशायरा, २० जनवरी, १९२२ ई०) सग्रहकर्ता—कृष्णकान्त मालवीय। 'तरह का मिस्रा' कविवर 'हसरत' के शेर का है।

२—देखिए 'तरानए कफस' (दूसरा मुशायरा, २७ जनवरी, १९२२ ई०) प्रस्तुत 'मिस्रे तरह' शायर 'हसरत' के शेर का है।

प्रस्तुत शेरों में शायर ईश्वर से प्रार्थना करता है—"हे ईश्वर ! तू हमारे स्वतंत्रता के वृक्ष को हरा-भरा कर दे ! ऐ ख़ुदा ! हिंदोस्तान में वह बहार ला दे, जो हर व्यक्ति को पसंद आ जाय।" यही नहीं, शायर ईश्वर से यहाँ तक प्रार्थना करता है—"ऐ ख़ुदा, चाहे मेरी जान भले ही चली जाय, किंतु मेरा देश आजाद हो जाय।" आजादी की तमन्ना कितनी प्यारी होती है; उसके सामने अपनी जान का भी मोह नहीं रहता।

तरह—"हुए वो मेहरबाँ कुछ और भी ना मेहरबाँ होकर।"
शेर—न कुछ बता सका बीमार अश्क आँखों में भर आए,
किसी ने हाले दर्दे-दिल जो पूछा मेहरबाँ होकर।
न पछताओ सुबुक करके हमें तुम बज़्मे दुश्मन में,
कही क्या बात आख़िर तुमने हमको सरगिरा होकर।
तेरा जल्वा है तेरा हुस्न है जिसको यह आता है,
अयाँ होना निहाँ होकर, निहाँ होना अयाँ होकर।
'फ़िराक़' एक दूसरी दुनियाँ की कुछ-कुछ याद आती है,
नहीं मालूम आये है जहाँ में हम कहाँ होकर॥[1]

—'फ़िराक'

तरह—"बातिन में हैं आज़ाद, बजाहिर हैं नज़रबंद।"
शेर—अल्लाह रे ज़ालिम, तेरे क़ानून की बन्दिश,
लबबंद, ज़ुबाँ बंद, दहन बंद, नज़र बंद।[2]

—ख्वाजा साहब

यह शेर बड़े मार्के का है। शायर जालिम (अँगरेज शासक) को सम्बोधित करते हुए कहता है—"ऐ जालिम, तेरे क़ानूनों ने मेरी जबान पर ताले लगा दिए है, ओठ सिल दिए और आँखों पर भी परदा डाल दिया गया है, ताकि मैं तेरे काले कारनामों को न देख सकूँ।" प्रस्तुत शेर में शायर ने अँगरेजी शासन के अत्याचारों का पर्दा फ़ाश किया है।

तरह—"मिन्नते हैं शिकस्ता पाई की।"
शेर—बंध के तार आँसुओं का टूट गया, दिल ने आँखों से बेवफ़ाई की,
नाम लेकर के तेरा मर जाना, इन्तिहा है ग़मे जुदाई की।

१—देखिए 'तरानए क़फ़स' तीसरा मुशायरा, ३ फ़रवरी, १९२२ ई०
२—वही " " "

नजा में एक शिकन जमी पर थी दास्तां तेरी बेवफाई की
कोई अफसाना छेड़ तनहाई रात कटती नहीं जुदाई की ॥
—'फ़िराक़'

अन्तिम शेर में शायर तनहाई का मानवीकरण करते हुए कहता है— ऐ तनहाई (एकान्त)! यह जुदाई की रात किसी प्रकार काट नहीं कटती अब कोई संगीत छेड़ दे जिससे यह रात आसानी से कट जाय। उर्दू शायरी की शब्द योजना और उनका अभिव्यक्तीकरण कितना मार्मिक होता है यह उपर्युक्त शेर में देखा जा सकता है।

दिल दिया और जान सदके की
सच कहा हमने क्या वफाई की।
तुमसे बढ़कर ख्याल है तेरा
किसने हमसे न बेवफाई की ॥
—प० कृष्णकान्त मालवीय

तरह— दिल ही मरना तो जीने का मजा क्या।
शेर—वो क्या जानें कि है उल्फत बला क्या।
मुरव्वत क्या मुहब्बत क्या वफा क्या ?
न हो पहलू में जब दिल ही तो हम दम—
नसीमें सुबह गाही का मजा क्या ॥[1]
—मौ० आरिफ हसवी

तरह— जो गुल खिला चमन में वही खार हो गया।
शेर—हां ऐ निगाहे नाज तुझे कुछ खबर भी है।
किस दिन के पार तीर का सूफार हो गया।
रिन्दे हजार पेशा की हालत अजीब है।
सूफी बना कभी कभी मयख्वार हो गया।
कहते हैं कुछ सबूत भी दो हाले जार का।
गोया कि मुद्दई का यह इजहार हो गया।

१—देखिए तरानए बज्म' चौथा मुशायरा। प्रस्तुत मिसरे तरह मीर के शेर का है—
उनके कूचे में जा नहीं सकता किनते है शिकस्ता पाई की।
२—देखिए तरानए बज्म पांचवां मुशायरा।

कल तक तो शेख़ हश्र समझते थे मुझको लोग।
एक जाम आज पी के गुनहगार हो गया॥
दिल की मेरे बहारो ख़िज़ाँ उनके हाथ है।
वीराना हो गया कभी गुलज़ार हो गया॥[1]

—मो० आरिफ हसवी

तरह—"कौन कहता है कि मैं तेरा तमन्नाई न था।"
शेर—ग़ौर से गर देखते सूरत नज़र आती तुम्हें।
बंदा परवर मैं न था यह हुस्न का आईना था॥

—मो० आरिफ़

इसलिये मुझ पर महज़ लुत्फ़े मसीहाई न था।
क्योंकि हिंदू या मुसलमाँ था मैं ईसाई न था॥
दर्द की लज्ज़त न थी या शौक़े रुसवाई न था।
कौन कहता है कि मैं तेरा तमन्नाई न था॥[2]

—श्रीसुखलालजी मुसाफ़िर

तरह—"किसी को जब किसी के सामने आज़ाद करते हैं।"
शेर—तग़ाफुल हद से ज्यादा बढ़ गया लेकिन वफ़ा देखो।
हम अपने भूलनेवालों को अब भी याद करते हैं॥

—अज़ीज़ अहमद ज़ैदी

तुम्हारे ज़ुल्म की तुमसे ही हम फ़रियाद करते हैं।
मुहब्बत का नया पहलू ये इक ईजाद करते हैं॥
हमें बरबाद करने के निकाले सैकड़ों पहलू।
मगर हम हैं कि हर ज़ुल्मोंसितम पर स्वाद करते हैं।
न जीने देते हैं हमको न हस्ती ही मिटाते हैं।
हमारे हाल पर ये रहम बस जल्लाद करते हैं॥[3]

—डॉ० लक्ष्मीदत्त 'मुसाफ़िर'

उपर्युक्त शेरों में शायर ने सामाजिक वैषम्य की ओर संकेत किया है। सवर्ण हिंदू अछूतों के साथ कैसा व्यवहार करते थे, शायर ने इस ओर ध्यान आकर्षित

१—देखिए 'तरानए क़फ़स', छठा मुशायरा।
२— ,, ,, ,, मुशायरा ८वाँ।
३— ,, ,, ,, ११—यह जेल का अंतिम मुशायरा था।

किया है। ऐसा शेर लिखकर शायरों ने सामाजिक सुधार की ओर भी ध्यान दिया है।

तरह—"हाले दिल कहते हैं अपना फिर उसी कातिल से हम।"
शेर—क्या कहें पहुँचे हैं किस दिक्कत से किस मुश्किल से हम।
अब न जाएँगे निकल कर कूचए कातिल से हम ।।'[1]

उर्दू कवियों ने प्रेम और अहिंसा के रहस्य को खूब समझा था। वह हमेशा प्रिया को कातिल और कातिल को प्रिया कहकर पुकारते रहे हैं। उपर्युक्त शेर से यह भाव अधिक स्पष्ट हो जाता है। यह शेर प्रेम रस से किस कदर सराबोर है। कातिल (प्रिया) का प्रेम, उसकी आकांक्षा और लालसा किसने निराले अंदाज से प्रकट की गई है। कूचए कातिल एक ऐसा वाक्यांश है, जिसमें कई भाव छिपे हुए हैं। इस प्रकार के शेर उत्कृष्ट कविता के द्योतक हैं।

उपर्युक्त उदाहरणों में उर्दू के 'तरह काव्य' का स्वरूप भली भाँति स्पष्ट हो जाता है। उर्दू में 'मिसरये तरह' का देना एक प्रकार से भाव-संकेत करना ही होता है। साधारणतया उसका उपयोग कुछ भी नहीं होता। केवल काफ़िया और रदीफ ही आवश्यक प्रतीत होते हैं, यही वह आधार-शिला है, जिस पर 'तरह-शायरी' की रचना होती है।

इस 'काफ़िए पैमाई' में उर्दू शायरों ने काव्य के बाह्यांग पर अधिक ध्यान दिया है, किन्तु वे काव्य की आत्मा को निकट से न देख सके। वह केवल मुशायरा के 'वाह-वाह' के ही हामी रहे तथा चमत्कारोत्पादन उनका प्रधान लक्ष्य हो गया था। कुछ कवि, जिनकी संख्या अत्यल्प ही है, ऐसे भी थे, जिन्होंने तरह-रूप में भी उत्कृष्ट रचनाएँ प्रस्तुत की हैं। दो शेर देखिए—

जान दे दे जुल्म सहते-सहते लब पर उफ न ला।
अब सहारा छोड़ दे इस नारसा फरियाद का ।।
कुछ इसी में है मजा और कुछ इसी से उम्मीद।
जुल्म बढ़ता ही रहे दिन-दिन सितम ईजाद का ।।'[2]

—कृष्णकांत मालवीय

आशिकाना रंग में रँगे हुए होने पर भी उपर्युक्त दोनों शेर हमारे राजनीतिक संग्राम के परिचायक हैं। शेर में किसी प्रकार का भी नामोल्लेख नहीं किया गया है, लेकिन फिर भी कवि ने बड़ी चतुरता से (पर्दे में) सब कुछ कह डाला है।

१—देखिए 'तरानए कृष्ण' १०वाँ मुशायरा।
२— " " " " "

'तरह-काव्य' का प्रचलन केवल सत्कवियों की प्रतिभा को प्रकाश में लाने के लिये हुआ था, किंतु आगे चलकर 'तरह-शायरी' का दुरुपयोग किया जाने लगा, जिससे 'तरह शायरी' के प्रति जनता ने हेय दृष्टि अपना ली।

शायरों ने अपनी योग्यता-प्रदर्शन के लिये शेरों के एक वृहत् परिमाण में ग़ज़लों की रचना प्रारंभ कर दी। यहाँ तक कि डेढ़ सौ शेरों की ग़ज़लें भी रची गईं। 'क़ाफ़िये-पैमाई' का इतना प्रावल्य हुआ कि उर्दू-शब्द-कोष भी क़ाफ़िये के आधार पर बनने लगे। इन शायरों में अधिकांश ने हृदय-पक्ष की पूर्णतया अवहेलना की और बुद्धि-प्रयास से ही 'तरह बाज़ी' में लगे रहे। इसका परिणाम यह हुआ कि भावोद्रेक में कमी आ गई और मौलिकता का भी ह्रास होने लगा। शायरों ने पूर्व-भावों का ही पिष्ट-पेषण किया और नवीन उद्‌भावनाओं की ओर ध्यान न दिया। इस संबंध में सर चार्ल्स लायल लिखते हैं—"उर्दू-कविता फ़ारसी-कविता का पूर्णतया अनुकरण करती है और वही विषय बार-बार दुहराती है, जिनको स्वयं फ़ारसी उस्तादों ने बारंबार बाँधा है। विषय और शब्दावली दोनों आरंभ से आज तक जैसे थे, वैसे हैं। उनमें कोई मौलिकता और अनुभव की वास्तविकता नही पाई जाती और इसी कमी के कारण उन्हें एक विस्तृत वाग्मिता की नींव रखनी पड़ी, जब कि कोई बात किसी कवि को कहनी हो और उसको उससे पहले सैकड़ों नही, हज़ारों कह गए हों, तो निश्चित रूप से उस बात को कहने का अपने लिये एक विशेष ढंग खोजना पड़ेगा। अतएव उर्दू कविता की विशेषता कवित्व-पूर्ण भावना न रहकर एक वाग्मिता-मात्र रह गई। अतिशयोक्तियों, कौशल-पूर्ण रचना, विरोधालंकार, अनुप्रास आदि के प्रयोग कविता में अनूठापन उत्पन्न करने के साधन हुए।"[1]

चार्ल्स लायल का उपर्युक्त कथन उर्दू के 'तरह-काव्य' पर भी अधिकांशतः चरितार्थ होता है। मुशायरों से संबंधित होने के कारण 'तरह-काव्य' मे भाषा के सारल्य और उसके प्रवाह पर विशेष ध्यान रखा गया, छंदों में अधिकतर ग़ज़ल का प्रयोग हुआ और प्रेम एवं शृंगार के साथ राष्ट्रीय तथा प्रकृति-संबंधी भावों का भी उपोद्‌घात हुआ।

उर्दू-काव्य अपने चमत्कार-चातुर्य एवं कल्पना की उड़ान के लिये अधिक प्रसिद्ध रहा है, अतएव 'तरह-काव्य' में भी इसका पाया जाना कोई आश्चर्य की बात नही। हिंदी के समस्यापूर्ति छंद की अंतिम पंक्ति जिस प्रकार समस्यापूर्ति होने का परिचय दूर से ही देती है, वैसा उर्दू-तरह में देखने को नहीं मिलता। उर्दू की इस 'तरह-शायरी' का एक सुंदर परिणाम यह हुआ कि उर्दू-काव्य का जन-साधारण में प्रचलन होने लगा। जनता की रुचि उर्दू-काव्य की ओर आकर्षित होने लगी, और मुशायरों के आयोजन द्वारा उनकी काव्य-प्रतिभा की परीक्षा लेकर

१—उर्दू-साहित्य का इतिहास—सक्सेना, (पृष्ठ ४३)

उनका उत्साह बढ़ाया जाने लगा। कवियों की कवित्व शक्ति का निरूपण तुलनात्मक दृष्टिकोण से किया गया जिससे प्रतिभा-सम्पन्न कवि प्रकाश में आ गए।

इस प्रकार उर्दू-तरह द्वारा जहाँ एक ओर कवियों के टिड्डी-दल का निर्माण हुआ था भाव-गाम्भीर्य में कमी आ गई थी तथा स्वच्छन्दता का मार्ग अवरुद्ध हो गया था वहाँ दूसरी ओर यह लाभ भी हुआ कि उर्दू-काव्य-साहित्य में वृद्धि हुई भाषा की विविध रचना दृष्टिगोचर होने लगी जिसका कि उर्दू-काव्य में सर्वथा अभाव था तरहों के प्रतिभा की परीक्षा भी होने लगी जिससे प्रतिभा-सम्पन्न कवियों का उत्साह बढ़ा और उन्होंने उर्दू-काव्य साहित्य को अपनी अमूल्य काव्य निधियों से समृद्ध किया। इस तरह शायरी का ही यह फल था कि स्थान स्थान पे मुशायरों का आयोजन होने लगा जिससे उर्दू-काव्य की चर्चा घर घर होने लगी और अनेक पत्र-पत्रिकाएँ प्रकाशित होने लगीं। इस प्रकार हम देखते हैं कि इस तरह शायरी की अवतारणा उर्दू-काव्य-साहित्य के लिए एक वरदान सिद्ध हुई।

४

अध्याय

हिंदी-काव्य में समस्यापूर्ति

प्राय: देखा गया है कि किसी भी भाषा के प्रारंभिक काल में ही साहित्यिक रचनाएँ नहीं होने लगती। साहित्यिक रचनाओं के लिये कुछ समय की अपेक्षा रहती है। साहित्यिक प्रौढ़ता शनैः-शनैः आती है। जब तक भाषा की गति-विधि निश्चित नहीं हो जाती, उसमें किसी स्थायी कोटि के साहित्य-रचना नहीं हो सकती। हिंदी-साहित्य के आदिकाल पर भी यही तथ्य यथेष्ट रूप से चरितार्थ होते हैं। तत्कालीन हिंदी-प्रदेशों की राजनीतिक, धार्मिक एवं सामाजिक दशा अच्छी नही थी। सन् ६४७ ई० में उत्तर भारत के महान् शासक सम्राट् हर्षवर्धन की मृत्यु हो गई। उसकी मृत्यु से देश में किसी का एकाधिपत्य न रह गया। राज-सत्ता अनियंत्रित हो गई और अनेक छोटे-छोटे राजवंश—तोमर, राठौर, चालुक्य, चंदेल एवं चौहान आदि—आपसी युद्ध में अपनी शक्ति खोने लगे। धीरे-धीरे उत्तर-पश्चिम सीमा से मुसलमानों के आक्रमण होने प्रारंभ हो गए। फलतः समस्त उत्तरी भू-भाग (दिल्ली, कन्नौज, अजमेर आदि) मुसलमानो के अधिकार में चला गया। धार्मिक स्थिति डाँवाँडोल हो गई। बौद्ध एवं हिंदू-धर्म के पारस्परिक संघर्ष के साथ-साथ शैव, शाक्य एवं वैष्णव-संप्रदायों में भी होड़ लगी हुई थी।

इस प्रकार की राजनीतिक और धार्मिक विश्रृंखलता के समय में संगठित सामाजिक व्यवस्था की आशा नहीं की जा सकती। मुसलमानों से पदाक्रांत होने के बाद हिंदू-राजपूत शासक शांत होकर न बैठे रहे, उनमें युद्धोन्माद का आविर्भाव हुआ, और इसी कारण हिंदी के आदि कालीन साहित्य में अधिकांशतः महत्त्वपूर्ण वीर-गाथाएँ ही मिलती है, जिनमें केवल रणभेरी का निनाद ही सुन पड़ता है।

ऐसी स्थिति में उन राजपूत नरेशों के पास भला साहित्यिक मनोरंजन करने का अवकाश कहाँ था? वे वस्तुतः अपनी राजनीतिक समस्याओं के सुलझाने मे लगे हुए थे। ये समस्याएँ उनके आश्रित कवियों के समक्ष भी थी, क्योंकि अधिकांश कवि ऐसे थे, जो अपने स्वामी के साथ युद्ध में भी जाया करते थे और वहाँ भी अपनी वीरोल्लास-भरी वाणी के उद्घोष से निरुत्साहित सैनिकों के हृदय मे

उत्साह का संचार करते थे। उनके समक्ष यूनान के 'सोलन' का उदाहरण उपस्थित था जिसने मृत सैनिकों में भी जीवन रस घोल दिया था।

परन्तु इन राजपूत नरेशों में कुछ ऐसे भी थे जो देश की इस युद्धकालीन स्थिति में भी अपने आश्रित कवियों के साथ साहित्यिक मनोरंजन किया करते थे। ऐसे ही कृती नरेशों में दिल्ली तथा अजमेर के चौहान राजा पृथ्वीराज थे, जिनके दरबारी कवि 'पृथ्वीराज रासो' के प्रणेता चंद बरदायी थे। दूसरी ओर कन्नौज में महाराज जयचंद के दरबार में भी इसी साहित्यिक परंपरा का पालन हो रहा था।

एक समय का उल्लेख है महाराज पृथ्वीराज कन्नौज जाने के लिये सन्नद्ध थे परन्तु विपक्षी के प्रबल होने के कारण कन्नौज से सकुशल लौट आने में आशंका थी अतः वह अपनी पटरानी इच्छिनी से विदा लेने उसके महल में गए। रानी ने वसंत ऋतु का आगमन और उसमें अपना विरह निवेदन कर राजा से न जाने के लिये कहा। क्रमशः राजा प्रत्येक रानी के पास गया और सबने यही उत्तर दिया। पृथ्वीराज के समक्ष अब एक विकट समस्या आ गई। इस समस्या को चंद के सामने रखते हुए पृथ्वीराज ने पूछा—'कविराज! वसंत पुनः आ गया। मुझे वह ऋतु बताओ जिसमें स्त्री को अपना प्रियतम अच्छा नहीं लगता।'—

> पटरिति बारह मास गय फिरि आयो फु बसंत,
> सो रिति, चंद बताउ मुहि तिया न भावे कंत।"

चंद ने ऋतु शब्द पर श्लेष का आरोप करके उत्तर-रूप में उसकी पूर्ति इस प्रकार की—

> 'जौ नलिनी नीरह तजै सेस तजै सुरतंत,
> जौ सुबास मधुकर तजै तौ तिय तजै सुकंत।"

पृथ्वीराज यह उक्ति सुनकर बहुत प्रसन्न हुए।

इस उद्धरण में यद्यपि समस्यापूर्ति के वास्तविक रूप के दर्शन नहीं होते और न इसे समस्यापूर्ति माना ही जा सकता है तथापि कुछ विद्वानों ने इस 'प्रकार' को 'प्रश्न-समस्या' के अंतर्गत रखा है।[1] इसके आधार पर यह कहा जा सकता है कि प्रश्नोत्तर रूप में समस्यापूर्ति का अंकुर अवश्य ही अंकुरित हो चुका था। पिछले अध्याय में स्पष्ट किया गया है कि समस्यापूर्ति एक मुक्तक छंद रचना है जिसका संबंध अधिकतर राज-दरबारों, कवि-गोष्ठियों, कवि समाजों एवं कवि-सम्मेलनों से रहा है अतएव इसका एक शृंखलाबद्ध इतिहास मिलना यदि असंभव नहीं, तो दुष्कर अवश्य है। द्वितीयतः प्रस्तुत विषय हिंदी-साहित्य के इतिहासकारों की दृष्टि से भी ओझल रहा है। किसी ने भी इस पर अपना विवेचन देने की

1—देखिए काव्य कल्पलता वृत्ति—समस्या प्रकरण।

आवश्यकता नहीं समझी। हाँ, यदि किसी ने अधिक उदारता दिखलाई, तो दो-एक कवियों के विषय में चलते-चलते यह भी लिख दिया कि यह समस्यापूर्ति भी किया करते थे। उनके लिये इतना ही अलम् था। यह कथन कुछ अंशों में सत्य माना जा सकता है कि 'समस्यापूर्ति' साहित्य का कोई उत्कृष्टतम साधन या स्रोत नहीं, तथापि इतना तो कहना ही पड़ेगा कि 'समस्यापूर्ति' साहित्य की ही एक लघु काव्य-धारा थी, जो मरुभूमि की मंदाकिनी की भाँति कभी प्रबल रूप धारण कर रसज्ञों को रस-सिक्त करती, उनके मानस में मौक्तिक-राशि भर देती और कभी स्वयं निज अस्तित्व समेटकर बालुकामय प्रदेश में पहुँच अंतर्धान हो जाती।

समस्यापूर्ति के लिये एक शांतिमय एवं स्वस्थ वातावरण की सदैव अपेक्षा रहती है, क्योकि मनोरंजन से सम्बंधित कोई कवि-गोष्ठी अथवा कवि-सम्मेलन अशांतिमय वातावरण में आयोजित नही किया जा सकता। मनोरंजन का सम्बंध केवल हमारे मन से ही नही, हृदय से भी है, अतएव संदिग्ध-जीवन के युग में किसी प्रकार के भी मनोरंजन का आयोजन वांछनीय नही होता। हमारा वीर-गाथा-काल लगभग इसी प्रकार का अशांतिमय, संदिग्ध जीवन का युग था। राजपूत राजाओं के पारस्परिक युद्ध एवं शत्रुओं के आक्रमणों का सदैव भय लगा रहता था। ऐसे युग में केवल वीर-काव्यों का ही प्राधान्य रहा, वह भी संकीर्णता के साथ। बहुत समय तक हिंदी-काव्य-धारा मंद गति से ही प्रवहमान होती रही, परंतु १५वी शती से इस काव्य-धारा में तीव्रता आई और यह दृढ़ता के साथ आगे बढ़ी।

जिस प्रकार १६वीं-१७वीं शतियाँ भारतीय इतिहास में शांति-युग का संदेश देती हैं, उनमें विलास एवं वैभव के वातावरण की अपूर्व सृष्टि होती है, अनेक प्रकार की ललित कलाओं का विकास अपनी चरम सीमा पर पहुँच जाता है, ठीक उसी प्रकार हिंदी-काव्य की समग्र उन्नति भी इसी युग की देन है। यही वह युग है, जिसमे सूर ने अपने 'सागर' की सृष्टि की थी, तुलसी ने 'मानस' में मोती भरे थे एवं मीरा ने अपनी 'मंदाकिनी' बहाई थी। इसीलिये विद्वानों ने इस युग को हिंदी-साहित्य का 'स्वर्ण-युग' कहा है।

इस युग के प्रमुख शासक अकबर, जहाँगीर तथा शाहजहाँ थे, जिनको सभी भारतीय कलाओं से अभिरुचि थी। इनके आश्रय में वास्तुकला, चित्रकला, मूर्तिकला, संगीत-कला एवं काव्य-साहित्य—सभी का चूड़ांत विकास हुआ। अनेक कवि एवं कलाकार, जो राजपूत राजाओं के यशोगीत गा रहे थे, अब मुग़ल-सम्राटों के दरबार मे आकर वाह-वाह करने लगे। इस सम्बंध में पंडित रामचंद्र शुक्ल ने लिखा है—"जो भारतीय कलावंत, छोटे-छोटे राजाओं के यहाँ किसी प्रकार निर्वाह करते हुए संगीत को सहारा दिए हुए थे, वे अब शाही दरबार में पहुँचकर वाह-वाह की ध्वनि के बीच अपना करतब दिखाने लगे......कवियो के सम्मान के साथ-साथ कविता का

सम्मान भी यहाँ तक बढ़ा कि बादशाह तक ब्रजभाषा की कविता करने लगे।[१]

सम्राट अकबर इस काल का सर्वश्रेष्ठ शासक था। वह बड़ा कुशाग्र-बुद्धि कला प्रेमी एवं काव्यानुरागी था। वह अपने पूर्वजों की साहित्यिक अभिरुचि से परिचित था। उस समय की जन भाषा हिंदी का अकबर पर भी बहुत प्रभाव पड़ा। फारसी दरबार की राजभाषा थी किंतु दैनिक कार्य-व्यवहार में जन भाषा हिंदी का ही प्रयोग होता था।[२] अकबर केवल कवियों को राजाश्रय ही न देता था वरन जैसा कि ऊपर निर्दिष्ट किया जा चुका है वह स्वयं भी कविता करता था। 'अकबरनामा' में इसका उल्लेख मिलता है।[३] अकबर द्वारा रचित कविताएँ 'अकबर साह' और 'साह अकबर' के नाम से हस्त लिखित तथा प्रकाशित संग्रह-ग्रंथों में उपलब्ध होती हैं।[४] इस काव्य प्रेमी सम्राट के शासन काल में समस्यापूर्ति का समुचित विकास हुआ। इस सम्बन्ध में बाबू जगन्नाथदास 'रत्नाकर' ने कानपुर के अखिल भारतीय कवि-सम्मेलन में सभापति पद से भाषण देते हुए कहा था— इस महान सम्मेलन का जिसमें आप लोगों ने दूर-दूर से पधारने का कष्ट उठाया है, उद्देश्य यह है और हमारी समझ में होना भी यही चाहिए कि कविता की उन्नति एक सुशृंखल रूप में की जाय और इसमें जो मनमानेपन की वृद्धि हो रही है उसे रोककर वह पुष्ट तथा मनोरंजिनी बनाई जाय। इसी उद्देश्य-साधन के निमित्त भारतवर्ष में पहले भी कवियों का सम्मेलन महानुभाव राजा बादशाह

१—देखिए 'हिंदी-साहित्य का इतिहास'—रामचंद्र शुक्ल (पृष्ठ २४०)

२—Akbar Composed distichs in Brajbhaka and if any Indo Aryan Language could be Labled as a Badshahi Boli in North India it was certainly Brajbhakha Urdu was not yet in existence except perhaps orally and even then it was quite Indian in character

Indo-Aryan and Hindi (P 180—81)
Dr Suniti Kumar Chatterji

३—अकबरनामा—अबुल फजल (भाग १ पृष्ठ ५२०)

४—'अकबरी दरबार के हिंदी-कवि' (पृष्ठ ३०) डा० सरयूप्रसाद अग्रवाल

जाको जस है जगत में जगत सराहै जाहि।
ताको जीवन सफल है कहत अकब्बर साहि॥

इत्यादि करते थे। मुग़ल-सम्राट् अकबर के समय में एक बृहत् कवि-सम्मेलन दिल्ली में हुआ था। उसका विशेष वृत्तांत तो ज्ञात नहीं, पर इतना सुना गया है कि उसमें एक समस्या 'करौ मिलि आस अकव्वर की' पूर्ति के निमित्त दी गई थी। इस समस्या पर अनेक कवियों ने अपनी-अपनी कल्पना के अनुसार पूर्तियाँ पढ़ी थी। उन कवियों में एक कवि 'श्रीपति'जी भी थे। उन्होंने बड़ी निर्भीकता तथा निःस्पृहता से उसकी पूर्ति करके अपनी दृढ़ ईश्वराश्रयता का परिचय दिया था—

अवके सुलताँ (फुनियान) समान हैं, बाँधत पाग अटव्वर की,
तजि एक्क कौ दूजै भजै जो कोऊ, तव जीभ कटै उहिं लव्वर की।
शरनागत 'श्रीपति' श्रीपति की, नहिं त्रास जरा कोउ जव्वर की,
जिनके नहिं आस कछू हरि की, सु 'करौ मिलि आस अकव्वर की ॥'

उसके पश्चात् एक कवि-सम्मेलन आगरा में, सं० १७९४ वि० के पूर्व, हुआ। उसमें भी अनेक प्रदेशों के कविगण उपस्थित हुए, जिनमें सूरति मिश्र प्रधान थे। उनके 'सरस रस'-नामक ग्रंथ से उसका यह वृत्तांत विदित होता है—

कारन कहत जु ग्रंथ को, सो सुनिएं चित लाइ।
जिहिं विधि भेद नबीन ये, कहें सुमति उपजाइ ॥
फुटकर सुने कवित्त वहु, धुरपद कविन प्रबीन।
जिहिं विधि नाइक नाइका भेद कहे सु नवीन ॥
जो नाइक अरु नाइका कहै सुग्रंथनि माहिं।
हेरि रहे तहँ भेद नव, परे दृष्टि कहुँ नाहिं ॥

एक समय मधि आगरे कवि-समाज कौ जोग।
मिल्यो आइ सुख दाइ हिय, जिनकी कविता जोग ॥
तव सवहीं मिलि मंत्र यह, कियो कबिनि वहु जानि।
रचौ सु ग्रंथ नबीन इक, नए भेद-रस ठानि ॥
जिहिं बिधि कवि मिलिकै कही, जथा जोग लहि रीति।
उन ही 'में' सब संभवे, कहे भेद जुत प्रीति ॥

अपनी मति-परमान सों, कहे भेद विस्तारि।
लखौ सु यामैं न्यूनता, सो कवि लेहु सुधारि ॥
कवि अनेक मति में हुते, पै मुख कबि परबीन।
जाकी सम्मति सों भयो, पूरन ग्रंथ नवीन ॥

\+ \+ \+

सत्रह सं चौरानबे, संवत् सुभ बैसाख।
भयो ग्रंथ पूरन सु यह, ससि पुष छठि सित पाख॥

इन दोहों से विदित होता है कि विक्रम की १८वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में कविता की दशा कुछ अव्यवस्थित तथा पूर्व परिपाटी से विचलित हो गई थी। उसी को सुधारने के निमित्त उक्त सम्मेलन हुआ था, जिसके अनुरोध से सूरति मिश्र ने कई मुख्य मुख्य कवियों की सहायता से प्राचीन तथा नवीन भेद भेदांतरों को शृंखलाबद्ध करने के निमित्त 'सरस रस'-नामक ग्रंथ का निर्माण किया।

\+ \+ \+

कानपुर के लिये यह एक बड़े गौरव की बात है, जो साहित्य के इतिहास में स्वर्णाक्षरों में लिखी रहेगी कि साहित्य-सम्मेलन के साथ-साथ ब्रजभाषा तथा खड़ी बोली के मिश्रित कवि-सम्मेलन का नियमित रूप से होना यहीं से आरंभ हुआ, और फिर इस अखिल भारतीय कवि-सम्मेलन की नींव भी यहीं पड़ी, जो आशा है, प्रतिवर्ष स्थान-स्थान पर होता तथा कविता की उन्नति करता रहेगा। इससे कविता की उन्नति ही नहीं, प्रत्युत दूर दूर के कवि-कोविदों के पारस्परिक दर्शनों तथा काव्यामृतस्वादन का आनंद प्राप्त होना भी संभव है।'[1]

रत्नाकरजी के इस भाषण से यह स्पष्ट हो जाता है कि १६वीं और १७वीं शताब्दी के मध्य में हिंदी में समस्यापूर्ति का प्रचलन अधिकांश रूप से था। इसके साथ ही यह बात भी स्पष्ट हो जाती है कि विक्रम की १८वीं शताब्दी में जब हिंदी-कविता की दशा कुछ अव्यवस्थित हो गई थी, तब समस्यापूर्ति एवं कवि-सम्मेलनों के संयोजन द्वारा ही उसमें सुधार किया गया। इस प्रकार के कवि-सम्मेलन एवं गोष्ठियाँ केवल राजाश्रय में ही नहीं हुआ करती थीं, अपितु राजाओं के मंत्रियों, मुसाहिबों एवं अन्य प्रधान कर्मचारियों के घरों में भी हुआ करती थीं। जैसा ऊपर कहा जा चुका है कि अकबर कवियों को राजाश्रय देता था, साथ-ही-साथ उसके दरबार में बीरबल-जैसे विदग्ध वक्ता, अबुलफजल एवं फैजी-जैसे दार्शनिक विचारक तथा रहीम और गंग-जैसे उद्भट कवि सदैव उपस्थित रहते थे। इनमें बीरबल के विषय में उल्लेख मिलता है—"बचपन में बीरबल नौकरी की तलाश में दिल्ली पहुँचे। दूसरे दिन उन्होंने बादशाह अकबर से मुलाकात करनी चाही, क्योंकि वह जानते थे कि अकबर बड़े उदार हैं और मुझे अवश्य आश्रय देंगे। वह राजसभा में जाने लगे, परंतु संतरी ने उन्हें जाने नहीं दिया, और कहा—'अगर आप मुझको सौ मोहरें देंगे, तो अंदर जाने पाएँगे।' यह सुनकर वह स्तब्ध रह गए और बादशाह तक पहुँचने की दूसरी तरकीब सोचने लगे। इन्होंने एक कागज में कुछ

१—देखिए माधुरी, जनवरी १९२६ ई०।

लिखकर उस संतरी से कहा—'अच्छा, इसे बादशाह तक पहुँचा दो।' संतरी यह सब देख बहुत बिगड़ा और उसने दो धक्के देकर बीरबल को बाहर कर दिया।

"और बादशाहों की तरह अकबर भी इंसाफ़पसंद था। वह नित्य एक झरोखे में बैठ सबकी फरियादें सुनता और फ़ैसला करता था। बीरबल अकबर बादशाह से यही मिलना चाहते थे, अतः वह झरोखे के नीचे उपस्थित हो 'फ़रियाद-फ़रियाद' पुकारने लगे। जाने के पहले बीरबल ने अपना वेश एक साधु का-सा बना लिया था, ताकि बादशाह उनकी ओर आकर्षित हो जायँ। बीरबल को देखते ही अकबर समझ गए कि यह असली साधु नहीं है, इसलिये उनसे पूछा—'आप कौन हैं और यह वेष क्यों धारण किया है? आपकी क्या फ़रियाद है?' बीरबल मन में तो खुश थे, परंतु ऊपर से गंभीरता दिखाते हुए बोले—

पाया हीरा लाख का आया बेचन काज।
छीन लिया छक्कड़ लगा, निपट छली ने आज॥

"यह सुनते ही बादशाह ने इनसे पूछा—'वह कौन है, जिसने तुम्हारे साथ ऐसा बुरा बर्ताव किया है?' उत्तर में बीरबल ने संतरी का नाम बताकर कहा कि उसी ने मेरा एक अमूल्य रत्न छीन कर नष्ट कर दिया। सम्राट् ने तुरंत संतरी को बुलवाया और उसे कड़ी सजा दी। परंतु उसके पास रत्न कहाँ? बीरबल ने यह देखकर कहा—'जिसे मैं रत्न कहता हूँ, वह एक दोहा था, जो मुझे भगवती के प्रसाद से मिला था।' अकबर ने कहा—'भाई! उसका मिलना तो असंभव है। हाँ, उसके एवज में मूल्य-स्वरूप जो कहिए, दे दूँ।' बीरबल ने कहा—'हुजूर, उसका मूल्य तो आँका नहीं जा सकता। मुझको उसका कुछ अंश याद है। यदि शेष—चौथा चरण—आप अपने यहाँ के विद्वानों से तैयार करवा दें, तो मैं संतुष्ट हो जाऊँगा। उस दोहे के तीन पद यों हैं—

खड़े रहत जाग्रत् सदा, मम रक्षक अति शक्त।
यह कह सोवत चैन से..............................॥

"यह सुनकर अकबर ने कहा—'अच्छा, आप कल सभा में आइए। इस दोहे को पूरा करने की यथोचित चेष्टा की जायगी।' बीरबल प्रसन्न होकर लौट आए। उधर सम्राट् भी इन्हें न भूल सका। यहाँ तक कि रात में बादशाह को अन्य-मनस्क देख बेगम साहिबा शंकित हो उठीं। जब उनसे न रहा गया, तो बादशाह से पूछा—'आज आप चिंतित क्यों है?' सम्राट् ने बीरबल का हाल बताकर उस दोहे के तीनों पद सुनाए और चौथे पद को पूरा करने के लिये बेगम से कहा। बादशाह की बात सुनकर बेगम साहिबा उनको सोते हुए बालक के पास लिवा ले गईं और कहा—'देखिए जहाँपनाह—

मनमथ वारि मसाल को, सेति सहारो लेत ।।

अकबर ने पुनः समस्या-रूप में यह पंक्ति दी—

ऊँचे ह्वै सुर बस किए, सम ह्वै नर बस कीन ।

प्रवीण ने उसकी पूर्ति की—

अब पताल बस करन को, ढरकि पयानहु कीन ।।

२—अनुश्रुति है कि इसी प्रकार रहीम ने एक खत्राणी के सामने समस्या-रूप में यह पद रक्खा था—

तारा-पति शशि रैन-पति सूर होंहि शशि गैन ।

और उस विदुषी ने इसकी पूर्ति की थी—

तदपि अँधेरो है सखी, पीय न देखे नैन ।।

आत्मकथन के रूप में रहीम की दो उक्तियाँ हैं—

धूरि धरत नित सीस पर कहु रहीम केहि काज ।
जेहि रज रिसि-पतनी तरी, सो ढूँढ़त गजराज ।।

तथा—

जाके सिर असभार, सो कत झोंकत भार भर ।
रहिमन उतरे पार भार झोंकि सब भार में ।।

इसी प्रकार जायसी की युक्ति है—

मुहमद बिरध जो नइ चलै काह चलै भुंइ टोइ ।
जोबन - रतन हिरान है मकु धरती मँह होइ ।।

कहते हैं, गोस्वामी तुलसीदासजी ने होलराय कवि को (जो ब्रह्म भट्ट थे और अकबर के समय में हरिवंशराय के आश्रित थे तथा कभी-कभी शाही दरबार में भी जाया करते थे ।) अपना लोटा दिया था, जिस पर उन्होंने कहा था—

लोटा तुलसीदास को लाख टका को मोल ।

इस पर गोस्वामीजी ने तुरंत उत्तर दिया—

मोल-तोल कुछ है नहीं लेहु राय कवि होल ।।[१]

उपर्युक्त संदर्भों के अतिरिक्त शिवाजी के पिता महाराज शहाजी के दरबार में भी समस्यापूर्ति के प्रचलन का उल्लेख मिलता है । जयराम पिण्ड्ये द्वारा रचित 'राधामाधव विलास चम्पू' ग्रंथ में इस प्रकार के अनेक प्रसंग मिलते है, जिनका संक्षिप्त विवेचन यहाँ किया जाता है—

एक बार जयराम पिंड्ये नाम के एक कवि महाराज शहाजी के दरबार में

१—देखिए हिंदी-साहित्य का इतिहास, रामचंद्र शुक्ल (पृष्ठ २४०)

गए, और उन्होंने शाहजी महाराज को बारह नारियल उपहार-स्वरूप दिए। बारह नारियल जयराम कवि के बारह भाषाविद् होने के प्रतीक-मात्र थे। जयराम कवि ने स्वरचित 'राधामाधव विलास चंपू' को गायकों के द्वारा महाराज शाहजी को सुनवाया। शाहजी महाराज 'चंपू' सुनकर अतीव प्रसन्न हुए और कहा—"कवि का गुण तो समस्या में ही निहित है।"

अतएव सर्वप्रथम उन्होंने जयराम कवि को संस्कृत समस्या दी और अन्य सभासदों से भी संस्कृत समस्या देने का अनुरोध किया।[1] अन्त में राजकुमार ने जयराम कवि से भाषा (हिंदी आदि भाषा) में समस्यापूर्ति करने के लिये कहा। अनेक सभासदों ने जयराम को पूर्ति के लिये समस्याएँ दीं, जिनमें से दो उदाहरण-स्वरूप यहाँ दी जाती हैं। सर्वप्रथम रघुनाथ व्यास द्वारा दी हुई समस्या की पूर्ति देखिए—

समस्या—'बैरन की वधू फिरे बैरन के बन में,'

पूर्ति—माला मकरंद सुत्र साहिब बलि बड सुव
दापहि सो कॉपे तहाँ कौन रहे रन में।
राजन के राजा तुव बाजा उन सह्यो जात
धावतु है साहिजहाँ 'जहाँ' तहाँ मन में।
बाजत कर्णाटक भाजत कर्णाटक
बाटन में कोंगड़े हाटक से तन में॥
बालम की बाट लखे बार बार बावरि सी
'बैरन की बधू फिरे बैरन के बन में'।

अब यहाँ पर रघुनंदन कवि द्वारा प्रदत्त समस्या की पूर्ति देखिए—

समस्या—'नौद्रुम के नवपल्लव राते'

पूर्ति—बारिज लोचनि बाल नवोदजु खेलति ही कहूँ ख्याल के नाते।
कान्ह अचानक आन गही कर छूवत छालिन्ह काम के माते॥
चौंकि गिरी द्रिग चचल तारनि कौल मैं भौंर मनो फहराते।
हाथ नचावत बातन यों मनो 'नौद्रुम के नवपल्लव राते'॥[2]

उपर्युक्त उल्लेखों से समस्यापूर्ति की परंपरा के विकास का स्वरूप स्पष्ट हो जाता है। इन प्रसंगों के अतिरिक्त मध्यकाल में गंग एवं मतिराम आदि कवियों के

१—देखिए प्रस्तुत प्रबंध का द्वितीय अध्याय।

२—उपर्युक्त संदर्भ के लिये देखिए—'राधामाधव विलास चंपू', षष्ठोल्लास एवं एकादश उल्लास (ले० जयराम पिंड्ये)

नाम से भी कुछ छंद समस्यापूर्ति के रूप में उद्धृत किए गए मिलते हैं। श्रीहफ़ीजुल्लाह ख़ाँ ने अपने 'नवीन संग्रह' नामक ग्रंथ मे उपर्युक्त कवियों के नाम से एक-एक छंद उद्धृत किया है और उसे समस्यापूर्ति माना है। गंग एवं मतिराम, दोनों से संबंधित छंद क्रमशः देखिए—

अंग मो सार सुगंध लगावत वासव ही चहुँ देश को जहको।
करि आली सिंगार अटा को चली मुख देखत लालन को लहको॥
कंगन एक गिरो कर सों, वह सीढ़िन सीढ़ी फिरे वहको।
कवि गंग कहें कुछ शब्द सुनो, ठननन् ठननन् ठननन् ठहको॥[1]

—गंग

जैसी इस छंद की भाषा है, वैसी लचरदार भाषा किसी 'सुकविन के सरदार' की प्रतीत नहीं होती।

जानत है गति चोरकि चोर औ शाह की शाह छली की छली।
ठग की ठग कामख क़ामख की अरु जानत छैल छली की छली॥
कच लंपट की कच लंपट की मतिराम न जाने कहाँ धौं चली।
क्यहुँ फेरि दियो नथ को मुक्ता तिहि कारण फिरत गुलाब कली॥[2]

—मतिराम

यही नही, खाँ साहब ने कविवर विहारी के दोहों पर बने हुए कृष्ण कवि के सवैये भी समस्यापूर्ति के अंतर्गत रख दिया है, जिससे प्रतीत होता है कि लेखक को समस्यापूर्ति के वास्तविक लक्षण ज्ञात न थे और इसीलिये उसने अज्ञानता-वश समस्यापूर्ति के विषय में एक भ्रम-सा उत्पन्न कर दिया है। एक उदाहरण देखिए—

दोहा—मेरी भव-बाधा हरौ राधा नागरि सोय;
जा तन की झाईं परे श्याम हरित द्युति होय।

—विहारी

सवैया—

जाकी प्रभा अवलोकत ही तिहुँ लोक की सुंदरता गहि वारी।
कृष्ण कहैं सरसीरुह नैन को नाम महामुद मंगलकारी॥
जा तन की झलकैं झलकैं हरि ता द्युति श्याम कि होत निहारी।
श्रीवृषभानु कुमारि कृपा करि राधा हरो भव-बाधा हमारी॥[3]

—कृष्ण कवि

१—देखिए 'नवीन संग्रह', समस्यापूर्ति-प्रकरण (हफ़ीजुल्लाहख़ाँ)
टि० कुछ लोगों ने गंग कवि के इस छंद को मंडन कवि का रचित माना है।
२—वही—यह छंद मतिराम का नहीं है, ऐसा पंडित कृष्णविहारी मिश्र ने भी माना है।
३—वही ,,

वह नम्रता-पूर्वक बोले— महाराज मैं काशी का लिया हुआ दान नहीं ले सकता।" महाराज बोले— पद्माकरजी ! कियो दान किमि लीजिए।' अब तो हम संकल्प कर चुके तुम्हें लेना ही होगा। पद्माकरजी को मजबूर होकर दान लेना पड़ा परंतु उन्होंने तुरत ही अपनी ओर से उतनी ही मुद्रा मिलाकर काशी के पंडितों को सब दान दिया। एक-एक बनात और एक एक मुहर प्रत्येक पंडित को सेवा में अर्पित की।

+ + +

महाराणा प्रतापसिंह के स्वर्गवास होने पर पद्माकरजी फिर बाँदा लौट आए परंतु जयपुर के सुखों को वह कैसे भूल सकते थे। निदान महाराजा जगतसिंह से मिलने के लिये पद्माकरजी घोड़े पर सवार होकर अपने अन्य भृत्यों के साथ जयपुर पहुँचे और श्रीगिरधारी के मंदिर में ठहरे। वह महाराजा जगतसिंह से मिलना चाहते थे परंतु कविगणों के कारण दरबार में उनकी रसाई ही नहीं होती थी। महाराज जगतसिंहजी उन दिनों हिंदी-कविता पढ़ने हवामहल में आया करते थे। उनके गुरुजी एक समस्यापूर्ति में लगे हुए थे। कोई उपाय जमता-सा नहीं मालूम होता था। यह बात कहीं पद्माकरजी को मालूम हुई। वह अति शीघ्र साईस का रूप बनाकर वहाँ पहुँचे और उस समस्या की पूर्ति यों की—

शंभु के अधर माहिं काहे की सुरेख राजै
गाई जात रागिनी सु कौन सुर मंद्रमा।
देत छवि को है कोकनद में नदी में कहा
नखत विराजै कौन निशि में अतंद्रमा।
एक दृग को है कौन वर्णन असंभवित
घट-बढ़ सो तौ दिन पाय पाय पद्रमा
काशी जू के कज्जल की ललित लुनाई सो तौ
सारे नभ मंडल में भार्गव चंद्रमा।[1]

इसके अतिरिक्त उल्लेख मिलता है कि एक बार पद्माकरजी मथुरा गए वहाँ श्रीपुरुषोत्तमजी गोस्वामी के दरबार में मथुरा के प्रसिद्ध कवि श्रीग्वालदास चतुर्वेदी उपनाम से इनकी भेंट हुई। पुरुषोत्तमजी गोस्वामी के दरबार में एक समस्या इन दोनों को पूर्ति के लिये दी गई—

मिलि बिछुरे हो त्यों हो बिछुरि मिलौगे फेरि
याही एक आसा पर स्वाँसा भरिबौ करै।

उपर्युक्त समस्या पर पहले कविवर पद्माकर की पूर्ति देखिए—

१—देखिए 'पद्माकर-पद्मावली' प्रकीर्णक पृष्ठ ३२४ ३२५ (बहिर्लापिका)
—आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र

ए हो नँदनंद अरविंद मुखी गोकुल की
तुम बिन चंद चाँदनी सों डरिवो करै।
कहै पद्माकर पुराने पीरे पान हू तें
निपट निदान पीरी-पीरी परिवो करै।
वृंदावन चंदजू की आगली गली वे भली
नैनन के नीर ते नदी-सी ढरिवो करै।
'मिलि बिछुरे हो त्यौं ही बिछुरि मिलौगे फेरि,
याही एक आसा पर स्वाँसा भरिवो करै।।'

'अव उपर्युक्त समस्या पर कविवर 'उरुदाम' की भी पूर्ति देखिए—

ए हो बकलोचनि बिलोकनि तिहारी तीखी
चुभी चित वीच की कसक हरिवो करै।
अंतर दरज धुक धौंकनी धवनि मानौ
मदन सुनार घटराज घरिवो करै।
भनै 'उरदाम' तेरे गुन न समात हिए
मेरी जान ताही के उफान परिवो करै।
'मिलि बिछुरे हो त्यौ ही बिछुरि मिलौगे फेरि,
याही एक आसा पर स्वाँसा भरिवो करै।।'

कविवर पद्माकर बड़े ही सिद्धहस्त कवि थे। उन्होंने अनेक प्रसिद्ध कवियों के साथ समस्यापूर्ति की है। 'जात' समस्या पर इनकी चमत्कार-पूर्ण पूर्ति देखिए, जिसमें इन्होंने शुक्लाभिसारिका का वर्णन किया है।

सजि ब्रजचंद पैं चली यों मुखचंद जाको
चंद चाँदनी को मुख मंद सो करत जात।
कहै पद्माकर त्यों सहज सुगंध ही के
पुंज वन कुंजन में कंज से भरत जात।
धरति जहाँई जहाँ पग है सुप्यारी तहाँ
मंजुल मजीठ ही के माठ से ढरत जात।
हारन तें हेरौ सेत सारी के किनारन तैं
वारन तें मुकता हजारन झरत 'जात'।।'

१—उपर्युक्त दोनो समस्यापूर्तियों की जानकारी कविवर गोविंददत्त चतुर्वेदी के सौजन्य से प्राप्त हुई।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट हो जाता है कि पद्माकरजी एक प्रतिभा-सम्पन्न कवि थे। जहाँ जहाँ गए, वहीं पर इन्होंने अपने आशु-कवित्व द्वारा अपने प्रभाव की छाप डाल दी। इनकी चमत्कार पूर्ण समस्यापूर्तियाँ सुनकर इनके आश्रयदाता मंत्र मुग्ध-से हो गए थे। पद्माकर के अतिरिक्त रीतिकाल के दूसरे प्रसिद्ध कवि ग्वाल भी समस्यापूर्ति करते थे। कहा जाता है कि वे एक समय में आठ काम करते थे। जैसे—ग्रंथ रचना, कवित्त बनाना, शिष्यों को पढ़ाना, जगदंबा - जगदंबा कहते रहना, शतरंज खेलना, अदृष्ट कथन करना, आगत पुरुषों से बातचीत का सिलसिला जारी रखना तथा समस्यापूर्ति करना आदि।[1]

यहाँ पर उनकी 'जात' समस्या की पूर्ति देखिए, जिसमें उन्होंने शुक्ला-भिसारिका का सुंदर चित्र प्रस्तुत किया है। इसी समस्या पर कविवर पद्माकर की पूर्ति ऊपर दी जा चुकी है।

सारी सेत सरस सरीर मैं किनारीदार,
जारीदार मोतिन की माल हलरत जात।
जोर जेब दारी जामैं जाहिर जवाहिर की,
जरीदार चादर ते बादला झरत जात।
ग्वाल कवि विविध विलासन विहारी पास
मंजिकै सिधारी पग मंद सैं धरत जात।
चाँदनी की चौसर बिछायत बिछी-सी बेस
तामैं अमलानन की चाँदनी करत 'जात'॥

उपर्युक्त छंद पूर्ण विवरणों से यह बात सिद्ध हो जाती है कि रीति-काल में राजदरबारों तथा अन्य आश्रयदाताओं के यहाँ समस्यापूर्ति-काव्य का बड़ा प्रचलन था। वास्तव में यह एक मनोरंजन का प्रधान साधन बनी हुआ था। इस विषय में डॉ० 'रसाल' लिखते हैं—"समस्यापूर्ति की प्रथा इस काल में विशेष रुचि से प्रचलित हो गई थी और सभी जगह के प्रायः सभी कवि इसमें भाग लेने लगे थे। प्रवीणराय तथा गंग आदि के विषय में समस्यापूर्ति करने की जनश्रुतियाँ इसे पुष्ट करने के लिये स्वतंत्र रूप में पर्याप्त हैं।"[2] समस्यापूर्ति की परंपरा का कोई ऐतिहासिक विवरण न मिलने से इसके संबंध की हमें पूरी जानकारी प्राप्त नहीं होती। भारतेंदु-युग में अंतर यह हो गया कि दरबारों से हटकर समस्यापूर्ति की यह परिपाटी साहित्यिक गोष्ठियों में आ गई। डॉ० 'रसाल' लिखते हैं—

१—देखिए 'कविता कौमुदी', भाग १ (रामनरेश त्रिपाठी)
२—देखिए 'हिंदी-साहित्य का इतिहास', प्रथमावृत्ति, पृष्ठ ५३८
(डॉ० रामशंकर शुक्ल 'रसाल')

"प्रथम राजदरबारों में कवि-काव्य-परीक्षा तथा मनोरंजनार्थ समस्यापूर्ति-सम्बंधी काव्य-कला-कौशल हुआ करता था, अब वह भी शिथिल होता हुआ लुप्त प्राय-सा हो चला था। हाँ, यह कार्य (समस्यापूर्ति) अब कवियों तथा काव्य-रसिकों के ही द्वारा विशेष-विशेष स्थानों मे स्थापित किए गए कवि या काव्य-समाजों मे ही विशेष रूप से होने लगा था।"[1]

रीति-काल के उपरांत आधुनिक काल में कुछ समय तक समस्यापूर्ति का अधिक क्रम-बद्ध रूप प्राप्त होता है। इस युग को समस्यापूर्ति के चूड़ांत विकास का काल मान सकते हैं, यद्यपि कालांतर में परिस्थिति के प्रभाव से समस्यापूर्ति के ह्रास के लक्षण भी शनैः-शनैः दिखाई देने लगे।

हिंदी-साहित्य में भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्र का प्रादुर्भाव एक महान् घटना है। भारतेंदु की काव्य-प्रतिभा की सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि इन्हें प्राचीन तथा नवीन, दोनों प्रकार की काव्य-धाराओं में समान दक्षता प्राप्त थी और दोनों का इन्होंने सफल प्रतिनिधित्व भी किया। जिस प्रकार गद्य के लिये इन्होंने खड़ी बोली के प्रयोग पर जोर दिया, उसी प्रकार काव्य की भाषा व्रजभाषा को ही माना। खड़ी बोली में उन्हें उस माधुर्य का स्वाद न मिला, जो व्रजभाषा मे था। इसी व्रज-भाषा में उन्होंने अपने ललित सवैये समस्यापूर्ति के लिये लिखे।

भारतेंदुजी एक बड़े मनमौजी, विनोदी एवं उदार कवि थे। यह स्वयं तो कविता करते ही थे, इसके अतिरिक्त अन्य कवियों को आश्रय एवं सम्मान भी देते थे। इनके दरबार में कवियों का एक जमघट-सा लगा रहता था। कवि-वाणी सतत इनके दरबार में गूँजा करती थी। इन्होंने अनेक कवि-समाज स्थापित किए, पत्र-पत्रिकाएँ निकालीं एवं कवियों को पुरस्कार देकर उनका उत्साह-वर्द्धन भी किया। पं० रामचंद्र शुक्ल ने लिखा है—"भारतेंदुजी ने कवि-समाज स्थापित किए थे, जिनमें समस्यापूर्तियाँ बराबर हुआ करती थी। दूर-दूर से कवि लोग आकर उसमें सम्मिलित हुआ करते थे।"[2]

कवि-समाजों की स्थापना का सुंदर परिणाम यह हुआ कि कविता की लहर एक व्यापक-क्षेत्र में फैल गई। घर-घर और गाँव-गाँव में कवि-वाणी सुनाई पड़ने लगी। ऐसा कोई गाँव न था, जहाँ से दो-चार कवि न निकल आते। समस्या-पूर्ति-काव्य का यह प्रचार केवल हिंदी-भाषी-प्रदेश तक ही सीमित न था, वरन् अहिंदी-भाषी प्रदेशों में भी इसका प्रचार था। गुजरात से लेकर विहार तक एवं

१—'हिंदी-साहित्य का इतिहास', प्रथमावृत्ति, पृष्ठ ५६२,
(डॉ० रामशंकर शुक्ल 'रसाल')

२—'हिंदी-साहित्य का इतिहास', परिवर्द्धित संस्करण, पृष्ठ ६४७
(आचार्य रामचंद्र शुक्ल)

कुमायूं गढ़वाल से लेकर दक्षिण में सागर (मध्य प्रदेश) तक समस्यापूर्ति का प्रचार था।[1] कवि-संस्थाओं के अतिरिक्त समस्यापूर्ति-संबंधी अनेक पत्र-पत्रिकाएँ भी प्रकाशित होती रहीं। इनमें कुछ साप्ताहिक, मासिक एवं त्रैमासिक हुआ करती थीं। स्वयं भारतेंदुजी ने कई पत्र-पत्रिकाओं को निकाला। इनमें 'हरिश्चंद्र मैगजीन' एवं 'कवि-वचन-सुधा' (१८६८ ई०) मुख्य थीं। पंडित रामनाथ शुक्ल (बस्ती-निवासी) ने सन् १८८४ ई० में 'कवि-कुल-कंज दिवाकर' मासिक पत्र, पंडित शिवदत्त मिश्र ने लखनऊ से सन् १८८५ ई० में 'काव्यामृतवर्षिणी' मासिक पत्रिका, बाबू भगवानदास जैन ने सन् १८९१ ई० में 'भारत भानु' और पंडित प्रतापनारायण मिश्र ने कानपुर से १८८३ ई० में 'ब्राह्मण' नाम का पत्र निकाला। सन् १८९१ ई० में पंडित कुंदनलालजी ने फतेहगढ़ से 'कवि व चित्रकार' नामक त्रैमासिक पत्र निकाला। सन् १८९१ ई० में पंडित प्रतापनारायण मिश्र के उद्योग से 'रसिक वाटिका' नामक त्रैमासिक पत्रिका कानपुर से निकली, किंतु कुछ समय के बाद वह बंद हो गई। सन् १८९६ ई० में कानपुर से 'रसिक-वाटिका' मासिक पत्रिका के रूप में द्वितीय बार फिर सज-धज करके निकली। सन् १८९७ ई० में कानपुर से पंडित मनोहरलाल मिश्र के प्रबंध से 'रसिक मित्र' मासिक पत्र निकला। हल्दी, जिला बलिया निवासी श्री० बकाराम पांडेय 'सुजान' मंत्री 'कवि-कीर्ति प्रचारिणी सभा' के पूर्ण उद्योग और श्रीमहाराज कुमार राजेंद्रप्रताप-नारायण देवजी सभापतिजी की सहायता से सभा स्थापन होकर 'कवि और समालोचक' नाम से एक द्विमासिक पत्र निकला।[2] इसके अतिरिक्त 'काव्य-सुधाधर' बिसवाँ से, 'रसिक लहरी', 'कवि' तथा 'सुकवि' कानपुर से मासिक पत्र के रूप में प्रकाशित हुए। साथ ही काशी-कवि-समाज एवं काशी-कवि मंडल की समस्यापूर्तियों के प्रकाशन भी हुए। आगे चलकर उदयपुर, जबलपुर, नागपुर, कामठी, सागर, फर्रुखाबाद, कर्वी, सिहोर तथा दमोह आदि स्थानों से भी समस्यापूर्ति-संबंधी पत्र-पत्रिकाएँ निकलीं।[3]

इन पत्रों के प्रकाशन एवं विविध कवि-संस्थाओं की स्थापना से यह स्पष्ट हो जाता है कि तत्कालीन हिंदी-समाज काव्य के प्रति कितना जागरूक था। समस्यापूर्ति के द्वारा हिंदी-भाषा का प्रचार भी हुआ। अनेक कवियों ने इसी लिये हिंदी सीखी कि जिससे वे कविगोष्ठियों में बैठकर समस्यापूर्ति कर सकें।

१—देखिए 'काव्य-सुधाधर', एवं काशी-कवि-समाज तथा कवि-मंडल की समस्यापूर्ति पत्रिकाएँ। गोविंद गिल्लाभाइ अहिंदी भाषी प्रदेश (गुजरात) के थे।

२—देखिए 'काव्य-सुधाधर' पूर्ण प्रकाशन, सन् १८९८ ई०।

३—देखिए 'काव्य-सुधाधर', पूर्ण प्रकाशन, सन् १८९८ ई०।

रीति-कालीन काव्य-धारा मंद पड़ने पर हिंदी-काव्य-साहित्य में एक प्रकार का गत्यावरोध-सा आ गया था। कविता की ओर से समाज की अभिरुचि कुछ कम हो चली थी। पुराने ढंग की कविता सुनते-सुनते जन-रुचि कुंठित हो चुकी थी। उसे तीव्र करने के लिये कुछ ऐसा मसाला चाहिए था, जो तुरंत काम करे। समस्या-पूर्ति कविता में यह विशेषता थी कि यह श्रोताओं को तुरंत चमत्कृत कर देती थी, नवीन उक्ति श्रोता के हृदय में घर कर लेती थी।

दूसरी बात यह थी कि समाज किसी दूसरे प्रकार की कविता को तभी ग्रहण कर सकता था, जब वह उसकी पुरानी कविता के बिल्कुल विपरीत न होकर उससे मेल खाती हुई हो। समस्यापूर्ति-काव्य अपनी निजी विशेषताएँ रखते हुए पुरानी कविता की विशेषताओं को भी लिए हुए था, इसी कारण यह काव्य तत्कालीन सहृदय-समाज को अधिक ग्राह्य हो सका। किंतु एक बात ध्यान रखने की और है कि समस्यापूर्ति के रूप में कविता की जो बाढ़-सी आ गई, उससे साहित्य को कुछ हानि भी पहुँची। अधिकांश कवियों ने पूर्ति करने की उमंग में भावों की गंभीरता पर ध्यान नहीं दिया। परिणाम यह हुआ कि इस रूप में उपलब्ध काव्य हल्का पड़ने लगा, जिसका विस्तृत विवेचन यथास्थान किया जायगा। यह सब होते हुए भी समस्यापूर्ति द्वारा हिंदी-काव्य-साहित्य में जागरूकता अवश्य आई। जो प्रातिभ कवि थे, उन्होंने इससे प्रेरणा ग्रहण कर अपनी प्रतिभा का मौलिक विकास किया, नवीन काव्य-धाराओं को जन्म दिया तथा एक स्थायी साहित्य की वृद्धि की, किंतु जो कवि केवल कवि-गोष्ठियों में अथवा कवि-सम्मेलनों में वाह-वाह के बीच अपनी चमत्कार-युक्त पूर्तियाँ सुनाते रहे, उनका काव्य समय के व्यवधान मे पड़कर सदा के लिये लुप्त हो गया।

आधुनिक-काल में समस्यापूर्ति का सूत्रपात भारतेंदुजी ने किया, इसमें कोई संदेह नही। उनकी मित्र-मंडली के अन्य कवियो ने भी इसमें योग दिया, जिनमें प्रमुख थे—चौधरी बदरीनारायण 'प्रेमघन', ठाकुर जगमोहनसिंह, पंडित अंबिकादत्त व्यास तथा पडित प्रतापनारायण मिश्र। ये सभी बड़ी धूम-धाम से कवि-मंडलों में समस्यापूर्ति किया करते थे। यहाँ भारतेंदुजी तथा अन्य कवियों की कुछ पूर्तियाँ देखिए—

समस्या—"कान्ह-कान्ह गोहरावति हौ"

पूर्ति—कुंज भवन नहिं, गहबर वन यह, ह्याँ क्यों सेज सजावति हौ;
मोहन देखि जानि आए क्यों आदर को उठि धावति हौ।
देखि तमालन दौरि-दौरि क्यों अपने कंठ लगावति हौ;
पात खरक सुनि कै प्यारी क्यों 'कान्ह-कान्ह गोहरावति हौ' ॥१॥

कौन कहत हरि नाहिं कुज में मूरो झूठ बजावति हौ
कौन गयो मधुबन यह हरि को नाहक दोस लगावति हौ।
कवि हरिचंद वियोगिनि-सी सब बादहिं विरह बढावति हौ
जित देखौ नित प्राननाथ क्यों काहू-काहू गोहरावति हौ ॥२॥'

उपर्युक्त छन्द में कवि ईश्वर की व्यापकता बतलाते हुए कहता है—वे लोग व्यर्थ ही हरि को दोष लगाते हैं कि वह मधुबन चले गए। हरि तो सर्वत्र व्याप्त हैं। संसार के प्रत्येक पदार्थ में उनका वास है फिर उनका वियोग कैसा?

समस्या— क्यों प्यारी फिरत दिवानी-सी
पूर्ति—कहा भया मद है पीयौ कै गहिरी विजया छानी-सी
लाल-लाल दृग केस बिथुरि रहे सूरत भई निवानी-सी।
मुख झक अमल अलन्चन बोलत चारु मस्त बौरानी-सी
काके रंग रँगी ऐसी क्यों प्यारी फिरत दिवानी-सी ॥१॥

समस्या— रोम मोम रूस फूस है
पूर्ति—जीत हैं गुराई सी अनेक अरमनी
जरमनी जरमनी मन रहत ससूस है।
चित्र लिखे चीनी भए पारसी सिपारसी-से
मग लग डोलें अँगरेज से जलूस है ॥
भौंह के हिलाए सो बिलात तेरे चेरे ऐसे
हेरे नित निन फरासीस और प्रूस हैं।
जदपि बहाव बल भारी पै तिहारी सौंह
प्यारी तेरे आगे रोम मोम रूस फूस है ॥१॥'

प्रस्तुत छन्द में कवि अपनी प्रियतमा के सौन्दर्य के प्रभाव को लक्षित करते हुए बतलाता है कि हे प्रिये! तेरे सौंदर्य के सामने विश्व के सभी देशों के निवासियों का सौन्दर्य फीका है। इसी छंद का दूसरा अर्थ इस प्रकार भी लगाया जा सकता है कि भारत माता के समक्ष सभी देशों का धन-वैभव नगण्य है।

१—द्रष्टव्य—भारतेन्दु-ग्रंथावली दूसरा भाग पृष्ठ ६७१ ६७४
(संपादक ब्रजरत्नदास)

२— भारतेन्दु-ग्रंथावली दूसरा भाग पृष्ठ ८६२ ८६३ (ब्रजरत्नदास)

समस्या—"वीस रवि दस ससि संग ही उदय भए"

पूर्ति—आजु जल-केलि मैं बिलोकी ब्रजबाल दस
खेलें जमुना मैं सोभा कमल मनो वए।
जल न उछारैं छोड़ैं हाथ सों फुहारे गहि
भुजा कंठ डारैं महामोद मन में लए।
कर मेंहदी सौं रँगे तैसे मुखमंडल
दिखात 'हरिचंद' सब अंग जल में दए।
मानौ नभ छोड़ि अनहोनी कर होनी आजु
वीस रवि दस ससि संग ही उदै भए ॥[१]

समस्या—"टेटिन ऊपर फेंट कसी है।"

पूर्ति—छोड़ि कै मारग बेदनु कै गली कुंजन की हिय माँहि बसी है।
मोहन मूरति देखत लौकिक वासना रूप की दूर नसी है।
साधन एक यहै हरिचंद न भूलि कहूँ मति और फँसी है।
चाकर हैं हम साँवरे के जिन 'टेटिन ऊपर फेंट कसी है' ॥[२]

कवि ने प्रस्तुत छंद में अपनी एकनिष्ठ ईश्वराश्रयता का द्योतन किया है। कवि का कथन है कि हम तो 'साँवरे के चाकर हैं।' हमारा वेद-शास्त्र-विहित मार्ग से कुछ भी संबंध नहीं है।

समस्या—"साँकरी गली मैं प्यारी हाँ करी न नाकरी"

पूर्ति—न्योते नंद गाँव आई नवल दुल्हैया,
बीच मारग मैं नंद-लाल प्रेम चरचा करी।
हा-हा खाइ नैनन नचाइ मुख पान माँग्यो,
ह्वै कै लोक-नाथ चाही रूप भीख चाकरी।
हरिचंद गर भुज डारि खोलि घूघटहिं,
कंठ लाइ चूम्यौ मुख, जदपि हाहाकरी।

१—भारतेंदु ग्रंथावली, दूसरा भाग, पृष्ठ ८६४-८६५ (ब्रजरत्नदास)

२—'काव्य-काल'-संग्रहकार, साहब प्रसादसिंह।
प्रस्तुत पुस्तक में भारतेंदु राधाचरण गोस्वामी, मदनमोहन मालवीय तथा अंबिकादत्त व्यास आदि की समस्यापूर्तियाँ संगृहीत हैं।

लोक-लाज भीनी मीजी रूप-जाल प्रेम-भरी
साँकरी गली में प्यारी हाँ करी न ना करी ॥[1]

उपाध्याय बदरीनारायण 'प्रेमघन'—

प्रेमघनजी पुरानी कविता में रुचि रखते थे और प्राय उसी ढर्रे की कविता किया करते थे। कहा जाता है इनकी कविता में यतिभंग प्राय मिलता है। इसके उत्तर में इन्होंने स्वयं कहा था— मैं यतिभंग का कोई दोष नहीं मानता, पढ़नेवाला ठीक चाहिए। इन्होंने विशेष अवसरों पर अधिक लिखा है। अनुप्रास पूर्ण इनकी एक पूर्ति देखिए—

समस्या—"चरचा चलिबे की चलाइए ना।"

पूर्ति—बगियान बसंत बसेरो कियो,
बसिये, तेहि त्यागि तपाइए ना।
दिन काम-कुतूहल के जो बने,
तिन बीच बियोग बुलाइए ना॥
घनप्रेम बढ़ा के प्रेम, अहो!
बिथा-बारि वृथा बरसाइए ना।
चित चैत की चाँदनी चाह-भरी,
चरचा चलिबे की चलाइए ना॥[2]

पंडित प्रतापनारायण मिश्र—

भारतेंदु-मंडली के प्रमुख साहित्यकार पंडित प्रतापनारायण मिश्र बड़े विनोदी स्वभाव के थे। यह पुराने ढंग की शृंगारी कविता तथा समस्यापूर्ति खूब करते थे। कानपुर के रसिक-समाज में पंडितजी बड़े उत्साह से अपनी पूर्तियाँ सुनाते थे। इनकी एक सरस पूर्ति देखिए—

समस्या—"पपिहा जब पूछिहै पीव कहाँ?"

पूर्ति—बनि बैठी है मान की मूरति-सी,
मुख खोलत बोलै न नाहीं न हाँ।
तुमही मनुहारि कै हारि परे,
सखियान की कौन चलाई तहाँ।

१—देखिए 'काव्य-कला', संग्रहकार, माधवप्रसाद सिंह। प्रस्तुत पुस्तक में भारतेंदु, राधाचरण गोस्वामी, मदनमोहन मालवीय तथा अंबिकादत्त व्यास आदि की समस्यापूर्तियाँ हैं।

२—'हिंदी-साहित्य का इतिहास' दसवाँ संस्करण, पृष्ठ ५८२ (रामचंद्र शुक्ल)

वरपा है प्रताप जू धीर धरौ,
अव लौं मन कौ समझायी जहाँ।
यह ब्यारि तबै बदलैगी कछू,
पपिहा जव पूछि है पीव कहाँ ? ॥[१]

समस्या—"विक्टोरिया रानी !"

पूर्ति—टिक्कस की न वियाधि टरी
जिहि की सबके उर पीर पिरानी।
त्यों न टरी उरदू परताप
छछोरन और छलीन की नानी।
गैयन की न गुहार सुनी गई
दोस बिना सहैं प्रान की हानी।
जानि है भारत आरत काह
अहै सिर पै विक्टोरिया रानी॥

इस समस्यापूर्ति द्वारा कवि महारानी विक्टोरिया का ध्यान भारी करों के बोझ से पीड़ित जनता की ओर आकर्षित करता है। करों को वह व्याधि के रूप में चित्रित करता है। कवि अँगरेज़ी शासन द्वारा हिंदी की उपेक्षा और उर्दू की हिमायत से भी बहुत दुखी है। उसे आशा थी कि विक्टोरिया के उदार शासन में हिंदी को उसका उचित स्थान प्राप्त होगा तथा भेद-नीति द्वारा प्रतिष्ठापित, सरकारी काम-काज में प्रयुक्त उर्दू का प्रयोग वद हो जायगा और उसका स्थान हिंदी ले लेगी, किंतु वह कुछ भी न हो सका। अतएव कवि का हृदय आक्रोश से भर उठा। यही नहीं, जनता को आशा थी कि विक्टोरिया के शासन-काल में गोवध बंद हो जायगा, वह भी न हो सका। इसी से कवि खिन्न होकर कहता है—दुखी भारतीय जनता क्या समझेगी कि महारानी विक्टोरिया का शासन हमारे देश में है। कवि एक ही छंद में विक्टोरिया के शासन की आलोचना करता है और उसको सुशासन के लिये प्रेरित भी करता है। इस प्रकार 'विक्टोरिया रानी' समस्या की अत्यंत मार्मिक ढग से पूर्ति हुई है, यही कवि की कला है।

पालत प्रीति-समेत प्रजाहि सबै विधि ह्वै सव की सुखदानी।
धौल धुजा जस की फहरावत लेत अरिंदन की रजधानी।

१—हिंदी-साहित्य का इतिहास', दसवाँ संस्करण, पृष्ठ ५८१ (रामचंद्र शुक्ल)

जौ लगि है नभ मे ससि-सूरज जह्नु-सुता जमुना महँ पानो ।
पूत पतोहुन साथ सुखी चिरजीवो रहौ विक्टोरिया रानी ॥[1]

इस छद मे कवि ने विक्टोरिया के सपरिवार सुखी रहने की शुभ कामना की है। 'पूत-पतोहुन' शब्द द्वारा अत्यत आत्मीयता प्रकट होती है।

ठाकुर जगमोहनसिंह—

भारतेंदु के मित्रो मे ठाकुर जगमोहनसिंह का नाम भी बडे आदर के साथ लिया जाता है। यह हिंदी के एक प्रेम-पथिक कवि और माधुर्य पूर्ण गद्य लेखक थे। ठाकुर साहब अपनी समस्या पूर्तियाँ काशी कवि-समाज एव काशी-कवि-मडल को बराबर भेजते रहे। आपकी पूर्तियाँ साधारणत अच्छी होती थी। कहा जाता है कि भारत-भूमि की प्यारी रूप रेखा को मन मे बसानेवाले यह पहले हिंदी लेखक थे। इनकी एक पूर्ति देखिए—

समस्या—"खेल मत जानो, यह बेलि विरहा की है।"

पूर्ति—तो मैं कछू दीसति अरी हौं दिन द्वै तें बडी
चाह चटकीली जगमोहन मजा की है,
जानत न बृदावन वीथिन की बीरी बथा,
जानि है जरूर अब प्रेम रस छाकी है।
चलिहैं चवैनिन के चरचा चहूँघा घने
घलि है वृथा ही कुलकानि तू सदा की है,
छैल मनमोहन सो लगनि लगैवो फैल,
खेल मत जानो, यह बेलि विरहा की है ॥[2]

मदनमोहन मालवीय 'मकरद'—

मालवीयजी जिस प्रकार एक राष्ट्रीय नेता थे, उसी प्रकार हिंदी के भी परम हितैषी थे। उन्होने हिंदी एव हिंदुस्थान के कल्याण मे ही अपना सपूर्ण जीवन अर्पित कर दिया। अनेकानेक सामाजिक एव राष्ट्रीय कार्यों मे लगे रहने पर भी मालवीयजी ने अपनी काव्याभिरुचि को सदैव जाग्रत रक्खा। मालवीयजी ने हिंदी मे कुछ सुदर समस्यापूर्तियाँ भी की हैं। उनकी समस्यापूर्तियो के कुछ उदाहरण यहाँ दिए जाते हैं—

१—देखिए विक्टोरिया रानी—१८८७ ई० विक्टोरिया जयती के स्मारक-चिह्न की पुस्तक, जिसे काशी-नरेश महाराज ईश्वरीप्रसाद नारायणसिंह की आज्ञा से 'भारत जीवन' के सपादक रामकृष्ण वर्मा ने प्रकाशित किया।

२—काशी-कवि-समाज की समस्यापूर्ति (भाग १, नवाँ अधिवेशन, पृष्ठ ८९)

समस्या—"राधिका रानी"

पूर्ति—इंदु सुधा बरस्यो नलिनीन पै वै न बिना रवि के हरखानी ।
त्यौं रवि तेज दिखायो तऊ बिन इंदु कुमोदिनी ना विकसानी ।
न्यारी कछू यह प्रीति की रीति नहीं मकरंद जू जात बखानी ।
सॉंवरे कामरी वारे गुपाल पै रीझि लटू भई राधिका रानी ॥१॥

कवि ने इस छंद में अनेक दृष्टांतों से यह सिद्ध कर दिया है कि प्रीति की रीति कुछ अनोखी होती है, जिसका वर्णन ही नहीं किया जा सकता । इसीलिये तो काली कमली ओढ़े गोपाल पर गौर वर्ण राधिका लट्टू हो गईं ।

माँगत-मोतिन माल नहीं नहिं माँगत हौं कछु भोजन-पानी ।
सारी न माँगत हौ मकरंद तिहारी अनेक सुगंध नसानी ।
माँगत हौं अधरा-रस रंचक सोउ न दीजहु है सनमानी ।
सूमता एती तुझे नहीं चाहिए बाजती हौ चहूँ राधिका रानी ॥२॥

राधा रानी है, लेकिन कृष्ण उससे न मोती की माला चाहते है, न साड़ी ही । वह तो केवल थोड़ा-सा 'अधरा-रस' ही चाहते हैं, लेकिन राधा वह भी नहीं देती, कृष्ण खिन्न हो जाते और कहते है कि ऐ राधा ! तू रानी कहलाती है तुझे इस प्रकार की कृपणता नहीं दिखानी चाहिए । तुझे तो अधरा-रस मुझे दे ही देना चाहिए । राधिका रानी की 'सूमता' चित्रित कर कवि बड़ी कुशलता से कृष्ण को अधरा-रस देने के लिये राधा को प्रेरित करता है ।

वे कब के उत ठाढ़े अहैं इत बैठी अहौ तुम नारि चुपानी ।
थाकी तुम्हें समुझावत साम तें ऐसी न रावरी बानि मैं जानी ।
मोहि कहा पे यहै मकरंद हूँ जो कहूँ खीझि के रूस न ठानी ।
आजु मनाए न मानती हो, कल्ह आप मनाइहौ राधिका रानी ॥३॥

इस पूर्ति द्वारा कवि ने राधा का मान-वर्णन किया है । एक ही समस्या 'राधिका रानी' की विविध रूपों में पूर्ति कर कवि अपनी प्रतिभा का परिचय देता है ।

धूम मची व्रज फागु की आजु बजै डफ-झाँझ अबीर उड़ानी ,
ताकि चलें पिचुका दुहूँ ओर गलीन में रंग की धार बहानी ।
भीगें भिगावें ठढ़े मकरंद दुहूँ लखि शोभा न जात बखानी ,
ग्वालन साथ इतै नंदलाल उतै संग आलिन राधिका रानी ॥४॥[1]

१—देखिए 'काव्य-कला' (पृष्ठ ३५) संग्रहकार—साहबप्रसाद सिंह ।

मकरंदजी की एक अन्य समस्या की पूर्ति देखिए—

समस्या— डारन

पूर्ति—भूलि है सो हँसि माँगिबो दान को रूचि दहो हित पानि पसारन।
भूलि है फागु के राग सबै वह तारुहि ताकि कै कुंकुम मारन।
सो तो भयो सब हाँ मकरंद जू दाखहि चाखि के बैर बिसारन।
जापर चीर चुराय चढ़े वह भूलिहै कैसे कदंब की डारन॥[1]

साह कुंदनलाल—

यह लखनऊ के एक समृद्ध वैश्य थे जो एक सच्चे कृष्ण भक्त और कृष्ण के अनुराग में ही सर्वदा लीन रहते थे। कालांतर में यह लखनऊ छोड़कर वृंदावन में रहने लगे और वहाँ एक सुंदर मंदिर का निर्माण करवाया जो साहजी के मंदिर के नाम से आज भी प्रसिद्ध है। कृष्ण के प्रति अतिशय अनुराग होने के कारण इन्होंने अपना नाम ललित किशोरी रख लिया। ब्रजभाषा के साथ-साथ खड़ी बोली में भी इन्होंने रचना की है। इनका रचना काल संवत् १९१३ से १९३० वि० माना जाता है।

समस्या— काहे वाहे गोहरावति हो

पूर्ति—सिसकारी ले भरत हुँकारी समिटत गात दुरावति हो।
छुवन न देत उरोज कपोलन दोऊ हाथ दबावति हो।
झटकत पायन ललित किशोरी नासा भौंह चढ़ावति हो।
जगो-जगो वृषभान भवन में काहे-वाहे गोहरावति हो॥[2]

पंडित श्रीधर पाठक—

पंडित श्रीधर पाठक हिंदी के उन अग्रगण्य महारथियों में से रहे हैं जिन्होंने खड़ी बोली और ब्रजभाषा दोनों को अपना योग-दान दिया। इन्होंने यद्यपि खड़ी बोली काव्य का समर्थन किया और खड़ी बोली में अनेक ग्रंथों की रचना भी की किंतु ब्रजभाषा की मधुरिमा को वह कभी न भूल पाए। पाठकजी ने ब्रजभाषा में समस्यापूर्तियाँ भी की हैं किंतु मिश्रबंधुओं के शब्दों में— 'इसमें इनकी कविता के गुण तो एक भी नहीं हैं पर दूषणों का पार नहीं मिलता।' यह सच है कि पाठकजी की पूर्तियाँ बहुत ही साधारण कोटि की हुई हैं उनकी एक पूर्ति देखिए—

समस्या— चिरजीवी रहो विक्टोरिया रानी

पूर्ति—तेरे उछाह में आज प्रजागन फूली फिरे अति आनँद सानी
गावत गीत प्रतीत भरे रस खानि सौं प्रीति प्रथा उर आनी॥

1—देखिए काव्य-कला (पृष्ठ ४३) सम्पादक साहबप्रसाद सिंह
2—देखिए हरिश्चन्द्र चन्द्रिका (१५ मई १८७४ ई० पृष्ठ २०९)

मंगल - मोद - तरंग में आय भुलाय दई निज खेद कहानी।
नाम उचारि पुकारत हैं, चिरजीवी रहो विक्टोरिया रानी ।।[1]

पंडित अंबिकादत्त व्यास—

आप संस्कृत के प्रकांड पंडित थे, और संस्कृत में कविता करते थे, किंतु ब्रजभाषा की मधुरिमा एवं भारतेंदु-मंडली की गोष्ठियों ने इन्हें अपनी ओर आकर्षित कर लिया। आपने बचपन में ही अपने आशुकवित्व का परिचय समस्या-पूर्ति के रूप में दिया था। काशी-कवि-समाज से आपका विशेष संबंध रहा है। आपके प्रयास और बाबू रामकृष्ण वर्मा के उत्साह से काशी-कवि-समाज बराबर चलता रहा। यहाँ कुछ पूर्तियाँ उदाहरण के लिये दी जाती हैं। अन्य पूर्तियाँ काशी-कवि-समाज के प्रसंग में यथास्थान दी जायँगी।

समस्या—"बहती नदी पायँ पखारि लै री"

पूर्ति—आवत सेद चले श्रम के कदली-दल मंजु बयारि लै री।
अंबिकादत्तजू पादप-मूल में बैठि कै थाक उतारि लै री।।
भूख लगी कछु, तो बन के फल-मूल सों ताहि निवारि लै री।
जानकी कीच लग्यो तो कोऊ 'बहती नदी पायँ पखारि लै री'।।[2]

रमाप्रसाद मिश्र 'रमेश' (गया-निवासी)—

समस्या—"कलधौत के कटोरे में"

पूर्ति—सुखद शरद राका रजनी रमण रुचि
दीखै रंच जाकी चारु रुचि के न जोरे में।
भाषत रमेश जाकी नैन छवि कंज मैन
कंठ मधुराई है न कल कंठ सोरे में।।
विधि जो बनाय हाय मंजु मुख ऐसो दियो
यामैं कटु बैन जाहिं राम बन भोरे में।
क्रूर अविवेकी यह दुसह हलाहल को
राख्यो कमनीय 'कलधौत के कटोरे में'।।[3]

१—सरस्वती भाग १, सं० ११, पृष्ठ ३६५, नवंबर १९०० ई०।

२—देखिए—काव्यकला, साहबप्रसादसिंह।

३—देखिए—रसिक-विनोदिनी—फाल्गुन, १९८९ वि०—
संपादक साहित्योपाध्याय 'राम'

कान्हूराम पर्णवार (ऊपरडीह, गया-निवासी)—

पूर्ति—कारे कजरारे घटा घिरी है सु ताके मध्य
चमकत तारे की कतारे वहि ओरे में ॥
खंजन कपोल कीर कोकिल कमान तान
करत कुलेल हिय हरख हलोरे में ॥
आज तो न देखी एसी कौतुक कलानिधि में
चलो तो दिखावें तोहि कान्ह तेहि ठौरे में ॥
कालिंदी के कूल बैठि कनक-लता पै चंद
धावत ककव 'कलधौन के कटोरे में' ॥[१]

पं० सीताराम उपाध्याय (पिलखिछा, जौनपुर-निवासी)—

समस्या—"हम प्रेम की वारुणी छानि चुकी"

पूर्ति—जिनकी पद धूरि चहैं अज, शम्भु, तिन्हैं हम तो पहिचानि चुकी।
तजि कै कुल कानि सबै तिहि सो यह प्रीति अनूपम ठानि चुकी ॥
जिहि की सिगरी वनितानि चतुराइनियाँ चरचानि में जानि चुकी।
कोउ केतो बुझाय कहै अब तो, 'हम प्रेम की वारुणी छानि चुकी' ॥१॥

गोपी का स्पष्ट कथन है कि जिस कृष्ण के चरणों की रज शिव और ब्रह्मा भी चाहते हैं, उसी कृष्ण से मैंने कुल मर्यादा की परवाह न करते हुए प्रीति का संबंध स्थापित कर लिया है—प्रेम रस का मैंने पान कर लिया है। अब मैं किसी प्रकार भी यह पथ नहीं छोड़ सकती।

अब का समझावती हो हमको सबकी बतियाँ हम जानि चुकी।
जिनको सनकादिक भेद तहैं इमि सारी सखीन बखानि चुकी ॥
तिनकी छलिया लगि कै ब्रजनारि सबै निज प्रीतम मानि चुकी।
अरी एरी भला तिनसो हम हैं अब 'प्रेम की वारुणी छानि चुकी' ॥२॥[२]

कविवर लेखराज—

आपका जन्म सं० १८८८ वि० में हुआ था। आपको कविता करने की रुचि

१—देखिए—रसिक विनोदिनी, फाल्गुन १९८९ वि०—
सपादक साहित्योपाध्याय 'राम'

२—देखिए—काव्य कलाधिनी, एप्रिल, १८९४ ई०—
पं० सीताराम शर्मा उपाध्याय।

बचपन से ही रही। आपके यहाँ कविगण प्रायः आया करते थे। आपने कई ग्रंथ लिखे, जिनमें गंगाभूषण, रस-रत्नाकर आदि अधिक प्रसिद्ध है। आपके तीन पुत्र—लालविहारी (द्विजराज कवि), जुगुलकिशोर (ब्रजराज कवि) और रसिकविहारी हुए। इनमें द्विजराज एवं ब्रजराज भी ब्रजभाषा के समृद्ध कवि हुए है। लेखराजजी की पूर्ति देखिए—

समस्या—"का बिगरै भुज द्वै के बिगारे"

पूर्ति—गारे जबै परिफंद में ग्राह के गोविंद को गजराज गुहारे।
हारे जबै गढ़ रों चलि कै तब पाँयन जाय कै आप उबारे॥
बारे न राखि लियो ब्रज बूड़त, यों लेखराजहि टेरि पुकारे।
कारे जु राखन हैं भुज चारि तौ 'का बिगरे भुज द्वै के बिगारे'॥[1]

कविवर द्विजराज—

आप कविवर लेखराजजी के पुत्र थे और ब्रजभाषा में, लेखराजजी की ही तरह, सुंदर कविता करते थे। आपने कई मित्र कवियों की दी हुई समस्याओं की सुंदर पूर्तियाँ की हैं। यहाँ भारतेंदु हरिश्चंदजी की दी हुई समस्या की इनकी पूर्ति देखिए—

समस्या—"दिन द्वै ते पियूष निचोरै लगी।"

पूर्ति—फरकैं लगीं खंजन-सी अँखियाँ भरि भायन भौंहें मरोरै लगी।
अंगराय कछू अँगिया की तनी, छवि छाकी छिनाछिन छोरैलगी॥
बलि जैबै परै 'द्विजराज' कहै मन मौज मनोज हिलोरै लगी।
बतियान अनंद सो घोरत सी 'दिन द्वै ते पियूष निचोरै लगी'॥[2]

हर्षजी—

आप गंधौली के निवासी थे और ब्रजभाषा में सुंदर एवं सुमधुर रचनाएँ करते थे। आपने भी अपने कई मित्र कवियों की दी हुई समस्याओं की पूर्तियाँ की हैं। यहाँ पर कविवर द्विजबलदेव के ज्येष्ठ पुत्र द्विजगंग की दी हुई समस्या की इनकी पूर्ति देखिए—

१—देखिए—माधुरी, जनवरी-जून, सन् १९३१ ई० (पृष्ठ ८१४)

२—देखिए—माधुरी, जनवरी-जून, सन् १९३१ ई० (पृष्ठ ८१४)

समस्या—"मयंक मान सर मे"

पूर्ति—साजि के सिंगार सारी मोतिन किनारीदार
ओढ़ि लीन्ही सुंदरि सुघर जो कदर मे।
गही गोल आरसी 'बिसाल' सोहैं आपनेई,
हेरौ दुति आनन की प्यारी रूप घर मैं॥
देखि प्रतिबिंब वो अनोखी सुखमा को वहै
उपमा 'हरप' यह आवत नजर मे।
तारन समेत थिर ह्वै के नीर बीच मानो
मज्जत अबक ह्वै 'मयंक मान सर मे'॥[1]

राधेनारायण वाजपेयी 'प्रजावैद्य' (लखनऊ-निवासी)—

समस्या—"बने रहैं"

पूर्ति—प्रीति की ज्योति जगाय दुहूँन में जो नहि लीडर मुक्त मने रहैं।
पूरन पाछिलो बैर बिसारि न जो इसलाम औ आर्य तने रहैं॥
'राधे प्रवीन' नवीन विचार सों जो नहि बंधु को बंधु गने रहैं।[2]
पूत नहीं करतूत सरै कोउ जो लौं अछूत अछूत 'बने रहैं'॥

५० भगवानदीन शर्मा द्विवेदी (आतम कवि)—

आतमजी गोंडवा, जिला हरदोई के रहनेवाले थे, और व्रजभाषा मे सरस कविता करते थे। समस्यापूर्ति करने के कारण इनका अनेक कवि-संस्थाओ से संबंध रहा है। बिसवाँ-कवि मंडल को आप अपनी समस्यापूर्तियाँ बराबर भेजते रहे। आपकी समस्यापूर्तियाँ अधिकांशतः बिसवाँ-कवि-मंडल से प्रकाशित होनेवाली 'काव्य-सुधाकर' पत्रिका मे निकलती रही। इसके अतिरिक्त अन्य पत्रिकाओ मे भी आपकी समस्यापूर्तियाँ प्रकाशित हुई। इनमें कानपुर से निकलनेवाले मासिक पत्र 'रसिक रहस्य' का विशेष रूप से उल्लेख किया जा सकता है। यहाँ उनकी हस्त-लिखित पुस्तक की कुछ पूर्तियों एवं 'रसिक रहस्य' मे प्रकाशित कुछ समस्यापूर्तियों के उदाहरण दिए जा रहे हैं—

१—देखिए—माधुरी, जनवरी-जून, सन् १९३१ ई० (पृष्ठ ८१४)
२—देखिए—माधुरी, जनवरी-जून, सन् १९३१ ई० (पृष्ठ ८१४)
लखनऊ विश्वविद्यालय मे आयोजित कवि-सम्मेलन में, बाबू जगन्नाथदास रत्नाकर के सभापतित्व मे, पढ़ी गई पूर्ति।

समस्या—'वेद है'

पूर्ति—आर्ष अलंकृत आखर आदि अद्वैत प्रचार विवेक विभेद है ।
कल्पित लेख प्रथा बिन चारु सुशव्द अमानुष आर्ष्य अखेद है ।।
मंत्र सदर्थ पठै बुध आतम योग उपासना ज्ञान सुछेद है ।
लौकिक लोग न पाठ सकैं करि ग्रंथ सनातन धर्म को 'वेद है' ।।१।।

मंत्र विवेक महीधर मोह वढ़ाय अनर्थ कियो भ्रम भेद है ।
सोई दयानंद साधि सदर्थ सिखाय दियो सब भाँति अखेद है ।।
योग-उपासना-ज्ञान सुकर्म कहे कवि 'आतम' कृष्ण सपेद है ।
शाम, यर्युरिग अन्य अथर्व अनादि रच्यो परमेश्वर 'वेद है' ।।२।।

समस्या—"वसंत है"

पूर्ति—संत है सिद्ध समीर सों शंशित सभ्यता शीरी सुधी शिशरंत है ।
अंत है अंबुज ईति अनीति को आतम अंग अनंग अगंत है ।।
गंत है गीत गिरा गति को गुन गावत गोप गणादि गवंत है ।
वंत है बानक बेन बजावत बौरत बागन बीच 'बसंत है' ।।१।।

संगर समाज चहुँ ओरन विराजमान,
ढोल ढफ बैंड वाद्य बाजत अनंत है ;
गावत धमारि मारु मारु ललकारि लोग,
केसरि के रंग रक्त आवत दिगंत है ।
आतम भुशुंडिन के पिचके चलाय चापि
तोपन की चोट मुख चूमत अगंत है ;
यूरप की भूमि जर्मनी के कूर कानन में,
भारतीय शूरवीर खेलत 'बसंत है' ।।२।।[1]

समस्या—"मुरलीधर की कस कानन में"

पूर्ति—करि कौल गए, फिर आए नहीं, बसि कूबरी के तन प्रानन में ।
तब ते सब आस तजी तिनकी, हम गोप-सुता भरि मानन में ।।

१—देखिए—'समस्यापूर्ति के छंद' (हस्त-लिखित पुस्तक) लेखक—'आतम' नागरी-प्रचारिणी-सभा-पुस्तकालय, काशी ।

पवि 'आतम' आज कहा यह धौं ब्रज कुंज की ओर लतानन में ।
सुनि हाय परै मुरली की धुनै, 'मुरलीधर की बस कानन में' ॥१॥[1]

प० रामनरेश त्रिपाठी—

त्रिपाठीजी यद्यपि खड़ी बोली के ही प्रतिनिधि कवि माने जाते हैं, किन्तु प्रारंभिक अवस्था में उन्होंने भी काव्य विद्या के अभ्यास के लिये समस्यापूर्ति को अपनाया था। 'रसिक रहस्य' में प्रकाशित उनकी कुछ पूर्तियाँ देखिए—

कल कंठ छपाइ छकै विहरै वर पादप बृंद वितानन में ।
नहि रामनरेश करै समता सुर गानन हूँ सुर तानन में ॥
कहि कीरति पार लहै इतनी करतूत नहीं चतुरानन में ।
मनरंजक बाजि रही मुरली 'मुरलीधर की बस कानन में' ॥[2]

समस्या—"कुँवर कन्हैया तासों बोलिहौं न बोलिहौं"

पूर्ति—दासी कर कूबरी उदासी कै उपासी बने
नासी कुल कानि भेद खोलिहौं न खोलिहौं ।
हाँसी भई जग करतूति की कठोरता पै
छल कं छंदन लाल छोलिहौं न छोलिहौं ॥
एहो ब्रजबासी अविनासी श्याम रावरो
कहानी कहिने को देश डोलिहौं न डोलिहौं ।
ऐसो कहाँ विधना विचार्यो है नरेश
जासो 'कुँवर कन्हैया तोसों बोलिहौं न बोलिहौं' ॥[3]

रामकृष्ण वर्मा (संपादक 'भारत जीवन)—

समस्या—"मुसक्याय रही"

पूर्ति—मनहारिन-सी मनिहारिन एक सुराधिका के ढिग आय रही ।
करबंदी सुभाल भली बिलसै नकबेसर बेस सुहाय रही ॥
चूरियाँ पहिरावन लागी जबै पुलकावलि अंगन छाय रही ।
बलवीर को रूप अनूप निहारि निहारि लली 'मुसक्याय रही' ॥[4]

१—'रसिक रहस्य' (मासिक), अंक १५, नवंबर, सन् १९०७ ई०
२— ,, ,, ,, ,, ,,
३— ,, ,, ,, ,, ,, (पिलखिवा)
४—रसिक मित्र (प्रथम भाग) २५ अप्रैल, १८९८ ई० (कानपुर)

श्रीसीताराम शर्मा—

समस्या—"हेरि हाय हियरा छटूक टूक कै गई।"

पूर्ति—कै गई वसीकरन मंत्र को विधान कैधो,
देखत ई देखत हिराय-सी कितै गई।
तै गई अतन तीखी ताप-तन मेरे तबै,
चंचल चितौनि सों चुराय चित्त लै गई॥
लै गई लुभाय यों भुलान्यो खान-पान सबै,
औचक अकेली आय ऐसी दगा दै गई।
दै गई दरेरो दुखदाई दीह 'सीताराम',
'हेरि हाय हियरा छटूक टूक कै गई'॥[1]

प्रभुदयाल वाजपेयी (विसवाँ)—

नागरि नवेली अलबेली जात साँझ समै,
मुख की प्रभा सों प्रभा इंदु की अथै गई।
त्यों ही 'महिदेव' कुच लखि चक्रवाक लाजैं,
केहरि समान कटि दाग हिये दै गई॥
चंचल चपल नैन चलत ममोलन-से
उझकि उझकि चित चोरि मेरो लै गई।
वंक भृकुटी चढ़ाय तकि तिरछोहैं वाल,
'हेरि हाय हियरा छटूक टूक कै गई'॥[2]

गजाधरप्रसाद ब्रह्मभट्ट 'नवीन' (हरदोई)

समस्या—"मुख चंद दिपै"

पूर्ति—छिटकी नहीं चाँदनी है चहुँधा सित सारी नवीन अमंद दिपै।
चमकें तेहि मैं किरनैं न घनी अँग अँग सबै सुख कंद दिपै॥
नहीं तारेन को अवली गल में सुठि लालन की गुलूबंद दिपै।
नभ मंडल में नहीं चंद दिपै रजनी तिय को 'मुख चंद दिपै'॥१॥

१—'रसिक मित्र' प्रथम भाग, २५ नवंबर, १८९८ ई० (कानपुर)
२—'रसिक मित्र', २५ नवंबर, १८९८ ई० (कानपुर)

तिथि के अनुकूल घटै-बढ़ै वो न घटै न बढ़ै ये स्वच्छंद दिपै।
वहि को लगो राहु को शंक रहै ये निशंक नवीन अमंद दिपै॥
पता वाको कुहू में न लागता है दिन तीसहू में ये दुचंद दिपै॥
निश माहि कलंकित चंदा दिपै अकलंकित ये 'मुख चंदा दिपै' ॥२॥

किधौं प्राची दिशा नभ मंडल में परिपूरण रूप सों चंद दिपै।
घनघोर घटा बिच्चबै छनदा छटा बार ही बार अमंद दिपै॥
गिरी नील के भीतर तें मुखकंद नवीन के ओषधि वृंद दिपै।
किधौं नीलक सारी अनूपम में वृष भानुजा को 'मुख चंददिपै' ॥३॥[1]

उपर्युक्त समस्या की कवि ने अलंकारों के माध्यम से चमत्कार-पूर्ण पूर्ति की है। तीनों छंदों में विभिन्न प्रकार के अलंकारों द्वारा कवि ने अपनी कल्पना शक्ति एवं उक्ति-वैचित्र्य का सुंदर निरूपण किया है।

५० भगवानदीन शर्मा द्विवेदी 'आतम'—

पूर्ति—केलि के सेज पै सो रही राधिका हिय खोले हुए यों अनंदा दिपै।
भाल तें छूट कर द्वै सितारे कहीं कोर कुच को लगे त्यों स्वछंदा छिपै॥
दीठि आतम कुँअर कान्ह की जो पड़ी सोचि लीन्हों यमा प्रेम फंदा हिपै।
कूट कैलास पै कूदि आकाश तें ये मनो ईस के शीश चंदा दिपै ॥१॥

ब्याहि आई विदा ह्वै लली मैथिली आज अवधस्थली में अनंदा दिपै।
राम की वाम-सी नाम सीता सनी वर्ण आभास तें स्वर्ण तमा छिपै॥
मंजु कंजाक्षिणी आनिनी अब्ज आतम भले भौन गौनी गयंदा छिपै।
प्रेम फंदा कसी खोलि दंदा नसी मंदमंदा हँसी चारु चंदा दिपै ॥२॥[2]

'आतम'जी ने यद्यपि उपर्युक्त समस्या की पूर्ति तो की है, किंतु वह समस्या को पूर्ण रूप से अपनी पूर्ति में समाहित नहीं कर सके हैं। पूर्तिकारों के लिये इस प्रकार की छूट अवश्य ही रखनी पड़ती है, किंतु देखना यह पड़ता है कि कहीं समस्यागत अर्थ का ह्रास तो नहीं हो रहा है। आतमजी के छंदों में इस प्रकार की कोई बात नहीं दीख पड़ती है।

१—'सुभाषित पद्य मुक्तावली', सन् १९१३ ई० वाली हरदोई की प्रदर्शनी-संबंधी कवि-सम्मेलन की समस्यापूर्तियों का अविकल संग्रह।
प्रकाशक, बिशेश्वर मिश्र, १९१५ ई०

२— " " " "

सैयद अमीरअली 'मीर'—

आपका जन्म देवरीकलाँ, सागर में हुआ था। कविता की रुचि आपमें कुछ विशेष परिस्थितियों में जाग्रत् हुई थी। आपने बचपन से ही समस्या-पूर्ति करना प्रारंभ कर दिया था। आपका अनेक कवि-समाजों से सम्बंध रहा है। कवि-मंडल, बिसवाँ से तो आपका घनिष्ठ सम्बंध था। आपकी समस्यापूर्तियाँ 'काव्य-सुधाधर' में बराबर प्रकाशित होती रही। आपने अन्य अनेक ग्रंथों की रचना भी की, इनमें मिश्रबंधुओं के अनुसार, 'नीति-दर्पण' की भाषा-टीका, 'बूढ़े का ब्याह', 'बच्चे का ब्याह' आदि ग्रंथ है। मिश्रबंधुओं ने आपको सुकवि लिखा है। वैसे भी भाषा और भाव् दोनो दृष्टियों से आपकी समस्यापूर्तियाँ उत्कृष्ट कही जायँगी। यहाँ पर 'मीर' साहब की कुछ पूर्तियाँ दी जाती है, शेष कुछ पूर्तियाँ सम्बंधित कवि-संस्थाओं के प्रसंग में उद्धृत की जायँगी।

समस्या—"दिनन के फेर ते सुमेर होत माटी को"

पूर्ति—बंधु निज अरि होत, सरिता हू सिंधु होत,
कंदु कहू गिरि होत दास होत आँटी को।
मातु-तातु मीर-धीर पुत्र त्यों कलत्रन में,
सत्रु-सम भाव होत चित्त ह्वै उचाटी को॥

सीत होत पावक औ' मंगल अमंगल त्यों,
होत बिन जंगल को सिंह कर साँटी को।
सूर होत कायर-तमूर रव काल होत,
'दिनन के फेर ते सुमेर होत माटी को'॥[1]

कवि ने उपर्युक्त समस्या की पूर्ति अनेक उद्धरण देकर की है। इस प्रकार समस्या की अन्वर्थ पूर्ति हो सकी है।

देवीदत्त त्रिपाठी 'दत्त द्विजेंद्र'—

आपका विशेष परिचय बिसवाँ-कवि-मंडल के प्रसंग में दिया जायगा। यहाँ उपर्युक्त समस्या की पूर्ति दी जा रही है—

१—देखिए—'दिन फेर बत्तीसी' अर्थात् 'दिनन के फेर ते सुमेर होत माटी को' की समस्या पर ३२ कवियों का मनभावना संग्रह; संग्रहकार, कन्हैयालाल मास्टर; प्र० आवृत्ति, सन् १९०१ ई०, विद्याविलास-प्रेस, बनारस।

पूर्ति—मुक्त मनि माल छूटी देखत ही लीनि जान
कीनि जान विद्या-बुद्धि प्रखर निराटी है ।
श्रीद्विजभ्रदत्त वा मुरद्ध हू पा टूट मान
छूटै सान वज्र ना तिनूका सकै धाटी है ।
मूल बनि फूल नेव मारत न नावै नाग
मातु पितु बैगी हान सांप हान सांगी है ।
सुधा सोन हनाहन गान हान मित्र सत्रु
दिनन के फेरत सुमेर होन माटी है ।[1]

त्रिभुवननाथसिंह सरोज—

आपका जन्म सं० १९५७ वि० में नभापुरवा (बिसवाँ) जिला सीतापुर में हुआ था । आप चौधरी गंगाबख्शसिंह तालुकेदार रामपुरकलाँ (बिसवाँ) के तृतीय पुत्र हैं । आपने तालुकेदार स्कूल में शिक्षा पाई है । ब्रजभाषा-काव्य की ओर आपकी रुचि बचपन से ही रही है । मिश्रबंधुओं के अनुसार 'ब्रजभाषा के यह केवल अनन्य भक्त ही नहीं वरन् खड़ी बोली में काव्य रचना के प्रकट रूप से विरोधी हैं । रचना ऊँची श्रेणी की करते हैं ।'[2] सरोज जी के कविता पढ़ने का ढंग अत्यन्त मधुर एवं आकर्षक है । उन्होंने समय-समय पर सुन्दर समस्या पूर्तियाँ की हैं । इनका रचना-काल सं० १९८२ है । इन्होंने राधा विनय पचीसी (अप्रकाशित) तथा मेवाड़ मुकुट (अपूर्ण) ग्रंथों की रचना भी की है । आपकी कुछ पूर्तियाँ यहाँ दी जा रही हैं—

समस्या— गरद गुलाल की

पूर्ति—उठति भभूकन-सी मनो छाई धुंधी लाल ।
सघन गगन लागी अगन कै सखि गरद गुलाल ॥
होरी होरी करत अबीर भरि झोरी सब
खोरी खोरी कढ़ि धाईं टोली ब्रजबाल की
पिचका कनक कर कामिन कनक की-सी
घालत सरोज कुच ताकि छबि जाल की ।

1—देखिए—दिन फेर बत्तीसी सम्पादक कन्हैयालाल मास्टर ।
2—देखिए—मिश्रबंधु विनोद चौथा भाग पृष्ठ ४५७ (प्रथम आवृत्ति)

ऊधम मचाय दीन्हों ऐसों ब्रजमारिन ने,
भूलि बैठी सुधि तनु सारी नंदलाल की।
जारि दैहै अंग-अंग केसर को नीर वीर,
छार कर दैहै ब्रज 'गरद गुलाल की' ॥[1]

समस्या—"सीरी परी जाति है"
पूर्ति—पलकु सरोज न लगत पल भरहूँ को,
गहत न धीर श्वास धीरी परी जाति है;
चौंकि - चौंकि उठति तकति इत-उत हेरि,
सकति न उठि स्याह बीरी परी जाति है।

जाति चिरी तिनु सम विजन बयारि लागि,
पटल पटीर लाय भीरी परी जाति है;
पीरी परी जाति है घुरत लाल नित वह,
जेती सेंकी जाति तेती 'सीरी परी जाति है'।[2]

पं० श्यामनाथ 'द्विजश्याम'—

समस्या—"गरद गुलाल की"
पूर्ति—हरनि अमंगल जाल भरनि भवन संपति सुखद;
दरसत राधा-भाल बिंदी गरद गुलाल की।
सकल कामना दानि कामधेनु ऋतुराज की;
रतिपति की सुख दानि धनि यह गरद गुलाल की।
विपति निवारनि भूरि संपति दंपति भाल की;
मदन सजीवन मूरि धनि यह 'गरद गुलाल की'।

१—देखिए—'काव्य-कुंज-समिति' के बृहत् कवि-सम्मेलनों में पठित उत्तमोत्तम भाव-भरी, प्रेम-पूर्ण तथा गौरवानुराग पगी, सरस, सुंदर कविताओं की कोमल कुसुमित कलियों का कुंज। संपादक तथा प्रकाशक, भवानीफेर शुक्ल 'मधुर', मंत्री हिंदी-साहित्य-समिति, फ़ैज़ाबाद, संवत् १९८४ वि० 'हरिऔध'जी के सभापतित्व में पठित समस्या-पूर्ति १३-२-२७ ई०।

२—देखिए—'काव्य-कुंज'; संपादक—भवानीफेर शुक्ल।

धाय-धाय हारी नीर बीच जोय जोय हारी
रोय रोय हारी हारो मारी नद लाल की ,
रक्त भई पूरन असक्त भई द्विजश्याम
पीर कहँ कासो इम विकल विहाल की।
वदन वताय हारी वेदन देखाय हारी
सकल उपाय हरि हारी मूठि घाल की ,
हाय इन नैनन की दरद न जाय कैसी
वदरद डारी यह 'गरद गुलाल की।'[1]

समस्या—'साजैं'

पूर्ति—भूषण की तू विभूषण है तऊ तेरे ही अगन भूषण राजैं ,
है इनही सो सुहाग सखी पहिरो लखि सौतनियाँ जेहि लाजैं ,
भार को कीजै विचार नही द्विजश्याम जू पीतम के सुख काजैं ,
साजन के सुख साजन को सबही सजनी सुख साजन साजैं ।
कोकिल की अलि की पपिहा की जुरै लगी चारहूँ ओर समाजैं ,
फूलन लागे प्रसून के पुज रसालन त्यो वर बौर बिराजैं ,
पैन्हो विभूषण आजु के द्यौस लजौ द्विजश्याम सकोच और लाजैं ,
कामिनिया सबै कत के काज वसत के साज बसत को 'साजैं'।[2]

माधवचरण द्विवेदी 'माधव'—

आपका जन्म स० १९५८ वि० म, पैंदापुर ग्राम (बिसवाँ, सीतापुर) म, हुआ था । आपके पूर्वज सस्कृत-साहित्य एव व्याकरण तथा ज्योतिष के महान् पडित थे, अतएव साहित्याभिरुचि आपको विरासत के रूप म प्राप्त हुई थी। माधवजी की रुचि बचपन स ही व्रजभाषा-काव्य की ओर रही, और उसको तब पूर्ण सबल मिल गया, जब कविवर अनूपजी का सपर्क इन्हे प्राप्त हुआ । अनूपजी के साथ रहकर माधवजी ने व्रजभाषा म अनेक उत्तम छद रचे । माधवजी के छद पढने का ढग अत्यत आकर्षक एव सुदर है । यही कारण है कि जिन-जिन कवि सम्मेलनों मे माधवजी न भाग लिया वही इन्हे सम्मान मिला । माधवजी की कविताओं का एक सग्रह 'माधव मजुप' नाम से प्रकाशित हो चुका है । यहाँ पर उनकी कुछ समस्यापूर्तियाँ दी जा रही हैं—

१—देखिए—'काव्य-कुज' सपादक भवानीशकर शुक्ल ।
२—देखिए—'काव्य-कुज' हरिऔधजी के सभापतित्व मे पढी समस्या पूर्ति

समस्या—"साजैं"

पूर्ति—वे विहरैं बृषभानु के आँगन ये नंद मंदिर माँहि विराजैं,
वे मुरली सुरलीन कै मोहत ये कल कूजतीं हैं दधि काजैं ;
शीश पै मोरपखा उनके इनके युग पायन नूपुर बाजैं,
वे घनश्याम तो ये चपला व्रज दंपति संपति के सँग 'साजैं'।[1]

समस्या—"मचलिगे"

पूर्ति—आयो इत बाँसुरी बजावत गोपाल लाल,
जान्यो आज कतहूँ हमारे भाग्य फलिगे;
'माधव' की मेरी यह नैन की घलाघली में,
घेरि घरहाइन के वृंद आय खलिगे।
मैं तो नत-आनन गई ह्वै छिन ही में और,
नैन-बान चंचल चलाक इतै चलिगे;
नैननि ढरकि कै, कपोलनि सरकि बीच,
अँसुवा हमारे गिरि गोद में 'मचलिगे'।[2]

समस्या—"मधुवन में"

पूर्ति—कौन-सी धौं आज दामिनी की है दमक पाय,
घेरि आए मोरवा मनोज मढ़े छन में;
कौन-सी हवा है वही आज बरसाने बीच,
धावति लख्यो री आली साँपिनी गगन में।
कौन वा नवेली कहु, कौन अलबेली वह,
कौन वा चमेली जाकी घूमत लगन में;
जानै कौन कलिका चहत विकसन आज,
'माधव' - मधुप मँडरात मधुवन में।[3]

१—देखिए—'काव्य-कुंज' हरिऔधजी के सभापतित्व में पढ़ी समस्यापूर्ति।

२—देखिए—'माधव-मधुप', माधवचरण द्विवेदी (पृष्ठ ५)
खैराबाद-कवि-सम्मेलन में पढ़ी पूर्ति।

३—देखिए—वही " " (पृष्ठ ६)
कानपुर-कवि- सम्मेलन में पढ़ी पूर्ति।

समस्या—"हारी मैं"

पूर्ति—दूँगी न उलाहना कदापि ब्रज-वासियो को,
लेती भानुजा के तीर शपथ तिहारी मैं ,
हाथ है तुम्हारे ब्रजराज लाज आज मेरी,
औघट है घाट हूँ अकेली पनिहारी मैं ।
छूट ही पडेगी टूट जाएगी धरा पै गिर,
लूट यह कैसी फँसती हूँ अब झारी मैं ,
कर न मरोडो श्याम, अग मत तोडो श्याम,
बस-बस छोडो श्याम ! जीते आप 'हारी मैं' ।[1]

अवधबिहारी मालवीय 'अवधेश' (गर्गाश्रम, कानपुर)—

समस्या—'सीरी परी जाति है'

पूर्ति—तू ही थी प्रसिद्ध मेदिनी में अग्रगण्य वीर,
तू ही तुच्छ जीवों को बिलोकि कै सकाति है ।
होते शीश तेरे पै जघन्य नित्य अत्याचार,
तो हूँ भूलि रूप ठौर-ठौर मार खाति है ।।
'अवधेश' होने कर्म-धर्म भी न पाते हाय
ऐरी हिंदू जाति, कौन हेतु अलसाति है ।
प्रबल प्रचड था प्रताप रवि तेरो किंतु
आज रोज रोज जोति 'सीरी परी जाति है' ।[2]
जोरि-जोरि मपनि धरा की लै धरी है धाम,
डाइन तृषा ये ना तहूँ पर बुझाति है ,
खायो न पवायो रोज-रोज अपनायो खूब,
'अवधेश' सो तो साथ जाति ना दिखाति है ।
आयो अत काल तो जचन जग लागो जाल,
जोर जब स्वास कठ बीच घहराति है ,
धीरी परी जाति पल पल धमनी हू हाय,
क्षण क्षण देह सारी 'सीरी परी जाति है' ।।

१—'माधव मधुप' (पृष्ठ ८०) हाई स्कूल बिगवाँ म पढ़ी पूर्ति ।
२—देखिए—'काव्य-कुज' ।

चंद्रशेखर त्रिपाठी 'द्विजहंस'—

हूक-सी लगी है हिये कूक-कूक वाकुन की,
हीतल में शीतल समीर ना सुहाति है;
बागन में चहकि गुलाब चटकावै उर
मोरन के शोरन तें व्याधि बढ़ि जाति है।
द्विजहंस वृंद ए मलिंदन के धावै लगे
कोकन अशोक देखि शोक अधिकाति है;
चंद छबि छीन दीप तारिका मलीन रैन
पीरी परि धीरे-धीरे 'सीरी परी जाति है'।[१]

भवानीफेर शुक्ल 'मधुप' फ़ैज़ावाद—

एहो श्याम प्यारे कह करत अवारे नाथ
रही-सही लाज सभा बीच हरी जाति है;
पाण्डव प्रताप हीन बैठे ह्वै मलीन मन,
भीषम धवल कीर्ति पंक भरी जाति है।
होते पाँच पति हू पंचानन समान बली,
तिनकी शशक हाथ नारि मरी जाति है;
कैधौं वनवारी तुम सुरति बिसारी मोरि
कैधौं धार चक्रहू की 'सीरी परी जाति है'।
गिरि को उठाय गर्व गरुता गरायो इंद्र
लीन्हो है बचाय गोप ग्वाल जग ख्याति है;
गज की गोहार पै अवार नाहिं कीनों नाथ,
मेरी टेर बेर बेर विफल दिखाति है।
भीषमपितामा पार्थ बैठे महारथी मौन,
होयँगे सहाय नाहिं आश ये लखाति है;
अब तो गुपाल एक आसरा तिहारी रही,
क्षत्रिन की शूरताई है 'सीरी परी जाति है'।[२]

१—देखिए—'काव्य-कुंज'
२—देखिए— वही

उपर्युक्त दोनों छन्दों में कवि ने समस्या की सत्वर पूर्ति की है। द्रौपदी-चीर हरण-प्रसंग को उठाकर कवि ने समस्या की पूर्ति की है। साथ ही छन्दों में भावों की मार्मिकता भी भर दी है।

बाबूलालजी शर्मा 'ललाम' (फैजाबाद)—

समस्या—"है"

पूर्ति—सब झूठी फुरी बतियाँ गढ़ि कै सिगरे ब्रज में मिल बाँटति हैं,
करि हैं हम सोई जो ठानि चुकी वह नाहक ही हमें डाटति हैं,
मिलके सब आपस में ये 'ललाम' बचाव के ठाटन ठाटति हैं,
हम तो ब्रजराज की ह्वै चुकी है ऐलिये कुलकानि को चाटति हैं।

वासना-विहीन जोगी कब से भए हैं स्याम,
कीन्हो कब जाय निज इद्रिन सुधार है,
ब्रज बनितान संग कीन्हो जो सुकर्म ऊधो,
कहत बनैना ऐसी करनी अपार हैं।
कहत 'ललाम' बने रहित विकार कैसे,
छाडि मर्याद भए कूबरी के यार हैं,
तुमसे सुजान तो बतावें गुनवान उन्हें,
मेरी जान वे तो पूरे औगुन अगार हैं।[1]

मनोहरलाल मिश्र (रसिक समाज कानपुर)—

समस्या—"पतिया पठई पिय सावन मे"

पूर्ति—घन घेरे घटा चहूँ ओर चली, चिनगी जुगुनू चमकावन मे,
मुरवान के कूक अटूक करैं, सहि हूक महा पछितावन मे,
मनमाहि मनोहर दंपति के, बिरही तन ताप तपावन में,
अलि आए नहीं यहि धावन में, 'पतिया पठई पिय सावन में' ॥१॥
अब मोहि सतावन काम अली, तू कहे निशि बासर गावन में,
मेंहदी पग लाल निहारि मनोहर, सोच सदा मन भावन मे,
पिय प्यारे मिलै दुख न्यारे करो, सदा आस यही तन तावन में,
अब हाय विधाता मैं कैसी करूँ, 'पतिया पठई पिय सावन में' ॥२॥[2]

१—देखिए—'काव्य-कुंज', विद्याभूषण पं० रामनाथजी ज्योतिषी (अयोध्या) के सभापतित्व में पढ़ी समस्यापूर्ति (१९-१२-३६)

२—'विज्ञवृन्दावन' (पाक्षिक), अंक ३, पृष्ठ ८ (अगस्त, सन् १८९२ ई०)

गोस्वामी छबीलेलाल फतेहगढ़—

समस्या—"अवला अवलौं अवलोकति है।"

पूर्ति—लाल छबीलेहि सों नव नेंह पगी उमगी मत रोकति है।
जे तुम श्याम कहीं बतियाँ रतियाँ सिजियाँ सज धोकति है ॥
पयछल पावत ही उठ धावत को कह कै तिह टोकति है।
द्वार लगी तव आगम को 'अवला अबलौं अवलोकति है' ॥१॥

जीवन-मूरि लिए अकरूर चल्यो मथुरा मग जोवति है।
सो न कही कछु जात दही विरहानल सों सव भोगति है ॥
छैल छबीले छली छलसों भर वारि विलोचन रोवति है।
नैनन तें रथ के पथ को 'अवला अवलौं अवलोकति है' ॥२॥[१]

गौरीशंकर भट्ट नयागंज, कानपुर—

समस्या—"प्रेम बातें चुनियतु है"

पूर्ति—आयो ऋतु पावस सखीरी यह भागनतें,
प्रीतम पियारे को अवाई सुनियतु है।
यातें निशि वासर पपीहा मोर दादुर औ'
कोकिल कलाप मन में ही गुनियतु है।
छाए है छवीले मेघ शंकर सुहाए नभ,
सोई देखि-देखि कै मलारें धुनियतु हैं।
काम की तरंग औ' उमंग रस रीतिन सों,
चोखी, चटकीली 'प्रेम-बातें चुनियतु ' ॥[२]

लाला भगवानदीन—

समस्या—"पार न पावैं"

पूर्ति—हिंद-निवासी सबै मत के जन जो कहुँ मेल-मिलाप बढ़ावै।
धर्म विरोध विहाय सबै मिलि देश उधारन में चित लावैं ॥
वासर चारिक ही में भली विधि मान्य बनै अरु सभ्य कहावै।
'दीन' भनै पुनि वीरता में कोउ पूरब पच्छिम 'पार न पावैं' ॥[३]

१—'विज्ञवृन्दावन' (पाक्षिक) पृष्ठ ८, अगस्त, सन् १८९३ ई०,
२—'विज्ञवृन्दावन' पृष्ठ १५ (अंक ८-९-१०-११) २२ अक्टूबर, सन् १८९२ ई०।
३—'काव्य कलानिधि' (मासिक) पृष्ठ ११, अंक १, वर्ष ८, मई १९०७ ई०

बखमराम पाड सुजान हल्दी बलिया—

पूर्ति—घरि घने बदरा चहुँ ओर त बुन्दन त सबशोर मचावें।
सोहैं सुजान निशामुख का तम भूरि भयानकता दरशावे॥
जैहो पथी तुम कैस चल अवरोध महा मग माँहि सुभावें।
बाहिर ग्राम बढो सरिता अहै पैरतहूँ जेहि पार न पावें'॥[1]

सयद अमीरअली मीर देवरी सागर—

पूर्ति—मीर न काजर दै सकती सखियाँ अँखियाँ लखि कै भ्रमिजावें।
घाघरि घर म गाज रहै घिरि सी न सकें दरजी चकरावें॥
त्यो चूरिहारिन की गति चूर चितर कला अपनी विसरावें।
ह्वज की चद-कला सी भई नवला छबि का कवि 'पार न पावें'॥[2]

महावीरप्रसाद मालवीय वैद्य वीर कवि कोढ मिरजापूर—

समस्या— तिय ढाँकि दिगंबर अंबर सो।

पूर्ति—विरहा-वस प्रान विहान भई पपक पै लोटे अडंबर सो।
दहक छतियाँ तिन्है ढाँकि सुधार सुराप नखास है कबर सो॥
मनो रुद्र प मार चढ्यो करि कोप तऊ चदमुखी पुनि अंबर सो।
दाउ भौंह कमान चढाय लियो तिय ढाँकि दिगंबर अंबर सो॥[3]
लहराति है गग की भाँति सदा बलखात कई विधि कम्मर सो।
मुखचद लिये चमके चहुँधा मगरूर भरी है अडंबर सो॥
कवि वामन ब्याल धरे नट हैं दोउ भौंहि चढाय सुसम्मर सो।
दुइ खड कै राख सदा उर पै तिय ढाँकि दिगंबर अंबर सो॥[4]

हरिपालसिंह साहिलामऊ हरदोई—

समस्या— नागरी बिचारी की

पूर्ति—धन्य रहे थोरे स सुजन वे सराहनीय,
जिन तम-पूरित स्वदेश म उज्यारी की।
बिगरी दशा तें शुद्ध रूप है बढायो मान
लाख-लाख ज्यौंत सा अदालत लौं जारी की।

१—देखिए— काव्य कलानिधि (मासिक) पृष्ठ १०, अंक १ वर्ष ८, मई १९०७ ई०
२—देखिए— वही ,, ,,
३—'हरिश्चद्र कौमुदी (मासिक) भाग २ सख्या ६ पृष्ठ ८९ सितबर १८९५ ई०
४— वही ,,

आज हरिपालजू समाज में न तौन जोस,
आपस की ऐंचतान ठान रारि भारी की।
रोवै मनुमारी हाय ह्वै रही खुवारी,
भारतेंदु की दुलारी 'देवनागरी बिचारी की'।[1]

ठाकुर गदाधरबख्शसिंह सुजौलिया, सीतापुर—

पूर्ति—जोरहिं अशुद्ध केते बेतुक बनाय पद,
पूर्ति करि डारैं चट खुद मुखतारी की।
जानत न पिंगल न मानत सिखैवो नेक,
बैठत प्रणाली छोड़ि सकल अगारी की।
चोट-सी लगत नोट दीजिए न हानि जानि,
पूर्ति भी न भेजिहैं जो रीति यह जारी की।
काह अब कीजिए गदाधर बिचार चित्त,
उन्नति भला हो किमि 'नागरी बिचारी की'।[2]

मुकुंदीलाल—

समस्या—"बनि आवहीं"

पूर्ति—कपट न राखैं मुख भाषैं न असत्य बैन,
हित अभिलाषैं हिये सहज सुभावहीं।
कीरति प्रकासैं हठि नासैं अपकीरति को,
आपद परे पै प्रेम सौगुन बढ़ावहीं॥
भेद नहिं मानै सनमानै सदा चाह भरे,
सुहृद समागम विशेष सुख पावहीं।
ऐसी भली मित्रता विलोकि के मुकुंदलाल,
त्यागि वैर वैरहू सराहे 'बनि आवहीं'॥[3]

उपर्युक्त पूर्ति में कवि ने सूक्ष्म वस्तु को स्थूलता प्रदान कर मानवीकरण के द्वारा अपने भाव व्यक्त किए हैं। प्रस्तुत पूर्ति में कवि ने सच्ची मित्रता पर प्रकाश डाला है।

१—'कविता प्रचारक' (मासिक) वर्ष १, अंक ११, १५ अक्टूबर, १९१३ ई०
(पृष्ठ ३४)
२—वही " " " (पृष्ठ ३३, ३४)
३—'काव्य कलानिधि'—वर्ष ८, अंक ३, पृष्ठ ७, जुलाई १९०७ ई०।

अमीरअली 'मीर'—

पूर्ति—आनददायनी मजु प्रभा जब कज सरोवह मे प्रसरावही ।
राग पराग को पौनहि दैके उदारता आपनी मीर दिखावही ॥
दौरि के आवत भौंर तबै दिवा कै मनुहार गुहार मचावही ।
अत हिमन्त म जो रहे जायकै मत बसत मे 'सो बनि आवही' ॥[1]

बक्सराम पाडे 'सुजान'—

पूर्ति—वृटिस की बाँह छाँह चाहत उछाह भरे,
द्वैत की जिकिरि भूलि आनन न लावही ।
सतत सहायक हमारी सरकार रहै,
ऐसे ही सुजान भाव हिय मे बढावही ॥
सधि हैं स्वदेसी के तबै ही काज सहजहि,
करि प्रेम पूरो करतव्य जो लखावही ।
लेक्चर ठाट पै न सभा फीट फाट पै त्यौं,
कोरे बायकाट पै न बात 'बनि आवही' ॥[2]

रामलखनसिह 'लाखन कवि'—

पूर्ति—सेवा जु करना है स्वदेसी बधु भारत वासियो ।
तो सपथ-पूर्वक कार्य करि चरचा विदेसी नासियो ॥
बहकाव लालच मे न परियो बैठ रह निज ठायही ।
डरना नही सिर पै जु कोऊ काल से 'बनि आवही' ॥[3]

रामनारायण मिश्र—

पूर्ति—विरह ताप तपै तनुता छई, नवल नीरद-सी अँखिया भई ।
मदन चौगुन चाय चढावही, भ्रमर स्याम सखा 'बनि आवही' ॥
सखि खडी जमुना तट मे रही, लखति नीर समीर बहै सही ।
मधुर गूँजत जो लखि पावही, भ्रमर माधव मे 'बनि आवही' ॥[4]

१—'काव्य कलानिधि—वष ८, अक ३, पृष्ठ ९, जुलाई १९०७ ई० ।
२— ,, ,, ,, ,, ,,
३— ,, ,, ,, ,, १०, ,,
४— ,, ,, ,, ,, ११, ,,

कृष्णानंद 'पाठक'—

पूर्ति—पवन झकोर जोर घोर सारे दादुर को,
झिल्ली झनकार हिये भय उपजावहीं।
उमड़ि घुमड़ि घन घेरि घहरान लागे,
पागे प्रेम भूरि मोर मोरिनी जगावहीं॥
उमग्यो अनंग अंग संग लाये जोरी निज,
विरह वियोगिनी को सुरति करावहीं।
प्रीतम विहीन कैसे अबला बचेंगी हाय,
मेघ उतपाती घने व्योम 'बनि आवही'॥[1]

महावीरप्रसाद मालवीय 'वीर कवि'—

पूर्ति—संतत कुचाली पर-द्रोह-रत कोह भरे,
धाके मदमोह दुराचार चित लावहीं।
लोक-अपवाद की जिन्हें न परवाह नेकु,
काम के गुलाम पूरे द्वैत दरसावहीं॥
ऐसे नर मंद ते जे चहहिं भलाई जग,
ऊसर में बोय बीज तृन उपजावहीं।
मढ़िवो नगारो कहूँ सुनियत वीर कवि,
चूहन के चामन ते कबौं 'बनि आवही'॥[2]

प्रयागनारायण 'संगम'—

पूर्ति—जस रावरो लजपत्ति जू चहुँ ओर लोग सुगावही।
विन तोहि वीर जुहाय देसिन्ह कौन देव हितावहीं॥
अब संगमो उर सूल है विपरीत दृश्य दिखावहीं।
कहँ वीर भारत पूत आजु अनेक ताँ 'बनि आवहीं॥[3]

१—'काव्य कलानिधि'—वर्ष ८, अंक ३, पृष्ठ १२, जुलाई १९०७ ई०।
२—वही „ „ „ १४ „
३—वही „ „ „ १९ „

हरिपालसिंह—

समस्या—"आस बिहाई"

पूर्ति—कैसो कराल दिनानि को फेर छयो भुवि भारत पै दुखदाई।
खोय दयो अवधेस[1] नरेशहि त्यो बलवीर[2] कवीन सहाई॥
माधव[3] राम[4] उदै[5] मुरलीधर[6] त्यो प्रिय भारत इदु को भाई[7]।
हा इनके बिन धीर धरै किमि नागरि उन्नति 'आस बिहाई'॥[1]

उपर्युक्त पूर्ति म कवि ने विषम परिस्थितियो का सकेत किया है। अनेक साहित्यकार उस समय चल बसे, जब कि हिंदी को इनकी नितात आवश्यकता थी। अयोध्या-नरेश ददुआ साहब सुदर्शन-सपादक, प० माधव मिश्र, बाबू राधा कृष्णदास एव बाबू रामकृष्ण वर्मा-जैसे उत्साही साहित्यकारो का देहावसान सच मुच हिंदी के लिये बहुत ही दु खद सिद्ध हुआ। कवि न इन्ही साहित्यकारो के निधन की ओर इगित किया है।

लाला भगवानदीन 'दीन (सपादक लक्ष्मी, छतरपुर)—

पूर्ति—सुदर मानुप को तन पाय सुसपति बुद्धि लही अधिकाई।
ज्ञान लहो पुनि मान लहो बलदायक स्वस्थ लहो तरुनाई॥
ये सब स्वारथ हैं तब ही जब देस-उधार करो मन लाई।
'दीन' भनै सुविचार समेत सुयत्न करो सब 'आस बिहाई'॥[2]

प्रस्तुत छद म कविवर दीनजी ने देश सुधार की बात कही ह। 'दीन'जी का कथन है कि मनुष्य का शरीर प्राप्त करके एव धन-सपत्ति और बुद्धि का वैभव प्राप्त करके देश-सुधार म जो व्यक्ति अपने को लगा दे, वही मनुष्य ह।

अमीरअली 'मीर'—

पूर्ति—लोभ पराग को दैके तुम्हैं, जो बुलाय भुराय के हैं इतल्याई।
कज कलीन पै वैठन देत ना, सोइ वसीठनी कै निठुराई॥

१—'काव्य-कलानिधि', जुलाई, १९०७ ई०, १ अयोध्या-नरेश श्रीददुआजी, २ बाबू रामकृष्ण वर्मा, काशी, ३ सुदर्शन-सपादक माधव मिश्र, ४ राम मिश्र शास्त्री, काशी, ५ उदितनारायणलाल, गाजीपुर, ६ मुरली धर, ७ राधाकृष्णदास।

२—वही „ „ „ „

'मीर' कहा कहै तौऊ तजौ नहिं, लाज अकाजहि क्यों बिसराई।
कैसे भए मद-अंध अहो अलि, प्रानन की वलि 'आस बिहाई' ॥[१]

यहाँ पर अव हम उन संस्थाओं का भी उल्लेख कर देना आवश्यक समझते है, जिनके द्वारा समस्यापूर्ति-काव्य की अभिवृद्धि हुई एवं जिनके प्रयत्न से समस्यापूर्तियों का प्रकाशन भी हुआ। यदि इन संस्थाओं ने समस्यापूर्तियों का प्रकाशन न कराया होता, तो आज यह काव्य सर्वथा लुप्त हो गया होता। इस दृष्टि से कवि एवं काव्य-संस्थाओं का वड़ा महत्त्व है। इनमें काशी कवि-समाज, काशी कवि-मंडल, रसिक-समाज (कानपुर), श्री कवि-मंडल (बिसवाँ) रसिक-कवि-मंडल (प्रयाग), श्रीद्वारिकेश-कवि-मंडन (काँकरौली) आदि अधिक प्रसिद्ध रहे हैं। इन्हीं का संक्षिप्त विवेचन यहाँ किया जाता है—

काशी-कवि-समाज (स्थापित १८९४) ई०—

काशी के गोपाल-मंदिर के अधिष्ठाता श्रीमद्गोस्वामी जीवनलालजी महाराज बड़े गुणग्राही तथा कविता-प्रेमी थे। इन्होंने व्रजभाषा-काव्य को जीवित रखने के लिये काशी में एक कवि-समाज की स्थापना की। इस कवि-समाज का अधिवेशन प्रति पंद्रहवें दिन होता था। इसमें प्रायः पूर्व निर्धारित समस्याओं की पूर्तियाँ हुआ करती थीं। इसमें न केवल काशी के कवि ही समस्यापूर्तियाँ करते, अपितु दूरस्थ कवि भी अपनी पूर्तियाँ भेजते थे। प्रथम अधिवेशन की एक पूर्ति देखिए—

समस्या—"सीधी ते सहस्रगुनी टेढ़ी भौह मीठी है"

पूर्तिकार—श्रीनवनीत चतुर्वेदी—

आपका जन्म मथुरा में, मार्गशीर्ष पंचमी, सं० १९१५ वि० को, हुआ। पुरानी परिपाटी के आधुनिक युग के कवियों में चौवेजी की ख्याति अधिक रही है। कहा जाता है कि रीतिकाल के प्रसिद्ध कवि ग्वाल से आपका संबंध था। आप काशी-कवि-समाज एवं कवि-मंडल को अपनी पूर्तियाँ भेजते रहे। कालांतर में कानपुर से निकलनेवाली सुकवि पत्रिका में भी आपकी समस्यापूर्तियाँ प्रकाशित होती रहीं। आपने अनेक काव्य-ग्रंथों की रचना की है। आप समस्यापूर्ति करनेवाले कवियों में अग्रगण्य थे। आपके छंद अधिकांश अच्छे होते थे। सं० १९८९

१—'काव्य-कलानिधि', जुलाई, १९०७ ई०, (पृष्ठ ८, ९)

वि० आषाढ़ी पूर्णिमा को आपका देहावसान हो गया। उपर्युक्त समस्या की इनकी पूर्ति देखिए—

पूर्ति—आई पेखि प्यारी की प्रभा को घनस्याम आज
उपमा जहान माँहि लागत अनीठी है।
कानि गुरुजन की न मान के समान बीच
प्रान की न नेको सुधि औरे भाँति दीठी है॥
नवनीत प्रीति की न रीति की सुनत कुछ
बोलत न कैसहूँ सुभाय करि मीठी है।
हा हा हरि जाय पाँय परिकै मनाय देखि
'सीधी तें सहस्रगुनी टेढ़ी भौंह मीठी है'।[1]

पूर्तिकार बाबू जगन्नाथदास रत्नाकर—

रत्नाकरजी से हिंदी-संसार भली भाँति परिचित है। अतएव यहाँ किसी विस्तृत विवेचन की आवश्यकता नहीं प्रतीत होती। रत्नाकरजी आधुनिक ब्रज भाषा-काव्य के सर्वोत्कृष्ट कवि एवं काव्य-मर्मज्ञ थे। उनका उदय तथा अधिकांश समस्यापूर्ति के क्षेत्र से ही निर्मित हुआ है। यदि यह कहा जाय कि रत्नाकरजी की काव्य प्रतिभा का विकास समस्यापूर्ति के द्वारा हुआ, तो गलत न होगा। रत्नाकरजी की पूर्तियाँ बड़ी भाव-पूर्ण एवं चुटीली होती थीं।

पूर्ति—विलग न मानिए बिहारी बनवारी बैस
कहा भयो जा पै अनखौंही करी दीठी है।
तुम 'रतनाकर' सुजान रसखानि वह
निपट अजान बासों ठानी क्यों अनीठी है॥
सरस सुरोचक में आकृति विचार कहा
कैसहूँ बिगारी नहिं होनहार सीठी है।
टेढ़ी तें सहस्रगुनी सूधी भौंह मीठी अरु
'सूधी तें सहस्रगुनी टेढ़ी भौंह मीठी है'॥ १॥
ठनगन ठानति कहा हौ ठकुरानी यह,
ठसक निहारी सब भाँतिन अनीठी है।
कहै 'रत्नाकर' पचैं न रसिया को कहूँ,
फेर पछितैहौ परी बानि यह ढीठी है।

१—काशी-कवि समाज—प्र० भा० प्रथम अधिवेशन। (पृष्ठ २)

हौं तो हित मानो हित बातनि बखानौ तुम,
तापै अनुमानौ यह करति बसीठी है।
बंद करि दीन्यौ मुख नंद के लला को वीर,
'सूधी तें सहस्रगुनी टेढ़ी भौंह मीठी है' ।। २ ।।[1]

द्विजबेनी—

समस्या—"पैयाँ परौं नेक मान करिबो सिखाय दै"

पूर्ति—ऐरी मेरी बीर भई निपट अधीर मैं तो,
करि ततबीर कौनो जतन बताय दै।
लोक की न लाज गुरु लोग को न मानै डर,
निपट निडर ताहि हटकि हटाय दै ।।
मान-अपमान की न वाके आनि बेनीद्विज,
रूसि-रूसि हारी बान छूटै न छुटाय दै।
डाल गलबहियाँ तबै लेत है बलैया कहैं,
'पैयाँ परौं नेक मान करिबो सिखाय दै' ।। १ ।।[2]

एक सखी दूसरी सखी से 'मान' सीखने के लिये निवेदन करती है कि ऐ सखी, मैं तेरी बलैया लेती हूँ, तू मुझे मान करना सिखा दे। अपने प्रिय को वश में कर लेने का कितना सरल ढंग निकाला है इस नायिका ने! नायिका का मान करना स्वाभाविक है, क्योंकि उसको अपने प्रिय को वश में करना है और इस विषय में वह सभी अन्य उपाय करके हार गई है। अतः वह इस अचूक ओषधि की प्राप्ति के लिये प्रयत्नशील है।

समस्या—"कहनोई परचो"

पूर्तिकार—माधोदास—

पूर्ति—इत ग्वाल गुलाल की झोरी लिए उत गोरी कमोरिन रंग भरचो।
धसि धाय धमार की धूधर में नभ मंडल लाल भयो सिगरचो ।।
गहि लीन्हो गोपालहिं घेरि सबै भरि अंजन रंजन नैन कर्यो।
छला कर छीनि लई मुरलि तो नंदलालै हहा कहनोई पर्यो ।।[3]

१—काशी-कवि-समाज—प्रथम भाग, प्रथम अधिवेशन (पृष्ठ ३)
२—काशी-कवि-समाज—प्रथम भाग, दूसरा अधिवेशन, (पृष्ठ ५)
३—वही „ „ „ (पृष्ठ १७)

समस्या—"एरी वह लचक हिये मे हालि हालि उठै"

पूर्तिकार—बचऊ चौबे 'रसीले'—

पूर्ति—ऊरध उसासै भरि कीरति किशोरी सदा,
रहि-रहि आँखिन ते आँसू ढालि ढालि उठै।
कहत रसीले सुनि-सुनि बन-बागन मे,
कोकिल की कुहुक करेजे सालि-सालि उठै॥
कब धौं मिलेंगे मनमोहन हमारे हाय,
जिन्हें बिन मदन कटारी घालि-घालि उठै।
छनक न भूलत सु झूलन समै की सुधि,
'एरी वह लचक हिये मे हालि-हालि उठै'॥[1]

कवि ने प्रस्तुत छंद मे वियोगिनी राधिका की मनोदशा का चित्रण किया है। कृष्ण वियोग मे राधिका की आँखो से आँसू बहते रहते हैं। वे दीर्घ निःश्वास भरती हैं और जब कभी बागो मे उन्हे कोयल की सुमधुर ध्वनि सुनाई पड़ती है, तो उन्हे और भी अधिक कष्ट होने लगता है। राधिका के हृदय मे उस समय की झाँकी अब भी अंकित है, जब वे कृष्ण को झूले पर झूलती हुई देखती थीं। कृष्ण की झूलते समय की 'लचक' अब भी स्मृति आने पर राधिका के हृदय मे आन्दोलित होने लगती है। राधिका को सबसे अधिक स्मृति झूला झूलने की आती है। इसी ओर कवि ने संकेत किया है।

समस्या—"जीवन मोर"

पूर्तिकार—अवाशंकर व्यास 'शंकर'—

पूर्ति—चितवन के चितए ते चित गोचोर,
सजनी वही सँवलिया 'जीवन मोर'।[2]

पूर्तिकार—बचऊ चौबे 'रसीले'—

पूर्ति—बिरह-भरी घबरानी गिय लट छोर,
भटकी कहती कितगे 'जीवन मोर' ॥1॥
रहि-रहि कसकति तिरछी वह दृगकोर।
पल-छिन उन बिन लागत 'जीवन मोर' ॥2॥

१—काशी कवि-समाज, प्रथम भाग, तीसरा अधिवेशन, (पृष्ठ २१)

२—वही „ „ चौथा अधिवेशन, (पृष्ठ १०)

ठाढ़ देखि पनघट वै नवल किशोर।
जाय डाल गलुवहियाँ 'जीवन मोर' ॥३॥
विकल भयो कहि दसरथ पुर भो सोर।
पापिनि हठि बन पठवति 'जीवन मोर' ॥४॥
अस सुधि जाय सुनायहु कपि कर जोर।
वीते अवधि अवधि नहिं 'जीवन मोर' ॥५॥
विष-सी लागति कोइल कुँहुँकनि तोर।
लेत हाय बरिअइयाँ 'जीवन मोर' ॥६॥
पीतम-मुख अनुहरिया ननदी तोर।
धीरज देख कलेजे 'जीवन मोर' ॥७॥
धरि-धरि बाँह गुजरिया जनि झकझोर।
नाजुक बहुत कँधैया 'जीवन मोर' ॥८॥
तेरो सुत बड़ रगरी गगरी फोर।
डगरी हाय बहावत 'जीवन मोर' ॥९॥
सूम भए नृप सगरे अब चहुँ ओर।
ऐ वल्लभ - कुल - दाता 'जीवन मोर' ॥१०॥
आवत धाय गुनीजन सुनि-सुनि सोर।
तिनतें मिलत कहत तू 'जीवन मोर' ॥११॥'

प्रस्तुत बरवे छंदों में कवि ने अवधी के बरवे छंद का-सा लालित्य लाने की चेष्टा की है। पहले बरवे में कवि ने सामान्य ब्रजभाषा के शब्द 'भटकि' और 'कहति' को 'भटकी' और 'कहती' कर दिया है, किंतु ऐसा रूप ब्रजभाषा में बहुधा पाया नही जाता। फिर भी कवि के कुछ बरवे छंद बहुत ही अच्छे बन पड़े हैं, इनमें छंद तीसरा, पाँचवाँ, आठवाँ एवं नवाँ विशेष उल्लेख्य है।

पूर्तिकार—नवनीत—

पूर्ति—कमल नयन मुख चंदा इतहि चकोर।
कुरु सहजं तव दर्शन 'जीवन मोर' ॥१॥
वह ब्रजराज सँवलिया नंदकिशोर।
जीवन जीवन माही जीवन मोर ॥२॥

१—काशी-कवि-समाज, प्रथम भाग, चौथा अधिवेशन, (पृष्ठ ३१-३२)

अस चत्र मोर करमवा मिलहिं बहोर ।
नँद नदन जग-जीवन 'जीवन मोर' ॥३॥
जीवन जीवन माही जीवन मोर ।
जीवन जीवन जानत 'जीवन मोर' ॥२॥'

पूतिकार—गंगाप्रसाद 'राममय'—

पूर्ति—आखर कोउ न रखार के है बिनु जोर ।
देखहु सकल बरन पै 'जीवन मोर' ॥१॥
ऊधव सन सब व्रज सखी कह कर जोर ।
ध्रुव करि नहि बिनु स्याम क 'जीवन मोर' ॥२॥
सीय-राम-पद-कमल के रस की ओर ।
रे मन मधुकर लुब्ध पल 'जीवन मोर' ॥३॥
जाय मयूर न नाचत लखि घनघोर ।
गरजि असीसति घन नेहि 'जीवन मोर' ॥४॥'

पूतिकार—रत्नाकर—

पूर्ति—नवनीरद दामिनि दुति जुगुलकिसोर ।
पेखि मुदित अति नाचत 'जीवन मोर' ॥१॥
व्रजजीवन जीवन सो जीवन मोर ।
व्रजजीवन जीवन सो 'जीवन मोर' ॥२॥
पिय पयान की बतियाँ सुनि सखि भोर ।
आँस नही दृग आवत 'जीवन मोर' ॥३॥'

समस्या—"अरुन उदै की कंज-कली-सी लसति है"

पूतिकार—चचऊ चौबे 'रसीले'—

पूर्ति—भारी जोम जोबन के खेलति अनोखी फाग,
बढ़ि-बढ़ि गोल सो दरेरो दै धसति है ।
कहत 'रसीले', अठिलाय चतुराइन ते,
छनक छबीली छैल फदना फँसति है ॥

१—काशी-कवि-समाज, प्रथम भाग, चौथा अधिवेशन, (पृष्ठ ३१-३२)
२—वही " " " "
३—वही " " " "

औचक बिछलि लाल रंग के सुहौज बीच,
भई तरावोर गिरि चंचल हँसति है।
मानो काम भूपति के मानिक सरोवर में,
'अरुन उदै की कंज कली-सी लसति है' ॥[१]

पूर्तिकार—नवनीत—

पूर्ति—रूप सरवर में अनूप रस रंग भरी,
तरल तरंग अंग अंगनि कसति है।
'नवनीत' जोबन प्रवाल औ' सुबाहु नाल,
मीन दृग चिकुर सिवारन फसति है ॥
कुच चकवाक ताक ताक नियराने कछू,
सिसुता कमोद कुल लाजनि गसति है।
एहो नंद नंद तुम रसिक मलिंद यह,
'अरुन उदै की कंज कली-सी लसति है' ॥[२]

समस्या—"बाजन बजन-ये अनूप नुपूरन की"—

पूर्तिकार—नवनीत—

पूर्ति—नवल निकुंज मंजु गुंजत मलिंद पुंज,
रंजित रतनि ज्योति भूमि भूपुरन की।
नृत्यति किशोर चितचोर मुखमोर मोर,
उपमा अवर्न तर्न चर्न हू पुरन की ॥
कहैं 'नवनीत' पीतपट की चटक तैसी,
खटकी मटक दृग-द्वार दू पुरन की।
गाजन गजन कल किंकिनी समाजन की,
'बाजन बजन ये अनूप नूपुरन की' ॥[३]

१—काशी-कवि-समाज, प्रथम भाग, चौथा अधिवेशन, पृष्ठ २२
२—वही „ „ „ „ २३
३—वही „ „ „ „ २६

समस्या—'हमही यह लाल अनीति करी तुमसो बिन जाने जो प्रीति करी'
पूर्तिकार—द्विजबेनी—

तब तो इतनो ना विचार कियो अब सोई हमारेई सीस परी।
नहिं जानत कान्ह हमे तजिकै चित लै बसिहैं मथुरा नगरी॥
वह कूबरी सिंधिन-सी तड़पै ब्रजवासिनी बेनी बनै बकरी।
'हम ही यह लाल अनीति करी तुमसो बिन जाने जो प्रीति करी'॥[1]

उपयुक्त समस्या सोमनाथ के एक छंद पर आधारित है। मूल छंद देखिए—

नहिं कै इत झूंठ उहाँ उनसो मिलिकै निसि मे रस-रीति करी।
अब भोर भए उठि आए दुरे-दुरे आनन ही मो मुसीति करी॥
ससिनाथ सुजान हो रावरे तो सबही विधि आपनी जीत करी।
'हमही यह लाल अनीति करी तुमसो बिन जाने जो प्रीति करी'॥[2]

उपर्युक्त समस्या पर कविवर ब्रजराज की भी एक पूर्ति देखिए—

पूर्ति—पहले निज नैनन माँहि बसाय भली विधि सो रस-रीति करी,
अब देखिबे को तरसें अँखियाँ निसिहूँ दिन आँसू की लाय झरी।
ब्रजराज न चाहिए ऐसी तुम्हें करि रीति हुती अनरीति करी।
'हम ही यह लाल अनीति करी तुम मो बिन जाने जो प्रीति करी'॥[3]

समस्या—"तुम मेरे हिये मे सुखद सरसत वह,
रावरे हिये मे याते बोझनि मरनि हौ"
पूर्तिकार—द्विजबेनी—

पूर्ति—लंकापति रानी अकुलानी आनि पीतम सो,
बोली सीस नाय, नाथ! बिनती करनि हौ।
सीता-सो सती पै सत्य मानि कै न दीजै ध्यान,
ह्वै है जन-हानि जानि-जानि या डरत हौ।
राम रार ठानि न बनैगी बात 'बेनीद्विज',
याही अफसोस को हुतासन जरनि हौ।
'तुम मेरे हिये मे सुखद सरसत वह,
रावरे हिये मे याते बोझनि मरति हौ'॥[4]

१—काशी-कवि-समाज, प्रथम भाग चौथा अधिवेशन, (पृष्ठ ३३)
२—रसपीयूष निधि (परकीया मध्दिता)
३—माधुरी, वर्ष ९, खंड १, संख्या ६, जनवरी-जून, १९३१ ई० (पृष्ठ ८१४)
४—काशी-कवि-समाज, प्रथम भाग, पाँचवाँ अधिवेशन, (पृष्ठ २७)

पूर्तिकार—नवनीत—

पूर्ति—बाल अलसानी लाल नेह की निसानी देखि,
मन मुरझानी क्यों मनोज निदरति हौ।
'नवनीत' पीत क्यों मयंक मुख तेरो आज,
कुटिल कलंक ही की शंक ते डरति हौ॥
नैन कत घूमैं उत झूमत झुकत यातें,
कर कर हापैं क्यों बिचार ही करति हौ।
'तुम मेरे हिये में सुखद सरसत वह,
रावरे हिये में याते बोझनि मरति हौ'॥[1]

समस्या—'प्रीति मिटे हूँ मिटै न परेखो'

पूर्तिकार—नवनीत—

पूर्ति—क्यों वन बीथिन में बहकाय बजाय के बेनु बिनै अवसेखौ।
त्यों नवनीत हर्‌यो हियरा हँसिकै सरसाय सनेह को लेखौ॥
हाय रिझाय फँसाय के प्रान गयो तरसाय के रूप विसेखौ।
ऊधव वा ब्रजनाथ के साथ की 'प्रीति मिटे हूँ मिटै न परेखो'॥१॥[1]

रीति घटै तौ भलें कुल की घटि जाउ सबै परतीति को लेखौ।
त्यौं 'नवनीत' प्रिया घट ते न घटै कबहूँ वह प्रेम अलेखो॥
ऊधव जोग को जोग कहाँ ह्याँ बियोग को रोग रह्यौ बढ़ि देखो।
'प्रीति घटै तो परेखौ घटै जो न 'प्रीति घटै तो घटे न परेखौ'॥२॥

समस्या—"प्रान परे साँकरे न हाँ करै न ना करै।"

पूर्तिकार—रत्नाकर—

नजर धरा पै अधरा पै पपरानि परी,
कर दै कपोल लोल लोचन कहा करै।
कहै 'रत्नाकर' कन्हैया कहूँ दीठि पर्‌यो,
करति दुराव कहा प्रगट दसा करै॥

१—काशी-कवि-समाज, प्रथम भाग, पाँचवाँ अधिवेशन, (पृष्ठ ३८)
२—वही ,, ,, सातवाँ ,, ,, ६०

यो सुनि सखी के बैन सलज रसीले नैन,
नेसुक उठाये जिन्ह हेरन बिथा करै ।
लाज-काज दुहुन दबायो दुहुँ ओरन सों,
'प्रान परे साँसरे न हाँ करै न ना करै' ॥[1]

समस्या—"मद करै चदहि अमद मुख प्यारी को"

पूर्तिकार—बाबू रामकृष्ण 'वर्मा'—

वह सकलक यह राजै निकलक मुख,
सुदर सलोनो वृषभानु की दुलारी को ।
अनुदिन छीजै वह छिन छिन बाढै यह,
छीन लेत छनमें सुमन बनवारी को ॥
आलिन कुमोदिनी समोदिनी बनावै,
मुरझावै जलजात मन सौति सुकुमारी को ।
आनद को कद ब्रजचद मुख दीबे वारो,
'मद करै चदहि अमद मुख प्यारी को' ॥[2]

समस्या—' साँवरे छैल छुओगे जो मोहि तो गातनि मेरे गुराई न रैहै '

पूर्तिकार—अबिकादत्त 'व्यास'—

साँवरे हौ नख ते सिख लौं इहि में तो कहा कोऊ ससय कै है ।
साँवरे भीतर हूँ कै अहो यह काम परे सब ही लखि जै है ॥
अबिकादत्त जू दूरि हटो हम साँवरे सों को कलक लगै है ।
'साँवरे छैल छुवोगे जो मोहि तो गातनि मेरे गुराई न रै है' ॥[3]

पूर्तिकार—पडित युगुलकिशोरजी मिश्र 'ब्रजराज'—

ब्रजराजजी हिंदी के उन कवियो म आते हैं, जो प्रौढ साहित्यिक परपरा के अनुयायी थे । आपका जन्म सीतापुर जिले के अतर्गत गधौली ग्राम म, सन् १८६१ ई० मे, हुआ । आपके पूज्य पिता कविवर श्रीलखराजजी हिंदी के एक प्रसिद्ध कवि थे । अतएव कविता की अभिरुचि होना आपम स्वाभाविक ही थी । भाव और

१—काशी कवि समाज प्रथम भाग छठा अधिवेशन, (पृष्ठ ५१)
२—वही „ „ सातवाँ „ „ ६२
३—वही „ „ आठवाँ „ „ ७३

भाषा का संतुलन आपकी कविता का विशेष गुण है, जो आपकी समस्यापूर्तियों में प्रायः देखने को मिलेगा। भाषा के विषय में प्रसिद्ध है कि एक बार आपने आधुनिक व्रजभाषा-काव्य के सर्वश्रेष्ठ कवि श्रीरत्नाकरजी को भी इसलाह दिया था।[1] यह आपके भाषा-अधिकार का द्योतक है।

समस्यापूर्ति के रूप में आपका विशेष संबंध काशी-कवि-समाज, काशी-कवि-मंडल तथा विसवाँ श्रीकवि-मंडल से रहा। विसवाँ-कवि-मंडल ने आपकी काव्य-प्रतिभा से प्रभावित होकर आपको साहित्य-शिरोमणि की उपाधि से विभूषित किया था। एक बार आप उसके सभापति भी चुने गए थे। आपकी अधिकांश समस्यापूर्तियाँ कविवर रत्नाकर तथा नवनीत चतुर्वेदी आदि उत्कृष्ट कवियों की टक्कर की होती थीं। उपर्युक्त समस्या की पूर्ति देखिए—

औसर के बिन ही मिलिबे में अवै सिगरे व्रज चौचँद ह्वै है।
हे व्रजराज बिनै सुनो मेरी इतै मग में कछु हाथ न ऐहै॥
देखती हैं ते कलंक लगैहै कलंक की कालिमा अंगन छैहै।
साँवरे छैल छुवोगे जु मोहिं तो गातन मेरे गुराई न रैहै॥[2]

समस्या—"सीतल सुगंध मंद मारुत की लहरें"
पूर्तिकार—श्रीद्विजबेनी—

पूर्ति—सीतल मनीनन के महल मनोज वारे,
छूटत फुहारे न्यारे मानौ मेघ घहरें;
सीतल अतर सों तरातर दिवार दर,
बेनी द्विज सीतल गुलाब नीर नहरें।

१—रत्नाकरजी ने जब अपने उद्धव-शतक का छंद—आये हो सिखावन को—की रचना की, तो उन्होंने इसे व्रजराजजी को दिखलाया। व्रजराजजी ने छंद की प्रशंसा करते हुए कहा, रत्नाकरजी ! मन-मुकुर के चूर-चूर होने से आप अनेक मन-मोहन कैसे बसा सकेंगे ? चूर-चूर होने से बिंबग्रहण तो हो नही सकता, अतएव यदि आप चूर-चर के स्थान पर टूक-टूक कर दें, तो बिंबग्रहण भी हो जायगा और अनेक मनमोहन भी सरलता से बस जायँगे। रत्नाकरजी ने व्रजराजजी की इसलाह मान ली, और छंद का पाठ टूक-टूक कर दिया। देखिए—(उद्धव-शतक-रत्नाकर—छंद ४०)

२—काशी-कवि-समाज के आठवें अधिवेशन में उपर्युक्त समस्या दी गई थी। यह अधिवेशन वैशाख कृष्ण १, संवत् १९५१ को हुआ था। व्रजराजजी ने इसमे अपनी पूर्ति नही भेजी थी।

सीतल हिमन-सो नखात रितु ग्रीषम की
सीतल सदा ही जहाँ जेठ की दुपहरें,
पौढ़ परजक पै निसंक लेत दोऊ जहाँ
सीतल सुगंध मंद मारुत की लहरें ॥[1]

पूर्तिकार—रत्नाकर—

पूर्ति—झमि-झूमि झुक्त उमडि नभ मडल म
घूमि घूमि चहुँधा घमडि घटा घहरें,
कहै रतनाकर त्यो दामिनि दमक दुर—
तिमिर दिसानि दौरि निश्चय छटा छहरें।
सारे सुख सपनि के दपति दुहूँ वे दर्ने
अग अग जिनक उमग भरे थहरें,
फूलों क झूलन प सहित अनंद नेत
सीतल सुगंध मंद मारुत की लहरें ॥ १ ॥

आय अँठखेलिन सा अमित उमग भरें
जिनक प्रसंग सों तरुनि अग थहरें,
जीवन जुडाव रसधाम रतनाकर को
सुखद तरंग मृदु जिनसो ढरहरें।
अग लागि मेरे बिन बाधक सुखन सोई
ऐसी कब भाग पुज होय कुंज डहरें
दइ हरि हीतल को कौन नद नद ? नाहिं
सीतल सुगंध मंद मारुत की लहरें[2] ॥ २ ॥

उपर्युक्त समस्या महाकवि देव के निम्न छन्द पर आधारित है। छन्द देखिए—

सीतल महल महा सीतल पटीर पक
सीतल कै लियो गीति छिति छाती दहरें

१—काशी-कवि-समाज प्रथम भाग ११वाँ अधिवेशन प्रथम समस्या (पृष्ठ १००)
२—वही (पृष्ठ १०२)

सीतल सलिल गरे सीतल विमल कुंड,
सीतल अमल जल-जंत्र धारा छहरें।
सीतल बिछौननि पै सीतल बिछाई सेज,
सीतल दुकूल पैन्हि पौढ़े हैं दुपहरें;
'देव' दोऊ सीतल अलिंगननि देत लेत,
'सीतल सुगंध मंद मारुत की लहरें' ॥

समस्या—"उसीर के महल मैं"

पूर्तिकार—रत्नाकर—

पूर्ति—नींद लै हमारी हूँ दुनींदे ह्वै सुनीदे सोये,
सुनत पुकार नाहिं परी हौं चहल मैं;
कहै रतनाकर न ऐसी परतीत हुती,
प्रीति-रीति हाय हिये जानी ही सहल मैं।
देखत ही आपने द्रिगन हितहानिकरी,
अब पछताति परी ताही की दहल मैं;
बीर मैं अजान बलबीरहिं निवास दियौ,
नीर सिंचे वरुनी 'उसीर के महल मैं' ॥[1]

समस्या—"बहार बरषा की है"

पूर्तिकार—नवनीत चतुर्वेदी—

पूर्ति—उत घनस्याम इत पट तन स्याम सोहै,
वह अभिराम ये सुकाम सरसा की है;
कहै 'नवनीत' रस-रंग की तरंग इतै,
उतै मद मेघ चोप चंचल चलाकी है!
झूमि-झूमि झूमैं भूमैं गरज अरज करैं,
धुरवा मचाकी इत लंक लचकाकी है;
घेरि घन छायो त्यों ही उमड़ि अनंग आयो,
दोऊ ओर दीखत 'बहार बरषा की है' ॥[2]

१—काशी-कवि-समाज, प्रथम भाग, ग्यारहवाँ अधिवेशन, (पृष्ठ १०८)
२—काशी-कवि-समाज, प्रथम भाग, १२वाँ अधिवेशन, (पृष्ठ ११७)

प्रस्तुत छंद में कवि ने नायिका के शरीर में बरसा की बहार का साम्य उपस्थित किया है।

पूर्तिकार—रत्नाकर—

पूर्ति—रहति सदाई हरियाई हिय घायनि में
ऊरध उसास सो झकोर पुरवा की है,
पीउ-पीउ गोपी पीर-पूरित पुकारति है,
सोई रतनाकर पुकार पपिहा की है।
लागी रहै नैननि सों नीर की झरी औ'
उठै चित मैं चमक सो चमक चपला की है,
बिनु घनस्याम धाम-धाम ब्रज मंडल में
ऊधौ नित बसति 'बहार बरखा की है'।।[1]

समस्या—"प्रान लरजै तो आनि लाज बरजति है"

पूर्तिकार—हनुमान त्रिपाठी 'श्रीकर'—

पूर्ति—ऊपर तें रहत अपानी बनी लोगनि मैं
लोगनि सों सारे अंग-अंग परखति है,
श्रीकर बिदेसी को सदेस जो सुनावै कोऊ,
घालि पट घूँघट के ओट हरखति है।
पूछत परोसिनै जो कुसल पिया की कछू
सीस करि नीचे बिजरी-सी तरजति है,
गुर गण बीच जनि बिरह मरोरनि तें
'प्राण लरजै तो आनि लाज बरजति है'।।[2]

समस्या—"खेल मत जानो यह नेम्नि बिरहा की है"

पूर्तिकार—पंडित सुधाकर द्विवेदी—

पूर्ति—मानस मही को जासु तनय मनोज दाह्यो,
बचव प्रपंच करि रचक न बाकी है,
उपजी तहाँ पै करि साहस सहस भाँति,
जाति नहिं जानी जाति कौनो भाँति ताकी है।।

१—काशी कवि समाज प्रथम भाग १ को अधिवेशन (पृष्ठ १२०)
२—वही ,, ,, ९ (पृष्ठ ८६)

आसा चारि फैलि एक आसा को निहारि रही,
हारि करि बावरी ही जाने गति जाकी है;
बाढ़त अकेल एक मेल करि प्रेम-रस,
'खेल मत जानो यह बेलि विरहा की है' ॥[१]

समस्या—"पावस अँधेरी में"

पूर्तिकार—चंद्रकला बाई—

बूँदी के राजकवि गुलाबसिंह के यहाँ, सं० १९२३ वि० में, आपका जन्म हुआ था। गुलाबसिंहजी आपकी माता के आश्रयदाता थे। इस प्रकार आप एक दासी-पुत्री थीं। गुलाबसिंहजी के संपर्क में आने पर आपको काव्य-शक्ति प्राप्त हुई थी। आपने अनेक सुंदर छंद रचे और समस्या-पूर्तियाँ की। आपकी सुंदर समस्यापूर्तियाँ देखकर श्री'कवि-मंडल बिसवाँ' ने आपको 'वसुंधरा-रत्न' की उपाधि दी थी। डॉ० रसाल लिखते है—"यह समस्यापूर्ति अच्छी करती थी तथा कवित्त, सवैये (सभी प्रकार के) कला-कौशल के साथ रचती थी। यह बड़ी सहृदया थी। इनकी पुस्तकों में से 'करुणाशतक', 'राम-चरित्र' एवं 'पदवी-प्रकाश' मुख्य हैं।"[२] इससे सिद्ध होता है कि यह अपने समय की एक उच्च कोटि की कवयित्री थी। कहा तो यह जाता है कि 'चंद्रकला बाई की काव्य-प्रतिभा उस काल की नारी द्वारा सर्जित साहित्य में सर्वश्रेष्ठ है।"[३] आपकी अधिकांश पूर्तियाँ 'काव्य-सुधाधर' में प्रकाशित हुई हैं। किंतु काशी आदि अन्य स्थानो से निकलनेवाले पत्रों में भी आपकी पूर्तियाँ देखने को मिल जाती है। उपर्युक्त समस्या की पूर्ति देखिए—

पूर्ति—आवत सघन घन घोरि-घोरि ओर-ओर,
ठोर-ठोर मोरन के सोरन की फेरी मैं;
चातक चिकारैं ये बलाक दौरि दौरि मारें,
हारैं मन दामिन की दमक घनेरी मैं।
'चंदकला' जुगुनू जमाति चिनगारी देत,
बालम भए हैं लीन कूबदार चेरी मैं;

१—काशी-कवि-समाज, प्रथम भाग, नवाँ अधिवेशन, (पृष्ठ ७६)
२—'हिंदी-साहित्य का इतिहास, डॉ० 'रसाल' प्रथमावृत्त १९३१ ई०—(पृष्ठ ५३८)
३—'मध्यकालीन हिंदी कवयित्रियाँ' डॉ० सावित्री सिनहा। (पृष्ठ ३०२)

कैसी करौं, कहाँ जाऊँ, कैसे निरबाह करौं,
ये री वीर मावस की 'पावस अँधेरी में' ।¹

समस्या—"छबि पुंज बगर्‌यो परै"

पूर्तिकार—व्रजराजजी—

पूर्ति—कहाँ रैनि जागे मो अभागे घर आए भोर,
अंगन अनंगहू ते रूप अगर्‌यो परै,
जैये तहाँ जैये जू मनैये ना बतैये दिन,
उनसों इतै न कहूँ आनि झगर्‌यो परै।
मेरे तऊ उनके औ' उनके तौ उनहीं के,
एहो व्रजराज अब क्यों न डगर्‌यो परै,
लाली भरे, लाज भरे आलस - समाज भरे,
नैनन ते 'आज छबि-पुंज बगर्‌यो परै' ॥²

पूर्तिकार—चंद्रकला बाई—

पूर्ति—गावत गुविंद गीत मुरली मनोहर मैं,
लै-लै नाम तेरो री विशेष उघर्‌यो परै,
नाचत गुवाल बाल दै दै ताल नाना भाँति
लखि-लखि लोयन को मन तगर्‌यो परै ॥
चंदकला लपटी लवंगलता तालन मैं,
बहत बयार मैं सुगंध घबर्‌यो परै,
गुंजत मलिंद आली डोलत निकुंजन मैं,
चलि री विलोकि 'छबि पुंज बगर्‌यो परै' ॥³

समस्या—"आज वा कदंब-तरे रंग बरसत है"

पूर्तिकार—श्री १०५ कृष्णलालजी महाराज 'रससिंधु'—

पूर्ति—सुंदर निकुंज तामें फूल को हिंडोरा साज,
फूलन को झूमकाहू सोभा सरसत है,

१—काशी-कवि समाज (समस्यापूर्ति) द्वितीय भाग, (पृष्ठ ११)
२—वही „ „ „ (पृष्ठ २६ २७)
३—वही „ „ „ (पृष्ठ २८)

कहै 'रससिंधु' तहाँ झुंडन की झुंड सखी
राधिका विराजे वाम देख हरसत है।
वद्दल जु घेर-घेर गरजैं वे बेर-बेर,
चंचला चमंकै मेह आयो दरसत है;
झूलत हिंडोरि स्याम कालिंदी कूलन पर
'आज वा कंदव-तरे रंग वरसत है' ॥[1]

पूर्तिकार—पं० अंबाशंकरजी (काशी)—

पूर्ति—मंद-मंद गरज तरज डफ ढोल वजै,
झिल्ली झनकार झाँझ बाँकी सरसत है;
कूकत सिखंडी हूकि फूकैं तुरुही की तान,
अबिर मुकेस वज जुग्नू दरसत है॥
संकर सुकवि नृत्यकारी दामिनी है,
तहाँ गावत धमार पौन झंझा हरसत है;
घन पिचकारी लिए पवस रचाई फाग,
'आज वा कदंब-तरे रंग वरसत है' ॥[2]

पूर्तिकार—शिवनंदनसहाय (पटना)—

आपका जन्म आरा जिला, अख्तियारपुर गाँव में, सं० १९१७ में, हुआ था। आपने इंट्रेंस तक अँगरेजी पढ़ी थी, तथा फ़ारसी की भी अच्छी योग्यता रखते थे। आपका नाम हिंदी गद्य एवं पद्य लेखकों में विशेष उल्लेख्य है। आपने 'हरिश्चंद्र-जीवन-चरित्र' एक बड़ा ही प्रसिद्ध एवं प्रशंसनीय ग्रंथ लिखा है। आप उर्दू शायरी के साथ-साथ हिंदी-समस्यापूर्ति भी बहुत अच्छी करते थे। आपकी लिखी हुई कुछ पुस्तकें ये है—'बंगाल का इतिहास', 'कविता कुसुम', 'भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्र की जीवनी', 'बाबा सुमेरसिंह साहवजादे की जीवनी', 'गोस्वामी तुलसीदास की जीवनी' आदि।

पूर्ति—गोरी वैस थोरी लिए रोरी त्यों गुलाल झोरी,
रची है सु होरी पेख हीय हरसत है;
लाल मेघमाल नाई छाई चहुधा है सिव,
तामैं घनस्याम घनस्याम दरसत है॥

१—काशी-कवि-समाज, (समस्यापूर्ति) द्वितीय भाग, (पृष्ठ २९)
२—वही " " " (पृष्ठ २९)

डफ की अवाज सोई गरज दराज होन,
बीजुरी - सी राधा - रूप आप सरसन है,
होयगो अनद अग - अग जाय देखो ढग,
'आज वा कदब - तरे रग बरसन है'॥[1]

पूर्तिकार—गोविंद गिल्ला भाई—

आपका जन्म श्रावण सुदी ११ स० १९०५ वि० को, सिहोर रियासत में, हुआ था। गुजराती होते हुए भी हिंदी-कविता आप अच्छी करते थे। आप हिंदी के बड़े ही उत्साही प्रेमियो म से रहे है। समस्यापूर्तिकार के रूप मे आपका अनेक कवि-समाजो एव कवि-मडलो मे सबध रहा है। आपने नीति विनोद, शृगार-सरोजिनी, षट्ऋतु पावस-पयोनिधि, समस्यापूर्ति प्रदीप, वक्रोक्ति-विनोद, श्लेष चद्रिका, गोविंद ज्ञान बावनी एव 'प्रारब्ध पचासा' तथा 'अलकार अबुधि', 'भूषण मजरी' आदि अनेक ग्रथ लिखे हैं। ज्येष्ठ स० १९८९ वि० को आपका देहावसान हो गया। उपर्युक्त समस्या की इनकी पूर्ति देखिए—

जाके तल तेह धरि दोऊ उठ गए पुनि,
फेरही मिलन वाके जीवन तरसत है,
यातें अफसोस करि दोऊ पछताइ अति,
आँखिन तें आँसुन के बुद बरसत है।
गोविंद गुमान तजि सोई एक दूजा अब,
आप तें मनाइ आली हिय हरषत है,
चाह तें सवरि सोय गोपिका गुपाल मिलि,
'आज वा कदब-तरे रग बरसत है' ॥१॥
सोहत सघन बन वेस अरु वृक्षन तें,
धूप न धरा मे तहाँ नेक दरसत है,
झरना झरत एक उतै अभिराम ताके,
सीतल सलील लखि हीय हरषत है।
गोविंद मुकरि तहा कदब कदब जू के,
विमल विराजी, अति शोभा सरसत है,
गोपिका गुपाल मिलि खेले निति फाग मानो,
'आज वा कदब-तरे रग बरसत है' ॥२॥[2]

१—काशी-कवि-समाज, द्वितीय भाग (समस्यापूर्ति), (पृष्ठ ३४ ३५)
२—वही " " (पृष्ठ ३५ ३६)

समस्या—"मनोज महराज की"

पूर्तिकार—पत्तनलाल 'सुशील'—

आपका जन्म सं० १९१६ के आस-पास, दाऊदनगर, गया में, हुआ था। आपके पिता का नाम मोहनलाल अग्रवाल था। आपने अनेक कवि-समाजों से अपना संबंध स्थापित कर रक्खा था तथा उनमें अपनी समस्यापूर्तियाँ भेजा करते थे। आपने रोला रामायण, जुबिली साठिका (पद्य), भर्तृहरि-नीतिशतक भाषा (पद्य), उजाड़ गाँव (पद्य), ग्रियर्सन साहब की बिदाई (पद्य) एवं 'देशी खेल' दो भागों में (गद्य) आदि ग्रंथ रचे है। आपकी कविता साधारणतया अच्छी होती थी।

फूलन की थूनी बनी पटली सुफूलन की,
लसति हिंडोरे डोरी फूलन के साज की;
फूलन की सेज तापै राजि ब्रजराज रहे,
फूलन की साज सजी राधा छवि आज की।
फूलन की माल गरे कंकन सुफूलन के,
फूलन के कर्नफूल फूलन समाज की;
देखि चकाचौंधी लगी सुधि हू सुसील भूली,
रति रितुराज की 'मनोज महराज की'।
दृग अँधियारी छई सीस सित केस भये,
नित ही सिकायत है पचन अनाज की;
तऊ रंजि अंगन लगाय कै खिजाव चलैं,
ढूँढ़त किताब दवा थंभन दराज की।
जात अवलागन कौं घूरि-घूरि देखत हैं,
होय कै निलाज नेकु लाज न समाज की;
सौक साज बाज की मिटी न राज़ नाज़ की,
सु मौज है हनोजहू 'मनोज महराज की'॥[1]

प्रस्तुत छंद मे कवि ने उन वृद्ध जनों की खिल्ली उड़ाई है, जिनकी काम-पिपासा वृद्धावस्था आ जाने पर भी शांत नही होती और वे अपनी दुष्प्रवृत्तियों के कारण समाज मे हँसी के पात्र बनते हैं।

१—काशी-कवि-समाज, (समस्यापूर्ति) द्वितीय भाग, (पृष्ठ ४२-४३)

पूर्तिकार—प० अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'—

कविवर 'हरिऔध'जी आज हिंदी म खड़ी बोली के महाकाव्यकार के रूप म प्रसिद्ध है, किंतु हरिऔधजी की प्रतिभा का उन्मेष सर्वप्रथम समस्यापूर्ति के द्वारा हुआ। इस सबध म हरिऔधजी को अपने पूज्य पितृव्य पडित ब्रह्मासिंहजी तथा बाबा सुमेरसिंहजी स जो एक सिक्ख साधु थे काव्य प्रेरणा मिली। ब्रह्मासिंहजी से संस्कृत आदि भाषाओ के ग्रथो का अध्ययन करके 'हरिऔध'जी ने अपना ज्ञानार्जन किया तथा बाबा सुमेरसिंहजी की काव्य-गोष्ठियो म जाने स उनमे कविता की अभिरुचि उत्पन्न हुई। बाबा सुमेरसिंहजी के यहाँ नित्य सध्या क समय कवि गोष्ठी तथा भजन कीर्तन आदि हुआ करते थ। यह भी उनके यहाँ जाने लगे और वहाँ पर होनेवाली समस्यापूर्तियो म भी धीरे धीरे भाग लेने लगे।[1] सत्य तो यह ह कि बाबा सुमेरसिंहजी ही हरिऔधजी के काव्य-गुरु थे। सुमेरसिंहजी ने अपना कविता का नाम हरि-सुमेर रक्खा था। अयोध्यासिंहजी न भी उसी के अनुकरण पर अपना उपनाम हरिऔध रक्खा। हरिऔधजी का विशेष सबध काशी-कवि समाज एव काशी-कवि-मडल से रहा। इसके अतिरिक्त आजमगढ म भी कवि समाज स्थापित हुए और समस्यापूर्तियों की धारा प्रवाहित होने लगी। समस्या पूर्ति के रूप म हरिऔधजी की उच्च काव्य प्रतिभा का दर्शन बहुत कम होता ह। पूर्तियो मे अलकारत्व प्रदर्शन अधिक है और भावों की गभीरता का अभाव पाया जाता ह। एक पूर्ति देखिए—

समस्या—"मनोज महराज की"

पूर्ति—बादर न हाथ चढी तोपैं चली आवति हैं,
गरज न होत फैली धुनि है अवाज की,
बूँदें न परति बरषत हैं विषैले बान,
इद्र धनु है न है कमान रन काज की।
हरिऔध' धुरवा न होहि फाँस जेवरी है
झरना लगी है झरी आयुध-समाज की,
बीजुरी न होय ऐरी वधन बियोगिनी की,
तीखन कृपान है 'मनोज महराज की' ॥[2]

१—हिंदी साहित्य का इतिहास' आचार्य रामचद्र शुक्ल, (पृष्ठ ५८३)
२—काशी-कवि-समाज। तृतीय भाग १४वाँ अधिवेशन (पृष्ठ ४५)

समस्या—"मलिंद मतवारे से"

पूर्तिकार—हरिशंकरप्रसाद (काशी)—

पूर्ति—मूरति मयंकमुखी मदन-मजैज-मजी,
मेंहदी महक मंद मारुत मझारे से;
बेसरि बुलाक नाक बाजू औ' बरेखी बाँक,
बंगुरी बिराजै कर चुरी झनकारे से।
भनै हरिशंकर अभूषन के भार दबी,
चौकट को डाँक्यो कछू हाथ के सहारे से;
तामरस-बरन कपोल वनिता के चूमि,
झूमि रहे मोहन 'मलिंद मतवारे से'॥[1]

समस्या—"रंगभरी मूरति अनंगभरी अँखियाँ"

पूर्तिकार—श्री १०५ कृष्णलालजी महाराज 'रससिंधु'—

पूर्ति—बंशी की जु धुन सुन चौंक उठी ब्रजबाल,
छोड़ सब काम-काज धीरज न रखियाँ;
कहे 'रससिंधु' फेर झुंडन की झुंड चली,
बंसीबट कुंजन में जाय मिली सखियाँ।
बाजे मिरदंग संग बीन औ' उमंग चंग,
सारंगी जलतरंग मैन रूप लखियाँ;
राधा और स्याम दोऊ गावें गलबाँह दिये,
'रंगभरी मूरत अनंगभरी अँखियाँ'॥[2]

पूर्तिकार—रामकृष्ण वर्मा—

पूर्ति—बड़ी लाजवारी सील-गौरव-गुमानवारी,
ज्ञान-मान बस तुच्छ कीन्ही सब सखियाँ;
तुही एक ब्रज में पतिब्रत निवैहै बीर,
कौलों जौलौं रूप-सुधा नैन नाहिं चखियाँ।

१—काशी-कवि-समाज, द्वितीय भाग, १४वाँ अधिवेशन, (पृष्ठ ५८)
२— " " (समस्यापूर्ति), (पृष्ठ ६५)

भूलि जैहै कुल को गुमान नीति ज्ञान गर्ब,
निरखत साँवरे की माधुरी कनखियाँ,
तापनि तरंगभरी सूरत उमंग भरी,
'रंगभरी मूरत अनंगभरी अँखियाँ' ॥[१]

समस्या—"सुगंध की लपट-सी"

पूर्तिकार—चन्द्रकला बाई—

पूर्ति—बालम वियोग बाम विकल परी ही धाम,
क्यों हू न सम्हरि सकी रपटी रपट-सी,
ताही समय पीतम को आगम सुनायो सखी,
सुखित भई सो लहि आनंद दपट-सी।
चन्द्रकला आवत निहारे निज आँगन मे,
उठी हरषाय झट बिजुरी झपट-सी,
दौरि दूर ही तें तजि लाजहि लपटि गई,
स्याम के शरीर से 'सुगंध की लपट-सी' ॥[२]

पूर्तिकार—गोबिंद गिल्ला भाई—

पूर्ति—सासुरे में जाइ सखी रहियो सयानी ह्वै के,
कहियो न बात कभी कोई से कपट-सी।
सासु के समीप सदा विनय-वलित रही,
कीजियो सकल वस्य वेग ले विकट-सी।
गोविंद सुकवि कहा बेर-बेर कहूँ आली,
कीजियो न संग नारि निरखि नफट-सी।
नेह मैं निमग्न बनि लागि हो लगन धरी,
नाथ हिय माल ह्वै 'सुगंध की लपट-सी' ॥[३]

समस्या—"एक तें ह्वै गई द्वै तसवीरें"

पूर्तिकार—रामकृष्ण वर्मा—

पूर्ति—भोरहि आज गई जमुना तट संग लिए सखियान की भीरें,
औचक देखि परचो नँदनंद बजावत बेनु कलिंदजा-तीरें,

१—काशी-कवि-समाज (समस्यापूर्ति) भाग २, (पृष्ठ ६५-६६)
२— " " " " भाग २, (पृष्ठ ८४)
३— " " " " भाग २, (पृष्ठ ८६)

आधिक नैन सुराधे लख्यो तहँ आधिय दीठ लखी बलबीरैं,
दोऊ मिले मन एक भयो पुनि 'एक तें ह्वै गई द्वै तसवीरैं' ॥[1]

कवि ने प्रस्तुत छंद में गणित के माध्यम से बड़ी चतुराई से बलबीर और राधिका दोनो के आधे-आधे नैनों को मिलाकर एक कर दिया है।

समस्या—"छूटै चंद्र मंडल ते छहर छटान की"

पूर्तिकार—केदारनाथ (काशी)—

पूर्ति—कासन औ' कुसुम विकसित भये हैं सेत,
लागी है बिदाई होन मेघ औ' घटान की;
निर्मल भये हैं नीर सरित सरोवर के,
फूलि गै सरोज अति ओज प्रगटान की।
आये खग खंजन चकोर मनरंजन भे,
बंद भो केदार सोर मोर के रटान की।
छाई शुभ्र सर्द महिमंडल मयूखें मंजु,
'छूटै चंद्र मंडल ते छहर छटान की' ॥[2]

प्रस्तुत छंद में कवि ने प्रकृति का यथातथ्य वर्णन प्रस्तुत किया है। वर्षा-ऋतु के पश्चात् मनभावनी शरद् ऋतु आई। आकाश मंडल से काले-काले मेघ विदा लेने लगे। सरोवर में कमल खिलने लगे और चारों ओर खंजन पक्षी किलोल करते हुए दीख पड़ने लगे। अब बागों में मयूरों का नृत्य और गान भी बंद हो गया। अब तो चारों ओर चकोर और खंजन की धूम मची हुई है। कवि ने प्रस्तुत समस्या की सार्थक पूर्ति की है।

समस्या—"चाँदनी-सी फैली चारु चाँदनी बदन की।"

पूर्तिकार—सालिकराम (कोंपागंज)—

पूर्ति—एहो घनस्याम तीर वा दिन जो देखी बाम,
बार-बार पूछी मोते व्याकुल मदन की;
सोई वृषभानु की दुलारी है अनूठी याते,
दूसरी न देखी कामकामिनी कदन की।

१—काशी-कवि-समाज, (समस्यापूर्ति) भाग २, (पृष्ठ ८७)
२— " " " (पृष्ठ ९६)

कहै सालग्राम ताकी उपमा कहाँ लौं कहौं,
मौन भई बानी याते ब्रह्मा के सदन की ;
सरद है, न पूनो है, न तारा को प्रकास कछू,
'चाँदनी-सी फैली चारु चाँदनी बदन की' ।।¹

पूर्तिकार—द्विज बेनी—

पूर्ति—बेग ही चलौ तौ मैं लखाऊँ बाल बेनी द्विज,
बैठी है दरीची खोलि आपने सदन की ,
कुंदन के रंग मैं सवाई है गोराई अंग,
चपला - सी चौगुनी चमक है रदन की ।
रूप की निकाई ताकी बरनों कहाँ लौं देखि
धरनी धँसी-सी जाति धरनी मदन की ,
कातिक के चंद-सी सुछंद जनु चारों ओर,
'चाँदनी-सी फैली चारु चाँदनी बदन की' ।।²

समस्या—"तारन समेत तारापति फीको परिगो"

पूर्तिकार—महाराज कुमार श्रीगौरीप्रसादसिंहजी (गिद्धौर)—

पूर्ति—कीरति किशोरी बैठी चौतरे अटा पै सजी
सौरभ तरंग - सी चहूँधा चारु भरिगो ,
बेंदिन सँवारे भाल लाल मिलिबे के काज
अंगन उमंग त्यों अनंग को पसरिगो ।
घूंघट उघारि मुखि झाँकती झरोखा मग
बदन प्रकाश मारतंड लौं बगरिगो ।
करिगो पयान रतिरूप की गुमान मंजु
'तारन-समेत तारापति फीको परिगो' ।।³

पूर्तिकार—छबीले (बनारस)—

पूर्ति—भरिगो गुमान गुन गौरि की गिरा को सुनि
रूप रति रंभा की पताका लौं उतरिगो ,

१—काशी-कवि-समाज (समस्यापूर्ति) भाग २, (पृष्ठ १०७)
२—वही „ „ „ (पृष्ठ १०६)
३—वही „ „ „ (पृष्ठ १२३)

सुकवि छबीले परिपूरण पुरंदरी को
अमल अपूरब उजासु तासु करिगो
मंडित अखंड नवखंडन प्रचंडमान
राधा छवि पहर प्रभात सों पसरिगो ;
औतरी जबैहीं वृष सूरजसुता है तबै,
'तारन समेत तारापति फी परिगो' ॥[1]

समस्या—"बाँसुरो बजावे है"

पूर्तिकार—रत्नाकर—

पूर्ति—जाके सुर प्रबल प्रवाह को झकोर तोर
सुर मुनिबृंद धीर बिटप बहावै है ;
कहै 'रतनाकर' पतिव्रतपरायन की,
लाज कुलकान की करार बिनसावै है ।
कर गहि चिबुक कपोल कल चूमि चाहि
मृदु मुसुकाय जो मयंकहिं लजावै है ;
ग्वालिनि गुपाल सों कहति इठिलाय कान्ह
ऐसी भला कोऊ कहूँ 'बाँसुरी बजावै है' ॥१॥
बैठे भंग छानते अनंगअरि - रंग रमे
अंग-अंग आनंद तरंग छवि छावै है ;
कहै 'रतनाकर' कछूक रंग - ढंग औरे
एकाएक मत्त ह्वै भुजंग दरसावै है ।
तूँबा नोर, साफी छोर मुख विजया सो मोर,
जैसे कंजगंध में मलिंदबृंद धावै है ;
बैल पै बिराज संग सैलतनया लै बेगि
कहत चले यों कान्ह 'बाँसुरी बजावै है' ॥२॥[2]

पूर्तिकार—छन्नूलाल 'रसिक नवीन', (काशी)—

पूर्ति—रसिक नवीन को बिलोकु चलि आली नेक
अंग अंग जाकी छवि मदन लजावै है ;

१—काशी-कवि-समाज, (समस्यापूर्ति) भाग २, (पृष्ठ १२२)
२—वही „ „ „ (पृष्ठ १५०)

मोर को मुकुट कटि काछनी लकुट हाथ
काँधे पीतपट सों अधिक छवि छावै है।
उर बनमाल भाल चदन बिराजै बेस
कुडल चमक चहुँ मोद बरसावै है,
लीन्हें ग्वाल-बाल सग अमित उमग-भरो
कुजन मे कान्ह आज 'बाँसुरी बजावै है'।[1]

समस्या—"प्यारे ब्रजचद पै उजियारी चली जाति है"

पूर्तिकार—द्विज बलदेव—

कविवर द्विज बलदेव का जन्म स० १८९७ वि० मे, मानपुर, जिला सीतापुर मे हुआ था। अपने समय के यह एक अच्छे कवि थे और स० १९२९ मे भारतेंदु हरिश्चद्र एव उनकी मडली के अन्य कवियों ने इन्हें उत्तम कवि होने की सनद दी थी। इन्होंने अनेक राजाओ के दरबारो की यात्रा की, और वहाँ इनका यथोचित सम्मान भी हुआ। रामपुर-मथुरा और इटौंजा के राजाओं ने विशेष सम्मान किया। इन राजाओं के नाम बलदेवजी ने ग्रथ भी बनाए। इनकी मित्रमडली के विशेष कवि ये थे—लछिराम, सेवक, सरदार, भारतेंदु हरिश्चद्र, लेखराज, द्विजराज, दीन, आनद विलास, दत्तद्विजेंद्र आदि। इन्होंने अनेक ग्रथ लिखे, जिनमे कुछ ये हैं—प्रताप विनोद, शृगार-सुधाकर, मुक्तमाल, समस्या प्रकाश, शृगार सरोज, चद्रकला काव्य, अन्योक्ति महेश्वर आदि। द्विजबलदेवजी का बिसवाँ कवि-मडल से विशेष सबध रहा है। बिसवाँ कवि-मडल ने आपको 'कवींद्र' की उपाधि से विभूषित किया था। आपने समस्यापूर्ति के विषय में यह गर्वोक्ति की थी—'देइ जो समस्या, तापै कबित बनाऊँ चट, कलम रुकै, तौ कर कलम कराइए' और इस दर्पोक्ति की इन्होंने पुष्टि भी की। इनकी पूर्तियाँ अच्छी होती हैं। उपर्युक्त समस्या की पूर्ति देखिए—

धारे सेत बसन हुमन मे दमन दुति
मन हरि कमन की कीन्हीं मनो घात है,
गूथे माल मुक्त ते नूतन द्विज बलदेव
गौरव गयन सों गयद-गति मात है।

१—काशी-कवि-समाज, भाग २ (पृष्ठ १५२)

सौरभित सुमन के हारन की सौरभ सों,
भौंर के कुलान कृत कंपित यों गात है ;
जगमग जोति जागै उज्ज्वल जवाहिर की,
'प्यारे ब्रजचंद पै उज्यारी चली जात है' ।। १ ।।
कैधों स्याम घन में लसत थिर दामिनी-सी,
कैधों हेमलतिका तमाल सत गात है;
कैधों कृष्ण कंज ये चढ़ी है माल चंपक की,
कैधों नीलमणि में कनक कृत पात है ।
सोनजुही अतिसी कुसुम माल बलदेव,
बाग पंचबान की विचारो वर बात है ;
न्यारी होत अंग सों न प्यारी की सुछबि कैधों,
'प्यारे ब्रजचंद पै उज्यारी चली जात है' ।। २ ।।'

काशी-कवि-समाज की समस्यापूर्तियाँ एवं तत्संबंधी विवेचन को अधिक विस्तृत न करके अब यहाँ काशी-कवि-मंडल की पूर्तियाँ दे देना उचित होगा ।

काशी-कवि-मंडल (स्थापित : १८९५ ई०)

काशी में वल्लभ-संप्रदाय की दो गद्दियाँ थीं । एक के अधिष्ठाता १०८ श्रीमद्गोस्वामी जीवनलालजी थे और दूसरी के श्री १०८ महाराज कन्हैयालालजी । जब गोस्वामी जीवनलालजी ने ब्रजभाषा-काव्य की परंपरा को अक्षुण्ण रखने के लिये काशी-कवि-समाज की स्थापना की, तो महाराज कन्हैयालालजी ने भी पृथक् एक कवि-मंडल का आयोजन किया । काशी-कवि-समाज की भाँति इस कवि-मंडल को भी दूर-दूर के कवि अपनी पूर्तियाँ भेजते रहे। दोनों कवि-संस्थाओं को अपनी पूर्तियाँ भेजनेवाले कवि प्रायः एक ही होते थे, अतएव इनकी काव्य-कला एवं काव्य-प्रतिभा के विषय में अधिक कहने की आवश्यकता नहीं है । काशी की इन दोनों कवि-संस्थाओं की प्रेरणा से काशी में ब्रजभाषा-काव्य एवं समस्यापूर्ति दोनों का प्रचलन होता रहा । यह साहित्य के हित में एक बड़ा ही प्रशंसनीय कार्य हुआ। आगे चलकर इन्हीं की प्रेरणा से 'प्रसाद' जैसे महाकाव्यकार और रत्नाकर जैसे श्रेष्ठ कवि हुए । कवि-मंडल की कुछ समस्यापूर्तियाँ आगे देखिए—

१—काशी-कवि-समाज (समस्यापूर्ति) भाग २ (पृष्ठ २३६-३७)

समस्या—"तीरथ के तीर काहू तीर मारियत है"

पूर्तिकार—पन्नलाल 'सुशील'—

पूर्ति— तापस ह्वै बासदीनी कचुकी कुटी के बीच,
मोतिन की माल गगधार धारियत है,
जघ कदलीवन मे नाभि-कुड गोते देह,
लागित तिताप तू सुमील तारियत है।
चचला-सी चचल को अचल कृपा कै करी,
चद दै निवास गहु-ग्रास टारियत है,
एसी पुन्य भूमि भौं कमान नैन तानै जानि,
'तीरथ के तीर काहू तीर मारियत है' ॥[1]

पूर्तिकार—द्विजगग, दासापुर, सीतापुर—

पूर्ति— गग सम द्विजगग गूंधे मुक्त सिर मग,
भानुजा तरग रग पाटी पारियत है,
सारद सिंदूर सिर सौरभ सराहै सब,
सैन माजि सकुन प्रभा पसारियत है।
पलव प्रत्यच कैसे भृकुटी कमान तान,
कैवर कटाक्ष करि दीठि डारियत है,
सगम समीप व्रजराज को तिरीछे ताकि,
'तीरथ के तीर काहू तीर मारियत है' ॥[2]

पूर्तिकार—लछिराम—

पूर्ति— कैसी नागपचमी की धूम जमुना पै साझ,
नौरग गुडीन की प्रभा निहारियत है,
मधुर मलार झनकार मग भूपन के,
लछिराम जापै त्रिभुअन वारियत है।

१—काशी कवि-मडल (समस्यापूर्ति) प्रथम भाग, (पृष्ठ १५ १६)
२— " " " (पृष्ठ १७)

नैन कजरारे त्यों मरोरि भ्रू धनुप सो है,
वृन्द कामिनीन के करेजे फारियत है;
परव गंभीर ब्रजमंडल की भीर ऐसे,
'तीरथ के तीर काहू तीर मारियत है' ॥[1]

समस्या—"जोवन की फौज लैके मारिबे को धाई है"

पूर्तिकार—रामकृष्ण वर्मा—

पूर्ति— ग्वारिन गरूरवारी जोवन जलूसवारी,
लखि मुसुकाय बात पूछत कन्हाई है ;
उरज उतंग गोल गुरुज निसंक कसि,
मदन सु फौजदार काहे संग लाई है।
चितवन वान बंक भृकुटी कमान तान,
बरुनी सुनेजन की ठानति चढ़ाई है;
साँच दै बताई वलबीर की दोहाई काहि,
'जोवन की फौज लै के मारिबे को धाई है' ॥[2]

पूर्तिकार—द्विजवेनी—

पूर्ति— संग लै सखीन को समाज ये दराज आज,
भौंहैं बंक बिकट कमान-सी चढ़ाई है ;
नैनन में अंजन अनूप यों लखात मानो,
चोखी वाढ़ खंजर पै आव दै धराई है।
सुभट उरोजन पै कंचुकी कवच साजि,
बेनी द्विज बीर-सी बनी तू बीर आई है;
नूपुर नगाड़े से बजाय कै रिसाय काहि,
'जोवन की फौज लैके मारिबे को धाई है' ॥[3]

१—काशी-कवि-मंडल (समस्यापूर्ति) प्रथम भाग, पाँचवाँ अधिवेशन (पृष्ठ २१)

२— " " " छठा अधिवेशन (पृष्ठ १)

३— " " " " " (पृष्ठ १-२)

समस्या—"पुरान बकिबो करैं"

पूतिकार—चंद्रकला बाई—

पूर्ति— पर पति-संग को बखाने दोष नाना भाँति,
गुरजन कोपि कोप दाह धकिबो करैं,
ननद, जिठानी, सास भापत करारे बैन,
तिरछी चितौनि से चबाई तकिबो करैं।
चंदकला सजनी हमारे हितू देखि - देखि,
राति-द्यौस शोक-भरे दोष ढकिबो करैं,
हम कुलकानि त्यागि कान्ह के सनेह सनी,
देत नाहिं कान री, 'पुरान बकिबो करैं' ॥[1]

पूर्तिकार—सेवकश्याम मिश्र, मऊगंज, रीवाँ—

पूर्ति— प्यारे मनमोहन सों लगन हमारी लगी,
मगन सदा ही दिन रैन छकिबो करैं,
सुंदर सलोनो रूप निरखहिं लोभी नैन,
औसर - कुओसर न नेको तकिबो करैं।
मिश्र स्याम सेवक इन्हैं ना लाभ-हानि कछू,
पै परि वृथा ही बीच दौरि थकिबो करैं,
छोड़ि आन चर्चा चवाइन ये आठों जाम,
आपने चबाव को 'पुरान बकिबो करैं'।[2]

पूर्तिकार—अनिरुद्धसिंह—

आपका कविता-काल सं० १९८५ वि० माना जाता है। आपका जन्म जैतापुर, जिला सीतापुर में हुआ था, किंतु २७ वर्ष की अवस्था में ही आपकी अकाल मृत्यु हो गई। आप समस्यापूर्तिकार के रूप में अनेक कवि संस्थाओं से संबंधित रहे हैं।

१—काशी-कवि-मंडल (समस्यापूर्ति) भाग १, आठवाँ अधिवेशन (पृष्ठ ८)

२—काशी कवि-मंडल (समस्यापूर्ति) भाग १, आठवाँ अधिवेशन (पृष्ठ ९)

पूर्ति— चाहै जप जोग दान तीरथ अनेक करै,
चाहै टँगि उलटोहीं अंग अँचिवो करै ;
चाहे सम दम सुचि संयम विवेक करै,
चाहे देवतानहूँ की मूर्ति खँचिवो करै ।
भनै अनिरुद्ध चाहै सत्य ही वचन बोलै,
अपने को धनि गिनि चाहे नचिवो करै ;
विना भगवान के भजन सों न पैहै पार,
वेद और चाहे तू 'पुरान बकिवो करै' ।[1]

पूर्तिकार—हनुमानप्रसाद, लखनऊ—

पूर्ति— कहै हनुमान मन एतो अवकास कहा,
चार श्रुत श्रुत कै विनीत तकिवो करै ;
तीरथ अनेक देव-आश्रम मुनीसन के,
धरती अपार चलि पाउ थकिवो करै ।
तप जप जोग जज्ञ जागरनहू ते भलो,
मूल मंत्र राम नाम सुधा छकिवो करै ;
गीता गाई अमित सलीता बाँधे पोथिन के,
नये औ पुरान को 'पुरान बकिवो करै' ॥[2]

समस्या—"मारे नैन बान जैसे चोट लगे गोली की"

पूर्तिकार—छवीले, वनारस—

पूर्ति— लाई छलि नवल सलोनी तिय साँवरे पै,
औरै भाँति कसनि उरोजन पै चोली की ;
सुकवि छवीले प्रति अंगन अनंग त्यों,
वहार बरसै है विधु छवि अनमोली की ।

१—काशी-कवि-मंडल (समस्यापूर्ति) भाग १, आठवाँ अधिवेशन, (पृष्ठ ९)

२—काशी-कवि-मंडल (समस्यापूर्ति) भाग १, आठवाँ अधिवेशन, (पृष्ठ १५)

मुख मंजु कंज तें मरंद बगरत मानो,
स्वाद मीसरी हू ते अधिक मृदु बोली की,
अंक ना लगनि परयंक ते छटकि छूटि,
'मारे नैन बान जैसे चोट लगै गोली की' ॥[१]

इसी समस्या पर कविवर जगलीलालजी की एक पूर्ति देखिए—

कोमल कपोल गोल बिरचे तमोल तामें,
दूनी दुति दीपति मिसी की अनमोली की,
सारी सोसनी में रंग अंग अदराने नव,
अंग गदराने पै फबत छबि चोली की।
मोरि मुख बिहँसि सिसकि मन छोरे लेत,
जोरे लेत जगली बनक बैस बोली की,
घूंघट के कोट ओट भौंहन कमान तानि,
'मारे नैन बान जैसे चोट लगे गोली की' ॥[२]

समस्या—"धुजा की देख फरकन"

पूर्तिकार—श्रीरामकृष्ण वर्मा—

पूर्ति— ऊधव बुलाय कै पठायो बलबीरजू ने,
कहन सँदेस लाग्यो हुदै कंज करकन,
टरकन लागे विघ्न-वृन्द ब्रजबासिन के,
उमगि उमग नैन नीर लागे ढरकन।
सरकन लागी सीस सारी ब्रज ग्वारिन की,
आंगी बंद तरकि उरोज लागे धरकन,
छरकन लागे बनितान के सुअंग वाम,
श्यामदूत-रथ की 'धुजा की देख फरकन' ॥[३]

१—काशी-कवि-मंडल (समस्यापूर्ति) भाग १, अधिवेशन ७,
(पृष्ठ ४)

२—काशी-कवि मंडल (समस्यापूर्ति) भाग १, अधिवेशन ७,
(पृष्ठ ८)

३—काशी-कवि मंडल (समस्यापूर्ति) भाग १, अधिवेशन ७,
(पृष्ठ २१)

समस्या—"श्रीफल चटकिगो"

पूर्तिकार—किशोरीलाल गोस्वामी—

पूर्ति— आवति हती मैं गैल कुंजन की साँकरी ह्वै,
नवज्ञ दुकूल हाँ करील तें अटकि गो ;
मुरि सुरझावनि लगी ज्यों नैन तीखे तानि,
तरल तरौना त्यों अचानक छटकि गो।
रसिक किसोरी तोहि आली वनमाली जानि,
सकुचि दवी मैं चित्त चौगुनो भटकि गो ;
उरज उतंग तंग आँगी यों हरित रंग,
दुरि दरकानी मानो 'श्रीफल चटकि गो' ॥[1]

प्रस्तुत समस्या की पूर्ति में चंद्रकलाबाई का प्रतीप से युक्त छंद भी देखिए—

अति सुकुमारी वृषभानु की दुलारी जू की,
कटि लखि सिंह वन वीथिन सटकि गो ;
गतिहि निहारि गजराज सिर धूरि धारी,
दृग अवलोकि मीन जल में झटकिगो।
चंद्रकला वेनी पेखि व्याल भौ पतालवासी,
दसनन देखि फल दाड़िम भटकि गो;
आनन विलोकि कै कलाधर कलंकी भयो,
उरज विलोकि शीघ्र 'श्रीफल चटकि गो' ॥[2]

समस्या—"हमारो कंत आवतो"

पूर्तिकार—द्विजवेनी—

पूर्ति— कागा तोहिं वागा वेगि जरकसी पेन्हाय देती,
वानी मोद मंगल की खानी जो सुनावतो ;
कंचन सों तुरत मढ़ाती तौ चरन चोंच,
जाको रंग केसर कुसुंभहि लजावतो।

१—काशी-कवि-मंडल, भाग १, (समस्यापूर्ति) अधिवेशन ९ (पृष्ठ १३)
२—काशी-कवि-मंडल, भाग १, (समस्यापूर्ति) अधिवेशन ९ (पृष्ठ ९)

मोती-माल-जालन सो ढाँपि देती पवन को,
बेनी द्विज स्यामता न कोऊ लखि पावतो,
विधि मो प्रससि तोहि हम मैं बनाय देती,
जो पै या हिमत मे 'हमारो कत आवतो' ॥[1]

पूर्तिकार—लाला हनुमानप्रसाद—

पूर्ति— द्वार-द्वार नौबति नगर में धरातो चौक,
कलम - पताका मो अकास फहरावतो ,
देती पट - भूषन - जवाहिर को जाचकन,
उमगन मोद कोद कोदम समावतो ।
हनुमान नारन अनारन गुलाब सीच,
कोमल बचन मैन मवन सुहावतो ,
पावत अनन्द सुख मो मन सुने री सखी,
आवत बसत जो 'हमारो कन्त आवतो' ॥[2]

समस्या—"एक ही रजाई मे"

पूर्तिकार—द्विजबेनी—

पूर्ति— आयो मीन काला पाला पारल कुनी मे दौरि,
दौनन बजाये देत पातन कपाई मे,
पानी भयो अति बरफानी सरितानिन को,
बरफ जमी है चारो तरफ तराई मे।
बेनी द्विज ओढ़त दुशाला कोऊ कमल को,
कोऊ है बिचारो परो आग की तपाई में ,
कोऊ सग लैके अरधंगिनी पलगन पै,
करत रजाई ओढ़ि 'एकही रजाई मे' ॥[3]

१—काशी कवि मण्डल (समस्यापूर्ति) भाग १, अधिवेशन १२,
(पृष्ठ १)
२— ,, ,, ,, ,,
(पृष्ठ १०)
३— ,, ,, ,, ,,
१० (पृष्ठ २०)

पूर्तिकार—बाबू पत्तनलाल—

पूर्ति— करै को बिदेस वास जाड़े में सुसील जाय,
गाज परै ह्वाँ की लाख-लाख की कमाई में;
पूरी-पकवान भाँति-भाँति की मिठाई दूध,
रवड़ी-मलाई खीर खोये की खवाई में।
मेरे जान सारे सुख याही फूस-झोपड़ी में,
खेंदरी पुरानी और टूटी चारपाई में ;
जोई जुरै साथ सत्तू खावै प्रान-प्यारी संग,
सोवैं गलबाही दिये 'एक ही रजाई में' ॥ १ ॥
आयो बिकराल काल भारी है अकाल पर्‌यो,
पूरै नाहिं खर्च घर भर की कमाई में ;
कौन भाँति देवैं टैक्स इनकम लैसन औ,
पानी की पियाई लैटरन की सफाई में।
कैसे हेल्थ साहब की बात कछू कान करैं,
पड़ै ना सुसील भूमि पौढ़ैं चारपाई में ;
किमि कै बचावैं स्वाँस और कौन ओर घुसैं,
सोवैं साथ चार-चार 'एक ही रजाई में' ॥ २ ॥'

उपर्युक्त छंद में कवि ने तत्कालीन आर्थिक वैषम्य की ओर संकेत किया है। अकाल पड़ने से आर्थिक स्थिति बिलकुल बिगड़ गई थी और घर-भर के कमाने पर भी खर्च पूरा नहीं पड़ता था। यहाँ तक कि एक रजाई में चार-चार व्यक्ति साथ सोते थे। ऐसी दयनीय स्थिति थी अँगरेजी शासन में।

पूर्तिकार—अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'—

पूर्ति— चारि सुत मेरे खरे काँपत करेजो चाँपि,
बालिकाहू सीसी करि कहै मरी माई मैं ;
सात टूक सारी माहिं सिसकै हमारी नारि,
प्रान की परी है पौन पूस की खराई मैं।

१—काशी-कवि-मंडल (समस्यापूर्ति) भाग १, अधिवेशन १०, (पृष्ठ २५-२६)

'हरिऔध' याहू पै भये हैं उपवास चार,
मिलन अकाल सो न कौडिहू कमाई मैं ,
मोम मदभागिन की मौतहू न आई राम,
कैसे कटै रात फटी 'एक ही रजाई' मैं ॥'

हरिऔधजी ने प्रस्तुत पूर्ति मे अकाल द्वारा उत्पन्न स्थिति का वर्णन किया है। बच्चो का रोना और पत्नी का सात टुकडेवाली साडी से अपने शरीर को ढकना तथा पूस के तीव्र वायु के झोको से कराहना और इस पर भी चार चार दिन तक भोजन न मिलना कितना दारुण एव दुखद कुलाम है। इस चित्रण के द्वारा कवि ने ब्रिटिश शासन की ओर से स्थिति की अवहेलना की अप्रत्यक्ष रूप से कटु आलोचना की है।

समस्या— कौन भ्रम बेलिन भँवर आज भूले हो"

पूतिकार—रामकृष्ण वर्मा, सपादक 'भारत जीवन'—

पूर्ति— मालती औ केतकी के गधन को त्यागि-त्यागि,
पागि पागि नीरस करीर रस फूले हो ,
परम सुजान ह्वै कै मधुप कहाय हाय,
मूरख अजान से पलास - पास झूले हो ।
साँची कहो भृग तुम्हें सौंह प्रेम पथ की है,
पद्मिनि विहाय काहे निव अनुकूले हो ,
चलो कमलिनि पै प्रपचन को छाडि इतै,
'कौन भ्रम बेलिन भँवर आज भूले हो' ॥'

पूर्तिकार—मुकुदलाल सरायमोहन, जिला बनारस—

पूर्ति— माया की लगाई फूलवाटिका सुहाई यह,
फीकी-सी दिखाई पै रसिक अनुकूले हो,
केते छलि आई केते रहल लुभाई केते,
जैहैं ठगि भाई क्या निहारि याहि फूले हो।

१—काशी-कवि-मडल (समस्यापूर्ति) भाग १ अधिवेशन १०,
स० १९५३ (पृष्ठ २८)

२— ,, ,, अधिवेशन ११, (पृष्ठ १)

रूप झलकाई अरुझाई बड़े ज्ञानिन के,
अंत दुखदायी क्यों विरस माहिं घूले हो;
पीजिये मुकुंद रस मुक्ति मधुराई-भरी,
'कौन भ्रम बेलिन भँवर आज भूले हो' ।।[1]

समस्या—"शीत बड़ो बिपरीत करै"

पूर्तिकार—द्विजबेनी—

पूर्ति— इक तौ इहि काल दुकाल घनी जग जीव सो खोटी कुरीति करै,
मरै भूखन अन्न विना दुनिया तेहि के वस ह्वै अनरीत करै;
द्विज बेनी कहै तेहि ऊपर ते यह ठंढ महा भयभीत करै,
करौ गोकुलनाथ सनाथ न तौ अत्र 'शीत बड़ो बिपरीत करै'।।[2]

पूर्तिकार—पं० केदारनाथ काशी—

पूर्ति— ऐसो अकाल पर्यो ना कभू वसुधा विनु अन्न गरीब मरै,
वानी सुनै ना कोऊ दुखिया की सदै सुखिया निज पेट भरै;
धर्म की कौन केदार कथा कहै मंगन फेरत माँग्यो घरै,
खायगे लोई बनात धै बंधक 'शीत बड़ो बिपरीत करै' ।।[3]

सन् १८६८-६९ से लगभग सन् १९०० तक संपूर्ण देश मे भयंकर अकाल पड़े, जिसमे देश की सारी आर्थिक अवस्था बिगड़ गई। इस पर भी दुःखी जनों की आर्त्तवाणी सुननेवाला कोई नही था। अँगरेज शासकों ने पूर्ण उपेक्षा बरती। भूख की आग यहाँ तक बढ़ी कि लोग धर्म छोड़कर भीख माँगने लगे। यही नहीं, भूख के कारण लोग अपने ऊनी वस्त्र तक गिरवी रखकर पेट पालते थे। इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि जनता के हृदय में भूख की ज्वाला जलती थी और उसकी शांति का उपाय सरकार बिलकुल नही खोजती थी।

पूर्तिकार—महावीरप्रसाद शर्मा वैद्य, कौंढ़ जिला मिरजापुर—

पूर्ति— सब भारत मध्य दुकाल पड़ो विनु अन्न दुखी बहु लोग मरै,
अति छीन सदा पट न्यून फिरै सिसकात ललात न धीर धरै;

१—काशी-कवि-मंडल (समस्यापूर्ति) भाग १, अधिवेशन ११, (पृष्ठ ४)
२— " " " " " " अधिवेशन ११, (पृष्ठ २०)
३— " " " " " " " (पृष्ठ २१)

करुणा उपजै लखि धीरन कै तिहि पै यह जाड कठोर ठरै,
तिनकी जू दशा समुझै कहि आवत 'शीत बडो विपरीत करै' ॥'

काशी कवि मडल की उपर्युक्त समस्यापूर्तियों से ही मडल के कवियों की काव्य प्रतिभा का पता चल जाता है। इन कवियों ने शृगार रस की सयोजना के साथ-साथ तत्कालीन सामाजिक एव आर्थिक परिस्थितियों का भी चित्रण किया है। इसका विशद विवेचन अन्यत्र किया जायगा। यहाँ पर अन्य कवि-मडलों की समस्या पूर्तियों के विवेचन के पूर्व काशी-वासी कविवर जयशकर 'प्रसाद' की समस्यापूर्ति के विषय में भी दो शब्द लिख देना समीचीन होगा।

पूर्तिकार—जयशकर प्रसाद'—

हिंदी में छायावाद काव्य के अग्रगण्य प्रणेता एव कामायनी काव्य के अमर गायक कवि 'प्रसाद' की काव्य प्रतिभा का परिस्फुरण भी समस्यापूर्ति के रूप में ही हुआ था। कविवर प्रसाद का शैशवकाल व्रजभाषा-काव्य एव समस्यापूर्ति के वातावरण में व्यतीत हुआ था। 'काशी के रगीन, हनुमान, द्विजवेनी आदि कितने ही कवि प्रसाद जी के पिता के दरबार में आने लगे थे।'² रायकृष्णदास भी उपर्युक्त मत की पुष्टि करते हुए कहते हैं— ऐसे निर्माण में यह विशेषता अपेक्षित होती है कि मजमून अनूठा हो और रचना चमत्कार उत्तरोत्तर बढ़ता हुआ समस्या तक आकर चूडान्त को पहुच जाय एव उसकी अन्वय पूर्ति कर दे। दूकान पर बैठे-बैठे प्रसादजी इसी उधेड-बुन में मगन रहते।'³ इस उद्धरण से कवि 'प्रसाद' के समस्यापूर्तिकार होने में सन्देह नहीं रहता। एक पूर्ति देखिए—

समस्या—'सरस है'

पूर्ति— आवै इठलात जलजात पात को सो बिंदु,
कैधो खुली सीपी माँहि मुक्ता दरस है,

१—काशी-कवि मडल (समस्यापूर्ति) भाग १, अधिवेशन ११,
(पृष्ठ २४ २५)

२—नवीन धारा के प्रवर्तक कवि 'प्रसाद' (क्षेमचन्द्र सुमन) इस लेख के लिये देखिए प्रसाद का जीवन-दर्शन तथा कवित्व' सपादक महावीर अधिकारी।

३—'प्रसाद की याद' राय कृष्णदास, इस लेख के लिए देखिए 'प्रसाद का जीवन दर्शन तथा कवित्व', सपादक महावीर अधिकारी।

बढ़ो कंज-कोश तें कलोलिनी के सीकर सों,
प्रात हिमकन सों न सीतल परस है।
देखे दुख दूनो उमगत अति आनंद सों,
जान्यो नहिं जाय यहि कौन सो हरस है ;
तातो-तातो कढ़ि रूखे मन को हरित करै,
एरे मेरे आँसू ! तैं पियूष ते 'सरस' है ॥'

प्रसादजी के विषय में उपर्युक्त विवेचन ही अलम् होगा। उनकी अन्य पूर्तियों के लिये उनके ब्रजभाषा-काव्य के संग्रह ग्रंथ 'चित्राधार' के छंद 'बिछुरन मीन की औ मिलनि पतंग की' तथा 'वेगि प्रान प्यारे नेक कठ सों लगाओ तो' देखे जा सकते है।

जैसा कि ऊपर उल्लेख किया जा चुका है कि काशी के अतिरिक्त, अन्य स्थानों में भी कवि-मंडल स्थापित हुए थे। इनमे बिसवाँ तथा कानपुर मुख्य थे। यहाँ पर बिसवाँ कवि-मंडल का विवेचन किया जाता है।

श्री कवि-मंडल, बिसवाँ, सीतापुर (स्थापित—३० मई सन् १८९७ ई०)

जिस समय काशी आदि स्थानों मे कवि-समाज स्थापित हो रहे थे, लगभग उसी समय ३० मई, सन् १८९७ ई० को भगवान 'बीस नाथ' की नगरी बिसवाँ मे भी एक वृहद् कवि-मंडल की स्थापना हुई। इस कवि-मंडल की स्थापना का श्रेय वहाँ की काव्य-रसिक जनता, स्थानीय जमींदारों तथा मंडल के उत्साही मंत्री श्रीपंडित देवीदत्त त्रिपाठी 'दत्तद्विजेंद्र' को ही था। इस कवि-मंडल के प्रयत्न-स्वरूप 'काव्य-सुधाधर' नाम का समस्यापूर्ति का एक मासिक, फिर त्रैमासिक पत्र भी निकलता रहा। यह पत्र संभवतः सन् १८९७ ई० से १९०५ ई० तक प्रकाशित होता रहा। अत मे पंडित देवीदत्तजी का अल्पायु में ही स्वर्गवास हो जाने के कारण न तो कवि-मंडल ही चल सका और न काव्य-सुधाधर ही प्रकाशित हो पाया।

इस कवि-मंडल मे न केवल स्थानीय कवि ही भाग लेते थे और समस्या-पूर्तियाँ भेजते थे, वरन् दूरस्थ प्रांतों के कवि भी अपनी समस्यापूर्तियाँ भेजते रहे। इतना ही नहीं, आगे चलकर मंडल ने कवि-परीक्षा करके उपाधि-वितरण की परपरा भी चलाई। इस उपाधि-वितरण में विशेष उद्देश्य कवियों का उत्साह-वर्द्धन

१—इस समस्या की चर्चा स्वयं 'प्रसाद'जी ने चौधरी त्रिभुवननाथ सिंह 'सरोज' से की थी। लेखक को यह सूचना 'सरोज'जी ने ही दी है।

ही रहता था किन्तु इसके कुछ दूषित परिणाम भी हुए। इस पर अन्यत्र विचार किया जायगा। काव्य सुधाधर की समस्याओं को देखने से ज्ञात होता है कि इस मंडल ने नवीन समस्याएँ देने की ओर विशेष ध्यान दिया था। समस्याओं की इस नवीनता के साथ-साथ साहित्यिक-सौष्ठव का भी ध्यान रखा जाता था। केवल शृंगार की ही नहीं वरन् अन्य रसों की पूर्तियाँ करने के लिये वैसी ही समस्याएं दी जाती थीं तथा रस का स्पष्ट संकेत कर दिया जाता था। रस की भाँति छन्द की विभिन्नता भी पाई जाती है। दोनों प्रकार के मात्रिक एवं वर्णवृत्तों का प्रयोग हुआ है। किन्हीं किन्हीं कवियों ने नायिका भेद एवं अलंकार-वर्णन पर भी समस्या पूर्ति में ही प्रकाश डाला है। काव्य शास्त्र के विभिन्न अंगों से युक्त होने के कारण इस कवितापत्रिका का यथेष्ट महत्व है। यहाँ पर कुछ समस्यापूर्तियाँ दी जाती हैं—

समस्या— सरोज को (दादुर द्विरेफ विवादाष्टक)

पूर्तिकार—सैयद अमीरअली मीर काव्यरसाल—

पूर्ति— पावस को अरराय मेघ जब ही बरसानो
कढ़ि पोखर तें भेक-वृन्द बाहर टर्रानो।
जल जीवन में जाति हमारी मंजु अछूती
त्यों जग जाहर जोम सकल जानत करतूती॥
सर सरिता पर आजतें राज भयो मन मौज को
भौंर पान नहिं करि सकैं अब मकरंद सरोज को॥१॥

बोले अलि सुन वेग रहो चुप क्या टर्राते
ज्ञाति हमारी श्रेय सबै कोविद बतलाते
वन उपवन निधि ताल नदी के हम अधिकारी
यामें बाधक होय ताहि चट देहिं निकारी॥
पियत पंक मय अन्न नित यदपि रहत ढिग रोज को
चीन्हो का तुम मेढगन मधु मकरंद सरोज को॥२॥

उछल परयो तब एक भेक मंडल के आगे
बोल्यो गाल फुलाय बचन गरुए मद पागे
जीतूँ जाय पताल जो डुब्बी एक लगाऊँ
कूदूँ ऊरध एक लात मैं गगन हिलाऊँ॥
करत पान जल कंद सम मन मानो चित चोज को
पियत न यासन बुंद भर मधु मकरंद सरोज को॥३॥

सुंदर अद्वर वीथि ताहि विच सुख सों डोलैं,
द्रुम के पातन पात फिरैं वहु करत किलोलैं;
विविध सुमन को स्वाद लहैं विचरैं चहुंघाँही,
वास तिहारो कीच अपावन जल के माहीं ॥
कुंज कुंज गुंजत मगन सदा फिरहिं रस खोज को;
यदपि वसत तुम पास मधु चीख्यो नाहिं 'सरोज को' ॥४॥

लोचन कीन्हें लाल भेक मुखिया उठ वोलो,
फोर देहिंगे ढोल कढ़े अंदर ते पोलो;
वा दिन की विसराय वात दीन्हीं निर्लज्जी,
वंदी वन के वंद भयो पंकज में पज्जी ॥
तादिन तैं रंग मूढ़ तुव कृष्ण भयो मुख ओज को;
ताहू पै वतरात वढ़ सुखमा सौख्य 'सरोज को' ॥५॥

कर्कश तुम्हरो कंठ कढ़ै कल काक समाना,
अहि के तवहीं भोज वने अहमक के नाना;
लोमश के अंगूर तुम्हें है पुष्प परागी,
तभी वढ़्यो यह नीच वीच कीचहिं अनुरागी ॥
होत पारखी प्रज्ञ जो परखत मणि की चोज को।
रजनी में सुख सोइवो मृदु पर्यंक 'सरोज को' ॥६॥

सुत नित न्हात मुदित मन हो अठ यामा,
शीतल पाटी मंजु विछी तिहि पै विश्रामा;
धौसा सी धुधकार सुने नर कादर भागैं,
शंख जान के संत सदा तरके उठ जागैं ॥
जकत रहत विरहीन गन दादुर अजबी फौज को;
अधम जान संग ना करत कंटकमयी 'सरोज को' ॥७॥

व्रत कुंज नवेली वेलि वैन मम मधुरी वानी,
श्याम रूप पट पीत छवी कटिपै फहरानी;
विहँसि मलिंदन वृंद कह्यो तव भेक कुजाती,
कवि की भूषन पाँति मलिंदन की मधुमाती ॥

महमि सकुच दादुर सकत भज रहूँ निज खोज को,
भौर किया तव पान अलि रम साहित्य 'सरोज' को ॥८॥[1]

उपर्युक्त अष्टक के द्वारा कविवर भीरजी ने न केवल मदन और भौरे के विवाद को ही प्रस्तुत किया है प्रत्युत इस विवाद के माध्यम से कवि ने रसिक हृदय एवं अरसिक जनों का संवाद भी प्रस्तुत किया है। यह विवाद जितना ही मनोरंजक है उतना ही इस बात का द्योतक है कि समस्यापूर्ति में न केवल प्रसंगों का संकेत ही रहता है प्रत्युत नव नव प्रसंगों की कथा भी गूढ़ रूप में प्रस्तुत की जा सकती है।

पूर्तिकार—कविवर द्विज बलदेव कवीन्द्र—

पूर्ति— भ्रू धनु कैंवर कीन्हे कटाक्ष अजेंद्र हँसी सग चचरे चोज की
की विधि भाग रहे बलदेव जी धीर कहाँ धौं गयो फुरे खोज को
आयो वसंत बसंत विचार जगाय दियो मन मेरे मनोज को
तानिकै बाण हिये महँ मारिगो सानिकै सौरभ सौरे 'सरोज' को ॥[2]

समस्या— चुवक युगुल बीच मानो लोह फँसिगो

पूर्तिकार—पं० सीताराम शर्मा उपाध्याय पिलकिछा जिला जौनपुर—

पूर्ति— योगन की युक्ति उक्त ऊधो की हेरानी देखि,
गोपिन की मुक्ति की निसानी तहाँ बसिगो
ज्ञान की कहानी को जबानी जमाखर्च भूले,
प्रेम राधा रानी को करेजै बीच धसिगो।
भनै सीताराम अभिमान गुन गौरव के,
लटके फकीरी की खियाल खासा खसिगो,
ब्रज मा रहत जात मथुरा बनत नाही,
'चुवक युगुल बीच मानो लोह फँसिगो' ॥[3]

१—रसिक काव्य सुधाकर (मासिक) प्रथम प्रकाश चतुर्थ वर्ष
३० जुलाई १९०० ई० (पृष्ठ ५)

२— ३० जुलाई १९०० ई०
(पृष्ठ ३)

३—काव्य-सुधाधर (त्रैमासिक) प्रथम प्रकाश तृतीय वर्ष जुलाई अगस्त सितंबर, १८९९ ई० (पृष्ठ १३)

पूर्तिकार—'भारत प्रज्ञेंदु' पं० नाथूरामशंकर शर्मा 'शंकर'—

आपका जन्म सं० १९१६ वि० में हुआ। आप पं० प्रतापनारायण मिश्र के मित्रों में से थे। आप उस समय के कवि-समाजों में बराबर जाया करते और अपनी सुंदर समस्यापूर्तियाँ सुनाया करते थे। आपकी पूर्तियाँ सुंदर होती थी। आचार्य शुक्ल लिखते है—"समस्यापूर्ति वे बड़ी ही सटीक और सुंदर करते थे, जिससे उनका चारों ओर पदक, पगड़ी, दुशाले आदि से सत्कार होता था।" बिसवाँ-कवि-मंडल से आपका बड़ा घनिष्ठ संबंध रहा। आपने ही मंडल को कवि-परीक्षा लेने का सुझाव दिया तथा उपाधि-वितरण का समर्थन किया था। आपको कवि-मंडल ने 'भारत प्रज्ञेंदु' की उपाधि प्रदान की थी। आपके कुछ हस्त-लिखित पत्र मिले हैं, जिनसे 'कवि-परीक्षा' और उपाधि-वितरण के विषय में आपका दृष्टि-कोण स्पष्ट हो जाता है।[1] यह पत्र आपने बिसवाँ-कवि-मंडल के मंत्री एवं काव्य-सुधाधर (पत्रिका) के संपादक के नाम लिखा है।

१—(पत्र की प्रतिलिपि)

ओउम

श्रीमन्महोदयजी, प्रणाम ! १५-१०-१९०१ ई०

आपका कृपापत्र आया। कवि-कुल-सम्राट् यह पदवी उस महात्मा कवि को दी जाय, जो साहित्य की परीक्षा में सर्वोत्तम रहे तथा जिसकी कविता सबसे अच्छी हो। अगले वर्ष में आरंभ से अंत तक बारह मास पूरी परीक्षा कर लीजिए। फिर भी कुछ शंका रहे, तो परीक्षा देनेवाले कवियों को कवि-मंडल में बुलाकर खूब जाँच-परताल कीजिए। उस समय जो पुरुष परीक्षोत्तीर्ण हो, उसे कवि-कुल-सम्राट् बनाया जाय। मेरी यह प्रार्थना नही है कि किसी सिफ़ारिश के सहारे से मैं उक्त पदवी को पा सकूँ। अनेक विद्यार्थी परीक्षा देते हैं, उनमें एक अवश्य ही सर्वोत्तम रहता है, उपर्युक्त परीक्षा देना जो कवि स्वीकार नही करेंगे, वे निर्बल तथा अजान समझे जावेंगे। परीक्षक महाशयों को न्याय से काम करना होगा (फिर देखे, सर्वोपरि रहै को कवि-दर्प दिखाय के)। परीक्षा देकर बड़ी पदवी पाना महावीर का काम है। इस पर श्री कवि-मंडल को उत्तेजित करना मेरा अभिमान नहीं है—अब के वार्षिकोत्सव में अपनी पूर्तियाँ भेजूंगा, जिनको आप अपनी प्रतिज्ञानुसार अवश्य ही स्वीकार करेंगे।

आपका दास—

पं० नाथूराम शंकर शर्मा, हरदुआगंज।

पता—श्रीमन्महोदय पंडित देवीदत्तजी शर्मा त्रिपाठी (दत्तद्विजेंद्र)
मंत्री श्री कवि-मंडल, बिसवाँ समीपेषु, मुकाम बिसवाँ, ज़िला सीतापुर

उपर्युक्त समस्या की इनकी पूर्ति देखिए—

पूर्ति— राजा तू सदेह सदा स्वर्ग में रहेगो ऐसो,
शंकर असीम जाके मुख तें निकसिगो,
ताही गाधिनंदन को योग-बल पाय उड़ो,
तीर सो त्रिशंकु नभ-मंडल मैं धसिगो।
वासव ने मारो त्राहि-त्राहि सो पुकारो,
मिलो मुनि को सहारो अधबरही में बसिगो,
आयो न मही पर न पायो लोक देवन को,
'चुंबक युगुल बीच मानो लोह फँसिगो' ॥[1]

पूर्तिकार—खुशालीराम 'हेम' (जबलपुर)—

पूर्ति— देखे ना बनत बिन देखें ना परत चैन,
आली! आज ख्याली इहि मारग निकसिगो,
पीत पट काछनी लकुट-कर बंशीधर,
नीरज नयन मैन मूरत-सो हँसिगो।
कासो कहौं, कहाँ जांव, कौन सुनै, कौने ठांव,
स्यामलो सलोनो द्विज हेम मन बसिगो,
प्रेम को प्रवाह इत नेम को निबाह,
चित 'चुंबक युगुल बीच मानो लोह फँसिगो' ॥[2]

समस्या—"चंद्रकला"

पूर्तिकार—हरदेवबख्श, पीरनगर, सीतापूर—

पूर्ति— सरसीरुह अंध्रि लसै उरु रंभ के खंभ शरीर विभूति मला।
अरु नाभि अगाध है वक्ष विशाल भुजा करि शुंड गला है भला॥
बरअंग भुजंग कलोल करैं अरधंग बसैं जननी विमला।
हरदेव दिगंबर आशु प्रतोष विराजत भाल पै 'चंद्रकला' ॥१॥[3]

१—'काव्य-सुधाधर' (त्रैमासिक) प्रथम प्रकाश, तृतीय वर्ष, जुलाई, अगस्त, सितंबर, १८९९ ई० (पृष्ठ ११)

२—वही " " " (पृष्ठ १९)

३—काव्य-सुधाधर (त्रैमासिक) प्रथम प्रकाश, द्वितीय वर्ष सन् १८९८ ई० (पृष्ठ २)

पूर्तिकार—भैरवप्रसाद वाजपेयी 'विशाल', लखनऊ—

आपका जन्म लखनऊ-नगर के खेतगली-मुहल्ल' में, सं० १९२६ वि० में, हुआ। आपके पिता का नाम पं० कालिकाप्रसाद था। आप मिश्रबंधुओं के निकट संबंधी थे और प्रायः उन्हीं के संपर्क में रहते थे, इस कारण कविता की रुचि आपमें बचपन से ही जाग्रत हो गई थी। आपने गंधौली में रहकर पं० जुगुलकिशोर मिश्र से दशांग कविता सीखी। आपकी प्रकृति बड़ी ही शांत थी, किंतु हास्य-रस के आप आचार्य ही थे। इसीलिये बिसवाँ-कवि-मंडल ने आपको 'हास्य-रसेंद्र' की उपाधि से विभूषित किया था। आपने होलिकाभरण नामक एक अलंकार-ग्रंथ रचा, जिसके प्रत्येक दोहे में अश्लील वर्णन के द्वारा अलंकार निर्देशित किया है। पाप-विमोचन-नामक ८४ सवैया कवित्तों का आपने एक शंकर-स्तुति का ग्रंथ रचा था। भँड़ौआ रचने में तो आप बहुत ही प्रसिद्ध थे। उपर्युक्त समस्या की पूर्ति देखिए, जिसमें इन्होंने चंद्रकला (बूँदी की एक कवयित्री) तथा द्विजबलदेव के प्रेम-संबंध का संकेत किया है—

पूर्ति— यक बास करै नित शंभु के शीश पै,
दूसरी अंबर मैं बिमला;
पुनि तीजी बिराजति बूँदी के
बीच में, जो बलदेव की प्रेम-पला।
अब हाल बिशाल कृपा करके,
कवि दत्तजू मोको बताओ भला;
इनमें बिसवाँ - कवि-मंडल में,
यह कौन - सी राजति 'चंद्रकला' ॥१॥
कवि-मंडल में कवि लोगन की,
बिधि एक-ते-एक रची अबला;
पर जानती हैं न कछू कविता ते,
कहो किमि पावै खिताब भला।
यह छंद बिशाल बनावती हैं,
ज्यहि देखि अनेकन काटैं गला,
यहि कारण या छिति-मंडल पै,
अहै साँची कवाइनि 'चंद्रकला' ॥२॥
बिरही जियदाहक गाह कसी,
निशिमैन महातम की कुशला;

छवि छाजति अंबर मैं बरसाय

पियूष सयागिनि ही को भला।

रहे नैन चकोर चितै इतहूँ लौं

बगारति चाँदनी दयो लला,

उपमा न कहूँ उपमेय कहूँ दिशि

चन्द्रवदना सम चन्द्रवदना' ॥३॥

पूर्तिकार—पं० शिवनारायण शुक्ल पदापुर बिसवाँ—

आपका जन्म संवत् १९१० वि० में सीतापुर जिले के अंतर्गत पैंदापुर ग्राम में हुआ था। आपके पूज्य पिता पंडित मुन्नूलालजी शुक्ल स्थानीय राज्य रामपुर कलाँ में एक प्रतिष्ठित अधिकारी थे। आप अपने पिताजी के एकमात्र पुत्र थे। इसी से उनके संपूर्ण स्नेह के भागी रहे। विद्याध्ययन-काल में ही आपमें काव्य रुचि जाग्रत हो गई थी किंतु उसका पूर्ण परिस्फुरण तब हुआ जब पंडित देवीदत्तजी ने बिसवाँ में कवि मंडल स्थापित करने के लिये आपसे परामर्श किया। आपने अपना पूर्ण सहयोग देकर बिसवाँ-कवि मंडल की स्थापना कराई। कवि रूप में आपके परम मित्र ठाकुर दुर्गासिंहजी आनन्द थे। शंभुनारायण एवं आनंद का यह जोड़ा बिसवाँ श्रीकवि मंडल के प्रसंग में चिरस्मरणीय रहेगा।

आप भी अपने पिताजी की भाँति ही चौधरी गंगाबख्शसिंहजी के राज्य में एक प्रतिष्ठित अधिकारी थे और चौधरी साहब भी आपको अधिक सम्मान देकर मित्र की भाँति रखते थे।

आप केवल हिंदी के एक कवि ही न थे वरन् संस्कृत के एक अच्छे पंडित थे। आपका शरीर स्वस्थ तथा प्रकृति बड़ी सौम्य थी। आपके उदार चरित्र तथा शुद्धाचरण का प्रभाव यह पड़ा कि आपके विरोधी भी आपके मित्र ही बने रहे। कालांतर में आपकी शिक्षा-दीक्षा एवं चरित्र का पूर्ण प्रभाव आपके ज्येष्ठ पुत्र स्वर्गीय पण्डित महेशदत्तजी शुक्ल पर पड़ा। इस प्रकार से पंडित महेशदत्तजी आपकी अनुकृति मूर्ति थे।

आपका स्वर्गवास ७७ वर्ष की आयु में श्रावण शुक्ल ७ संवत् १९८७ वि० को सायंकाल हुआ। आपने कई आख्यायिकाएँ बनाई थीं जैसे 'तमले पीर' आदि। किंतु मौखिक होने के कारण सभी लुप्त हो गईं। उपर्युक्त समस्या की पूर्ति देखिए—

१—काव्य सुधाधर (त्रैमासिक) प्रथम प्रकाश द्वितीय वर्ष जून जुलाई अगस्त १८९८ ई० (पृष्ठ ६)

पूर्ति— जात नहैयन के संग में
व्यभिचारिणी एक नई अबला
त्यों कहि शंभुनरायण पुण्यकरी
कबहूँ नहिं एक पला।
न्हातहि नीर त्रिवेणी में शंभु
स्वरूप ह्वै अग बिभूति मला,
हाथ में शूल पिशाच है साथ में
माथ में सोहति 'चंद्रकला' ॥[1]

समस्या—"देश हितै विचारो"
पूर्तिकार—शिवनारायण शुक्ल 'शंभुनारायण'—
पूर्ति— कहौ सदा नाम मुखै त्रिवेणी
दहौ सबै पातक पुंज श्रेणी;
दया धरो कार्य निजै सँभारो,
सुनो ममा'देश हितै विचारो' ॥१॥
स्वकर्म साधौ स्वसुतै पढ़ावो,
अनेकधा उद्यम को बढ़ावो ;
चलो त्रिवेणी मधि पाप जारो,
अहो मितै 'देश हितै विचारो' ॥२॥
श्रीतीर्थराज महाराज परोपकारी,
देहैं तुम्हैं सकल सिद्धरु वुद्धि भारी;
भागीरथी यमुन शारद ध्यान धारो,
साँचो सुनो ममा'देश हितै विचारो' ॥३॥[2]

उपर्युक्त छंदों में कवि ने देश के सांस्कृतिक, धार्मिक तथा औद्योगिक सुधार की वात कही है। जब तक देश में शिक्षा का प्रसार नही होता, अनेक प्रकार के उद्योग नही चलाए जाते एवं जब तक अपने धर्म का पालन नही किया जाता, तब तक देश का सुधार नही हो सकता। कवि ने इसी तथ्य को ध्यान में रखकर देश-सुधार एवं हित-चिंता की बात कही है। बृटिश-काल में जब देश की स्थिति प्रत्येक दृष्टि से हीन हो चुकी थी, उस समय मे कुछ ही ऐसे कवि थे, जो जनता का ध्यान उनकी वास्तविक दशा की ओर आकर्षित करते थे।

१—काव्य-सुधाधर (त्रैमासिक) प्रथम प्रकाश, द्वितीय वर्ष १८९८ ई० (पृष्ठ ९)
२— वही ,, ,, ,, (पृष्ठ ९)

पूर्तिकार—पं० देवीदत्त त्रिपाठी 'दत्तद्विजेंद्र', मंत्री श्रीकवि-मंडल, बिसवाँ—

पंडित देवीदत्तजी बिसवाँ कवि-मंडल के संस्थापक एवं उत्साही मंत्री थे। आपका जन्म सं० १९२९ वि० तथा मृत्यु सं० १९६७ वि० माना जाता है। आपके मंत्रित्व-काल में ही बिसवाँ-कवि मंडल तथा काव्य-सुधाधर पत्र, दोनो चलते रहे। आपने स्थानीय जनता के हृदय में काव्य-रुचि का संचार किया एवं कई जमींदारों से सहायता लेकर काव्य सुधाधर पत्र का संपादन कार्य सँभाला। आपकी प्रसिद्धि कवि रूप में उतनी न थी, जितनी कि काव्य मर्मज्ञ के रूप में। आपको हिंदी के अतिरिक्त संस्कृत एवं उर्दू का अच्छा ज्ञान था। संस्कृत के पंडित होने के साथ-साथ आप ज्योतिष भी जानते थे। तंत्र-मंत्र विद्या की भी संभवतः आपको जानकारी थी, क्योंकि इस संबंध की एक हस्त लिखित पोथी प्रस्तुत लेखक को प्राप्त हुई है। आप अपने पत्र में तत्कालीन साहित्य की समालोचना भी किया करते थे। आपकी तीन पुस्तकें प्रकाशित हुई थीं—'ललिता शतक,' 'नरहर चंद' तथा 'गंगाष्टक'। आपने 'मिथ्या वासुदेव भाँड' नाम की एक कृति की रचना देवकीनंदन खत्री के ऊपर की थी, किंतु वह प्राप्त नहीं हो सकी है। आपकी मृत्यु से न केवल आपके परिवार की ही हानि हुई वरन् स्थानीय कवि मंडल भी पंगु हो गया तथा काव्य-सुधाधर भी बंद हो गया। एक बार पुनः प्रकाशित हुआ, किंतु अधिक समय तक न चल सका। बिसवाँ-क्षेत्र में काव्य रुचि का जागरण करनेवाला आप-जैसा कोई उत्साही कवि न था। आपकी मित्र मंडली के गण्यमान कवि श्रीठाकुर दुर्गासिंह 'आनंद', पंडित शिवनारायण शुक्ल, कविवर द्विजबलदेव, पंडित गंगाधर अवस्थी, साहित्य-शिरोमणि पंडित युगुलकिशोर मिश्र 'ब्रजराज', पंडित नाथूराम 'शंकर' शर्मा, सैयद अमीरअली 'मीर', भगवानदीन मिश्र 'दीन', 'विशाल' आदि थे। उपर्युक्त समस्या की इनकी पूर्ति देखिए—

> जापान मित्र इंगलैंड चहै सिधारो,
> रूसाग्निमादि सह फ्रास मझाय झारो॥
> विद्या सिखो जरमनी इत मोद पारो।
> भैया विरोध तजि 'देश हित विचारो'॥[1]

समस्या—"निशाकर निहारै लगी"

पूर्तिकार—हरदेवबख्श, पीरनगर, सीतापुर—

पूर्ति— यशुदा जू जागतहि बाल को मुखारविंद,
देखत ही तन अरु धन मन हारे लगी,

१—'काव्य-सुधाधर' (मासिक) प्रथम प्रसाद, द्वितीय वर्ष, १८९८ ई० (पृष्ठ २४)

सारै लगी सुख-साज जारै लगी दुख तन,
धारे लगी गोद मन-मोद उपचारै लगी।
कारै लगी दान के सँवारे लगी लाल गात,
हरदेव देन मुक्त मणि भरि थारै लगी;
वारै लगी प्रानन पँवारै लगी अघ औघ,
लालन को आनन 'निशाकर निहारै लगी' ॥[१]

पूर्तिकार—नाथूराम 'शंकर' शर्मा—

पूर्ति— सास ने बुलाई घर बाहर की आईं,
सो लुगाइन की भीर मेरो घूँघट उघारै लगी;
एक तिन ही में तृण तोरि-तोरि डारै लगी,
दूसरी सरैया राई-नोन की उतारै लगी।
'शंकर' जिठानी कछू बार-बार वारै लगी,
मोद मढ़ी ननदी अटोक टोना टारै लगी;
आली पर साँपिनि-सी सौति फुसकारै लगी,
हेरि मुख हा कर 'निशाकर निहारै लगी' ॥[२]

पूर्तिकार—पं० शिवनारायण शुक्ल 'शंभुनारायण'—

पूर्ति— एक द्यौस गणिका गली में गेह जाको रहै,
आवत नहैयन के उठि सतकारै लगी;
भौन मैं टिकायो पद-रज शीश लायो माँगि,
परम प्रसाद रेणुका लै मुख डारै लगी।
तौ लौं भई विधि को स्वरूप शंभुनारायण,
श्याम-रूप ह्वै कै शंभु रूप जबै धारै लगी;
ताकी एक चेरी सो भुजंग अंग मैं बिलोकि,
मुंडमाल साँकर 'निशाकर निहारै लगी' ॥१॥

१—काव्य-सुधाधर—त्रैमासिक द्वितीय वर्ष, प्रथम प्रकाश, १८९८ ई०
२—वही " " पूर्ण प्रकाश, सन् १८९९ ई०

बाँधि अस्थि आपने पिया के तिया तारे चली,
जारे चली पाप आपदा को निरवारे लगी ,
धारे लगी धीर जवै चलन सवारे लगी,
दारे लगी दीह दुख दारिद बिदारे लगी।
कहै 'शंभुनारायण' नेक ना लगी अवार,
छोड़ि गाँठि नीर में त्रिवेणी के विचारे लगी ,
त्योंही जगी जोति तीनि देवन की शंभु होति,
दौरि दौनि लाखन 'निशाकर निहारे लगी' ॥२॥[1]

समस्या—"परदेश में"

पूर्तिकार—पं० भगवानदीन मिश्र 'दीन' फर्रुखाबाद—

पूर्ति— आयो मास सावन न आयो मन भावन न,
धावन पठायो बीधो सौति उपदेश में ,
संग की सहेली दीन झूलती हिंडोले बैठि,
बसन विभूषण बनाए अंग देश में।
मेरे चित किंचित न रुचत निहारी सौंह,
हारी के यतन जीव रहत अँदेश में ,
मैनके मसूसन सो निकसो परत प्राण,
पातकी बसो है प्राण प्यारो 'परदेश में' ॥[2]

पूर्तिकार—पं० सीताराम शर्मा उपाध्याय 'भारत सर्वस्व'

पूर्ति— भारत निवासी बंधु आवति न लाज तुम्हें,
हाय ! हाय ! राम ! रहे इतन्यो क्लेश में ,
सोवत कहाँ हो कहो आलस की नींद माँह,
आरज के पूत होय जारज के त्रेष में।

१—काव्य-सुधाधर मासिक, द्वितीय वर्ष, प्रथम प्रकाश, १८९८ ई०
(पृष्ठ ३४)

२—वही " " (पृष्ठ ४२-४३)

कारज करत काहे नाहीं बाप-दादन से,
ओवत न काहे मेल बीजन स्वदेश में;
सीखत न काहे सीताराम जू फिरंगिन सों,
सीख जो करत देखो राज पर'देस में' ॥[१]

समस्या—"जावक के भार पग उठत न प्यारी के"

पूर्तिकार—पं० युगुल किशोर मिश्र 'ब्रजराज'—

पूर्ति— नारिन के काज करि जानत न नीके तैं,
अनारिन के साथ सीखे कारज अनारी के;
गाढ़े करि छान्यो लाख लाखिमा मिलान्यो रहो,
हाय कैसे लेख लिखे निपट गँवारी के।
रंग न सुरंग लसै गहिरी ललाई अति,
सुलुप सुढार अंग संगिनि हमारी के;
हा हा हठि नाइनि निहारु तौ निहोरे लखु,
'जावक के भार पग उठत न प्यारी के' ॥[२]

पूर्तिकार—पं० खुशालीराम 'हेम'—

पूर्ति— चित्र की-सी पूतरी चितौत चित मोहे बाम,
छबि अभिराम ठाढ़ी द्वार चित्रसारी के;
कोयन सों लोयन चलाय चख चोट करै,
खोट करे पथिक सनेह मग धारी के।
सुंदर स्वरूप ओप ओपित अनंग अंग,
काँटे-सी ढुरत लंक पीन कुच वारी के;
बार भार, हार भार हेम जू सिंगार भार,
'जावक के भार पग उठत न प्यारी के' ॥[३]

पूर्तिकार—पं० गिरधरलाल शर्मा, झालरापाटन—

पूर्ति— चंपकली दल-सों भी देखि भली आँगुरी सु,
कोमल कमल-सों भी पद सुकुमारी के;

१—काव्य-सुधाधर, त्रैमासिक, द्वितीय वर्ष प्रथम प्रकाश, १८९८ ई० (पृष्ठ ६०)
२—वही " " " " (पृष्ठ ४२)
३—वही " " " " (पृष्ठ ६८)

रंभ खंभ हू से भले देखे जंघ युग और,
कटि अति सूक्ष्म देखी सिंह-सो भी नारी के।
दिखे हेम कुंभ-सो भी ऊँचे स्वच्छ कुच युग,
आनन विमल देख्यो चंद-सो कुमारी के,
गिरधर कवि देखो चाल मंद-मंद मानो,
'जावक के भार पग उठत न प्यारी के' ॥[1]

समस्या—"भारत के"

पूर्तिकार—बाबू पत्तनलाल 'सुशील'—

पूर्ति— करुनानिधि लौं करुना की कथा सुनि होत है खेद बिचारत के,
जिहि कारन ही सकुचे न सुशील स्वरूप अनेकन धारत के,
बनि कच्छप मच्छ बराहहु लौं टुक बार करी न सुधारत के,
अब आनन नेकहु ध्यान नहीं दिन हा उहि आरत 'भारत के' ॥१॥
तजि सात समुदर पार गई इहि श्री अरु सारद आरत के,
बल साहस उद्यम हू उनके संग लागि चले अति गारत के,
दृग वारि सुशील न रोके रुके दुख होत महा है निहारत के,
करुनानिधि स्याम सुजान कबौं फिरि है पुनि वे दिन 'भारत के' ॥२[2]

पूर्तिकार—पं० सीताराम शर्मा 'उपाध्याय'—

पूर्ति— काहे लजात कहो अपने परिवारन धर्म न धारत के,
छाडि सबै पुरुषारथ क्यों तुम बैन उचारत आरत के।
काहे न काम करो मिलि के सब भारत बंधु तिजारत के,
काहे कहो हक नाहक ही मरजाद गँवावत 'भारत के' ॥[3]

पूर्तिकार—सैयद अमीरअली 'मीर'—

पूर्ति— अब के नवयुवान को हाल कह्यो नहिं जात तजे पट धारत के,
नित कोट-कमीज सजे पतलून बने अँगरेज विलायत के।

१—काव्य-सुधाधर—(त्रैमासिक) प्रथम प्रकाश, द्वितीय वर्ष, सन् १८९८ ई०, (पृष्ठ ७२)

२—वही " द्वितीय प्रकाश " (पृष्ठ ७)

३—वही " " " (पृष्ठ ११)

इसटीक सिंगार न भूलत मीर सु बूट चहैं वड़ी लागत के;
मल सोप धरें चख पैं चसमा ये वढ़ावत गौरव 'भारत के' ।।[1]

समस्या—"स्वेत बलाहक"

पूर्तिकार—द्विजबलदेव—

पूर्ति— प्रेम-पगे दृग चारु चकोर उदै छवि श्री ब्रजचंद वलाहक;
कातिली जादू भरी वलदेव मिली मतवालिनी सैन सलाहक।
हेरतै ता दिशि बोरिबो सूझत लाज जहाजहि मैन मलाहक;
सारदी सीरी समीर सने सरसीरुह सौरभ 'स्वेत वलाहक' ।।[2]

पूर्तिकार—पं० गंगाधर अवस्थी 'द्विजगंग'—

पूर्ति— लाहक कीन्हों हमें जवसों उत औरन के भये श्याम सलाहक;
ता विपदा में अरे विसवासी चलायो सवै अपने ही कलाहक।
घेरि घटान सों दामिनी लै द्विजगंग जू कीन्हों थलों में जलाहक;
ग्राहक प्रान के होने लगे हक नाहक हो अब 'स्वेत वलाहक' ।।१।।
शोक सहे सव भाँति हिमंत के मैन मनो शिशिरैंको सलाहक;
वैरी वसंत के वानन सों वची तैसे ही ग्रीषम ताप कलाहक।
देखिए तो द्विजगंग दशा दुख दै गयो पावस जोरि जलाहक;
शीत में मीत न आयो अवै ते सभीत करै लगे 'स्वेत वलाहक' ।।२।।[3]

समस्या—"उजेरे में"

पूर्तिकार—वसुंधरारत्न चंद्रकलावाई—

पूर्ति— भूषन बसन सेत धारिके उमंग भरी,
पियसों मिलन चली पूनो निशि घेरे में;
शीतल सुगंध मंद सामुहे बहत पौन,
मन अति लागि रह्यो लालन के डेरे में।
चंदकला चौंकत चकोर चले चारों ओर,
पूरन लिपत भई भौंर भीर मेरे में;

१—काव्य-सुधाधर (त्रैमासिक) द्वितीय वर्ष, द्वितीय प्रकाश, सन् १९९८ ई० (पृष्ठ २१-२२)
२—वही ,, ,, ,, (पृष्ठ ३६)
३—वही ,, ,, ,, (पृष्ठ ३६-३७)

सजनी पिछारी चली जाति है सुगध सग,
दीखत तिन्हैं न बालचद के 'उजेरे मे' ॥'

पूर्तिकार—द्विजगग—

पूर्ति— सुखमा निरखि अभिसार साज सुदरी को,
दामिनी दुरी है घन आवत न नेरे मे ,
जटित जवाहिरात जेवर जगत जोत,
हार चौलरे त्यो गर हीरन के हेरे में ।
द्विज गग राजै अग-अग मैं उमग प्रेम,
सरसै तरग रगदार गति गेरे में ,
रास करिबे की आस जात नद-नद पास,
उदित अमद मास चद के 'उजेरे मे' ॥१॥
लीला हाव वलित विलास विपरीत गाच्यो,
बगरे बसी कर हरषि हँसि हेरे मे ,
द्विजगग रग मो अनग की उमगन सो,
सरसै तरग अग कोक गति गेरे मे ।
छूटी लटै ललित लली की स्याम मुदर पै,
आनन प्रसन्न नेह निरखनि नेरे मे ,
कचन-लता लै कढि मानो पन्नगीनबृद,
मद-मद विहरत चद के 'उजेरे मे' ॥२॥'

पूर्तिकार—श्रीदुर्गासिंह 'आनद'—

आपका जन्म चैत्र शुक्ल अष्टमी, स० १९०२ वि० म, डिकोलिया, बिसवाँ, जिला सीतापुर म, हुआ था । कविता करने की रुचि आपमे बचपन से ही थी । १८ वय की आयु से आप भाव पूर्ण कविता करने लगे थे । आपने 'प्रह्लाद-चरित्र' नाम की पुस्तक स० १९२० मे रची थी, जिसका प्रकाशन भी हो चुका है । इसके अतिरिक्त 'ज्ञानमाला' नाम की भी एक पुस्तक आपने प्रकाशित कराई थी । समस्यापूर्ति करने म आप बडे ही कुशल थ । बिसवाँ कवि मडल के सदस्यों

१—काव्य सुधाकर (त्रैमासिक) द्वितीय वर्ष, द्वितीय प्रकाश, १८९८ ई०, (पृष्ठ ५४)

२—वही " " " (पृष्ठ ५६)

में से आप भी थे। आपकी मृत्यु सं० १९८६ में हुई। उपर्युक्त समस्या की इनकी पूर्ति देखिए—

आज गाज मारिन गजब डारो गोकुल में,
पूनों करि दीनों कुहू निशि के अँधेरे में;
द्वार-द्वार, वाट-वाट दीपक जलाइ राख्यो,
जात है बलाय कहै ऊक के दरेरे में।
जागते जगावत मैं यामिनी बितीत भई,
आनंद कहत धूम धाम धाम खेरे मे;
येहो निरदई दई कैसी यह रीति ठई,
बनो ना मिलन या दिवारी के 'उजेरे मे' ॥[1]

पूर्तिकार—पं० गिरधरलाल शर्मा झालरापाटन—

पूर्ति— मोतिन की गूथ माँग मोतिन सो साज अंग,
मोतिन को हार धार सुंदर सुचेरे मे;
जर की किनारी वारी धार सारी गुण वारी,
कंचुकी सुगंध वारी धारी स्तन घेरे में।
फूलन के गजराजु बाजुबंद धार कर,
चंदन लगाय भाल चमकाय चेरे में;
गिरिधर कबि चंद चाँदनी के माँहि चली,
चाँदनि-सी बनकर चाँद के 'उजेरे में' ॥[2]

समस्या—"दुरत जात"

पूर्तिकार—श्रीमन्म० कु० लाल रमेशसिंहजूदेव कालाकाँकर—

पूर्ति— होत ही बसंत अंत गवन्यो दुरंत कंत,
ग्रीपम अनंग करैं संग-संग उतपात;
व्यजन करनहारी आज ना सहेली पास,
परी हौं अकेली याते औरौ जिय घबरात।

१—काव्य-सुधाधर (त्रैमासिक) द्वितीय वर्ष, द्वितीय प्रकाश, १८९८ ई० (पृष्ठ ५९)

२—वही „ „ „ (पृष्ठ ७०)

लायेहौ रमेश खास तेरे आगमन आस,
ताहूपै न उर लागि शीतल करत गात,
सांझ ही से द्वार को किवार खोल्यौ पौन प्यारे,
काहे तरसाय आय आय के 'दुरत जात' ॥[1]

पूर्तिकार—प० गिरधरलाल शर्मा झालरापाटन—

पूर्ति— ग्यानिन में ग्यानी लख तानिन मैं तानी लख,
दानिन में दानी लख करन लुरत जात,
मित्रन में मित्र लख छत्रिन तें छत्र लख,
शत्रुन को शत्रु लख भरन मुरत जात।
नामिन मे नामी लख स्वामिन को स्वामी लख,
कामिन मे कामी लख वरन खुरत जात,
माधव राजेंद्र लख 'लाल' छीर सागर को,
तोर जस लख निशि करन 'दुरत जात' ॥[2]

समस्या—"भूल है"

पूर्तिकार—ठा० दुर्गासिंह 'आनंद'—

पूर्ति— रे मन मूढ़ कह्यो नहि मानत
मातु - पिता - गुरु बैन अदूल है,
बेद पुरान सुनै न कभू अरु
कानन मे भरि लेत फजूल है।
येतौ भई सो वितीती अनदजू
जो अजहूँ सिष मेरी कबूल है,
राधिका माधव कौ धरि ध्यान तू
वे अनकूल तो क्या फिर 'भूल है' ॥[3]

१—काव्य-सुधाकर, (त्रैमासिक), द्वितीय वर्ष, तृतीय प्रकाश (पृष्ठ ५)
२—काव्य-सुधाकर, (त्रैमासिक), द्वितीय वर्ष, तृतीय प्रकाश १८९८ ई० (पृष्ठ १३)
३—वही " " " (पृष्ठ ६४)

पूर्तिकार—श्रीपं० शिवनारायण शुक्ल 'शंभुनारायण'—

पूर्ति— तूल है करत परो कूल पै त्रिवेणी जू के,
पातकी अतूल अघ ओघन को मूल है;
ताहि बाँधिबे को गए दूत सो अबूत भए,
एहो यमराज तेरी साहबी फजूल है।
कहै 'शंभुनारायण' चारज समुझि लेहु,
ऐसी चाकरी सो गेह बैठिवो कबूल है;
लेखि-लेखि लेखा हम हारे चित्रगुप्त कहै,
कागद हमारे में परत महा 'भूल है' ॥१॥
हलसी परी है यमराज काज साजन मैं,
नरक दराज की समाजन में सूल है;
कहै 'शंभुनारायण' रोग-मंडली में सोग,
दोप दुख दारिद निशानी निरमूल है।
कोह, द्रोह, दंभ औ' दुरास नास पुण्य भास,
तीरथाधि-नाथ-पाथ महिमा अतूल है;
पाय ऐसो तीरथ जहान जस छाय पाप,
तापहूँ मिटाय जो न जाय तासु 'भूल है' ॥२॥[1]

समस्या—"वंदगी"

पूर्तिकार—पं० गंगाधर अवस्थी 'द्विजगंग'—

पूर्ति— माधुरे बैनन की करि याद भरी
मन में महा प्रेम की मंदगी;
पायके रावरी पाती नई करिहै
सगरी अब योग पसंदगी।
द्वारिकाधीश भये द्विजगंग वे आपुस
में कछु है नहिं फंदगी;
ऊधवजी तुम को तो प्रणाम औ
श्यामहू सों कहि दीजियो 'वंदगी' ॥[2]

१—काव्य-सुधाधर (त्रैमासिक) १८९९ ई० पूर्ण प्रकाश तथा तृतीय प्रकाश,
२—वही " " द्वितीय वर्ष, चतुर्थ प्रकाश (पृष्ठ २)

पूर्तिकार—महावीरसिंहजूदेव ईसानगर, खीरी—

पूर्ति— हाथ छू करके वादा किया था यही
हम निबाहेंगे उल्फतको भर जिंदगी,
भूल कर उसको वह जुल्म करना रवा
दिलमें सोचो जरा इसमें है खदगी।
क्यों बिठाने लगे पास गैरों को तुम
मुँ छिपाने लगे हममें शर्मिंदगी,
अब न आयेंगे हर्गिज न आयेंगे,
लो वीर जाते हैं बस लीजिये 'बंदगी'॥[1]

पूर्तिकार—पं० भैरवप्रसाद वाजपेयी 'विशाल'—

पूर्ति— जे नहिं जानत छंद प्रबंध प्रकासत हैं अपनी मति मंदगी,
भाव को नेकु न ख्याल जिन्हें बकि ऊटपटांग बढ़ावत गंदगी।
हे कवि दत्तद्विजेंद्र विशाल जिन्हें न रुचे पर की पसंदगी,
ऐसे खबीस कबीसन को अब कीजिये साहब दूर ते 'बंदगी'॥[2]

कविवर विशालजी यद्यपि हास्यरसेंद्र ही थे, तथापि उनकी लेखनी से कभी कभी बड़ी चुटीली एवं आलोचनात्मक पंक्तियाँ भी निकल जाती थीं। अपनी 'बंदगी' समस्या की पूर्ति में कवि ने केवल तुकबंदी करनेवाले और अत्यंत साधारण कोटि की पूर्तियाँ करनेवाले कवियों की अच्छी खबर ली है।

पूर्तिकार—पं० शिवनारायण शुक्ल 'शंभुनारायण'—

पूर्ति— भूले से आज भ्रमे से कहाँ इमे
जानि परी कछु है छल छंदगी,
आए हौ 'शंभुनरायण' भोर न
मो पग लागि करौ फरफंदगी।
भाए हौ भावतो के मन में करि
आए कहूँ अभिलाष पसंदगी,

1—काव्य-सुधाधर, (पं मासिक), १८९९ ई० पूर्ण प्रकाश तथा तृतीय प्रकाश (पृष्ठ २)

2—वही „ „ „ (पृष्ठ ५)

आए हो जा तिय को छतिया,
तितै जाइए लाल बजाइए 'बंदगी' ॥[1]

कवि ने अंतिम पंक्ति में 'बजाइए बंदगी' का बड़ा सुंदर प्रयोग किया है। रात व्यतीत हो गई और प्रिय का मिलन न हो सका, अतएव प्रिय-मिलन-वंचिता नायिका प्रभात में आए हुए नायक को लंबी फटकार बताती और स्पष्ट कह देती है कि जहाँ तुम अपनी 'अभिलाष पसंदगी' कर आए हो, वहीं अब जाकर बंदगी बजाओ। तात्पर्य यह है कि नायिका अपना रोष प्रकट कर रही है।

पूर्तिकार—पं० रामदुलारे शुक्ल 'गुरु' (बिसवाँ, सीतापुर)—
पूर्ति— रे मन मूढ़ सदा भ्रमजाल में व्यर्थ बितावत तू यह जिंदगी;
ध्यावत क्यों न शिवाशिव को पल में जो करें सब दूरि ए गंदगी।
भारी भरोस धरै मन मे औ तजै छल-छोभ महा मति मंदगी;
तौ फल पाइहै तू मन वांछित श्रीगुरुदेव की जो करु 'बंदगी'।[2]

समस्या—"मयंक मानसर में"
पूर्तिकार—बाबू पत्तनलाल 'सुशील'—
पूर्ति— सुख सों सुसील प्यारी साँवरे सुजान-संग,
जागो निसि सारी रति-रंगन-समर में;
होत ही प्रभात पान पीकन की लीकन औं',
टीकन बिछिन्न परी आरसी नजर में।
चली धोइबे के हेत पास ही के ताल माँहि,
धसि जल धोवै लगी लै-लै नीर कर में;
सोभा सरसात मानो दोय पंकजातन सों,
धोवतो कलंक है 'मयंक मानसर में' ॥[3]

पूर्तिकार— मुंशी हरदेवबख्श पीरनगर, सीतापुर—
पूर्ति— कीरति कुमारी प्यारी परी-सी प्रयंक परी,
करिके बिहारी सों बिहार केलि घर में;

१—काव्य-सुधाधर—(त्रैमासिक), पूर्ण प्रकाश, द्वितीय वर्ष, १८९९ ई०, (पृष्ठ २४)
२—वही " " " (पृष्ठ २२)
३—वही " चतुर्थ प्रकाश, द्वितीय वर्ष १८९९ ई०। (पृष्ठ ५)

टूटि गए हार हरदेव लूटिगे सिंगार,
गए छूटि वारहैं कपोल कंज कर में।
झूमक मुरेहैं वंक वालियाँ सिथिल गात,
स्वेद-कण जाल सरसात भाल वर में,
बेंदी घुँघुरू मनो मराल बाल-पाँति बैठि,
चुगत हैं मुकुत 'मयंक मानसर में'॥[1]

पूर्तिकार—शिवनारायण शुक्ल 'शंभुनारायण'—

पूर्ति— कुटिल कुनामी स्वामी कृपण करोरिन को,
तीरथाधिराज गयो आगत मकर में,
कहै शंभुनारायण दान देइबे के उर,
औघट अन्हायो जह्नुजा के जल भर में।
त्यागो देह ताछन अचानक करार पर,
हंस लै उड़ान्यो ब्रह्म लोकै बेग पर में,
निष्कलंक भाल दुति निरखि ससंक भागि,
गयो मानि शरमैं 'मयंक मानसर में'॥[2]

समस्या—"त्रिवेणी की तरंग है"

पूर्तिकार—द्विजबेनी—

पूर्ति— भासमान होति भानु तनया असित जोति,
जल में जहाँई होत बेनी को प्रसंग है,
मोतिन को माल सो रिसाल भनै बेनीद्विज,
स्वेत स्वेत प्रगट लखात मानो गंग है।
पगन ललाई के परेते भई शारदा-सी,
अरुण अभूत धार अति ही सुरंग है,
न्हात है जहाँई जहाँ नारी वा बिहारी उठैं,
ताल में तहाँई पै 'त्रिवेणी की तरंग है'॥[3]

१—काव्य-सुधाकर (त्रैमासिक), चतुर्थ प्रकाश, द्वितीय वर्ष १८९९ ई०। (पृष्ठ ३)

२—काव्य-सुधाधर—पूर्ण प्रकाश, द्वितीय वर्ष, १८९९ ई० (पृष्ठ २४)

३—काव्य-सुधाधर, तृतीय प्रकाश, दिसंबर, जनवरी, फ़रवरी सन् १८९७-९८, (पृष्ठ २५)

पूर्तिकार—पं० युगुलकिशोर मिश्र 'ब्रजराज'—

पूर्ति— जगमग होत यश जाहिर जगत जाको;
यम यमदूतन को जीत्यो जुरि जंग है;
पाप-पाँति प्रगट पराति सी प्रताप देखि,
पुण्यपय पाप पूरे आनंद अभंग है।
कलित किला के वै पताके कलधौत लखे,
जाके अलका के कंत मोहत सुढंग है।
सूरज-सुता की संग सुर सरिता को सर—
स्वति मिलि ताकी में 'त्रिवेणी की तरंग है'॥[1]

पूर्तिकार—पं० शिवनारायण शुक्ल 'शंभुनारायण'—

पूर्ति— एक ओर यमुना जरावैं यमजातन को,
नील जलजातन को जातन को रंग है;
एक ओर बावन के पावन को पुण्य पाथ,
पावन करत जग-पावन सो गंग है।
स्वच्छ तन धारती उधारती अधम अघ,
जारती लसत मध्य भारती प्रसंग है;
द्विज शंभुनारायण मानि कै त्रिगुण तीनि,
देवन को अंग सो 'त्रिवेणी की तरंग है' ॥१॥
एक ओर गुंज वनमाल ब्याल एक ओर,
मुंडन की माल स्वच्छ अच्छमाल संग है;
एक ओर गरुड़, ब्रषभ एक ओर खड़े,
एक ओर हंस मंडलीन को उमंग है।
कहै शंभुनारायण जै विजय सु एक ओर,
इतै वीरभद्र, उतै देवन को ढंग है;
एक देह तजत सजत तीनि रूप रंग,
ऐसे लखे ढंग सों 'त्रिवेणी की तरंग है' ॥२॥

१—काव्य-सुधाधर, द्वितीय प्रकाश, दिसंबर, जनवरी, फ़रवरी १८९७-९८,
(पृष्ठ २५-२६)

एक ओर डमरू खगाल ताल एक ओर,
एक ओर बाँसुरी मृदंग मुरचंग है,
एक ओर वेद की रिचान को सुगान होत,
एक ओर बल्लवी बजत स्वर संग है।
इतै लसै भूत उतै ग्वालन के पन मध्य,
देवता सपूत यमदूतन सों जंग है,
कहै शंभुनारायण कुटिल कुराहिन के,
पाप होत भंग सो 'त्रिवेणी की तरंग है' ॥३॥
दोह दुराचारी व्यभिचारी अनाचारी एक,
चित मे त्रिवेणी के अन्हैवे की उमंग है,
जाय कै सुतट पै तुरत प्राण त्यागे तिन,
आए यमराज बाँधिवे को कियो ढंग है।
कहै शंभुनारायण तीनि रूप धारि कै
सुधारि निज आयुध करत जोर जंग है,
बोले यमदूत हम ह्वै गए अपंग फेरि,
परिहै न फंग यो 'त्रिवेणी की तरंग है' ॥४॥[1]

समस्या—"पावक पुंज मे पंकज फूल्यो"
पूर्तिकार—जगलीलाल पैंतेपुर, सीतापुर—
पूर्ति— केसरि कुंकम को अँगराग कै,
माँग सुहाग सिंदूर समूल्यो,
त्यो अनुराग रँगी दुलही,
कचराती चली जगली अनुकूल्यो।
अंबर अंग सवारे सुरंग,
अभूषण हू अरुनारे अतूल्यो,
मंजुल आनन यो बिलसै मनो,
'पावक पुंज मे पंकज फूल्यो' ॥[2]

१—काव्य-सुधाधर, (त्रैमासिक), तृतीय प्रकाश, दिसंबर, जनवरी, फरवरी सन् १८९७-९८, (पृष्ठ ३०-३१)

२—काव्य-सुधाधर—(मासिक) तृतीय प्रकाश, मार्च १९०२ ई०, (पृष्ठ १)

पूर्तिकार—पं० गंगाधर अवस्थी 'द्विजगंग'—

पूर्ति— आज अचानक आई इतै उमगी मन आनंद में अनुकूलो,
जोवन जोति जगै द्विजगंग जू बेंदा विशाल त्यों भाल पै झूलो;
पौन ते सारी सुरंग खुले कछु कोमल पाणि हिये हठि हूलो,
मानो प्रभाकर को तप ठानिकै 'पावक पुंज में पंकज फूलो' ॥[१]

समस्या—"नागरी के हैं"—

पूर्तिकार—महेश्वरबखशसिंह रामपुर मथुरा, सीतापुर—

पूर्ति— शुद्ध सुवर्ण से शब्द सबै लिखे
पाठ किए सुख सागरी के हैं,
और को और पढ़ो नहिं जात त्यों
अंक अने मन आगरी के हैं।
वेद पुराण हू में बरन्यो छिति
पै महाओज उजागरी के हैं।
कैसे करूँ गुण गान महेश्वर,
नीके निहारिए 'नागरी के हैं' ॥[२]

पूर्तिकार—युगलकिशोर मिश्र 'ब्रजराज'

पूर्ति —और को न और पढ़िबे में भ्रम होत कवौं,
श्रम को करत दूरि रूप सागरी के हैं;
बहुत मिला एते न बरण बनत एक,
रहत सहाय विना रीति आगरी के हैं।
यावनी फिरंगी सदा रहत अधीन जाके,
औरै पदत्रान ए समान पागरी के हैं;
भए होत ह्वै हैं इन सम और आखर न,
देव नागरी के सम देव 'नागरी के हैं' ॥[३]

१—काव्य-सुधाधर, (मासिक) तृतीय प्रकाश, मार्च १९०२ ई० (पृष्ठ ५)
२—काव्य-सुधाधर (त्रैमासिक) तृतीय वर्ष, अक्टूबर, नवंबर, दिसंबर, १८९९ ई०, (पृष्ठ १)
३—काव्य-सुधाधर (त्रैमासिक) तृतीय वर्ष, अक्टूबर, नवंबर, दिसंबर, १८९९ (पृष्ठ २)

पूर्तिकार—प० शिव प्रसाद काव्यतीर्थ 'सुमन' महेंद्र—

पूर्ति— आखर बखाने हैं पचीस फ्रेंच भाषा केर,
छब्बिस बरण अंग्रेजी जर्मनी के हैं,
स्पेनिस के सत्ताईस रूसी के छत्तीस वर्ण,
चौबिस ही ग्रीक के सु बीस इटाली के है।
केल्टिन के सत्रह बाईस हैवू लैटिन के,
अट्ठाईस अरबी इकीस फारसी के हैं,
चीनी दोसौ चौदह त्यों तुरकी अठाइस ही
बावन बरन बेस देव 'नागरी के हैं' ॥[1]

पूर्तिकार—प० खुशालीराम 'हेम' मिलौनीगज—

पूर्ति— गौंडी, गुजराती मोडी मुडिया मराठो कर—
नाटकी औ' उडिया न खास कानरी के हैं,
टामल तिलग बग बगला निपाली द्विज,
हेम न बिचारी मारवारी कागरी के हैं।
मालवारी गोरखी निबोरी मैथिली ने नेक,
आरबी न पारसी न ब्रह्म भागरी के हैं,
खुर्दबुर्द उरदू करो न ताहि दूर दूर,
आखर अनूप रूप देव 'नागरी के हैं' ॥[2]

समस्या—"उमर हमारी है"

प्रस्तुत समस्या की पूर्ति मे कवियो ने अपने परिचय को प्रस्तुत किया है। इस प्रकार से समस्यादाता ने विभिन्न कवियो का परिचय बडी सरलता से प्राप्त कर लेने की युक्ति निकाली है। बहुत से ऐसे कवि होते थे, जो अपना परिचय अपनी पूर्ति के साथ ही भेज दिया करते थे, किन्तु कुछ ऐसे भी पूर्तिकार होते थे, जिनके जीवन-परिचय एव आयु का कुछ पता नहीं रहता था। ऐसे पूर्तिकारो का जीवन-परिचय उपर्युक्त समस्या की पूर्ति द्वारा प्राप्त हो जाता है।

१—'काव्य-सुधाकर' (त्रैमासिक) तृतीय वर्ष, अक्टूबर, नवबर, दिसबर, सन् १८९९ ई० (पृष्ठ ११ १२)

२—वही „ „ (पृष्ठ १३-१४)

पूर्तिकार—श्रीमन्म० कु० लाल रमेशसिंह जू देव कालाकाँकर—

पूर्ति— औध मंडलस्थ है प्रतापगढ़ तामें एक,
विश्वश्येन केरी रामपुर राज्य भारी है;
बाण अग्नि अंक इंदु पौष कृष्ण निद्ध काहिं,
ताके यौवराज केरी यह देहधारी है।
इंगरेजी महाराष्ठी फारसी पढ़ी रमेश,
त्योंही संस्कृत जो अतीव प्राण प्यारी है;
उपरोक्त सूचना सों चित्त दै बिचार लीजै,
जो अब द्विजेंद्रदत्त! 'उमर हमारी है'॥[1]

पूर्तिकार—द्विजबलदेव—

पूर्ति— संवत अठारासै सतानवे के कातिक में,
कृष्ण द्वादशी त्यों तुलागत गुरुवारी है;
जन्म पाय पंद्रह समर्प्यो जीह जगदेव,
द्विजबलदेव श्री बिचार अनुसारी है।
पायो गज-ग्राम महाराजन में मान महा,
भरत के भैयाजू भरोस उमर भारी है;
संतन के सेवक को सेवक कृपाल कीजै,
आई साठ बरस की 'उमर हमारी है'॥[2]

पूर्तिकार—पं० गंगाधर अवस्थी 'द्विजगंग'—

पूर्ति— विक्रमीय संबत युगुल गुण नंद चंद,
फाल्गुण माहिं भयो जन्म मुदकारी है;
वास नैंमिषारसों इशान चारि जोजन पै,
दासापुर वलदेवनगर सुखारी है।

१—काव्य-सुधाधर, (त्रैमासिक), चतुर्थ प्रकाश, तृतीय वर्ष, सन् १९००
अप्रैल, मई, जून (पृष्ठ १)

२—वही ,, ,, ,, (पृष्ठ २)

संसकृत यामिनी कछूक अँगरेजी जानि
भाषा-काव्य-कोष माहि प्रीति पुनि पारी है,
द्विज बलदवसुत नाम द्विजगग आनो
वय पंचविंशति को उमर हमारी है ॥[1]

पूर्तिकार—प० सीताराम शर्मा—

पूर्ति— द्वादश अगारी गए खलिब खाइब मे
पढिब पढाइब म षोडश गुजारी है,
बरस पचीस पिता सीस पै हमारे रहे
तबलो म ऊँच नीच बहुधा विचारी है।
सीताराम तापै अबौ नारी प्राण प्यारी सग
बसजाति मारी कैसी समक्ष तिहारी है
बत्तिस बिनाई अब ततिस अवाई भई,
याही मे तिहाई गई उमर हमारी है ॥[2]

पूर्तिकार—भैरवप्रसाद बाजपयी विशाल—

पूर्ति— कछु अँगरेजी नेक उरदू महाजनी त्यो
नागरी हू बालकपने म पढि डारी है,
भूपति रमेसुर बकस की कृपाते मेरो,
दोय सत बीघ सकलप सुखकारी है।
भनत विशाल कविताई ब्रजराज दीन्ही
पालक हमारो निशि द्योस त्रिपुरारी है
बाजपई खाले के बसत लखनऊ माँझ
अबै तीस बरस की उमर हमारी है ॥[3]

१—काव्य-सुधाधर (त्रैमासिक) तृतीय वर्ष चतुर्थ प्रकाश अप्रैल मई जून १९००(पृष्ठ २)

२—वही (पृष्ठ ३)

३—वही (पृष्ठ ३४)

पूर्तिकार—सैयद अमीरअली 'मीर', सौदागर, देवरी कलाँ—

पूर्ति— अंकित करहु अंक मीत ह्वै निशंक आपु,
रम मन आवै जौन अकल तिहारी है;
लीन्हों लिख ताके आदि सोच घर पक्ष अंत,
दाया करि सिद्धि पुनि गिन्ती जो निकारी है।
रचौ पुनि तामें भाग देहु दिश गुनौगुन,
वचै वाकी जामें मीर रीति निरधारी है;
साधके निकासो आँक गत ह्वै अवैलों येती,
रंगन में वीती विज्ञ 'उमर हमारी है' ॥१॥
कावुल कलित पितामह की जनित भूमि,
राज डुमराव वयपितृ ने सम्हारी है;
पुनि व्यवसाय-हित सागर सकुल आए,
जन्मइत भयो मम मातु सुखकारी है।
हासिल कै हिंदीशाला शिक्षक सनद पाई,
मतहू विलोको मीर पायो मुदभारी है;
कविता में वर्ष तीन सुखमा में चतु वीस,
आजु लौं गुजारी जानो 'उमर हमारी है' ॥२॥'

पूर्तिकार—मुंशी खैराती खाँ 'खान' देवरी कलाँ, सागर—

पूर्ति— सागर सुखद प्रांत, देवरी जनम भूमि,
ह्याहीं पढ़ी हिंदी जब शिशुता विसारी है;
क्योंहूँ खान कोशिश कै पाठकी को पास पायो,
पुनि पद पाय ह्याहीं पाठकी सँभारी है।
युगुल वितीतीं वर्ष काव्य अनुराग वीच,
मीरजू दिवायो ध्यान हमें सुखकारी है;
ईश की दया तें ये ती शिवकी द्विगुण वर्ष,
अबलौं वितीती सुख 'उमर हमारी है ॥'

१—काव्य-सुधाघर, (त्रैमासिक), चतुर्थ प्रकाश, तृतीय वर्ष, १९०० ई० (पृष्ठ १२)

२—काव्य-सुधाघर, (त्रैमासिक), चतुर्थ प्रकाश, तृतीय वर्ष, १९०० ई० (पृष्ठ १२)

पूर्तिकार—पं० देवीदत्त त्रिपाठी 'दत्तद्विजेंद्र', बिसवाँ

पूर्ति— नवें साल नागरी गुनागरी पढ़न लागे,
सोलहलों उरदू औ' फारसी बिचारी है,
सीखी अँगरेजी इक साल फेरि देवबानी,
मन मानी सीखत न नेक बुद्धि हारी है।
शुद्ध कविताई के प्रचार हेतु घाटा सहि,
काव्यसुधाधर को प्रकाशि कियो जारी है,
देवीदत्त नाम उपनाम श्री द्विजेंद्रदत्त,
बीस पर आठ बीती 'उमर हमारी है' ॥[1]

पूर्तिकार—बाबू पत्तनलाल 'सुशील'—

पूर्ति— गया जी जिला के गाँव दाउदनगर माँहि,
जनम उनीस सत सोलह मँझारी है,
पास इसकालर सिप बारह बरस वैस,
करि पटना में कीनी पढ़न तयारी है।
पढ़ि अँगरेजी कछु छोड़ि सो महाजनी में,
कारज करत आज लागि इकतारी है,
नीच नौकरी में रत रहत सुसील सदा,
मरन समीप आई 'उमर हमारी है' ॥[2]

उपर्युक्त पूर्तियों में कवियों ने अपने जीवन के विषय में स्वकथन किया है, जिससे उनका सही परिचय प्राप्त हो गया है। जाने कितने कवि समय के व्यवधान में पड़कर सदा के लिये विलुप्त हो जाते हैं। उपर्युक्त पूर्तियों द्वारा ऐसे कवियों का परिचय सहज ही प्राप्त हो सका है।

समस्या—"उपदेश देते हैं"

पूर्तिकार—पं० भैरवप्रसाद 'विशाल'—

पूर्ति— जारिडारी अमर पदनकी महत्री मव,
अतिशय उक्तिन को नाम नहिं लेते हैं,

१—काव्य-सुधाधर—(मासिक), चतुर्थ प्रकाश, तृतीय वर्ष, १९०० ई०
(पृष्ठ १३)

२—वही " " " (पृष्ठ ३९)

खंडन करैंगे अब सिगरी पुरानी पृथा,
कहा कवि गोत औ' पुराने ग्रंथ केते हैं।
भनत बिशाल एक! नेचरही राखि लेहैं,
पाछिले सु भूषण विनाश हेत चेते हैं;
सुनो भाई सकल सुजान ध्यान दैके इमि,
नई रोशनी के कवि 'उपदेश देते हैं' ॥[१]

कवि ने प्रस्तुत पूर्ति में नई कविता करनेवाले कवियों की आलोचना की है। समस्यापूर्तिकार कवि रीति-काल की परंपरा को लेकर चले थे, अतएव उस परंपरा से विपरीत दिशा की ओर जानेवाले कवि इन समस्यापूर्तिकार कवियों को नहीं भाते थे। यही कारण है कि पुरानी परंपरा के अनुयायी यह समस्यापूर्तिकार कवि नए कवियों की आलोचना करते थे।

पूर्तिकार—बाबू शिवसंपतिसिंह कोईरीपुर, जौनपुर—

पूर्ति— ऐसे-ऐसे भारत में उपजे कपूत हाय,
छोड़ि पथ वेद करैं ठक ठैंने केते हैं;
कोट-पतलून पैन्हें पीवत चुरुट फिरैं,
लेकचर देते कहैं आर्य धर्म सेते हैं।
जर्मन-जपान, फ्रांस-इँगलैंड घूमि आए,
भारत सुधारिबे को ओर नहि लेते हैं।
काहू सों न काम शिवसंपति सुजान हमें,
देश की हितैषिता पै 'उपदेश देते हैं ॥[२]

पूर्तिकार—पं० गणेशप्रसाद शुक्ल 'गणाधिप' बलसिंहपुर, सीतापुर—

पूर्ति— विक्रम को भोज को समय है नहीं आजु प्यारे,
भूपदंड भूसुर समूहन सों लेते हैं;
पश्चिमीय सभ्यता दिगंत व्यापिनी है भई,
देखि अँगरेजी आज लीजै जित जेते हैं।

१—'काव्य-सुधाधर' (मासिक) १२वाँ प्रकाश, १९०१ ई०
(पृष्ठ २)

२—'काव्य-सुधाधर' (मासिक) १२वाँ प्रकाश, १९०१ ई०
(पृष्ठ ३)

सबै अपने को गणाधिप अनुमानैं कवि,
कालिदास बनत नवीन नित केते हैं,
हाय देश भाषा नागरी की कविताई मंजु,
रसातल भेजिवे को 'उपदेश देते हैं' ॥[1]

समस्या—"कवि बनि जावेंगे"

पूर्तिकार—पं० युगुलकिशोर मिश्र 'ब्रजराज'—

पूर्ति— वाहन मराल सेत भूषण बसन पद,
नख सम चंद वंदि छंद करि गावेंगे,
एक कर बीन दूजे पद्धति प्रवीन तीजे,
बर वर चौथे ते अभय पद पावेंगे।
देवि जल जात जान जाया जग माया तजि,
तोहि जाय काऊ निज विनय सुनावेंगे,
एरी जगरानी ब्रजराज मानुबानी तुव,
नेकु-सी कृपा ते हम 'कवि बन जावेंगे' ॥१॥
गूंथि गनि आखर बटोरि भाव जोरि तुक,
अतहू मरोरि तोरि कोरि करि लावेंगे,
ऐंहूं जो न गण तो अगन मैं मगन ह्वै कै,
गगन मगन हेत पगन बढ़ावेंगे।
पूरति पठाय निज मूरति कराय बनि,
मूरति सुकवि अस फूरति दिखावेंगे,
पाँचये सवार को बखान उपखान मानि,
कहत उपाधि पाय 'कवि बनि जावेंगे' ॥२॥[2]

पूर्तिकार—भैरवप्रसाद वाजपेयी 'विशाल'—

पूर्ति— नैषध लौं कविता मनोहर बनी है जौनि,
दूषित कै ताको निज मत दरशावेंगे,

१—काव्य-सुधाधर (मासिक), १२वाँ प्रकाश, चतुर्थ वर्ष १९०१ ई०
(पृष्ठ ५)

२—काव्य-सुधाधर (मासिक), प्रथम प्रकाश, ५० वर्ष, जनवरी १९०२ ई०
(पृष्ठ १-२)

कालिदास सरिस सुकवि जे महानुभाव,
तिन्हैं कविताई की सुपद्धति पढ़ावैंगे।
भनत विशाल सबकाटिकै पुरानी प्रथा,
आधुनिक रोशनी की चरचा चलावैंगे;
खंडन कै मंडन समाज कवि गोतन को,
देखो ए निगोड़े अब 'कवि बनि जावैंगे' ॥[१]

पूर्तिकार—कविराज भारत प्रज्ञेंदु—पं० नाथूराम शंकर शर्मा—

पूर्ति— पूँजी पदवीन की मिलैंगी कविराजन को,
प्रक प्रवीन उपहार घने पावैंगे;
धीग धरणीश धनी धौंस की धमार गाय,
आशु कवि भारती के भूषण कहावैंगे।
शंकर सुजान अधिकारी न रहेंगे जब,
आदर को बोझ तब तुकिया उठावैंगे;
या विधि उदार कवि मंडल में मान पाय,
एक दिन सबही 'सुकवि बनि जावैंगे' ॥[२]

पूर्तिकार—पं० सीताराम शर्मा—

पिंगल न जानै गणागण पहिचानै नहीं,
छंदनि के नाना भेद नेकहू न पावैंगे;
दै दै कै रुपैया भैया देशनि विदेशनि ते,
कवि की समाज से समस्या को मँगावैंगे।
व्यर्थ पचरा से अंड-बंड पद जोरि-जोरि,
पूर्ति करि-करि के समाज में पठावैंगे;
सीताराम तापै यह आस जिय राखैं सदा,
सेतैंमेत ही में हम 'कवि बनि जावैंगे' ॥[३]

१—काव्य-सुधाधर (मासिक), प्रथम प्रकाश, पंचम वर्ष, जनवरी १९०२ (पृष्ठ २)

२—वही ,, ,, ,, (पृष्ठ ३)

३—काव्य-सुधाधर (मासिक), प्रथम प्रकाश, पंचम वर्ष, जनवरी १९०२ ई० (पृष्ठ ३)

पूर्तिकार—पं० देवीदत्त त्रिपाठी 'दत्तद्विजेंद्र'—

पूर्ति— विधि यदि जरठपने से लिखने को भूले,
भाल में तो तिन को पदच्युत करावेंगे,
श्रीद्विजेंद्रदत्त नियमादि के भी बंधन को,
तोड़ - फोड़ वेगिही स्वछंदता दिखावेंगे।
मम्मट भरत शेष मत्त बकवादी हुए,
भाषिगए उसको न सिखेंगे सिखावेंगे,
गुरु किसी कवि को न स्वप्न में बनावें हम,
आपने गुरू हैं आप 'कवि बनि जावेंगे' ॥[1]

समस्या—'शरद'

पूर्तिकार—सैयद छेदाशाह 'शाह' पौहार-नवेल, रानपुर—

पूर्ति— चन्द्र चन्द्रिका मंजु अमल अंबर तन धारे,
पूरण उदित मयंक सुभग मुख-कांति बगारे।
जगमग उडुगन चारुसार मोतिन की माला,
चहुँधा विकसित काम पुष्प मृदु हास रसाला।
यह निरमल तन्यो वितान नभ दगै परी महि विनु गरद।
इमि शुभ शोभित मनमोहनी नव बाला सम ऋतु 'शरद' ॥१॥
धवलित काशविकाश भस्म सर्वांग लगावै,
चन्द्रकला अतिमंजु शिरो भूषण दरसावैं।
निरमल अंबर शाह सुभग बाघंबर भ्राजैं,
कुसुमित कुसुम प्रसून मुंड मालीर बिराजैं।
कहि राजहंस मृदुहास है हर गिरि अवनी बिनु गरद।
इमि शोभित श्री शंकर सदा शंकर सम यह ऋतु 'शरद' ॥२॥[2]

प्रस्तुत छन्दों में कवि ने शरद्-ऋतु का बड़ा ही आलंकारिक एवं मन-भावना चित्रण प्रस्तुत किया है। प्रथम छंद में कवि ने रूपक अलंकार के द्वारा शरद को नवबाला के रूप में चित्रित किया है।

१—काव्य-सुधाधर (मासिक), प्रथम प्रकाश, पंचम वर्ष, जनवरी १९०२ ई० (पृष्ठ ११ १२)

२—काव्य सुधाकर (त्रैमासिक), तीसरा प्रकाश, षष्ठ वर्ष, सं० १९६१ वि० (पृष्ठ २)

'श्री कवि-मंडल बिसवाँ' की उपर्युक्त समस्या पूर्तियों के अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि इस कवि-मंडल में प्रायः सभी रसों की समस्याएँ दी जाती थीं और पूर्तिकार उनके औचित्य को ध्यान में रखकर अपनी पूर्तियाँ प्रस्तुत करते थे। 'श्री कवि-मंडल बिसवाँ' ने काव्य-परीक्षा, उपाधि-वितरण एवं पुरस्कार देने की प्रथा चलाकर कवियों का उत्साह-वर्द्धन किया, किन्तु उपाधि-वितरण की प्रथा का कुछ अधिक अच्छा परिणाम न निकला और आगे चलकर विद्वानों ने इसकी कटु आलोचना भी की, इस विषय पर अन्यत्र प्रकाश डाला जायगा। इतना सब कुछ होते हुए भी कवि-मंडल बिसवाँ से संबंधित पत्र, 'काव्य-सुधाधर', मे प्रकाशित होनेवाली पूर्तियों एवं पूर्तिकार कवि दोनो का समुचित महत्त्व है। तत्कालीन हिंदी के प्रमुख पत्रों और विद्वानों ने भी 'काव्य-सुधाधर' पत्र की प्रशंसा की है। लाला सीताराम 'ध्यान' फ़र्रुखाबाद से लिखते है—'हमारे कविगणों व अन्य विद्वानों ने देखा, तो काव्य-सुधाधर की परिपाटी व छंदों का यथायोग्य रखना, पटना व दमोह आदि समस्त कवि-समाजों से अतीव श्रेष्ठ है, प्रभु वृद्धि करे।' 'हिंदी प्रदीप' (प्रयाग) का मत है—'एक-एक समस्याओं पर अनेक कवियो की पूर्ति दी गई है। कविता-रसिकों के लिये बड़ी उत्तम पुस्तक है।' श्रीवेंकटेश्वर-समाचार (बंबई) लिखता है—'काव्य-सुधाधर इस नाम का त्रैमासिक पत्र बिसवाँ कवि-मंडल की ओर से निकलता है, इसमें प्रथम समस्या देकर पूर्ति कराई जाती है। इसके ग्राहकों को उपहार देने का भी नियम रखा गया है। पद्य-रचना की उन्नति का यह पत्र भी साधन है। पूर्तियाँ अच्छी हुई है।'[1] इस प्रकार से हम देखते है कि 'काव्य-सुधाधर' अपने समय का कविता का एक अच्छा पत्र था। अब हम यहाँ पर रसिक-समाज, कानपुर से संबंधित समस्यापूर्तियों और कवियों का विवेचन करेंगे।

रसिक-समाज, कानपुर—

इस समाज की स्थापना सर्व-प्रथम स्वर्गीय पं० प्रतापनारायणजी मिश्र के प्रयत्न से हुई थी। मिश्रजी के उद्योग से ही सन् १८९१ ई० में उपर्युक्त समाज से संबंधित 'रसिक-वाटिका' नाम की पत्रिका भी निकली थी, किंतु वह अधिक समय तक न चल सकी। कालांतर में पं० ललिताप्रसाद त्रिवेदी 'ललित' तथा राय देवीप्रसादजी 'पूर्ण' के प्रयत्न से रसिक-समाज की पुनः स्थापना २० दिसंबर, सन् १८९६ ई० को हुई, जिसके सभापति 'ललित'जी और उपसभापति 'पूर्ण'जी थे। 'रसिक-समाज' से 'रसिक-वाटिका पत्रिका' 'माली यहि बाग के सुकवि रखवारे हैं' इस प्रतीक को लिए हुई निकली। समस्यापूर्तियों के साथ-साथ इस पत्रिका में पिंगल और अलंकार-संबंधी प्रश्नोत्तर भी निकलते रहते थे। रसिक-वाटिका की कुछ पूर्तियाँ यहाँ दी जाती हैं—

१—काव्य-सुधाधर—पूर्ण प्रकाश, सन् १८९८ ई० (पृष्ठ ३४-३५)

समस्या—'भामिनी

पूर्तिकार—राय देवीप्रसाद 'पूर्ण'—

पूर्णजी ब्रजभाषा-काव्य-परंपरा के बहुत ही प्रौढ़ कवियों में से थे। इनके उद्योग से ही कानपुर रसिक-समाज चलता रहा। रसिक समाज के कवियों में आपका बहुत ऊंचा स्थान था। जब आपका सं० १९७७ में देहावसान हो गया तो रसिक समाज भी निरवलंब-सा हो गया और कवियों ने 'कविता को पूरन कलानिधि बितै गयो' कहकर अपना शोक प्रकट किया। आपकी पूर्तियाँ प्रायः अच्छी होती थीं। उपर्युक्त समस्या की पूर्ति देखिए, जिसमें पूर्णजी ने वाणी की वन्दना की है—

पूर्ति— कुंद घनसार चंद हू ते अंग शोभावान

भूषन अमंद द्यो विदूषत है दामिनी

कंजमुखी कंजनैनी वीना करकंज सोहै

बैठी कंज आसन सुरी हैं अनुगामिनी।

आखर अरथ ध्वनि भावरस छंदन की

पूरन समृद्ध निधि सिद्धिन की स्वामिनी,

जै-जै मातु बानी विश्वरानी वागदानी देवी

आनंद प्रदानी कमलासन की भामिनी॥[1]

समस्या— परत जात

पूर्तिकार—ललिताप्रसाद त्रिवेदी 'ललित'—

आप भगवन्तनगर मन्नावाँ (हरदोई) के रहनेवाले थे। आप 'रसिक-समाज' कानपुर के सभापति थे। आप एक उत्कृष्ट कवि थे और कविता के क्षेत्र में 'पूर्णजी' आपको अपना गुरु मानते थे। आपके कितने ही छंद अन्य उत्कृष्ट कवियों के छंदों से टक्कर लेनेवाले हैं। समस्यापूर्ति में आप भाव और भाषा दोनों पर समान ध्यान देते थे। आपकी पूर्तियाँ सुन्दर हुई हैं। उपर्युक्त समस्या की पूर्ति देखिए—

पूर्ति— जाति केलि भौन में सुहाति सखियानि पाँति

आनन अमंद चंद दुति को भरति जाति,

ललित अनाव जाभा गति की रतीक धरि

सान-मान रंभाहू के मान को हरति जाति।

गन्डिन तलाई की मलक मनकन चारु

जहाँ जहाँ राधे पग मग में धरति जाति,

1—'रसिक वाटिका' कानपुर भाग १ क्यारी ११ (पृष्ठ ८)
२० फरवरी १८९८ ई०

तहाँ-तहाँ दीठि परै चाँदनी पै चारों ओर,
अरुन उदै को परवेष सों 'परति जात' ॥[1]

पूर्तिकार—'पूर्णजी'—

पूर्ति— मुकुट लकुट माल कुंडल वसन पीत,
श्याम तन शोभा ध्यान मन को हरत जाति;
वैसिये चितौन वंक हासी सुखरासी मंद,
पूरन अनंद उर अंतर भरत जात।
कीन्हे हूँ वियोग ऊधो ! विधि की चली न कछू,
तुम हठ जोग ही की चरचा करत जात;
कान्ह के गये हू अजौं देखौ कुंज कानन में,
मंजु धुनि वाँसुरी की कानन 'परत जात' ॥[2]

समस्या—"बातन में"

पूर्तिकार—ललिताप्रसाद त्रिवेदी 'ललित'—

पूर्ति— मधु माखन दाखन पाई कहाँ मधुराई रसाल की घातन में,
समताई अनारन की को कहै कमताई अंगूर के गातन में;
ललिते करो कंद को मंद जवै तवै काहै तमोल के पातन में,
रस कौन सुधा मैं, मुधा न कहौ रसु जौन कवीन की 'बातन में' ॥[3]

पूर्तिकार—'पूर्णजी'—

पूर्ति— फूली ना सुमन बेली सुमन नवेली यह,
झूमौ क्यों मलिंद बास वलित सुगातन में;
वैनी पिक बैनी की सुहात सुखदैनी यह,
सिखी जन ! विखी जान घेरो जिन घातन में।
चख जानि मीन झख मारियो न वक धाय,
हंस ! जान मोती ना चलैयो मन दाँतन में;

१—'रसिक वाटिका' (कानपुर) भाग १, क्यारी ११, २० फरवरी, १८९८ ई० (पृष्ठ ८)
२—वही ,, ,, ,, ,, ,, (पृष्ठ ७)
३—वही ,, ,, ३, ,, ४, २० जुलाई, १८९९ ई० (पृष्ठ १)

सारग बजत नाही मग क्यो तजत नाही,
सारग हा ! मोहे यहा सारग की 'बातन मे' ॥[1]

पूर्तिकार—मुकुदलाल 'मुकुद' (कानपुर)—

पूर्ति— नव कुजन छाँह घनी है छई लगे मारुत शीतल गातन मेँ,
लपटी लतिका तरु जालन सा अलि गूंजत है जलजातन मेँ,
चहुँधा बँगला है मुकुद सजे झरैं नीर सो पातन पातन मेँ,
यहि ठाम अराम बटोही करौ है सुपास तुम्हे सब 'बातन मेँ' ॥[2]

समस्या—"बधाई है'

पूर्तिकार—पूर्ण जी—

पूर्ति— फूल सरसो के थन पाँवडे पटबर के,
तोरन की छटा कज अवली सुहाई है,
पवन सवार डोलैं करत प्रबध पूरो,
भृगन की गुज की बजत सहनाई है।
सुखमा प्रसूनन की पूरी मनि चौकें चारु,
पूरन सुखद कूजि पछिन की छाई है,
आगम विलोकि निज भूपति बसत जू को,
प्रजा समुदाई देत सादर 'बधाई है' ॥[3]

कवि ने उपर्युक्त छद में रूपक अलकार द्वारा प्रकृति का चित्रण किया है। बसत ऋतुराज के रूप मे प्रसिद्ध है ही अतएव उसे यहाँ पर राजा बनाया गया है और सारी प्रकृति उस उसके शुभागमन के अवसर पर बधाई दे रही है। पूर्णजी का दूसरा छद देखिए, जिसमे उन्होंने प्राची को माता मानकर उसके गर्भ से अरुणोदय-रूपी पुत्र के जन्म को सूचित किया है—

प्राची दिश अगना ने जायो प्रात भानु पूत,
लोक में चहूँधा धूम उच्छव की छाई है,
छूटन तुपक लागी चिटक गुलाबन की,
लागी भृग गुन की बजन सहनाई है।

१—'रसिक वाटिका' (कानपुर) भाग ३ क्यारी ४, २० जुलाई, १८९९ (पृष्ठ ६)
२—रसिक वाटिका भाग ३, क्यारी ४ २० जुलाई, सन १८९९ ई० (पृष्ठ १२)
३—वही „ ४ „ ५ अगस्त, १९०० (पृष्ठ ४५)

सजनी समीर मधु चंदन पराग रोरी,
सुमन समूह दूब साजी हित लाई है;
ओसकन रतन निछावर करत भूरि,
संग कै विहंग गान लै चली 'वधाई है' ॥[१]

समस्या—"अवाई है"

पूर्तिकार—ललिताप्रसाद 'ललित'—

पूर्ति— दविजाहु दारिद दवा सो जे दवाये गात,
केतो तू कराल कलिकाल दुखदाई है;
अबै लौं करी सो करी तीनो भवताप तुम,
अब बलवंत तेरी अंत घरी आई है।
ललित विघनगन खूब तन ताइ चुके,
नेक नहि रुके भली सुमति दवाई है;
भागौ अघवृंद मंद जग सुख कंद वर,
ध्यान में सुछंद गौरिनंद की 'अवाई है' ॥[२]

पूर्तिकार—लाला राधाकृष्ण अग्रवाल 'कृष्ण'—

पूर्ति— दरद वढ़ाय मोहि सरद जरद कियो,
पर के हिमंत पाले झेली कठिनाई है;
सिसक-सिसक वीर सिसिर विताई सबै,
कहा कहौं गति जो वसंत ने वनाई है।
ग्रीषम तपायो गात पायो ना संदेस कछू,
छाये कौन देस सुधि नेकहू न पाई है;
कैसे धरूँ धीर वीर नेक तो बताव हमें,
आये नहीं प्राननाथ पावस 'अवाई है' ॥[३]

वियोग-वर्णन में कवियों ने पट्-ऋतु और बारह मास का भी प्रसंग-वश वर्णन किया है। यह परंपरा बड़ी प्राचीन है। उपर्युक्त छंद में 'कृष्ण' कवि ने

१—'रसिक वाटिका' भाग ४, क्यारी ५, अगस्त सन् १९०० ई० (पृष्ठ ५)
२—वही " " ८, " " (पृष्ठ १)
३—वही " " ८, " " (पृष्ठ ५)

भी वियोगिनी के प्रसंग से षट् ऋतुओं का उल्लेख पूर्व परंपरा के प्रभाव से ही कर दिया है।

समस्या—"काम के"

पूर्तिकार—'ललित'—

पूर्ति— कैसे मिले जमुना - तट तोहि,
हुते सजनी कोई संग में वाम के;
मेरी कछू तो चली चरचा,
गुनगायो करो जो सदा सुखधाम के।
का कहती जो अबै तू कहो,
फिरती ललिते कहुतो वहि ठाम के,
श्याम के आनन के बरनैन,
पियाइदै कानन मैं भरे 'काम के' ॥ १ ॥

कैसी चितौनि हितौनि भरी,
झलके अलकैं बिथुरी मुख स्याम के,
अंग त्रिभंग गहे लकुटी,
पटपीत कसो कटि में सुखधाम के।
भौंहें चढ़ी सुखमा सो मढ़ी,
झुके मोरपखा ललिते सिर ठाम के;
आली कहा कहों बात विचित्र मैं,
चित्रहू में भरे कौतुक 'काम के' ॥ २ ॥

नीदत चंद को एक घरी परी,
नींद बितीतत पाछिले जाम के,
सापने मे ललिते लखो स्यामरे,
द्वार अड़े खड़े केलि के धाम के।
धाइ धरी हँसि कै भुज मेरी,
मह चही डारौं गरे भुज स्याम के।
दीन्ह जगाइये नूपुर तेरे,
करैं सजनी बजने केहि 'काम के' ॥ ३ ॥

आज गई जमुना तट मैं,
जल के हित संग सबै व्रज बाम के;
देखि गुविंद के रूप अनूप को,
भूलि गये निज काम जे धाम के।
मोहन मंत्र को सीखौं सखी,
अति तीखे कटाक्ष लसे घनस्याम के;
भौंह क़मान ते सानसनें,
घनेवान करेरे कढ़े जनु 'काम के'[१] ॥ ४ ॥

ललितजी ने उपर्युक्त छंदों में चारों प्रकार के दर्शन का उल्लेख किया है। प्रथम छंद में कवि ने 'श्रवण दर्शन' का उल्लेख किया है। नायिका कहती है कि 'स्याम के आनन के बरबैन पियाइदे कानन में' अर्थात् नायिका कृष्ण के सुंदर वचनों को सुनना चाहती है। दूसरे छंद में कवि ने चित्र-दर्शन और तीसरे छंद में स्वप्न-दर्शन का चित्रण किया है। नायिका को स्वप्न में ही कृष्ण दीख पड़ते है। वह कहती है "सापने में ललिते लखौ स्यामरे।" अंतिम छंद में कवि ने नायिका को कृष्ण के प्रत्यक्ष दर्शन करा दिए हैं। इस प्रकार कवि ने शृंगार-रस के अंतर्गत चारों प्रकार के दर्शनों का उल्लेख कर दिया है।

पूर्तिकार—'रतनेश' (कानपूर)—

पूर्ति— प्रीति रीति सकल विसारी व्रज बामन की,
भूले सुख सकल जसोदा नंद धाम के;
कालिंदी के तट के सुभग वंशीवट हू के,
मंजु कुंज पुंजन कदंबन के ठाम के।
'रतनेश' भए हैं व्रजेश मथुरेश जाय,
ऊधो कहै गुन कौन-कौन घनश्याम के;
जदपि अकाम वुधिधाम नाम वारे तऊ,
चेरे भए चेरी के गुलाम भए 'काम के' ॥[२]

१—'रसिक वाटिका' भाग ४, क्यारी ४, जुलाई, सन् १९०० ई० (पृष्ठ १-२)
२—वही " " " " " (पृष्ठ ५)

पूर्तिकार—पं० बलभद्रनाथ सुकुल कानपुर—

पूर्ति— राजै चंद्रभाल गंग तटिनी तरंग भरी,
भ्राजै मुंडमाल गल जग अभिराम के,
परम कृपाल साजै सिंधुर की खाल अंग,
भसम बिसाल उरमाल व्याल स्याम के।
बलभद्र जाचकन कामतरु कामधेनु,
देत मन भाए फल सुलवित धाम के,
कृपा के चितैया दिन सुखसो जितैया,
मेरे हित के हितैया हैं जितैया शंभु 'काम के' ॥[1]

कानपुर रसिक-समाज तो बहुत समय तक चल न सका, किन्तु समस्यापूर्ति की परंपरा को कानपुर के काव्य प्रेमी एवं रसिकजन बहुत समय तक चलाते रहे। इनमें पं० गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही' का नाम अग्रगण्य है। सनेही जी ने कानपुर से 'सुकवि' नाम की मासिक पत्रिका का संपादन करके प्रकाशित कराया। 'सनेही'जी के साथ 'हितैषी'जी ने भी सुकवि का संपादन किया। सुकवि में समस्याएँ दी जाती थीं और कविगण अपनी पूर्तियाँ भेजते थे। इस पत्रिका की विशेषता यह थी कि इसमें प्रकाशित होनेवाली समस्यापूर्तियाँ अवधी और ब्रज दोनों भाषाओं में होती थीं। इन पूर्तियों में विशेषता यह थी कि इनमें समाज और राष्ट्र की भावनाओं का भी प्रतिबिम्ब रहता था। सुकवि में प्रकाशित होनेवाली कुछ पूर्तियाँ देखिए—

समस्या—"कटारी है"

पूर्तिकार—पं० गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही', कानपुर—

सनेहीजी से हिंदी-संसार भलीभाँति परिचित है। कानपुर के साहित्य समाज में आपका गुरुवत सम्मान रहा है। आपकी कविता प्रायः राष्ट्रीय भावों से ओत प्रोत रहती है। खड़ी बोली के प्रतिनिधि कवियों में आपकी गणना की जाती है। कवि-सम्मेलनों में आपको प्राय सभापति बनाया जाता रहा है। समस्यापूर्ति करने में आप बहुत ही कुशल हैं। उपर्युक्त समस्या की पूर्ति देखिए—

पूर्ति— वध दिनराज का हुआ है, पक्षी रो रहे हैं,
पश्चिम में रुधिर प्रवाह अभी जारी है,

१—'रसिक वाटिका', भाग ४, क्यारी ४, जुलाई सन् १९०० (पृष्ठ ६)

दिशा-वधुओं ने काली सारी पहनी है नभ-
छाती छलनी है निशा रोती-सी पधारी है।
तड़प-तड़प के वियोगी प्राण खो रहे हैं,
कैसी चोट चौकस कलेजे पर मारी है;
तमराज नहीं, जमघट जमराज का है,
नवचंद्र नहीं, कूर काल की 'कटारी है' ॥[1]

पूर्तिकार—बदरीप्रसाद पाल 'पाल' हरिहरपुर, बस्ती—

पूर्ति— खेलिवे को फाग जुरे राधिका विहारी कुंज,
तकि पिचकारी दोउ दोउन पै मारी है;
तौलौं फेरि मेलिबो गुलाल झकझोरिन सों,
दरकी सु आँगी चटकीली आव वारी है।
उन्नत उरोज पै पर्‍यो है नख-रेख एक,
हेरत ही 'पाल' कवि उपमा विचारी है;
रकत चभोरी शंभु शीश पै परी है मनो,
कातिल मनोज वारी कहर 'कटारी है' ॥[2]

समस्या—"कसक किसानों की"

पूर्तिकार—कन्नू शर्मा 'श्रीश'—

पूर्ति— भूमि जलती हो गिरती हो बिजली भी घोर,
पाला पड़ता हो परवाह नहीं प्रानों की;
अन्न उपजाके है खिलाते जग के ये किंतु,
तंगी रहती है स्वयं मुट्ठी-भर दानों की।
ऋण भी उधार मिलने का न ठिकाना कहीं,
हृदय जलाती सदा चिंता है लगानों की;
हाय इन्हें चूसने में सब ही लगे हैं 'श्रीश',
कोई नहीं सुनता है 'कसक किसानों की' ॥१॥

१—सुकवि (मासिक, कानपुर) जनवरी, १९३५ ई० (पृष्ठ ४३)
२—वही ,, ,, ,,

रक्त को सुखा के निज मास को जला के घोर,
श्रम करते हैं परवाह नहीं प्रानो की ,
अन्न उपजाते सब विश्व को खिलाते और
सृष्टि रचते हैं सदा सुखद विधानो की ।
चलते हैं जिनकी कमाई से अपार मिल,
होती है सजावट रईसो के मकानो की ,
हाय ! वे ही एक-एक दाने को पसारें हाथ,
सुनता न कोई 'श्रीश' 'कसक किसानो की' ॥२॥[1]

कवि ने उपर्युक्त छंद में तत्कालीन किसानो की स्थिति का वास्तविक चित्रण किया है।

पूर्तिकार—पं० गोकुलप्रसाद अग्निहोत्री 'सुरदेव' रगून—

पूर्ति— आया नर-केशरी स्वदेश लौट यूरुप से,
अब न चलेगी मनमानी धनवानो की ,
फूंकेगा स्वतन्त्रता का शख वो निशक ह्वैके,
सावधान होगी सुन टोली नौजवानो की ।
पाके अनुशासन हुताशन से लेगा लोह,
भारत के मान पै लगा के बाजी प्रानो की ,
देख लेना जौहर जवाहर के 'सुरदेव',
मेटेगा सुवीर यही 'कसक किसानो की' ॥३॥[2]

पूर्तिकार—उमेश चतुर्वेदी जयपुर—

पूर्ति— जग रक्षक होकर भी तरसा करते दाने-दाने को ,
छोटे-छोटे बच्चो को भर पेट न मिलता खाने को ।
टूटी-फूटी खाट मिली तो कपड़ा नहीं बिछाने को ,
जल के बदले घूंट लहू के पीते प्यास बुझाने को ।
जीवन दान सभी को देते बलि देकर निज प्राणो की,
किससे जाकर कहे कौन सुनता है 'कसक किसानो की' ॥४॥[3]

१—सुकवि, मई सन् १९३६ (पृष्ठ ३७)
२—वही „ „ (पृष्ठ ३९)
३—वही „ „ (पृष्ठ ४१)

समस्या—"करके"

पूर्तिकार—'रसिकेंद्र', कालपी—

पूर्ति— परम प्रवीन प्रज्ञ होके न परख पाई,
वेदना वियोगियों की व्योम में विचर के ;
'रसिकेंद्र' यही क्या कलंक है मयंक में,
जो भेंटता न प्रिय प्रेमियों को अंक भर के ।
गिन-गिन एक-एक क्षण दिन काटते हैं,
करते भजन नित्य मौन ध्यान धर के ;
पाते न पहुँच पास, जाते है निराश किये,
प्रेमी कहलाते हैं चकोर सुधा'करके' ।।[१]

पूर्तिकार—पं० गोकुलप्रसाद अग्निहोत्री, 'सुरदेव', रंगून—

पूर्ति— झूली तन खाल, गाल पोपले कमान कटि,
काले घुँघराले कच श्वेत भये सर के;
धँस गई आँखें, भयो आनन दशन-हीन,
ज्ञान, वल, वुद्धि सव छोड़-छोड़ टरके ।
साहस सँभारि ले सहारा कर लकुटी का,
खाँसत चलत आस-पास निज घर के ;
इतने पै दूल्हा वनिवे की है प्रवल चाह,
लाऊँ 'सुरदेव' नई नारि व्याह 'करके' ।।[२]

कवि ने प्रस्तुत छंद में समाज में व्याप्त वृद्ध-विवाह की प्रथा पर व्यंग्य किया है । ऐसे व्यक्ति प्रायः देखे गए हैं कि जो शरीर से विलकुल शिथिल हो गए हैं, फिर भी उनमें विवाह करने की लालसा वनी ही रहती है, जिसके परिणाम-स्वरूप वे समाज में भ्रष्टाचार को वढ़ावा देते तथा स्वयं भी हास्यास्पद वनते है । कवि ने ऐसे ही व्यक्तियों की ओर उपर्युक्त छंद में संकेत किया है ।

पूर्तिकार—राजाराम श्रीवास्तव 'पुनीत', वलुआ, काशी—

पूर्ति— भारत यशोदा-मातु रोती आज धाड़ मार,
देखकर कष्ट हा ! गोपाल हलधर के ;

१—'सुकवि' दिसंवर, १९३४, सं० 'सनेही, हितैषी' (पृष्ठ ३३)
२—वही " " (पृष्ठ ४२)

खाने को मुहाल है 'पुनीत' मन-मोदक भी,
स्वेद पोछने को भी नही हैं वस्त्र घर के।
जो हैं धन देश के वही बने महा निधन,
जीते हैं बेचारे किसी भाँति मर-मर के,
रोको शीघ्र महल-विध्वसी हलचल घोर,
यारो हलवालो की समस्या हल 'करके' ॥[1]

पूर्तिकार—गिरिजाशकर दीक्षित 'गिरिजेश' इदेमऊ, उन्नाव—

पूर्ति— भूखा जहाँ रात काट भोर करता हो कोई,
कोई जहाँ अकड रहा हो धन भर के,
'गिरिजेश' मौज मारता हो महलो मे कोई,
झोपडे भी किसी को नसीब हो न खर के।
पैरवाले एक पैर भी हो चल पाते नही,
पर लँगडे ही उडते हो बिना पर के,
अधी दुनिया न आँखवाले देख पाते जहाँ,
दिनकर! क्या वहाँ करोगे दिन 'करके' ?[2]

पूर्तिकार—बैजनाथसिह 'शारद' भौली, लखनऊ—

पूर्ति— शीत की लहर लहराने लगी भूतल पै,
डोलै लगी चारो ओर डगर-डगर के,
सारा जग थर-थर कॉपने लगा है देखो,
जीव-जतु कोटरो-गढों के बीच सरके।
'शारद'जू परदे सजे हैं सेज मखमली,
साज को गिनावै मालदारन के घर के,
कृषक बिचारे रात काटते पयाल बीच,
दिन काटते हैं वे सहारे दिन 'करके' ॥[3]

उपयु क्त छन्दो मे कवियो ने तत्कालीन सामाजिक वैषम्य एव आर्थिक असमानता पर प्रकाश डाला है।

१—सुकवि, दिसबर १९३४, स० 'सनेही हितैषी' (पृष्ठ ४२)
२—वही " " (पृष्ठ ,,)
३—वही " " (पृष्ठ ४३)

समस्या—"मन की"

पूर्तिकार—गिरधारीलाल वैश्य 'ब्रजेश' फ़ैज़ाबाद—

पूर्ति— होके सत्याग्रह के व्रत के व्रती ब्रजेश,
त्याग के तमाम फिक्र धाम और धन की;
भूमि पशु प्राणी नौकरी को भी तिलांजुलि दी,
किंतु प्राण-पन से की रक्षा निज प्रन की।
भारत को आज बरदौली ने बताया है कि
ऐसे आन-बान रक्खी जाती है वतन की;
जीत हुई नीति की अनीति पै पुनीत क्योंकि
सारी बातें हो गईं किसानों ही के 'मन की'॥[1]

पूर्तिकार—*श्यामनाथजी 'द्विजश्याम', हड़हा स्टेट, बाराबंकी*—

पूर्ति— नैनन में, बैनन में रोम-रोम व्याप रहौ,
तुम सों न बिलग उसाँस कढ़ै तन की;
अंतर औ बाहर निरंतर बसे ही रहौ,
अंतरदसा को जानौ मेरी छन-छन की।
जानत न होय तासौं कहिकै जनावै कछू,
तुम को तो विदित दशा है कन-कन की;
'द्विजश्याम' आठों याम मन में बसे ही रहौ,
तौ हूँ नाहीं जानौ हाय प्यारे पीर 'मन की'॥[2]

पूर्तिकार—राजकवि पं० अंबिकाप्रसाद भट्ट 'अंबिकेश', रीवाँ—

पूर्ति— शरद निशा में कहूँ बाँसुरी बजाई श्याम,
धाईं बृजबालें चारु चाँदनी बदन की;
दौरै बिललानी अकुलानी-सी भुलानी भूमि,
कोटिन कला हैं मनो सिंधु के सुवन की।
आहैं परीं भौन, शोक-सिंधु में अथाहैं परीं,
बीथिन कराहैं परीं, धाहैं परीं घन की;

१—सुकवि सितंबर, १९२८, सं० 'सनेही-हितैषी' (पृष्ठ ३५)
२—वही " " (पृष्ठ ३३)

भूली सुधि छन की, न कानि गुरुजन की,
न सुधि रही तन की, न चिंता रही 'मन की' ॥[1]

प्रस्तुत छंद में कवि ने कृष्ण की बाँसुरी का प्रभाव दिखलाया है। कृष्ण की बाँसुरी की तान सुनते ही ब्रज मंडल में चारों ओर खलबली मच गई। गोपियाँ व्याकुल होकर दौड़ पड़ीं। उन्हें न समय की सुधि है न गुरुजनों का भय है और न स्वयं अपने तन की ही उन्हें सुधि है। वह तो केवल कृष्ण के पास दौड़कर पहुँच जाना चाहती हैं। कवि की यह पूर्ति बहुत ही सुंदर बन पड़ी है।

पूर्तिकार—शिवप्यारेलाल अवस्थी 'संतप्त'—

पूर्ति— पारथ सरीखे धीर बीर भए भारत में,
राखी जिन शान क्षत्रियों के बाँकपन की,
बीरवर शिवाजी प्रताप-जैसे योद्धा जिन
सारी मगरूरी मेटि दीन्ही मुगलन की।
होते ही सदा से चले आए रणधीर ऐसे,
छाई है अमर कीर्ति जिनके भुजन की,
कर्मवीर गांधी-सम आज भी महारथी हैं,
सत्य बल से जो घींच घोंटते 'दमन की' ॥[2]

पूर्तिकार—'सनेही'—

पूर्ति— शंकित हिये सों पिय अंकित सँदेसो बाच्यो,
वारे आँसू-मोती आस पूरी अँखियन की,
नीलम अधर लाल ह्वै के दमकन लागे,
खिंच गई मधु-रेखा मधुर हँसन की।
श्यामघन सुरति सुरस बरसन लागी,
आई हाथ थाती सी 'सनेही' प्रेम पन की,
माथ सों छुवाती सियराती लाय-लाय छाती,
पाती आगमन की बुझाती आग 'मन की' ।[3]

१—'सुकवि' सितंबर १९२८, सं० सनेही हितैषी (पृष्ठ ३६)
२—वही ,, ,, (पृष्ठ ४६)
३—वही ,, ,, (पृष्ठ ५८)

समस्या—'चरखा'

पूर्तिकार—कविवर श्रीवचनेश मिश्र फर्रुखाबाद—

पूर्ति— द्वेषी दुरयोधन के दर्प का दबानेवाला,
दुःशासन-मुख में लगानेवाला करखा;
धर्म पक्षी भारत की दीनता मिटानेवाला,
आर्त जो ग्वलों से पराधीनता में डरखा।
'वचनेश' दिव्य शक्ति अद्भुत दिखानेवाला,
परखाया गांधी ने सभों ने नीके परखा;
कृष्णा जनता की जाती लाज का बचानेवाला,
कृष्ण ऐसा वसन बढ़ानेवाला 'चरखा' ॥[1]

प्रस्तुत छंद में कवि ने दुर्योधन, दुश्शासन, धर्मपक्षी एवं कृष्णा शब्दों को श्लिष्ट अर्थों में रक्खा है, जिससे छंद का चमत्कार अधिक बढ़ गया है।

पूर्तिकार—सरदार शर्मा, कानपुर—

पूर्ति— पीतम पियारे परदेश न पयान करौ,
जोति खेत बवहु कपास भए बरखा;
नेह सों निकाइहौं निहोरे करौ बलि जाऊँ,
याही को बतावत सिरे है जौन परखा।
चुनि-चुनि विधि ते धरैंगे हम तुम दुवौ,
संग के रहे ते मन मेरो रहै हरखा;
सरदार गाय कै सुनाइहौं स्वदेशी राग,
चाव सों चलाइहौं चरन लागि 'चरखा' ॥[2]

सरदारजी की यह नायिका कितनी सादगी-पसंद है और कितनी है राष्ट्रीय भावों से भरी हुई कि वह अपने प्रिय को खेती करने और कपास बोने की बात समझाती है और इस प्रकार वह उन्हे परदेश जाने से रोकती है और कहती है कि यदि आप यहाँ रहेंगे, तो मेरा मन प्रसन्न रहेगा; इसके लिये मैं तुम्हें स्वदेशी राग सुनाऊँगी और आपके चरणों में बैठकर चरखा चलाऊँगी। कवि ने समस्या की पूर्ति ही नहीं कर दी है, प्रत्युत तत्कालीन समाज में व्याप्त राष्ट्रीयता की

१—'सुकवि' वर्ष २, संख्या १, अप्रैल १९२९, (पृष्ठ ३३)
२—वही " " "

भावना को भी व्यक्त कर दिया है। इस प्रकार से समस्यापूर्तिकार कवियों ने भी समाज अथवा राष्ट्र को भी अपने काव्य में समुचित स्थान दिया है।

समस्या—"गरजी गरीबन पै गजब गुजारो ना"

पूर्तिकार—कविवर श्रीवचनेशजी—

पूर्ति— सौंपि सरबस भए तेरे परबस तिन्हे,
अजस बिचारि नैन नीरस निहारो ना,
हा-हा करि हारे 'वचनेश' पायँ परि हारे,
हठ अब धारे तो निरासहि बिसारो ना।
चार दिन ही के ये सुदिन चाँदनी से अरी,
काहू हकदार को नहक हक मारो ना,
गौरव के गर्व गोरी ! गोरी गौरमेंट सम,
'गरजी गरीबन पै गजब गुजारो ना' ॥[1]

पूर्तिकार—कविरत्न 'नवनीत' चतुर्वेदी, मथुरा—

पूर्ति— छद करि छोडि गए छन सो छबीले छैल,
गैल नव नेह की मैं बरबट पारो ना,
नवनीत प्रीत में न चाहिए अनीत ऐसी,
नीत रस-रीत ही की दया उर धारो ना।
हम तो तिहारो सब भाँतिन कहावत हैं,
गावत तिहारे गुन गौरव विचारो ना,
अरजी हमारी आगे मरजी तिहारी श्याम,
'गरजी गरीबन पै गजब गुजारो ना' ॥[2]

पूर्तिकार—श्रीशारद 'रसेंद्र' चित्रकूट—

पूर्ति— ग्वालिनि गँवारिनी न गारी देव गम खाव,
गुस्सा जनि करो गुल की गुलेल मारो ना,
गफलत गुप्त है 'रसेंद्र' सो गुनाह कौन,
गई करि जाहु जो गरूर उर धारो ना।

१—'सुकवि' वर्ष २, सख्या ३, जून १९२९ ई० (पृष्ठ २९)
२—वही „ „ (पृष्ठ ३०)

गदर करौ ना गोरी थोरी चूक मूक हो री,
गोल-गोल गालन गुलावी गाँठ गारौ ना;
अरजी गोपाल की है राधे नेक मरजी की,
'गरजी गरीवन पै गजव गुजारौ ना' ॥[१]

समस्या—"रस की"

पूर्तिकार—पं० उमादत्त सारस्वत 'दत्त' बिसवाँ, सीतापुर—

आपका जन्म सं० १९६२ वि० में, बिसवाँ, जिला सीतापुर में, हुआ था। आपके पूज्य पिता पं० रामदासजी सारस्वत हिंदी, संस्कृत, उर्दू, फ़ारसी तथा अँगरेज़ी के अच्छे ज्ञाता थे अतएव उसका प्रभाव आपके ऊपर भी पड़ा। आपका स्वभाव एकांत-प्रिय है और प्राकृतिक सौंदर्य से अनुराग है। आपकी कविता अच्छी होती है। हास्य और व्यंग्य संबंधित कविताएँ आपने बहुत अच्छी लिखी है। समस्यापूर्ति एवं स्वतंत्र रचनाओं में आपने भाव और भाषा दोनो पर समान ध्यान दिया है। आपकी रची हुई कुछ पुस्तके ये हैं—'किरण'—एक कविता-संग्रह, 'मस्त-राम का सोंटा'—अनर्गल कविताओं पर व्यंग्य तथा 'मस्तराम का चिट्ठा' एवं 'भैया केंचुल बदल'—हास्य और व्यंग्य-मिश्रित रचनाएँ। 'मिलन-मंदिर'—एक सामाजिक नाटक, 'भाई-बहन'—(कहानी-संग्रह), 'लेख लतिका'—लेखों का संग्रह, 'प्रवासी-पति'—एक बृहत् काव्य, 'कोपल'—कविता-संग्रह, 'किसलय'—कविता-संग्रह, 'मंदोदरी'—एक खंड काव्य तथा 'मस्तराम'—कुंडलियाँ हैं।

पूर्ति— ए रे मन मूढ़ वार-बार समझाया तोहिं,
फिर भी न चेतो करी घातें अपजस की;
दारा, सुत, भाई में न भूला फिर इत-उत,
अँखियाँ पसारि देखु माया दिन दस की।
भटकत फिरत वृथा ही जग-जालन में,
रही अब केती कछु चिंता है वयस की;
नेह कर, नेह कर प्यारे मन-मोहन सों,
छाँड़ि दे कपट-छल बातें अन 'रस की' ॥[२]

१—'सुकवि' वर्ष २, संख्या ३, जून १९२९ ई० (पृष्ठ ३०)
२— " " " ४, जुलाई " (पृष्ठ ३५)

पूतिकार—प० केदारनाथ त्रिवेदी 'नवीन' बिसवाँ, सीतापुर—

पूर्ति— रजित रदन पदचर हैं तुम्हारे दृग,
भौंह धनु बेनी अनुहारि तरकस की;
गति गजराज पट फहरे पताके मंजु,
पायल जुझाऊ छवि छोहिनी सहस की।
बैठा वीर बाँका रथ उन्नत उरोजन में,
कामदेव करत कमान नस-नस की,
कंज की कली-सी खिल निकली नवेली कैधौं,
चारु चतुरंगिनी चमू है वीर-'रस की' ॥[1]

पूर्तिकार—कवीन्द्र 'रसिकेंद्र', कालपी—

पूर्ति— भारत के भूषण हो पूषण हो तेजधारी,
दूषण को छोड राह गहिए सुजस की,
सोचिए निदान ध्यान दीजिए कुपथ्य पर,
हेरि पीर वालो देखो पीर परबस की।
स्वर्ण मकरध्वज की पुट ने बढ़ाया रोग,
रहा दुख भोग नाडी मृत्यु ओर खसकी,
सच्चे कविराज बन राष्ट्र का इलाज कीजे,
दीजे बस आज इसे गोली वीर-'रस की' ॥[2]

समस्या—"सर है"

पूर्तिकार—उमादत्त सारस्वत 'दत्त' बिसवाँ, सीतापुर—

पूर्ति— देख! देख!! ऊषा का प्रकाश दिव्य छाने लगा,
आता सूर्य है न अब चंद की बसर है,
शीतल सुगंध मंद वायु डोलता है मंजु,
झुंड उल्लुओं का औंधा हो गया पसर है।
अंत है निशा का फूल झूमते हैं मस्त हो के,
तारे हुए मंद गया ज्योति का असर है।

१—'सुकवि' वर्ष २, संख्या ४, जुलाई, सन् १९२९ ई० (पृष्ठ ३६)
२—वही „ „ „ (पृष्ठ ४९)

लेना 'दत्त' रहसि-रहसि कलियों का रस,
एहो अलिवृंद ! थोड़ी देर की क'सर है' ।।[1]

कवि ने प्रस्तुत पूर्ति में प्रभात का बड़ा सुंदर वर्णन किया है।

पूर्तिकार—श्रीमोहन इटौंजा, लखनऊ

पूर्ति— साका चला सत्य का सनाका लोक मंडल में,
भारतीयता की धाक हो गई अमर है;
दीन दिल दूने हिल उठे निष्ठुरों के दिल,
डाँवाडोल देखो पशुवल का कुधर है।
सेनापति नेता विश्व-विदित विजेता वीर,
गांधी शांति चेता मिलो ईश्वर का वर है;
कसर न रक्खो मत कसर-मसर करो,
सर तो उठाओ खेत होता अभी 'सर है' ।।[2]

प्रस्तुत छंद में कवि ने भारतवासियों के हृदय में उत्साह एवं प्रेरणा भरने का यत्न किया है। समस्यापूर्तिकार कवि और समस्यादाता दोनों समाज और राष्ट्र के प्रति जागरूक प्रतीत होते हैं।

उपर्युक्त स्थानों के अतिरिक्त सागर एवं खंडवा में स्वर्गीय श्रीजगन्नाथ-प्रसाद 'भानु' ने कवि-समाज स्थापित किए थे। कांकरोली में श्रीद्वारिकेश कवि-मंडल की स्थापना गोस्वामी श्री १०८ व्रजभूषणलालजी महाराज (कांकरोली-नरेश) की प्रेरणा से हुई थी। इसमें प्रायः मासिक अधिवेशन होते थे। कवि-मंडल की एक समस्या की पूर्ति देखिए—

समस्या—"जायगी"

पूर्तिकार—कविरत्न नवनीतजी—

पूर्ति— बूढ़े मात-पित को बिसार मथुरा को गए,
गोपग्वाल गायन को सुरत भुलायगी;
'नवनीत' जाको पल छिन हू न छाँड़त हो,
ऐसी राधिका को सुधबुध बिसरायगी।
वाह रे कन्हैया तेरी अकल कहाँ लौं कहौं
निंदा सों डरचो न नेक ऐसी मति भायगी;

१—'सुकवि' वर्ष ४, संख्या ४, मई, सन् १९३१ ई०, (पृष्ठ ४१)
२—'सुकवि' वर्ष ४, संख्या २, मई, सन् १९३१ ई०, (पृष्ठ ५३)

कहि दीजो उद्धव ये उनसो हमारे कहे
इज्जत तुम्हारी कूबरी के संग 'जायगी ।।'

पूर्तिकार—गोविंददत्त चतुर्वेदी मथुरा—

पूर्ति— दीनानाथ दीन जान कान दे हमारी टेर,
गुनहू नहीं ना दीनबंधुता नसायगी,
दुसह दुसासन सभा में चीर खैंचत है,
पंच पतिवारी हा उघारी दरसायगी।
हम सम उज्ज्वल प्रशंस यदुवंस पै हू,
कुयश करोंची की पताका फहरायगी,
गोविंद निरंतर हूं अंतर की जानत हो,
मेरी लाज जायगी तो तेरी लाज जायगी' ।।'

कविवर गोविंद जी ने उपर्युक्त समस्या की भक्तिभावना से समन्वित पूर्ति की है जो अत्यंत सुंदर बन पड़ी है। गोविंदजी की एक और पूर्ति देखिए—

समस्या—'कहत चली यों कान्ह बांसुरी बजावें है।'

पूर्ति— बैठी ब्रज ललना बिलोवें दही माखन कों,
जोबन उमंग अंग अंग सरसावें है,
एकाएक उर में बिचार कछु आय गयो,
रूपक निहार कवि उपमा न पावे है।
रई ताड़ हांडी फोड़ पति सुत दोनों छोड़,
जैसे बरसा की नदी सिंधु पास जावें है,
भूषन बसन तन माजिबे कहूं के कहूं,
'कहत चली यों कान्ह बांसुरी बजावें है' ।'

कांकरोली के अतिरिक्त प्रयाग में रसिक मंडल की स्थापना सन् १९३१ में हुई। इस रसिक-मंडल के सभापति डॉ० रामप्रसाद त्रिपाठी महामंत्री डॉ०

१—'कविता कुसुमाकर'—श्रीद्वारिकेश कवि मंडल कांकरोली का प्रथम वार्षिक हिंदी-संस्कृत-समस्यापूर्ति संग्रह, सन् १९३२ ई० मुद्रक श्रीदुलारेलाल भार्गव।

२—'कविता कुसुमाकर'—प्रकाशक, श्रीविद्या विभाग कांकरोली मुद्रक श्रीदुलारेलाल भार्गव, लखनऊ सन् १९३२ ई०।

३—उपर्युक्त समस्या पर कविवर रत्नाकर ने भी पूर्ति की थी। यह सूचना भी कविवर गोविंददत्त चतुर्वेदी से ही प्राप्त हुई।

रामशंकर शुक्ल 'रसाल' एवं साहित्य मंत्री श्री रामचंद्र शुक्ल 'सरस' थे। रसिक-मंडल के तत्त्वावधान में प्रत्येक पूर्णिमा को समस्यापूर्ति सम्मेलन होता था। जिसमें रत्नाकरजी, दीनजी, रसालजी, सरसजी एव अन्य अनेक उत्कृष्ट कवि भी अपनी पूर्तियाँ सुनाते थे। रसिक-मंडल की दो समस्यापूर्तियाँ देखिए—

समस्या—"नक्षत्र हैं न तारे हैं"

पूर्तिकार—पं० रामचंद्र शुक्ल 'सरस'—

पूर्ति— अंतर न व्यापै कछू ऐसियै निरंतर ही,
लगन रहै है एक प्रीति जोग वारे हैं;
सरस बखानै है विचित्र गति प्रेमिन की,
वार है न तिथि है ये अतिथि विचारे हैं।
ग्रह की कहा है औ उपग्रह कहा है जब,
निग्रह निखारे निज विग्रह विसारे हैं;
चंद सों दुचंद है अमंद मुख चंद एक,
प्रेमिन के नभ में 'नक्षत्र हैं न तारे हैं'॥[1]

समस्या—"करम चंद कब छूटेंगे"

पूर्तिकार—श्री 'कंज कवि'—

पूर्ति— सफल विदेशी वस्त्र वायकाट होगा जब,
चंटमर्चेंट मिलि छाती तब कूटेंगे;
होकर बेकार खाने कारखानेवाले सभी,
मिन्ट मिन्ट में ही गौरमिन्ट मिन्ट लूटेंगे।
चेंबर के मेंबर स्वराज तब देंगे शीघ्र,
बंधन विचारी मातृ भू के तब टूटेंगे;
चंद के समान तेज करके दुचंद तब,
चंद दिन वाद 'करमचंद तब छूटेंगे'।[2]

प्रस्तुत समस्या महात्मा गांधी से सम्वधित है, किंतु गांधीजी का नाम मोहनदास था, करमचंद तो उनके पिता का नाम था, समस्यादाता ने इसे दृष्टि में नहीं रखा।

१—प्रस्तुत रसिक-मंडल का संपूर्ण विवरण एवं तत्संबंधी समस्यापूर्तियाँ रसिक-मंडल के साहित्य मंत्री पं० रामचंद्र शुक्ल 'सरस' के सौजन्य से प्राप्त हुईं।

२—प्रस्तुत समस्यापूर्ति कविवर श्रीसरसजी की कृपा से प्राप्त।

उपर्युक्त संस्थाओं से संबंधित कवियों के अतिरिक्त अन्य अनेक कवियों ने भी स्वतन्त्र रूप से समस्यापूर्तियाँ की हैं, किंतु स्वतन्त्र रूप से समस्यापूर्तियाँ करने के कारण इन कवियों की रचनाएँ प्रकाशित नहीं हो सकीं। स्वतन्त्र रूप से समस्यापूर्ति करनेवालों में प्रमुख हैं—पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, पं० बलरामप्रसाद मिश्र 'द्विजेश' (बस्ती), कविवर श्रीविमलेश, अनूप शर्मा, नेहलदजी, एवं पं० रूपनारायणजी पांडेय आदि।

प्रस्तुत विवरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि समस्यापूर्ति की प्रथा अत्यंत व्यापक रही है और इस रूप में रचित साहित्य भी अधिक परिमाण में उपलब्ध है। जिन कवियों ने समस्यापूर्ति को अपने काव्य-साधन के रूप में ग्रहण किया था, वह तो आगे चलकर प्रकाश में आए और सुंदर रचनाएँ प्रस्तुत करके साहित्य में अपना उचित स्थान प्राप्त किया, किंतु जिन कवियों ने समस्यापूर्ति को ही अपने काव्य का उद्देश्य और साध्य समझ लिया था, वे अपने समय के आगे न बढ़ सके। समस्यापूर्ति की प्रथा आज भी समुचित परिवर्तनों के साथ ग्रहण की जा सकती है। अवध-साहित्य-परिषद्, लखनऊ का नाम इस दृष्टि से लिया जा सकता है। परिषद् के सभापति हैं, डॉ० भगीरथ मिश्र और संयोजक हैं श्रीगंगारत्न जी पांडेय इसके अधिवेशन मासिक होते हैं, किंतु शरद् बसंत और पावस गोष्ठियों में समस्यापूर्तियाँ ही पढ़ी जाती हैं। इनकी विशेषता यह है कि इनमें सभी विषयों में संबंधित पूर्तियाँ होती हैं और काव्य की नव्यता पर विशेष ध्यान दिया जाता है। इस प्रकार से हम देखते हैं कि समस्यापूर्ति की प्रथा साहित्य में अपना प्रमुख स्थान रखती है।

५

अध्याय

समस्यापूर्ति-काव्य के विविध रूप

पिछले अध्यायों से स्पष्ट हो जाता है कि हिंदी का समस्यापूर्ति-काव्य एक वृहत् परिणाम में उपलब्ध है और अनेक दृष्टियों से यह महत्त्वपूर्ण है। अपनी वाह्य एवं आंतरिक विशिष्टताओ के कारण यह काव्यरूप उत्कृष्ट काव्य के अंतर्गत आ जाता है। अनेक प्रकार की साहित्यिक गोष्ठियों एवं कवि-समाजों से संबंधित होने के कारण समस्यापूर्ति-काव्य का हमारे समाज से भी बहुत कुछ संबंध रहा है और इस रूप में यह हमारी सांस्कृतिक चेतना, धार्मिक भावना एवं सामाजिक तथा राजनीतिक स्थितियों का भी अंशतः द्योतन करता रहा है, यह हम अगले किसी अध्याय में स्पष्ट करेंगे। यहाँ पर हम समस्यापूर्ति-काव्य के विविध रूपों एवं समस्याओं के अनेक भेदों पर भी प्रकाश डाल देना समीचीन समझते हैं। समस्या और समस्यापूर्ति विषय को लेकर किसी भी ग्रंथ में वैज्ञानिक विवेचन नहीं किया गया। संस्कृत के काव्य-शास्त्रीय एवं अलंकार-ग्रंथों में इस पर कुछ भी प्रकाश नहीं डाला गया। हिंदी में 'समस्या' के विभिन्न रूपों को लेकर डॉ० रामशंकर शुक्ल 'रसाल' ने अपने एक लेख में[1] वैज्ञानिक वर्गीकरण करने का यत्न किया है। अतएव पहले हम डॉ० 'रसाल' द्वारा समस्या के किए हुए वर्गीकरण का ही यहाँ पर विश्लेषण करते हैं।

किसी छंद में स्थान-विशेष में रखने के आधार पर समस्याओं के निम्न रूप होते और हो सकते है—

१—आदिगता—आदि वाले शब्द या वर्ण या पद दिए जाते है।

२—मध्यगता—किसी छंद के मध्यगत चरण या किसी चरण के मध्यगत शब्दादि दिए जाते है। समस्या का यह रूप नहीं देखा जाता है, किंतु ऐसा रूप हो सकता है।

३—अंतगता—जिसमें छंद के अंतिम शब्दादि दिए जाते हैं। यह रूप बहुत प्रचलित और व्यापक है।

१—देखिए माधुरी, मार्च १९३१ ई०, संख्या २, पूर्ण संख्या १०४, वर्ष ९, खंड २, 'समस्यापूर्ति'।

हो। यथा—आज आया बसंत इसे मालिनी और मंदाक्रांता, दोनों छंदों में रख सकते हैं। शाब्दिक समस्याओं में से बहुतों को हम इसी कक्षा में रख सकते हैं।

समस्याओं के अर्थों को ध्यान में रखते हुए तथा उनके आधार पर हम उनको मुख्यतया निम्न रूपों या विभागों में विभक्त कर सकते हैं।

१—प्रश्नात्मिका—जिस समस्या में प्रश्न का भाव स्पष्ट एवं सूक्ष्म रूप में (गुप्त या लुप्त रूप में) रखा हो। यथा—

(क) स्पष्टा—'केहि कारण शंभु कहावन भाला'। ऐसे रूपों को हम कारण िमका भी कह सकते हैं। भूमि सुता जिनकी पतिनी तिमि राम महीपति होहिं गुसाईं।

(ख) लुप्ताशया—कविता औ वनिता विभूषन बिन सोहै है।

२—श्लिष्टा—जिस समस्या की पदावली में श्लेष की स्पष्ट झलक हो। यथा—'गज बकरी हरि गाय बहुतेरे है 'हरि हौं, घनश्याम न आनें'।

३—सानुप्रासा—जिसमें किसी प्रकार के अनुप्रास का रूप स्पष्टतया रक्खा गया हो। यथा—मन मार मारौं ना', कुशासन पै बैठ कुशासन करेंगे हम कुशासन मिटा के' आदि।

४—अलंकृता—जिसमें उपमादि अलंकारों में से किसी अलंकार की पुट प्रत्यक्ष दिखलाई पड़ती हो। यथा—तुमसे तुम ही हम से हम ही हैं' 'लकीर को फकीर बनो बैठो है पारद की पुतरी-सी' आदि।

५—घटनात्मिका—जिसका संबंध किसी विशिष्ट घटना से हो, और जिससे घटना की सूचना स्पष्ट रूप से मिलती हो। यथा—भगीरथ के संग में।'

इसके मुख्यतया निम्न रूप हो सकते हैं—

(क) पौराणिक, (ख) वास्तविक-सत्य घटना पर आधारित (ग) काल्पनिक,

(घ) ऐतिहासिक, (ङ) साधारण।

दैवी और मानुषी आदि भेदों में भी घटनाओं को विभक्त मानकर हम उनको सूचित करनेवाली समस्याओं को इन्हीं विभागों में विभक्त कर सकते हैं।

६—वर्णनात्मिका—जिसमें यह सूचित हो कि किसी का वर्णन ही करना पूर्ति में अभीष्ट होगा। इसके भी मुख्यतया निम्न भेद हो सकेंगे—

(क) प्राकृतिक—बसंत की बहार है', सुषमा मानसर की'।

(ख) कृत्रिम—रण में', गुनाह हारी में'।

(ग) 'शारीरिक—'आनन की सुघराई है', 'किशोरी काशमीर की' आदि।

७—संभवी—जो संभव और साधारण बात को सूचित करनेवाली हो। यथा—'सरोज सकुचाने हैं'।

८—असंभवी—'जिसमे विरोधी शब्दों, पदों या भावों के द्वारा असंभव बात की सूचना स्पष्ट रूप से रहे। कवि उसे संभव एवं चरितार्थ कर भी सके और न भी कर सके। यथा--'जंबुक जाय अकास में रोयो'। आदि।

९—सामयिक एव प्रांतिक—जिसका संबंध किसी विशेष समय या देश की बात से हो। यथा—'श्रीवर हमारा था', 'लाजपति हू चलो गयो', 'वीर वारडोली है'।

१०—विरोधमूला—जिसमे परस्पर विरोधी शब्द या पद विरोधी भाव को सूचित करते हुए रखे हों।

११—हेत्वात्मिका—जिसमे किसी बात का हेतु या कारण पूछा गया हो। यथा—'काहे उदास किए मन को'।

१२—प्रश्नवाचिका—जिसमे किसी प्रकार का गुप्त या स्पष्ट प्रश्न पूछा हो।

ये सब मुख्य-मुख्य रूप उन समस्याओ के होंगे, जिनमें भाव या अर्थ स्पष्ट रखा रहता है और उसका संगोपन नही किया जाता। जिन समस्याओं में अर्थ या भाव छिपा रहता है, उन्हें हम मुख्यतया निम्नरूप से विभक्त कर सकते हैं—

(१) गूढ़ार्था—जिसमे जटिल पदों या शब्दों से मुख्य भाव स्पष्ट न होकर गूढ़ या गंभीर रूप मे हो। इसका संबंध प्रायः ध्वनि, व्यंग्यादि शब्द-शक्तियों से होता है। अतः इन्हे हम ध्वन्यात्मक या व्यग्यात्मक भी कह सकते है। यथा—'कहि हों कपोलन मे कहि हों न कान मे' 'राम राम कहियो'।

(२) सूच्या—जो किसी भाव या अर्थ की केवल सूचना ही देती हो। इसके अदर हम आंगिक या किसी अन्य प्रकार के संकेत देनेवाली समस्या को भी रख सकते है, और उसे सकेतात्मिका कह सकते है। यथा—'नेक कोर दाबि दई दाहिने नयन की', 'मयंक मानसर मे' आदि।

भाषा के भेदों के अनुसार भी समस्याओं को निम्न वर्गों में बांट सकते हैं—

(१) व्रजभाषात्मिका—जो व्रजभाषा में ही हो। यथा—'ह्वै रही', 'पार्‌यो में', 'उचारे है'।

(२) अवधीमूला—जो शुद्ध अवधी भाषा में ही हो। यथा—'लीन अवतार है।'

(३) खड़ी बोली मूला—जो शुद्ध खड़ी बोली में ही हो। यथा—'आती है', 'मन में'।

(४) सकर—जिसमे दो या अधिक भाषाओं की छाया हो। यथा—'हरि हरि हारी, किंतु पाया नही आप को'।

(५) निष्ठा—जो ऐसी भाषा मे हो या ऐसे रूप मे हो कि उसे किसी भी भाषा मे रख सकते हो। यथा—'विराज रहे', 'लोचन ऐसे'। यह सब विभेद साहित्यिक भाषा के ही हैं।

डा० 'रसाल' का समस्या' का उपर्युक्त वर्गीकरण अत्यत वैज्ञानिक एव ग्राह्य वर्गीकरण कहा जा सकता है। इसके पूर्व तो हमे 'समस्या' के किसी प्रकार के भी भेदोपभेद करने का उल्लेख नही मिलता और न 'रसाल' जी के प्रस्तुत वर्गीकरण के पश्चात ही किसी विद्वान् ने इस पर प्रकाश डाला है। अतएव डॉ० 'रसाल' का यह प्रयास अत्यत सराहनीय है। उन्होंने बड़ी कुशलता और वैज्ञानिक दृष्टिकोण से समस्याओं का विश्लेषण करके उनके भेदोपभेद निरूपित किए हैं। इस क्षेत्र मे उनका यह वर्गीकरण अनन्य ही है। अतएव उसमे यत्र-तत्र कुछ शिथिलताओ एव अस्पष्टताओ का होना भी स्वाभाविक ही माना जायगा। यहाँ पर उन अस्पष्टताओ को स्पष्ट कर लेना आवश्यक प्रतीत होता है।

श्रद्धेय डॉ० रसालजी ने 'समस्या' के उपर्युक्त वर्गीकरण को निम्न आधार पर किया है।

१—छद

२—वर्ण

३—शब्द

४—पद

५—अर्थ तथा

६—भाषा

किंतु यदि वर्गीकरण के उपर्युक्त आधार, क्रम से इस प्रकार—वर्ण, शब्द, पद, अर्थ, भाषा तथा छद रखे गए होते, तो वर्गीकरण मे अधिक सुबोधता आ जाती और यत्र-तत्र दीख पड़नेवाला शैथिल्य एव अस्पष्टता भी दूर हो जाती। वर्ण के आधार पर किए गए भेद के अतर्गत जिस भेद को 'रसाल'जी ने 'सकीर्ण' कहा है और जिसकी व्याख्या इस प्रकार की है—

जिस वर्णिक समस्या मे कोई वर्ण या शब्द अलग से मिलाने पर सार्थकता आ सके', उसको हम सयोजका, खडितार्था अथवा अपूर्णार्था कहना अधिक उपयुक्त समझते हैं। इस प्रकार वर्ण के आधार पर समस्या के तीन भेद होते हैं—

१—सार्था, २—खडितार्था (सयोजिका), ३—निरर्था।

छद के आधार पर किए गए भेद एक स्थान पर न होकर यत्र-तत्र किए गए

है। कुछ वर्ण के पहले और कुछ पद के पश्चात्। हम छंद के आधार पर किए गए वर्गीकरण को इस प्रकार रख सकते है—

१—छंद में स्थान के आधार पर समस्या के भेद।

२—छंदांतर्गत विभागों के आधार पर समस्या के भेद।

३—छांदसिक संबंध के आधार पर समस्या के भेद।

अर्थ की दृष्टि से किए गए भेदों मे श्लिष्टा तथा सानुप्रासा को यदि पृथक्-पृथक् न रखके अलंकृता के ही अंतर्गत कर दें, तो अधिक उपयुक्त होगा। क्योंकि अलंकृता अथवा अलंकार के अंतर्गत ही तो श्लेष और अनुप्रास भी आते हैं। अतएव अर्थ की दृष्टि से किए गए दूसरे, तीसरे और चौथे भेद को हम केवल एक 'अलंकृता' ही के अंतर्गत रखना उचित समझते है। इससे भी अधिक अच्छा तो यह होगा कि अर्थ के अंतर्गत, अलंकृता भेद को न लेकर स्वय 'अलंकृति' को समस्या के वर्गीकरण का पृथक् एक आधार मान ले। इस प्रकार 'समस्या-वर्गीकरण' के पूर्वोक्त छः आधारों में 'अलंकृति' को भी ले लेने से सात आधार हो जाते हैं—

१—वर्ण, २—शब्द, ३—पद, ४—अर्थ, ५—भाषा, ६—छंद तथा ७—अलंकृति।

इसी प्रकार प्रश्नात्मिका, हेत्वात्मिका तथा प्रश्नवाचिका में भी केवल शाब्दिक अंतर प्रतीत होता है, मौलिक अंतर नही। आशय तीनों भेदों का एक ही है, अतएव इन तीनों भेदों को एक ही नाम देना उपयुक्त है। इसे हम हेत्वात्मिका कह सकते हैं। इस प्रकार अर्थ की दृष्टि से किए गए समस्या के बारह भेद के केवल सात रह जाते हैं—

१—घटनात्मिका

२—वर्णनात्मिका

३—संभवी

४—असंभवी

५—सामयिक एवं प्रांतिक

६—विरोध मला तथा

७—हेत्वात्मिका अथवा प्रश्नात्मिका।

विभिन्न आधारों पर किए गए समस्या के उपर्युक्त भेदों को और अधिक स्पष्ट करने के लिये क्रमानुसार यहाँ कुछ उदाहरण दिए जाते है। वर्ण के आधार पर किए गए समस्या के संयोजिका भेद का उदाहरण देखिए—

समस्या—"गी"

पूर्ति —धारण त्रिलोकी करे धर्म एक धारण ही,
लोक-लोक धर्म ऋषि-योजना बताएगी,
सोई धर्म राजा-प्रजा जीव सचराचर ने,
त्याग दिया, हाय घोर दुर्दशा दिखावेगी।
धर्म, फर्ज, ड्यूटी मान सब जन पाल लेते,
होते डावाँडोल, कहो चाल किसे भावेगी,
सोचते क्या, धर्म करो, कर्मयोगी बन जाओ,
'श्रीपति' बनावे, तभी बात बन जावे'गी' ॥[1]

अंतिम पंक्ति में आई हुई समस्या 'गी' में 'जावे' पद पहले जोड़कर सार्थकता ला दी गई है, अतएव इसे हम संयोजिका कहेंगे।

शब्द के आधार पर संज्ञात्मिका समस्या का एक उदाहरण देखिये—

समस्या—"स्वेत बलाहक"

पूर्ति —शोक सहे सब भाँति हिमंत के मैन मनो शिशिरैको सलाहक,
बैरी बसंत के बानन सों बची तैंमे ही ग्रीषम ताप कलाहक,
देखिए तौ द्विज गंग दशा दुख दै गयो पावस जोरि जलाहक,
शीत में मीन न आयो जबै तें सभीत करैं लगे 'स्वेत बलाहक' ॥[2]

उपर्युक्त छंद के अंतिम चरण में अंतिम शब्द 'बलाहक' संज्ञा है, अतएव यह समस्या का शब्द के आधार पर संज्ञात्मिका भेद हुआ।

सर्वनामात्मिका का उदाहरण—

समस्या—"कौन तिहारी"

पूर्ति —मोहनि बाल बन नंदलाल गए मिलिबे वृषभानु कुमारी,
श्याम को प्रेमी कह्यो अपनो करि शंक महा लगी सोचन प्यारी,

१—पंचदश हिंदी-साहित्य-सम्मेलन, देहरादून में दी गई समस्या। पूर्तिकार श्रीहरिशंकर शर्मा 'श्रीपति'

२—देखिए—काव्य सुधाकर, द्वितीय वर्ष, त्रैमासिक पत्र, द्वितीय प्रकाश, (सितंबर, अक्टूबर, नवंबर १८९८ ई०), पूर्तिकार—द्विजगंग

पूरन जू पुनि भेद को ताड़ दई कर मोद सहेलिन तारी,
'सौति है मेरी' कहे हँसि राधा जो पूछै सखी 'यह कौन तिहारी'।।[१]

क्रियात्मिका समस्या का उदाहरण—

समस्या—"छाए हैं"

पूर्ति —आई ऋतु पावस की पूरन रँगीली छटा,
दस दिस जाके ठाठ सुंदर सुहाए हैं;
भूमि हरियारी तरुनाई द्रुम वेलिन की,
त्रिविधि बयारी शोर मोरन मचाए हैं।
बरसै सलिल पूरि सरसै अनंद भूरि,
तापै रंग रंगन के मेघ चारु छाए हैं;
साँझ समै मानो नृप पावस की सैर-काज,
सुरपति व्योम-पंथ पाँवड़े बि'छाए हैं'।।[२]

क्रियात्मिका समस्या का एक और उदाहरण देखिए—

आजु लखि आई मैं कन्हाई जमुना के तीर,
तुहू तो विलोक वीर परम सुहाए हैं;
लकुट लपेटे पग ललित त्रभंग अंग,
वाँसुरी अधरवर भाव दरसाए हैं।
मोर को मुकुट पट चटक लटक न्यारी,
घुँघवारी लट मुख ऊपै छटकाए है।
दीपति अमंद फंदि छबि-मकरंद लोभी,
मानौ अरबिंद पै मलिंदवृंद 'छाए है'।।[३]

उपर्युक्त दोनों छंदों मे अंतिम चरण के अंतिम शब्द 'छाए है' क्रिया है अतएव समस्या का यह क्रियात्मिका भेद रूप हुआ अर्थात् जिसमें समस्या 'क्रियापद' की दी गई है। अंतिम छद में कवि ने सुंदर शब्द-योजना के द्वारा कृष्ण का एक चित्र ही खीच दिया है। विंव-भाव ग्रहण कराने में कवि ने अपना लाघव दिखाया है।

आगे पद या वाक्य के आधार पर समस्या का उदाहरण देखिए—

१—रसिक वाटिका, भाग २—क्यारी २, २० मई १८९८ ई०, पूर्तिकार—'पूर्ण'

२—रसिक वाटिका, भाग २—क्यारी ६, २० सि० १८९८ ई पूर्तिकार—'पूर्ण'

३—रसिक वाटिका, भाग २—क्यारी ६, २० सि० १८९८ ई० पूर्तिकार—'ललित'।

समस्या—'कुरग नैन तेरे हैं

पूर्ति —वे तो वन राजें इत बदन विराजें नित,
वे द्विजेश भाजें य न भाजें नित नरे हैं,
उनके तो गात इनके न गात जिलगात
जायो नहिं जात कौन जाति मृग केरे हैं।
उनक अहेरी जन जनके अहेरी इतो
हेरी वीर ले री जानि या विचार मरे हैं,
कहे को कुरग पै कुरग व न काहू सग
कहै जो कुरग तो कुरग नैन तेरे हैं ॥'

प्रस्तुत छद क अतिम चरण म 'कुरग नैन तेर हैं' समस्या चरण का एर वाक्य अथवा पद ह। अतएव इम वाक्यात्मिका अथवा पदात्मिका समस्या कहते हैं। अब क आधार पर किए गए समस्या क विभिन्न भेदा म स कुछ के उदाहरण दिए जाते हैं। घटनात्मिका का एक उदाहरण दीजिए—

समस्या— सुरसरि धारा की

पूर्ति —चरण कमल से कमल मकरद राशि
भागीरथजी न जाकी प्राप्ति तप द्वारा की,
विधि के कमडल से शीश पै गिरीशजी के,
शोभी सिर स्नगी सदा आरती उतारा की।
धाई वसुधा पै देति पापिन को गति आई
जम की जमाति खडी चकित निहारा की,
अगम अपार पारावार हू न पार जाकी
महिमा अपार ऐमी 'सुरसरि धारा की ॥'

१—देखिए द्विजेश दर्शन—लेखक बलरामप्रसाद मिश्र द्विजेश (बस्ती) (पृष्ठ ६३)
२—प्रस्तुत समस्या काशी-कवि सम्मेलन म दी गई थी और इसकी पूर्ति स्वर्गीय श्रीगदाधर अवस्थी (द्विज बलदेव के सुपुत्र) ने की थी। कहते हैं इनकी उक्त पूर्ति को इनकी ललित वाणी मे सुनकर राजा मोतीलाल ने जो वहाँ उपस्थित थे इन्हें सौ रुपए पुरस्कार म दिये किंतु दुर्भाग्य-वश वहीं काशी म ही इस तरुण कवि का पता नहीं किस कारण म देहावसान हो गया। (श्रीमाधव कवि के सौजन्य से ज्ञात।)

उपर्युक्त छंद में 'सुरसरि धारा'—समस्या के द्वारा एक घटना का वर्णन हुआ है। अतएव प्रस्तुत छंद घटनात्मिका भेद के अंतर्गत आता है।

वर्णनात्मिका के अंतर्गत प्राकृतिक समस्या का उदाहरण—

समस्या—'शरद'

पूर्ति —विमल भए बन व्योम बाट वसुधा अरु वारी,
बादर बक बरही वरूथ की गई तयारी;
कास कुमुद सित कमल आदि फूले दरसाने,
खंजरीट चकवा चकोर सारस हरषाने ॥
अब सुमति अनिल जल थल सकल शीतल सोहत बेगरद।
यह चारु चाँदनी चंद युत मनभायी आयी 'शरद'।[1]

कृत्रिम समस्या का उदाहरण—

समस्या—'गरद गुलाल की'

पूर्ति —माची धूम-धाम की धमार ब्रजधाम बीच,
धौसे की धमाक लौं मृदंग डफताल की ;
जैसी ये अहीर सेन वीर बलवीर जी की,
त्यों 'द्विजेश' ब्रजरानी संग ब्रजबाल की।
चलि-चलि झोलनि त्यों कुम कुम गोलनि सों,
मार पिचकारी चली तुपक सुचाल की ;
जैसी रनभूमि की गरद तैसी छाई तहाँ,
ग्वालन पै बालन पै 'गरद गुलाल की' ॥[2]

अब अर्थ के आधार पर किये गये समस्या के असभवी भेद का उदाहरण देखिये—

समस्या—'कीनो कैद है कुरंग मुख में तुरंग के'।

पूर्ति —जोबन जिले में कुच कंचुकी-किले के बीच,
भूपति जिले सों मिले एकै रूप-रंग के;
नीति निरवारक निवारक अनीति ऐसी,
काज कारी कै 'द्विजेश' द्वै कर प्रसंग के ॥

१—देखिए—काव्य-सुधाधर, ३ प्रकाश, सं० १९६१ वि०पूर्तिकार, शिवप्रसाद पांडेय।
२—देखिए—द्विजेश-दर्शन-श्रीबलरामप्रसाद मिश्र 'द्विजेश', बस्ती (पृष्ठ ७४)

मुख बिंब सौंह नासा भौंह त्योर तिरछौंह,
घेरे नैन घूंघट यों कातिल कुढंग के,
मनहुँ ससी के अंग कीर धनु तीर संग,
'कीनो कैद है कुरंग मुख में तुरंग के' ॥[१]

उपर्युक्त छंद में असंभव व्यापार-कुरंग (मृग) को तुरंग (घोड़े) के मुख में कैद करना भी कवि ने अपनी प्रतिभा से संभव कर लिया है। अतएव असंभव व्यापार से युक्त होने के कारण समस्या को असंभवी कहा गया है।

हेत्वात्मिका अथवा प्रश्नात्मिका समस्या का उदाहरण देखिए—

समस्या—'केहि कारण कूप में हालत पानी'।

पूर्ति —एक समय जल आनन को घर से निकसी अबला ब्रजरानी,
जाति संकोच में डोल भरन जल खैंचति ही अँगिया मसकानी,
देखत ही छतिया उघरी कवि मंत नहैं मनसा ललचानी,
हाथ बिना पछितात रह्यो 'तेहि कारण कूप में हालत पानी'।[२]

समस्या में प्रश्न निहित होने के कारण ही प्रश्नात्मिका अथवा हेत्वात्मिका कहा गया है।

भाषा के आधार पर किए गए समस्या के भेद अत्यन्त स्पष्ट हैं। समस्या किसी भी भाषा की दी जा सकती है। भाषा के आधार पर किए गए समस्या के भेदों के उदाहरण इसीलिए यहाँ नहीं दिए जा रहे हैं। अब छंद के आधार पर किए गए समस्या के विविध भेदों के उदाहरण देखिए—

छंद में स्थान के आधार पर किए गए समस्या के भेद में से 'आदिगता' का एक उदाहरण देखिए—

समस्या—असित सेत लोहित लसत चोवा अबिर गुलाल,
पिचुका कुटिल कटाच्छ ते नैननि माच्यो ख्याल।

पूर्ति —असित सेत लोहित लसत चोवा अबिर गुलाल,
पिचुका कुटिल कटाच्छ ते नैननि माच्यो ख्याल।

१—देखिए द्विजेश-दर्शन—श्रीब्रलरामप्रसाद मिश्र 'द्विजेश', बस्ती, (पृष्ठ ६४)

२—देखिए नवीन संग्रह—हफीजुल्लाखाँ १६वाँ संस्करण, १९१३ ई०

नैननि माच्यो ख्याल उझकि झूमत झुकि झेलत ।
छिनक पाट पल ओट करत छिन पुनि रँग रेलत ।।
रतनाकर अनुराग मोद अभिलाष रसित से ।
याही ते लखि परत लाल अस सेत असित से ।।[1]

समस्या का आदि शब्द 'असित' था उसकी पूर्ति कवि ने 'सेत' को भंग करके 'असित से' पद से कर दिया है। यह 'आदिगता' भेद के अंतर्गत आता है।

'अंतगता' का उदाहरण देखिए—

समस्या—'पी कहाँ'

पूर्ति —देखो जाय ब्रज तो व्यथित दिन पावस यों,
बिज्जु ना तड़पि तड़पाती पावसें तहाँ;
मोर चूप चोर दादुरै हूँ चमगादर ज्यों,
झिल्ली ना झनकि छिपकिल्ली रूप सों वहाँ।
कूक बिन कोयल सुफूँकि बक पंख तैसे,
जोति जुगुनू हूँ बिन पंख ह्वै रहे जहाँ;
ऐसो पेखि पूछत पपीहा वृषभानुजा सों,
ब्रज तजि कै गए तिहारे प्रान 'पी कहाँ' ।।[2]

छन्दान्तर्गत विभागों के आधार पर किए गए भेदों में से 'पूर्णा' का एक उदाहरण देखिए—

समस्या—"साँवरे छैल छुवोगे जु मोहिं तो गातन मेरे गुराई न रैहै।"

पूर्ति —औसर के बिन ही मिलिबे में अबै सिगरे ब्रज चौचंद ह्वैहै,
हे ब्रजराज बिनै सुनो मेरी इतै मग में कछु हाथ न ऐहै;
देखती हैं ते कलंक लगै हैं कलंक की कालिमा अंगन छैहै,
'साँवरे छैल छुवोगे जु मोहिं तो गातन मेरे गुराई न रैहै' ।।[3]

प्रस्तुत छंद की अंतिम पंक्ति में समस्या रूप में दिया हुआ पूरा चरण आ गया है अतएव यह पूर्णा भेद के अंतर्गत आता है।

१—देखिए काशी कवि-मंडल की समस्यापूर्ति, रत्नाकर।
२—द्विजेश-दर्शन, बलरामप्रसाद मिश्र (पृष्ठ ७७)।
३—देखिए काशी-कवि-समाज समस्यापूर्ति, ब्रजराज।

ममस्या के अर्धा भेद के अन्तर्गत दो भेद और बनाए गए हैं—पूर्वार्द्धा और उत्तरार्द्धा। उत्तरार्द्धा का उदाहरण यहाँ दिया जाता है—

समस्या—'चंद मंद-मंद मकरंद बिंदु ढारै है।'

पूर्ति —दोय पद कंज पै धरी ह्वै कंज-आनन सी,
कंजाननी आनन लौं दोय कंज धारै है,
एक उर कंज तापै उरज दुकंज जो—
'द्विजेश' कंचुकी में नर मंज सो सुधारै है।
यत रस कंजनि के कैधों चोरि या निचोरि,
कौन मिमी मिस मिसकी के यो बगारै है,
मानो अरविंदन के रसिक मलिंद साह,
'चंद मंद-मंद मकरंद बिंदु ढारै है'॥[1]

उपर्युक्त छंद के अंतिम चरण म उत्तरार्द्ध म दी हुई ममस्या की पूर्ति हुई है। अतएव यह ममस्या का उत्तरार्द्धभेद हुआ।

अर्द्धार्द्धा का एक उदाहरण देखिए—

समस्या—'बाँसुरी बजावै है'।

पूर्ति —माल सिरी मारवा मलार देस मालकोस,
मंजु पट मंजरी सुधाया नट गावै है,
सुकवि छबीले सदरा औ सोहनी को सुर,
ललित बिभास भीम ईमन सुनावै है।
सारंग सुधरि सुघ पुरिया प्रबन्धन सो,
पंचम पलासी करि बिलग बतावै है,
आली देखु वृन्दावन बागन रच्यो है रास,
कान्ह कूल रागन मैं 'बाँसुरी बजावै है'॥[2]

उपर्युक्त छंद के अंतिम चरण मे 'बाँसुरी बजावै है', चतुर्थांश है, अतएव यह समस्या के अर्द्धार्द्धा भेद के अंतर्गत आता है।

१—देखिए द्विजेश दर्शन—द्विजेश (पृष्ठ ६६)

२—देखिए काशी-कवि-समाज की समस्यापूर्ति, भाग २, छबीले कवि, बनारस (पृष्ठ १५४)

अब 'न्यूना' का एक उदाहरण देखिए—

समस्या—'मोल के'

पूर्ति —टूटे कहाँ हरवा गर के कछु और भये अखरा मुख बोल के,
कंचुकी चीर कढ़ै परें बाहेर ये कुच रूप धरे ससि मोल के;
हैं ललिते भरे राग दुवौ दृग भाग जगे लखि पीत निचौल के,
सेद अगोछिये, गोल कपोल के, दाग तौ पोछिये प्यारी, तमोल के॥[1]

उद्धृत छंद के अंतिम चरण में 'मोल के' समस्या की पूर्ति हुई है, परंतु यह यति के अनुसार होनेवाले खंड से न्यून पड़ती है, अतएव यह न्यूना भेद के अंतर्गत आ जाती है।

छांदसिक संबंध के आधार पर किए गए समस्या के भेदों में से 'व्यापिका' के उदाहरण देखिये—

(इसके विषय में कहा गया है कि यह कई भिन्न-भिन्न छंदों में प्रयुक्त हो सकती है।)

समस्या—'शारदा के हैं'

पूर्ति —लावण्य छंद में—

कथनीय भाव उपजे जब जैसे मन में,
प्रकटें तब तैसे अर्थ प्रसग कथन में;
ये गुण वाणी में जा विशारदा के हैं,
सब कवि किंकर ता मातु 'शारदा के हैं'॥[2]

कवित्त में—

केश से सुकेशी के न केश मन रंजन है,
सुंदर सुहाग भरे अंग न उमा के हैं;
काम की तिया के है न नैन सुख दैन ऐसे,
दान सनमान सैन कर न रमा के हैं।

१—रसिक-वाटिका, भाग ३, क्यारी ८, २० नवंबर, १८९९ ई०।

२—काव्य-सुधाधर, चतुर्थ प्रकाश, मार्च, एप्रिल, मई, १८९८ ई०।

चद्रकला या ही प्रति पालिनी त्रिलोक की है,
या के से प्रभाव तौ न राम की तिया के हैं,
कोमल अमोल मीठे आशय अपार भरे,
राधिका के बैन से न बैन 'शारदा के हैं' ॥'

कदुक छद मे—

बसै मजुही मानसै नेह पाके हैं,
भये धन्य आनद सौगन्धि छाके हैं,
उनै भौंर ह्या दास ज्यो खास ताके हैं,
लसें पद्म से पाद श्री 'शारदा के हैं' ।'

उद्धृत समस्या की पूर्ति विभिन्न छदो मे की गई है। इसीलिये इसे 'व्यापिका' कहा गया है।

अलकृति के आधार पर समस्या के अनेक भेद अलकारानुसार हो सकते हैं। यहाँ पर कुछ उदाहरण दिए जाते हैं।

समस्या—श्लेष के आधार पर—'गज बकरी हरि गाय'।

पूर्ति —घोरो कुरग सुरग मे स्याही खरी विलाय,
महिषी कुतिया लोमरी 'गज बकरी हरि गाय'।'

उपमा के आधार पर—'चांदनी-सी फैली चारु चांदनी वदन की'।

पूर्ति —सोरहो सिगार सजि स्याम से मिलन काज,
राधिका सिधारी मनु वनिता मदन की,
मद-मद मारग में चलत सखीन सग,
निज गति आगे गति गज की कदन की।
चदकला भृकुटी कमान नैन बानन से,
तारन समान छबि छाजत रदन की,

१—काव्य सुधाधर, चतुर्थ प्रकाश, मार्च, अप्रैल, मई, १८९८ ई० चद्रकला बाई।

२—वही काव्य-सुधाधर, दत्त द्विजेंद्र।

३—लाला भगवानदीन 'दीन'

हँसत लसत अति चंद सो मुखारविंदु,
'चाँदनी-सी फैली चारु चाँदनी बदन की' ॥[1]

उत्प्रेक्षा के आधार पर समस्या—
'गरकि गई ह्वै मानों बीजुरी अँधेरे में'।

पूर्ति —थकि बिपरीति परजंक पै उनींदी बाल,
सोई भोर रैनि रही मैन भट भेरे में ;
ढाँके श्याम सारी सों सरीर भली भाँति अली,
सोवति परी है खरी नींद ही के फेरे में।
हिय में बिचारि ब्रजराज मन हारि रहे,
उपमा निहारि कहूँ आवति न हेरे में ;
फरक कछू न रह्यो सरक उजेरे तैं,
'गरकि गई ह्वै मानो बीजुरी अँधेरे में' ॥[2]

समस्या के उपर्युक्त भेदों के अतिरिक्त भी कुछ और भेद हो सकते हैं, जो यहाँ दिए जाते हैं—

१—विषय समस्या—देखा गया है कि कभी-कभी कोई विषय समस्या के लिये दे दिया जाता था और विभिन्न कवि उसी विषय पर अपनी रचनाएँ प्रस्तुत करते थे। फिर भाव तथा अर्थ की दृष्टि से उनकी परीक्षा की जाती थी। इस प्रकार के विषय कानपुर से प्रकाशित समस्यापूर्ति की पत्रिका 'रसिक-वाटिका' में प्राय: प्रकाशित होते थे और कविगण उन विषयों पर अपनी रचनाएँ प्रस्तुत करते थे। कभी-कभी 'अलंकार-वर्णन'-शीर्षक के अंतर्गत भी इसी प्रकार की रचनाएँ प्रकाशित होती थी। यहाँ पर विषय समस्या के रूप में रचित कुछ छंदों के उदाहरण दिए जाते है—

विषय समस्या—'ग्रीष्म-वर्णन'

पूर्ति— तरणि ताप सहि ना सकत छाँहहु ढूढ़त छाँह।
जड़ चेतन सब बिकल भे ऋतु ग्रीषम के माह ॥[3]

१—समस्यापूर्ति (भाग २) संपा० रामकृष्ण वर्मा, पूर्तिकार—चंद्रकला बाई (पृष्ठ ११०)

२—वही „ „ „—ब्रजराज (पृष्ठ २०५)

३—रसिक-वाटिका—भाग १, क्यारी ३, २० जून, १८९७ ई०, रामनाथ गुप्त (पृष्ठ १५)

तोरत तरुन तरु झोरत अरण्य झार,
हरित वितान वन बागन उजारो है,
उडत डँडूर धूर भूरि सो उडावत है,
नीर सर वापी सरिता को सोखि डारो है।
प्रबल झकोर जोर शोर घोर मारुत को,
सीकर प्रवाह मद स्रवत निहारो है,
पूरन प्रकोप ताप आतप जलानन को,
ग्रीषम प्रचंड कै गयंद मतवारो है॥[1]

कवि ने प्रस्तुत छंद में ग्रीष्म ऋतु की दशा का वर्णन किया है। ग्रीष्म ऋतु में वृक्ष, पत्ते आदि सम्पूर्ण वनस्पति सूखी-सी प्रतीत होती है, जंगल आदि उजड़-से जाते हैं। चारों ओर धूल ही धूल उड़ती दीख पड़ती है तथा नदी-नद सब जल रहित हो जाते हैं। कवि कहता है, यह प्रचंड ग्रीष्म है अथवा मतवाला हाथी है, जिसने धरती पर यह उत्पात मचा रक्खा है। 'पूर्ण'जी का दूसरा छंद देखिए—

सुबरन पीत घन फूले हैं अमलतास,
पीरवस सोई तन पेखी पियराई है,
छाई भूरि धूरि धूम धार विरहानल की,
आतप अतन धीर सरिता सुखाई है।
उमस उसास अंगदाहत जलाक ज्वर,
सीकर समूह झरी आँसुन लगाई है,
'पूरन जू' ग्रीषम है कैधों ये अवनि वाम,
पीतम बसंत के वियोग की सताई है॥[2]

कविवर 'पूर्ण'जी ने उपर्युक्त छंद में संसार में व्याप्त ग्रीष्म की उष्णता के प्रति संदेह व्यक्त किया है। उनका कथन है कि यह ग्रीष्म द्वारा लाई हुई जलाकें हैं अथवा वसुधा नारी अपने प्रिय बसन्त से वियुक्त है उसी के दीर्घ निःश्वास निकल रहे हैं, जिससे चारों ओर उष्णता छाई हुई है।

१—रसिक-वाटिका—भाग १, क्यारी ३, २० जून, सन् १८९७ ई०, ग्रीष्म-वर्णन
रायदेवीप्रसाद 'पूर्ण' (पृष्ठ १५)

२—वही „ „ „ „ „

पूर्तिकार—बाबू ब्रजभूषणलाल गुप्त 'भूषण'—

भयो है उदंड मारतंड को अखंड तेज,
सूखिगे तड़ाग कूप नदी नद नारे हैं ;
चलत प्रचंड वायु जग को जराये देत,
पूरित दिशान धूरि गरद गुबारे हैं।
सीकर वहत मुख सूखिगे बटोहिन के,
खोजत रमन हेत तरुन सहारे हैं ;
भूषण कहत गिरि खोहन में लुके जाय,
ह्वै के सब जीव-जंतु दुखित बिचारे हैं ॥[1]

पूर्तिकार—'बेहद'—

चंद्रक चमेली चोव चंदन सों चरचित,
चंद्रमुखी चाँदनी चवर चित्रशाला है ;
सोरा की सुराहिन में सीतल सलिल पूरि,
बेहद अरगजादि अंगराग आला है।
परदा उसीरन में व्यंजन समीरन में,
ग्रीषम सरीरन में लागत हिमाला है ;
झाला जैसे झापन झिरीन बुंद जाला झरैं,
प्याला हैं गुलाब के फुहारा मेघमाला है ॥[2]

समस्यापूर्तिकार कवियों ने केवल एक ही विषय पर अपनी रचनाएँ नही प्रस्तुत की, वरन् काव्य-रचना के लिये इन्होंने विविध विषयों को चुना। ग्रीष्म ऋतु-संबंधी कुछ छंद उद्धृत किए जा चुके है। अब यहाँ पर शिशिर-ऋतु पर विभिन्न कवियों के छंद देखिए—

विषय शिशिर-ऋतु—

पूर्तिकार—'पूर्ण'—

पूरन सुधाकर सों दिन में दिनेश तैसे,
निशि में निशेप चारु मुख की लुनाई है;

१—रसिक-वाटिका, भाग १, क्यारी ३, २० जून, सन् १८९७ ई०, ग्रीष्म-वर्णन भूषण (पृष्ठ १६)
२—वही ,, ,, ,, बेहद (पृष्ठ १७)

उहरत वश गार पाहिगा की धूमधार
हिम को पसार हीर हार गुघराई है।
हीतल जुडावै वात गीतल सुखद जाको,
अम्बर चटक चाह चूनरी सुहाई है,
सिसिर समै म परमात्मा अनख देखो,
प्रकृति प्रतच्छ चदबदनी बनाई है॥[1]

कविवर पूर्ण जी का शिशिर-ऋतु म सारी प्रकृति एक सुन्दरी नारी के रूप म दीख पड़ती है। प्रकृति क सारे व्यापार म उन्हें चन्द्रवदनी क शरीर का आभास मिलता है।

पूर्तिकार— नवीन

तेजवत तरनि तुषार सों ससेटो देखो
और अगनेय भोर हीत मचिनत है
सुकवि नवीनजू मयक हू ससक भयो
वाकी हू मसाकी कोकनदन खिनत है।
बूद सा दिवस भारी रजनी पहार भई
घाम चाँदनी सो वात वज्र-सी पिलत है,
झाला-सी परत आस भवन हिमाला भए,
अवनि अवास अवुपाला उगिलत है॥[2]

प्रस्तुत छन्द में कवि ने शिशिर ऋतु के लक्षणो पर प्रकाश डाला है। शिशिर काल में दिन बहुत छोटे होते हैं और रात्रि बहुत बड़ी होती है। शिशिर ऋतु म तुषार पात से कमल-वृन्द भी पात विहीन हो जाते हैं और उनकी शोभा नष्ट हो जाती है। कवि ने शिशिर ऋतु का यथातथ्य वर्णन किया है। प्रकृति-वर्णन म यथातथ्य वर्णन का बड़ा महत्त्व है।

पूर्तिकार— छविनाथ

सिसिर को सोर महि मडल म चारो ओर
गरमी विचारी लाले दूर बिलगी रहै,

१—रसिक-वाटिका भाग १ क्यारी १० २० जनवरी सन् १८९७ ई०
शिशिर-ऋतु-वर्णन पूर्ण (पृष्ठ १५)
२—रसिक-वाटिका भाग १ क्यारी १० २० जनवरी सन् १८९८ ई०
शिशिर ऋतु वर्णन नवीन (पृष्ठ १७)

साँझ ही सों मूँदि द्वार, झाँझरी, झरोखे सब,
सीतल समीर जामे दूरि ही भगी रहै।
तेज-हीन भानु औ' कृसानु दोउ देखि परैं,
'चंद को चकोरी देखि प्रेम में पगी रहै;
पाला को कसाला नही होत 'छबिनाथ' नेक,
तेल तूल तरुनी जो तन में लगी रहै ॥'[१]

अब निम्न-लिखित छंद में कविवर 'रतनेश'जी का शिशिर-वर्णन देखिए, जिसमें उन्होंने शिशिर को एक राजा के रूप मे चित्रित किया है। शिशिर महाराज अपने 'चंदन उसीर नीर' आदि सिपाहियों को लेकर किस प्रकार 'ग्रीषम गनीम' को हराकर भगा देते है—

पूर्तिकार—'रतनेश'

पूर्ति— चंदन उसीर नीर आदिक सिपाहिन को
लेकर सहाय कीनो अरि को निपात है;
चारु चंद्रिका है रूप सानी पटरानी साथ,
कुमुद कुचाली की उजार दीनी जात है।
'रतनेश' देश-देश आय के प्रवेश कीनो,
पवन प्रधान को अतंक सरसात है;
ग्रीषम गनीम को हराय के भगाय दीन्हों,
सिसिर महीप को सुराज दरसात है ॥'[२]

ऋतु-वर्णन-जैसे विषयों के अतिरिक्त अन्य विषयों पर भी समस्या-पूर्तिकार कवियों ने अपनी रचनाएँ प्रस्तुत की है। ऐसे विषयों में 'सुदामा-चरित्र', 'द्रौपदी-लीला', 'गोवर्द्धन-धारण', 'प्रह्लाद-चरित्र' तथा 'गजोद्धार-वर्णन' मुख्य रूप से उल्लेखनीय है। यहाँ कुछ विषयों पर छंद प्रस्तुत किए जाते है—

१—रसिक-वाटिका, भाग १, क्यारी १०, २० जनवरी, सन् १८९८ ई०, शिशिर-ऋतु-वर्णन—'छबिनाथ'। (पृष्ठ १७)

२—रसिक-वाटिका, भाग १, क्यारी १०, २० जनवरी, १८९८ ई०, शिशिर-ऋतु-वर्णन—'रतनेश'।

विषय— गजोद्धार-वर्णन

पूर्तिकार—'ललित'

अति मदमातो करिनीन लै सुहातो संग,
करै जल-केलि करि करिन-समाज से ,
चापि लियो ग्राह गजनाह को चरन मुख,
ऐंचा-खैंची काल बहु कीन्हीं निज साज से ।
विकल विहीन बल ह्वैके सब साथी छाँडि
भाजे अकुलाई, बाज आए रन काज से ,
'दीन हित कित' यह सुनत अवाज ही ते,
टूटि परे ग्राह पै गुविंद गुरु गाज से ॥[1]

पाछिलो सँभारि बैर वारिचर कोप भरो,
ग्रसो गजराज जल-केलि मैं बिचरते ,
कीन्हो बहु बल, शुंड होति जल बलबल,
साथी सब हाथी छाडि भागे भरे डरते ।
'ललित' कहाँ ते धाइ आइगे गरुड तजि,
जानी नहिं जाति दीन बानी के उचरते ,
'कित हो गुबिंद' के कहत एक साथ छुटो,
सीस ग्राह धर ते, ग्याग हरि-कर ते ॥[2]

पूर्तिकार—'भूषण'

आरतहरन मुरारि सो बिनती करी गयंद ,
प्रान बचाओ ग्राह सो हे हरि परमानंद ।
हे हरि परमानंद दास को संकट टारो ,
लिए जात जल मध्य लखो नहिं और सहारो ।
'भूषण' सुनि कै विनय चले प्रभु चक्र सुधारत ,
जाय उबार्‌यो तुरत, सुनी जब बानी आरत ।[3]

१—रसिक वाटिका, भाग १, क्यारी ११, २० फरवरी, सन् १८९८ ई०, गजोद्धार-वर्णन—ललित'। (पृष्ठ १)

२— " " " 'ललित'

३— " " " 'भूषण'

पूर्तिकार—'नवीन'

कहूँ बैजयंती है, मुकुट कहूँ, शंख कहूँ,
काहे इकसाथ रमानाथ घबरायकै ;
कहूँ सुधि, कहूँ बुधि, कहूँ मन, कहूँ चित्त,
पूछि उठी रानी कर गहि अकुलायकै ।
कौने काज होत हौ उतायल श्रीप्राणनाथ,
हम सों कहत किन हाल समुझायकै ;
तारनतरननाथ सुनी अनसुनी करि,
हाथाहाथी हाथी को उबार लीन्हों धायकै ॥[1]

पूर्तिकार—'मुकुंद'

पीवन गयो तो कमलाकर किनारे जल,
पाँव गहि ग्राह लाग्यो खैंचन बनायकै ;
थाक्यो करि पौरुख, न छूटो काहू भाँतिन सों,
सकल कुटुंबन बिहायो घबरायकै ।
काहू की चली ना करतूति नेक कैहू, तबै
हरि को गयंद ध्यान कीन्हों हहरायकै ;
तारनतरननाथ छाँड़ि गडुरासन को
हाथाहाथी हाथी को उबार लीन्हों धायकै ॥[2]

कविवर 'नवीन' एवं मुकुंद के उपर्युक्त छंदों में अंतिम चरणार्द्ध—'हाथाहाथी हाथी को उबार लीन्हों धायकै'—समस्या के रूप में आया है। विषय के रूप मे प्राप्त समस्या को भी इन कवियों ने मूल समस्या के ही रूप में रखने का यत्न किया है। समस्या-पूर्ति जैसी ही विशेषताएँ इन रचनाओ में भी मिल जाती है। अब यहाँ अधिक छंद न उद्धृत करके समस्या के अन्य संभव भेदों के विषय में भी कुछ प्रकाश डाल देना आवश्यक होगा।

२—चित्र-समस्या—कभी-कभी समस्या के रूप में चित्र दे दिए जाते थे, और कविगण उस चित्र के आधार पर अपनी रचनाएँ प्रस्तुत किया करते थे। इस

१—रसिक-वाटिका, भाग १, क्यारी ११, २० फ़रवरी, सन् १८९८ ई०, गजोद्धार-वर्णन—'नवीन'। (पृष्ठ १)

२—रसिक-वाटिका, भाग १, क्यारी ११, २० फ़रवरी, सन् १८९८ ई०, गजोद्धार-वर्णन—'मुकुंद'। (पृष्ठ ५)

भेद का समस्यापूर्ति के मूल लक्षणों से साम्य नहीं है। केवल प्रवृत्ति मात्र में साम्य पाया जा सकता है। विद्वानों ने अंगरेजी में इसे Rebus Writing (रिबस राइटिंग) कहा है। श्रीरामचंद्र वर्मा चित्र-समस्या के विषय में इस प्रकार कहते हैं—

इस भेद में वाक्य के कुछ शब्द निकालकर उनकी जगह तद्वाचक चित्र बना दिए जाते हैं। जैसे 'राम वन को गए' लिखने की जरूरत हो, तो 'राम' शब्द के आगे वन-दर्शक चित्र बनाकर उसके आगे 'गए' लिख देंगे। रोजहिल (Rose Hill) नाम की एक कुमारी लड़की थी। उस पर प्रेम करनेवाले एक युवक ने अपने कार्ड पर Rose Hill I love well (रोजहिल पर मेरी अत्यधिक प्रीति है) का अर्थ सूचित करने के लिये निम्न लिखित चित्र लिख रखे थे।

Rose स्त्री का नाम अथवा गुलाब, इसलिये गुलाब का चित्र।
Hill वंश-सूचक उपाधि अथवा पहाड़ी, इसलिये पहाड़ी का चित्र।
I का समध्वनि शब्द है Eye अर्थात् आँख, इसलिये आँख का चित्र।

love प्रीति इससे मिलते-जुलते उच्चारण का शब्द है Loaf अर्थात् रोटी इसलिये रोटी का चित्र। और well अच्छी तरह इसका दूसरा अर्थ कुआँ होता है इसलिये कुएँ का चित्र। तात्पर्य यह है कि 'मैं रोज हिल को अत्यधिक प्यार करता हूँ' न लिखकर गुलाब, पहाड़ी, आँख, रोटी तथा कुएँ इत्यादि पदार्थों की चित्रमाला लिखनेवाले युवक का धैर्य ही कहना चाहिए।'[1]

३—पूर्व घोषित समस्या—प्रायः समस्याएँ निश्चित समय में सप्ताह दो सप्ताह पूर्व ही प्रकाशित कर दी जाती थीं, जिससे पूर्तिकार कवियों को सोचने का पर्याप्त समय मिल जाता था। ऐसी समस्याओं को हम पूर्व घोषित समस्या कह सकते हैं।

४—आशु समस्या—कभी कभी कवि की काव्य प्रतिभा, प्रत्युत्पन्न मतित्व एवं आशु-कवित्व की परीक्षा लेने के लिये तत्क्षण समस्या दी जाती थी। इसे हम आशु समस्या कह सकते हैं। उर्दू में जोक की आशु कविता अधिक प्रसिद्ध रही है। हिंदी और संस्कृत में पंडित अंबिकादत्तजी व्यास के लिये प्रसिद्ध ही है कि वे एक घड़ी में सौ श्लोकों की रचना कर लेते थे। व्यासजी को हिंदी एवं संस्कृत दोनों में आशु कवित्व पर पूर्ण अधिकार था। स्वर्गीय द्विज बलदेव को तो अपने आशु कवित्व पर इतना दृढ़ विश्वास था कि उन्होंने यह गर्वोक्ति घोषित कर रक्खी थी—

१—देखिए सुभाषित और विनोद, प्रथम भाग—रामचंद्र वर्मा। (पृष्ठ ४७)

दीजै समस्या, तापै कबित्त बनाऊँ झट,
कलम रुके, तो कर कलम कराइए।

तात्पर्य यह है कि आशु कविता करके कवि उपस्थित जनता के बीच में तत्क्षण सम्मानित होते थे।

५—परिवृत्ति अथवा पैरेडी—पैरेडी को भी एक भेद माना जा सकता है। जिस रचना में किसी कवि या किसी प्रकार के कवियों की शैली और भावना का इस प्रकार अनुकरण किया जाय कि वे हास्यास्पद प्रतीत हों, तो उसे हम परिवृत्ति अथवा पैरेडी कह सकते हैं। व्यंग्य के लिये परिवृत्ति का प्रयोग प्रायः किया जाता है।

कुछ उदाहरण देखिए—

रसखानि के प्रसिद्ध छंद 'मानुष हौं, तो वही रसखानि' पर पैरेडी इस प्रकार है—

मानुष हौं, तो वही कवि 'चोंच' बसौं सिटी लंदन के किसी द्वारे,
जो पशु हौं, तो बनौं बुलडाग, नित बैठौं जु कार में पूँछ निकारे;
पाहन हौं, तो थिएटर हाल को, बैठें जहाँ मिस पाँव पसारे,
जो खग हौं, तो बसेरो करौं किसी ओक पै टेम्स नदी के किनारे॥[1]

श्री भगवतीचरण वर्मा के प्रसिद्ध गीत—

दोस्त एक भी नहीं जहाँ में,
सौ - सौ दुश्मन जान के;
बहुत कठिन है इस दुनिया में
चलना सीना तानके। (वर्मा)

पर पैरेडी देखिए—

एक इकन्नी हो सिगरट की,
दो पैसे हों पान के;
बहुत सहल है इस दुनिया में
चलना सीना तानके।[2]

पैरेडी केवल हास्य एवं विनोद की ही सृष्टि कर सकती है; किसी उत्कृष्टता की द्योतक नहीं।

१—कांतानाथ पांडेय 'चोंच'

२—कुंजविहारी पांडेय

यदि कवि की काव्य प्रतिभा, उत्कृष्ट कल्पना एवं कला कुशलता की परख करनी हो, तो समस्या कला पूर्ण, क्लिष्ट एवं गूढ़ देनी चाहिए, जिससे कि एक प्रतिभा-सम्पन्न कवि ही उनकी पूर्ति करे, साधारण कवि इस प्रकार की समस्याओं की पूर्ति में न उलझें किन्तु यदि किसी कवि के आशु कवित्व की परीक्षा लेनी हो तो समस्या सरल एवं स्पष्ट देनी चाहिए। विषय एवं घटना आदि का तथा विशेष भाव एवं मनोवृत्ति का भी संकेत कर देना सर्वथा उचित है। समस्या के संबंध में कुछ ज्ञातव्य बातें इस प्रकार हैं—

१—समस्या देश काल एवं साहित्यिक परंपराओं के अनुकूल हो।

२—समस्यागत पदों में शिष्टता एवं शुद्धता पर ध्यान दिया गया हो।

३—समस्या में अश्लीलत्व दोष न हो।

४—भाव एवं अर्थ की दृष्टि से सुंदर हो।

५—समस्या स्पष्ट एवं व्यापक भाव की द्योतक हो।

६—समस्या में मनोरंजकता रमणीयता एवं आकर्षण शक्ति हो जिससे कि आकर्षित होकर कवि उसकी पूर्ति पूर्ण तन्मयता से कर सके।

७—समस्या में कोई व्यक्तिगत आक्षेप न हो।

समस्या निर्धारण के विषय में भानुजी का मत इस प्रकार है— समस्या प्रायः किसी प्रसंग विशेष का लक्ष करके निर्धारित की जाती है। चाहे वह प्रसंग ऐतिहासिक हो अथवा किसी विशेष सामयिक घटना का। समस्या बनाने के लिये कम से कम इतना विचार करना आवश्यक है कि अर्थ गाम्भीर्य रहते हुए भी शब्द ललित और स्पष्ट हों तुकांत उत्तम प्रकार का तथा जहाँ तक संभव हो, सहज हो ऐसा न हो कि जिसके मिलान के लिये या तो तुकान्त मिले ही नहीं और कठिनता से मिल भी जाय तो पूर्तिकार उसके बंधन में बँधकर उत्तम आशय व शब्दों का इच्छित समावेश न कर सके। यदि समस्या किसी घटना विशेष की हो तो समस्या के शब्द ऐसे महत्व के हों कि जिनसे पूर्तिकार का चित्त समस्या से अभीष्ट को पहुँच जाय और भी एक बात विशेष लक्षणीय है कि समस्या कभी भी किसी व्यक्ति समाज जाति धर्म और राजद्रोह आदि उत्पातकारिणी अथवा ईर्षा द्वेष और अश्लील दि दोषों से युक्त न हो।[१]

उपर्युक्त विवेचन समस्या के औचित्य अर्थ प्रयोग एवं भेदों का ही हुआ है। अब यहाँ आवश्यक है कि समस्या के साथ साथ समस्यापूर्ति पर भी प्रकाश डाल दिया जाय। समस्यापूर्ति के विषय में केवल श्रीजगन्नाथप्रसाद भानु ने ही

१—देखिए काव्यप्रभाकर, एकादश मयूख—जगन्नाथप्रसाद भानु। (पृष्ठ ७३०)

३—समस्यादाता की इच्छा सुनकर—राजकवि केशवदास की प्रेमिनी प्रवीणराय वेश्या की कविता-चातुरी सुनकर मुगल-शिरोमणि अकबर बादशाह ने उसे अपने दरबार में बुला भेजा। दरबार में पहुँचने पर बादशाह ने प्रवीणराय से पूछा—

"ऊँचे ह्वै सुर वश किए, समुहे नर वश कीन।"

प्रवीणराय की अवस्था कुछ ढल चुकी थी, अतएव बादशाह के कटाक्ष को समझकर उसने कहा—

"अब पताल वश करन को, ढरकि पयानो कीन।"

बादशाह ने कहा—

"युवन चलत तिय देह ते, चटकि चलत किहि हेत ?"

इसे सुनकर तुरंत प्रवीणराय ने कहा—

"मनमथ वारि मसाल को, सौंति सहारो लेत।"

इन सार्थक उत्तरों को सुनकर बादशाह अति प्रसन्न हुए।

४—समस्यास्थित पद के अर्थानुकूल—

समस्या कैसी ही कठिन और गूढ़ क्यों न हो, सुकवि अपनी अपूर्व प्रतिभा से किसी-न-किसी प्रमाण, उपमा, उपमेय अथवा उत्प्रेक्षादि के द्वारा उसकी पूर्ति सार्थक कर ही देता है। कभी-कभी वह अपनी कल्पना से ऐसे सुसंगत आशय का प्रतिपादन करता है कि आश्चर्य मानना पड़ता है। नीचे की पूर्तियाँ उक्त कथन की अनुमोदक है—

"बीस रवि, दस ससि संग ही उदै भए।"

कातिक की दीपमालिका के तिउहार दिना,
रामचंद्रजू के धाम मानुष सबै गए।
छूटी हाँ हवाई भाँति-भाँति की, घनी सुहाई,
देखहिं सकल महामोद चित कौ दए।
बीस चंद्र-ज्योति बुकनी के रंग की ही दस,
सादी हूँ धरी ही ख्याल और ही घने नए।
बात को लगाइ ताकी ओप यौं जनाइ मानो,
'बीस रवि, दस ससि संग ही उदै भए'॥

"दुरिगे मलिंद, तापै चंद आय सोइगो।"

गौर तन रंग भस्म, लोचन सुरंग तीन,
जटा पै जु गंग सोहै, भाल इंदु मोइगो ;

कहै 'रससिंधु' रुद्र उमा संग राजत है,
पन्नग के भूषण औ' रुंडमाल पोइगो।
बाँधे कटि बाघंबर, डमरू-त्रिशूल हाथ,
नंदीगण बैठे, शिव ध्यान में अमोइगो,
फूल्यो अरविंदु वामें लपट्यो फनिंद सब,
'दुरिगे मलिंद, तापै चंद आय सोइगो'॥

"जंबुक जाय अकास मे रोयो।"

पांडव के दल एक महा गज सल्य के बानतें प्रान है सोयो,
तासु के कान को खैंचि के खात ही स्यार मुदांत के संधि समोयो,
भीम ने ताहि घुमाय के फेंक्यो न दीख परयो वह नेक सो गोयो,
वायु के मंडल मे मंडराय के 'जंबुक जाय अकास मे रोयो'॥

"हिय फाटि गयो, पै दरार न आई।"

ऐसे नरेश रहे अवधेश सुरेशहूँ की जिन कीन्हि सहाई,
और महत्त्व कहाँ लों कहौं करुणानिधि से सुत गोद खिलाई,
ते मतिमंद घली तिरिया रघुनंदन को बन पेलि पठाई,
राम सो बेटा बिछोहत ही 'हिय फाटि गयो, पै दरार न आई'॥

इसी प्रकार और अनेक भाँति की समस्याओं की पूर्तियाँ कवि लोग अपने इष्ट-बल एवं अभिधा-शक्ति द्वारा करके समस्यादाता पाठक और श्रोताओं को मुग्धकर देते हैं।

समस्यापूर्ति की पद्धति के पश्चात् 'भानुजी' के समस्या पूर्ति के भेद दिए जाते हैं। 'भानुजी' का कथन है कि जितनी समस्या-पूर्ति देखने में आती हैं, प्रधानतः उनके नौ भेद ही हो सकते हैं, यथा—(१) मंडन, (२) खंडन, (३) सज्ञादलेष, (४) प्रमाण, (५) महोक्ति, (६) असंभव संभव, (७) विस्तीर्ण, (८) संकीर्ण और (९) संकर।

अब क्रम से एक एक का स्पष्टीकरण किया जाता है—

१—मंडन

ल०—जहाँ समस्या अर्थ को पूर्ण समर्थन होय,
तहाँ समस्या पूर्ति को मंडन कह सब कोय।

भा०—समस्या के अर्थ को समर्थन कर देना मंडन है।

यथा—

समस्या—"राधा हरौ भव वाधा हमारी।"

जाकी प्रभा अवलोकति ही तिहुँ लोक की सुंदरता गहिवारी,
कृष्ण कहैं सरसीरुह लोचन नाम महामुद मंगलकारी ;
जातन की झलकें झलकें हरि ता द्युति श्यामल होति निहारी,
श्रीवृषभानुकुमारि कृपाकर 'राधा हरो भव-वाधा हमारी' ॥

पुनः—"वंसी वारे साँवरे पियारे इत आउ रे"

मुकुट की चटक लटक विवि कुंडल की,
भौंह की मटक नेकु आँखिन दिखाउ रे ;
ये हो वनवारी वलिहारी जाऊँ तेरी मेरी,
गैल किनि आइ ? मेरी गाइनि चराउ रे।
आदिल सुजान रूप गुण के निधान कान्ह,
वाँसुरी वजाइ तन तपनि बुझाउ रे ;
नंद के किशोर चितचोर मोर पंखवारे,
'वंसी वारे साँवरे पियारे इति आउ रे' ॥

२—खंडन

ल०—वर्ण योग वा खंड कर, कै कछु और मिलाय ;
कै निषेध मिथ्यत्व में, खंडन कहिय बनाय।

भा०—समस्या के अर्थ को समस्या का खंड करके अथवा उसके पूर्व मे कोई वर्ण या शब्द योजित करके वदल देना अथवा उसका मिथ्यत्व वतलाकर निषेध कर देना आदि खंडन है। अंतर्लापिका अथवा वहिर्लापिका में ऐसी पूर्तियाँ हो सकती हैं।

यथा—

समस्या—"करके उठाय वाल, धाय माय लेवे ज्यों"

(प्रथम) खंड करके।

पूर्ति—वड़ों को विहंग ध्यानी ? सफरी सदन कौन ?
फरे फल मधु कैसे ? गति कौन देवे ज्यों।

मथ्यो दधि होत कहा ? खारी मीठी चीन्हे कैसे ?
हरै कौन रोग ? काके भय जीव भेवे ज्यों।
रानी हरि की है कौन ? तीरन कटाक्ष काके ?
मारयो कृष्ण काको ? पानी कातें तरु सेवे ज्यों।
काक कैसे नर को ? भूसुर की क्षमा कैसो ?
'करके उठाय बाल धाय माय लेवे ज्यों' ॥

धान्य—प्रत्येक प्रश्नवाचक पद के प्रथमाक्षर के साथ क्रमश समस्या के एक एक वर्ण का संयोजन करने से उत्तर निकलता है। अंतिम प्रश्न का उत्तर समस्या से मिलता है।

(द्वितीय) वर्ण प्रयोग से—

समस्या—"गुनी को"

पूर्ति— गोरी के हथेरी शिव कवि मेहदी को बिंदु,
इंदु तीको गन जाके आगे लगे फीको है,
अँगूठा अनूप छाप मानो शशि आयो आप,
कर कंज के मिलाय पात तजि ही को है।
आगे और आंगुरी अँगूठी नीलमनि जुत,
बैठो ममो चाप भरो चेटुआ अली को है,
दबि के छलासो कोमलाई सो ललाई दौरि,
सीतल चुनी को रँग छोर 'छिगुनी को है'।

इसी प्रकार समस्या का मिथ्यत्व प्रकाश करके पूर्ति करना भी सहज है।
यथा—

समस्या—"बीस रवि, दस ससि संग ही उदै भए"

पूर्ति— झूठी बात जैसी तैसो झूठो है उदाहरण,
बाघ-बकरी के ब्याह माँहि हमहूँ गए,
बंध्य को तनय मूक रागतान गान करे,
सारदूल के समूह एक ससाने हये।
कोमल कमठ पीठि बडे-बडे बार जामे,
पूरति समस्या याहू तावे संग मे दये,

साँची में अनर्थ यह व्यर्थ कैसे कह्यो जाय,
'बीस रवि, दस ससि संग ही उदै भए'।

३—संज्ञाश्लेष

ल०—'संज्ञाश्लेषहिं वाक्य में, श्लेष अर्थ निरधारि ;
पशु, पक्षी, फल आदि के धरिये नाम विचारि।

भा०—पूर्ति में श्लेष की रीति से अथवा साधारण रीति से पशु, पक्षी, वृक्ष, भूषण, नगर और अंक आदि की स्थापना करना संज्ञाश्लेष है।

यथा—

समस्या—"मान मत राखे तू"

पूर्ति—पियासों न रंगी तू तो बड़ी है अनार सखी,
पूरी कैसे परै दही बराबरी भाखे तू ;
कहैं रससिंधु फेर पायके अकेली तोहिं,
किसमिस समझाऊँ प्रेम-रस चाखे तू।
बोले आ मिलाऊँ बीर चलि ह्याँ इकांत बड़ा,
जीय मीठी-सी जलेबी जोइ अभिलाखे तू ;
घेवर सों प्रीति कर चंद्रकला कैसो मुख,
आज तू दिखाय प्यारी 'मान मत राखे तू'॥

पुनः—"आँखिन के थायन को आँखि ही यतन है"
काहे को कपूर चूर सानत है चंदन में,
काहे को गुलाबन को कीजतु मतन है;
लोग कछु औरै ठठें यहाँ कछु औरै रोग,
जोग कहा करैं मोहि जारत अतन है।
वे ही वर बरुनी सुई औ' लाल डोरे पोए,
उनही के टाँकन सों दुःख को हतन है;
छाँड़ि दे चवाइन को दूर कै उपाइन को,
'आँखिन के थायन को आँखि ही यतन है'॥

ध्यातव्य—उक्त पूर्ति साधारण भेद में से है। इसी प्रकार और अनेक प्रकार से ऐसे-ऐसे शब्दों द्वारा पूर्तियाँ होती हैं, जो 'संज्ञाश्लेष' के अंतर्गत ही जानना चाहिए।

४—प्रमाण—

ल०—सो 'प्रमाण' जामे श्रुती, अरु लोकोक्ति प्रमान,
उत्प्रेक्षा दृष्टांत सो, पूर्ति करे मतिमान।

भा०—शास्त्रादि के प्रमाण द्वारा समस्या का समर्थन करना 'प्रमाण' है। दृष्टांत, लोकोक्ति और उत्प्रेक्षा आदि युक्त पूर्तियाँ भी इसी के अंतर्गत समझना चाहिए।

यथा—

समस्या—"करारे कांकरन तें"

पूर्ति— (शास्त्र से)

तारे के कतारे भाँति पाप-पाँति एक तारे,
कौन तारे, कौन हू उतारे इन तन में,
वारे सुरसरि ही पवारे निज वारे जानि,
और को उबारे धारे-प्यारे तन-मन तें।
खारे-खारे जलतें पखारे तें दुखारे गात,
नित ही तिखारे माथ सारे जनगन तें,
फेंकि हों रे पाप तोहिं दरिके दरारि माँहिं,
गंगा के करारे के 'करारे कांकरन तें'॥

पुन—(दृष्टांत से) "स्वाद मिले न सँजोग को"

तौलौं नीकी देह को न गुन बूझि परत है,
जौलौं न संजोग होत आय कोऊ रोग को,
जौलौं कोऊ समै पाय घेरे न विपति आय,
तौलौं ध्यान आवत न कीन्हे सुख-भोग को।
जौलौं न मिलत मंत्र औसर को रघुनाथ,
तौलौं न मिलत अंत भले-बुरे लोग को,
जौलौं न वियोग होत कहत हैं ज्ञानी सब,
सुनि राखो तौलौं 'स्वाद मिलै न सँजोग को'॥

पुन—(लोकोक्ति से) 'मूँदि गई आँखें तब लाखें किहि काम की'
भूषण वसन बीस, रतन अनेक जाति,
घोड़, पील, पालकी अनूप छबि धाम की,

कहा नरनाह, कहा भए बादशाह, कहा
शाहन के शाह जौन देहै परिनाम की।
बेनी कवि कहे खाल फाल में बितावै दिन,
पालै खल खालै कै पखालै जस चाम की;
मन ही की मन रहि जाती अभिलाखैं जब,
'मूँदि गईं आँखैं, तब लाखैं किहि काम की'।

पुनः (उत्प्रेक्षा से) 'टारित है'—

सब रैन जगी हरि के सँग राधिका बासर बास उतारति है,
अति आलसवन्त जम्हाति तिया, अँगराति भुजान पसारति है;
सरकी अँगिया, जुहरे रँग की सु 'लतीफ' महाकवि पारति है,
मनु हैं जो पुरैन के पातन में उरझै चकवा तिन्हें 'टारति है'।

पुनः (अन्य प्रकार से प्रमाण) 'गाल गुलालहिं'—

लालहिं घेरि रहीं ललना, मनो हेमलता लपटानी तमालहिं,
मालहिं टूटन जात, न जानत, लूटत है रस रास रसालहिं;
सालहिं सौतिन के उर में चलि री, उठि बेगि दै ताल उतालहिं,
तालहिं देत उठी ततकाल लगाय गुपाल के 'गाल गुलालहिं'।

५—सहोक्ति

ल०—वक्र आदि जे उक्ति है अरु उपमा समुदाय,
सो 'सहोक्ति' की पूर्ति है, पै लोकोक्ति विहाय।

भा०—वक्रोक्ति, अन्योक्ति, अतिशयोक्ति अथवा उपमादि द्वारा समस्यार्थ को पुष्ट कर पूर्ति करना।

यथा—(वक्रोक्ति से) "मिलि हौ हरि ऐसे"

पूर्ति—राति कहूँ वहु कै रति-रंग, चले उठि कै घर को हरि जैसे,
औचक आनि गली में मिली वृषभानु लली जु अली सुनि तैसे;
हेरि रहे नख ते सिख लौं करि गोकुल लोयन लोल अनैसे,
फूल की मालन सों गई मारि कह्यो फिरिकै 'मिलि हौ हरि ऐसे'॥

ध्यातव्य—इसी प्रकार अन्य उक्तियों की पूर्ति समझिए।

पुन—(उपमा से) 'कमान-सी भौंहैं''

पंकज-सी छटा पायन की, जुग जंघ वे कदली-खंभ-सी सोहै,
तार मुरार सी त्यों कटि है त्रिवली तटिनी की तरंग-सी जो है,
शृंग सुमेर-से दोऊ उरोज, लखे लछिराम सदा मन मोहैं,
श्रीमुख बीजुरी-सी मुसकान है, बान-से नैन, 'कमान-सी भौंहैं' ।

ध्यातव्य—प्रतीप और रूपक आदि विषयक पूर्तियाँ भी महोक्ति के अन्तर्गत जाना ।

६—असम्भव सम्भवी

ल०—यदपि असम्भव है, तऊ सम्भव कर दिखराय,
ताहि 'असम्भव सम्भवी' पूर्ति कहहिं हरपाय ।

भा०—कितने ही लोग कवि की परीक्षा लेने के हेतु कभी-कभी असम्भव समस्या देकर पूर्ति चाहते हैं । ऐसी असम्भव समस्या को भी कवि लोग अपनी अनुपम कल्पना द्वारा पूर्ण कर देते हैं । यथा—

समस्या—''आधी राधा गोरी हैं, जु आधे कृष्ण श्याम हैं''

पूर्ति— भूषण है आधे अंग काछनी धराई फेर,
आधे अंग चोला औ' भूषन अभिराम है,
आधे सीस मुकुट सु आधे अंग पटका है,
कुंजन में ठाढ़े दोऊ नीकी जहाँ ठाम है ।
कहैं 'रससिंधु' प्यारी सारी को पहिर आधी,
लहँगा है आधे अंग चोली कसे बाम है,
आधोइ सिंगार कियो अद्भुत रूप धर्‌यो,
'आधी राधा गोरी हैं, जु आधे कृष्ण श्याम हैं' ॥

पुन—''बाल के हाथ में सींग ससा को''

शस्त्र रचे हरिनान के सींग के,
चौन्ह कियो तिनमें बहुधा को,
काहू के हाथ दियो है कवा लिखो,
काहू के हाथ दियो है तता को ।
और को और न लेतिहितै रच्यो
वर्ण ववा को गगा को ससा को,

दत्त तहाँ ही सिपाहिन में लख्यो,
'बाल के हाथ में सींग ससा को' ।।

पुनर्यथा— काव्य पढ़ो, कविताहु करो कछु,
भेद गनागन को करो याको;
प्रश्न - प्रहेलिका आदतें जानहु,
रंजन हूबहू नीके सभा को ।
शिष्यहि सिच्छा करे गुरु या विधि,
मूरख नाम हँसावे पिता को;
कैहो कहा, कोऊ दैहै समस्या जु,
'बाल के हाथ में सींग ससा को' ।।

(७) विस्तीर्ण

ल०—आशय अति संक्षिप्त, पै पूर्ति - सहित विस्तार;
करहिं समस्या-पूर्ति जो, सो 'विस्तीर्ण' उदार ।

भा०—छोटी बात का विस्तार में कथन कर पूर्ति करना 'विस्तीर्ण' है।

यथा—

समस्या—"मलीन तेरो मान री"

पूर्ति—चकई बिछुरि मिली, तू न मिली प्रीतम सो,
गंग कवि कहे, ये तो कियो मान ठान री;
अथए नक्षत्र-शशि, अथई न तेरी रिस,
तू न परसन, परसन भयो भान री ।
तू न खोलो मुख, खोलो कंज औ' गुलाब मुख,
चली सीरी वाय, तू न चली भो बिहान री;
रति सत्र घटी नाहीं, करनी ना घटी तेरी,
दीपक मलीन, ना 'मलीन तेरो मान री' ।।

पुन:— "नव बाला किधौं कासी है"

वाणी अन्नपूरणा, उरोज शंभु शोभित है,
जामें गंध धारा प्रीति बहु सुखरासी है;
नाभी मणिकर्णिका, सुमान कालभैरो जहँ,
बिंदुमाधो जोबन, अनूप छवि खासी है ।

नैन मुख नासिका श्रवण देव मंदिर ये,
हाव भाव चातुरी जु तीरथ निवासी है
ताप अघ दूर होत गमन किये ते वेगि,
रसिक बिहारी नव बाला किधौ कासी है ॥

घ नव्य—इस भेद के अन्तर्गत अनेक प्रकार की पूर्तियाँ हो सकती हैं जिन्हें चतुर पाठक स्वयं ही समझ लेंगे।

(८) संकीर्ण

ल०—आशय ता विस्तीर्ण अति पै संक्षिप्त बखान,
इहि विधि होवहि पूर्ति जा सो संकीर्ण प्रमान।

भा०—विस्तृत अर्थवाली समस्या का थोड़े में कथन करना संकीर्ण है।

यथा—

समस्या— एकै रूप घट घट छायो है'

पूर्ति—नीर भर धरिए अनेक घर आनि जैसे
सूरज अकाश सब एक में सुहायो है,
सीसे के सदन बीच एक ही को प्रतिबिंब,
जहाँ-तहाँ देखिए अनेक ह्वै दिखायो है।
माना परिमान कहें भ्रमत अयान फिरे
एही बात एही विधि बदन बतायो है,
चारिविधि जीवजंतु जगत विचारि देखो
रसरूप एकै रूप घट घट छायो है ॥

पुन — प्रेम लगावनो है

सतसंगति को करिकै मनते दुरबुद्धि को भाव भगावनो है
गुरु जे उपदेश किए तिनको कहूँ बैठि इकंत जगावनो है
हनुमान जितै कहैं बन तित छन छंदन को नहिं गावनो है
विषयादिक सो रति हौं न चहौं रघुबीर में प्रेम लगावनो है ॥

(९) संकर

ल०—एक भेद पै अधिक को होवै जहाँ सँयोग
संकर ताको जानिए भानु समस्या योग।

भा०—जब कोई पूर्ति उल्लिखित प्रकार के दो अथवा अधिक आशयों को प्रकट करनेवाली हो, अथवा कोई भी एक आशय के साथ अन्य आशय सम्मिलित हो, ऐसी मिश्रित पूर्तिवाली समस्या को 'संकर' कहेगे। यथा—

समस्या—"कैसे तुम अधम उधारन कहावते ?"

पूर्ति—जोग जप संध्या साधु साधन सवेई सजे,
कीन्हे अपराध जे अगाध मन भावते;
तेते तजि औगुन अनंत पदमाकर तो,
कौन गुन लैकै महाराजहिं रिझावते।
जैसे अब तैसे पै तिहारे बड़े काम के हैं,
नाहीं तो न एते बैन कबहू सुनावते;
पावते न मोसो जो पै अधम कहूँ तो राम,
'कैसे तुम अधम उधारन कहावते' ॥

सूचना—उक्त पूर्ति में उक्ति (व्याज) और संकीर्ण की संसृष्टि है, अतः संकर भेद है।[1]

'भानु' जी का यह वर्गीकरण एक स्तुत्य प्रयास है। इसके पूर्व 'समस्या-पूर्ति' का किसी प्रकार का भी विश्लेषण नहीं किया गया। 'भानु'जी ने ही प्रथमतः इस विषय पर अपनी दृष्टि डाली और समस्यापूर्ति का वर्गीकरण करने का यत्न किया। इस क्षेत्र में 'भानु'जी का वर्गीकरण अनन्य ही है। और अनन्य होने के कारण इसमें गुण और दोष दोनो का होना स्वाभाविक ही है। तथापि यह स्पष्ट है कि 'भानु'जी ने बड़ी सूक्ष्म दृष्टि से समस्यापूर्ति के भेदों को प्रकट करने का प्रयत्न किया है और इनके भेदों के द्वारा इसके वैज्ञानिक वर्गीकरण के लिये एक दृष्टि प्राप्त होती है। 'भानु'जी ने केवल समस्यापूर्ति का ही वर्गीकरण नहीं किया, प्रत्युत समस्यापूर्ति की पद्धति पर भी प्रकाश डाला है। इन सभी दृष्टियों से 'भानु'जी का इस क्षेत्र में एक महत्त्व-पूर्ण स्थान है। यहाँ पर 'भानु'-जी के वर्गीकरण का विश्लेषण कर लेना आवश्यक है, ताकि जो दोष एवं अवैज्ञानिक तत्त्व वर्गीकरण में आ गए है, उन्हें दूर करने का प्रयत्न हो सके।

'भानु'जी ने समस्यापूर्ति-पद्धति पर जो प्रकाश डाला है, उस पर अधिक

१—देखिए काव्य प्रभाकर, ११ मयूख, (पृष्ठ ७३५-७३६ तक)
—जगन्नाथप्रसाद 'भानु'

कहने की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती। इष्टदेव का प्रणाम आदि से पूर्ति करने की जो बात कही गई है वह सम्भवत आज के बौद्धिक दृष्टिकोण के भले ही अनुकूल न पड़े लेकिन यह तथ्य भी भुलाया नहीं जा सकता कि व्यक्ति की निष्ठा उसकी सफलता में बहुत कुछ सहायक होती है। भानु जी ने समस्यापूर्ति के नौ भेद किए हैं—(१) खंडन (२) मंडन (३) सज्ञाश्लेष (४) प्रमाण (५) सहोक्ति, (६) असम्भव सम्भवी (७) विलीन (८) संकीर्ण तथा (९) संकर। इन भेदों के अतिरिक्त विभिन्न भावों एवं विभिन्न रसों के आधार पर भी समस्यापूर्ति के विभिन्न भेद किए जा सकते हैं। इसके अतिरिक्त अलंकारोक्ति के आधार पर भी अनेक भेद सम्भव हो सकते हैं।

भानु जी के प्रमाण' और सहोक्ति भेद में अधिक अस्पष्टता है। प्रमाण के संबंध में भानु जी का कथन है— 'शास्त्रादि के प्रमाण द्वारा समस्या का समर्थन करना प्रमाण है। दृष्टांत लोकोक्ति और उत्प्रेक्षा आदि युक्त पूर्तियाँ इसी के अंतर्गत समझना चाहिए। और सहोक्ति के विषय में उनका मत है— वक्रोक्ति अर्थात् अतिशयोक्ति अथवा उपमादि द्वारा समस्यार्थ को पुष्ट कर पूर्ति करना। यही नहीं वरन् प्रतीप और रूपक आदि विषयक पूर्तियाँ भी 'सहोक्ति' के अंतर्गत जानो। इन दोनों परिभाषाओं में अधिक अंतर नहीं प्रतीत होता। उत्प्रेक्षा आदि—युक्त पूर्तियाँ प्रमाण में आ सकती हैं यदि उनके द्वारा समस्या का समर्थन किया गया हो। उपमा आदि से युक्त पूर्तियाँ सहोक्ति के अंतर्गत आती हैं किंतु उसमें समस्यार्थ का समर्थन किया जाना आवश्यक है। उत्प्रेक्षा आदि में उपमा भी आ सकती है और उपमा आदि में उत्प्रेक्षा समाहित हो जाती है अतएव दोनों में कोई भेद नहीं है। सहोक्ति को हम प्रमाण और प्रमाण' को सहोक्ति कह सकते हैं। यह उद्धृत उदाहरणों से भी स्पष्ट है। अतएव इन दोनों भेदों के स्थान पर ऐसा भेद अपेक्षित है जिसमें इस प्रकार की अस्पष्टता न हो। इसे हम अलंकारोक्ति भेद कह सकते हैं। इसमें किसी भी समस्या अथवा समस्यार्थ का समर्थन अलंकृत पूर्ति द्वारा किया जा सकता है इसलिये समस्यापूर्ति के इस भेद का नाम अलंकारोक्ति रखना युक्ति-युक्त प्रतीत होता है।

सज्ञाश्लेष' को वस्तु निर्देशात्मक नाम दिया जाना अधिक उपयुक्त होगा। जिस पूर्ति में समस्यागत किसी वस्तु का पूर्णतया निर्देश किया गया हो उसे वस्तु निर्देशात्मक' कहना ही उचित है। इसमें श्लेष आ भी सकता है और नहीं भी। असम्भव-सम्भवी विलीन संकीर्ण एवं संकर को हम इसी रूप में स्वीकार कर सकते हैं। मण्डन के दो और भेद हो सकते हैं—

१—भंग-पदात्मक

२—अभंग-पदात्मक

जिस समस्यापूर्ति में समस्या के पदों को भंग करके समस्यागत भावार्थ का खडन किया गया हो, उसे हम 'भंग-पदात्मक' पूर्ति कह सकते है। जिस पूर्ति में समस्या के पद का खंडन न करके ज्यों-का-त्यों रख दिया गया हो और वह समस्यागत अर्थ का खंडन करता हो, उसे हम 'अभंग-पदात्मक' पूर्ति कह सकते है।

खंडन भेद का एक उदाहरण देखिए—

है छिति छाँह छपाकर पै किधौं,
नीलम हार गरे पहिरे रहै;
अंक लगो विष बंधु को या हिय
में मृगसार को पंक धरे रहै।
या नभ वेलि के फूल के वीच,
मरंद के लोभी ये भृंग भरे रहैं;
रीति कलंक की चंद्र में नाहीं,
ये प्रीति के अंक हिये उभरे रहैं॥[1]

—डॉ० भगीरथ मिश्र

प्रस्तुत छंद में 'भरे रहैं' समस्या के भावार्थ का 'भरे' में 'उ' और जोड़कर 'उभरे रहैं' बनाकर खंडन किया गया है। 'भानु'जी के मंडन भेद को भी हम इसी रूप में ग्रहण कर सकते हैं। इन भेदों के अतिरिक्त एक भेद हम और कर सकते है—'प्रश्नोत्तर परक'। जिस पूर्ति में प्रश्न और उत्तर साथ-साथ दिए गए हों, उसे हम 'प्रश्नोत्तर-परक कहना अधिक समीचीन समझते हैं। इस प्रकार समस्यापूर्ति के निम्न-लिखित भेद हो सकते है—

१—मंडन (साम्यमूलक)

२—खंडन (विरोधमूलक)

३—वस्तु निर्देशात्मक

४—अलंकारोक्ति

५—असंभव-संभवी

६—विस्तीर्ण

७—संकीर्ण

१—'भरे रहैं' समस्या की २७ अक्टूबर, १९५९ को शरद् गोष्ठी में श्रीयुत 'सनेही'जी के सभापतित्व में पढ़ी गई पूर्ति।

८—सवैर

९—प्रश्नोत्तर परक

समस्या एवं समस्यापूर्ति के भेदोपभेद के इस विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि समस्यापूर्ति काव्य अत्यन्त कला-कौशल युक्त काव्य है।

समस्यापूर्ति काव्य उपर्युक्त तथ्यों को अपनाकर विकसित हो सकता है युगानुकूल उसका महत्व और उत्कर्ष भी बढ़ सकता है और इसके द्वारा सुललित रचनाओं से साहित्य का भण्डार भरा जा सकता है।

समस्या का वर्गीकरण

* अलंकृति के आधार पर किए गए उपर्युक्त भेदों के अतिरिक्त विभिन्न अलंकारों के अनुसार समस्या के अन्य अनेक भेद भी हो सकते हैं ।
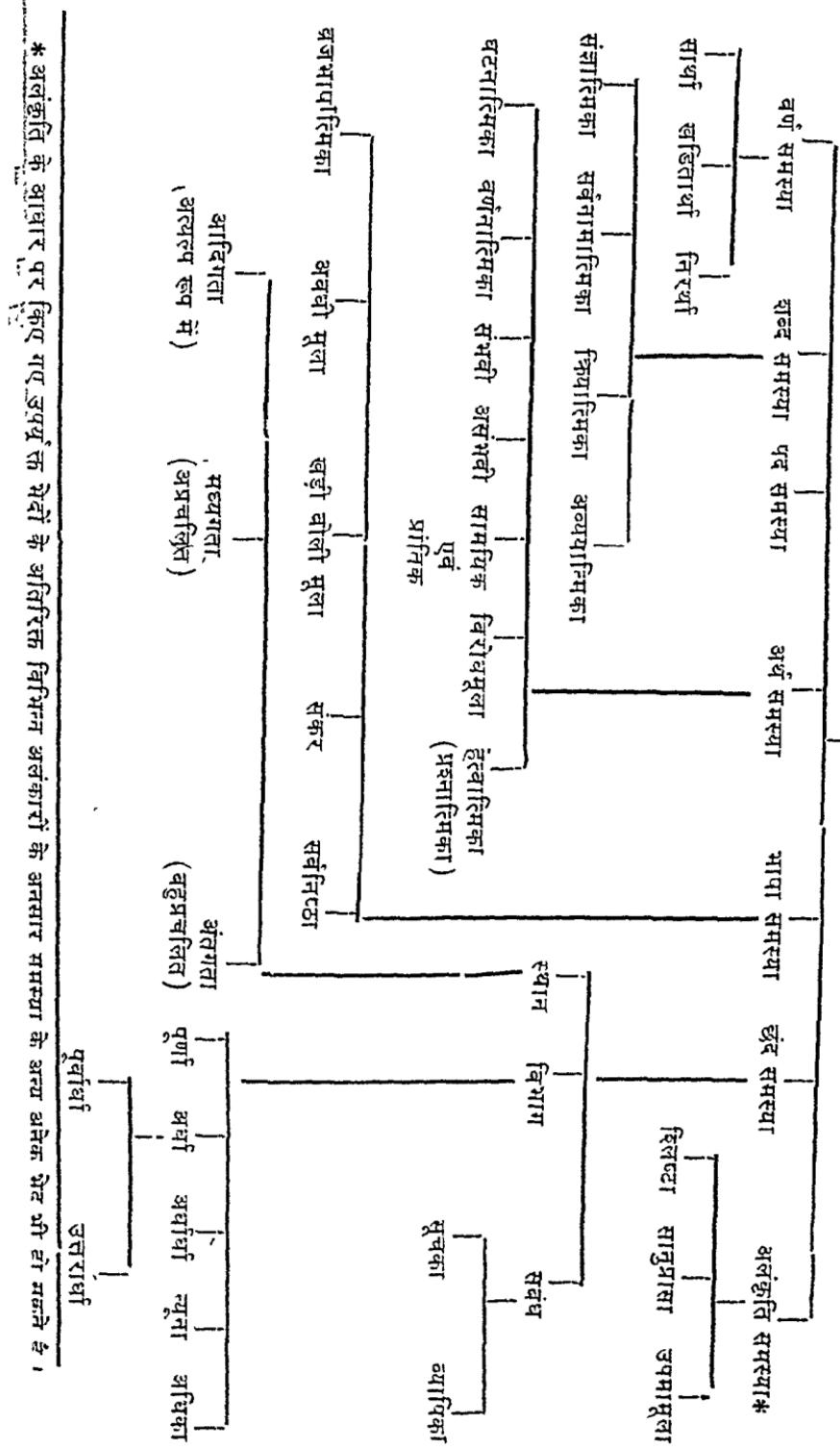
६

अध्याय

समस्यापूर्ति-काव्य का कलापक्ष

भाषा

भाषा भावाभिव्यंजन का प्रमुख साधन है। उत्कृष्ट काव्य का प्रधान लक्ष्य भावाभिव्यक्ति है। इस दृष्टि से भाषा काव्य-कला का एक अभिन्न अंग है। भाषा देश एवं काल से प्रभावित रहती है। भिन्न-भिन्न स्थानों की प्रचलित बोली की छाप साहित्यिक भाषा (काव्य-भाषा) पर पड़ती रहती है। समस्यापूर्ति-काव्य में यह विशिष्टता सर्वत्र पाई जाती है। इसका कारण यही कहा जा सकता है कि समस्यापूर्तिकार कवि एक स्थान-विशेष के न होकर विभिन्न प्रांतों के होते थे। यद्यपि वे काव्य-प्रचलित भाषा में पूर्तियाँ करते थे, तथापि उनकी प्रांतीय बोली के शब्दों का भी सम्मिश्रण हो जाना स्वाभाविक था।

समस्यापूर्ति-काव्य मुख्यतया ब्रजभाषा में मिलता है, यद्यपि इसके लिये कोई नियम नहीं था कि ब्रजभाषा के अतिरिक्त और किसी भाषा में समस्यापूर्ति नहीं हो सकती है। यही कारण है कि कालांतर में कवियों ने खड़ी बोली में भी समस्यापूर्तियाँ की। अवधी में समस्यापूर्ति बहुत ही कम हुई है। अवधी के शब्द, क्रियापद आदि ब्रजभाषा की पूर्तियों में जहाँ-तहाँ देखने को मिल जाते हैं, परंतु शुद्ध भाषा-प्रयोग की दृष्टि से अवधी का प्रयोग एक प्रकार से नहीं ही हुआ है। यहाँ पर भाषा-प्रयोग की इस विषमता पर कुछ प्रकाश डाल देना समीचीन होगा।

समस्यापूर्ति-काव्य को जो भाषा विरासत मे मिली थी, वह ब्रजभाषा थी। यह अत्यंत समृद्ध थी। "सूर ने उसकी निखिल शक्तियों का विकास कर उसको अत्यंत व्यापक बना दिया था। हितहरिवंश और नंददास ने उसकी पद-योजना को संस्कृत की शब्द-मणियो से सजाया था, बिहारी ने उसके समास-गुण को पूर्ण विकास पर पहुँचाया था और मतिराम ने उसको सर्वथा स्वच्छ और परिष्कृत रूप दिया था।"[१] देव, घनानंद एवं पद्माकर ने जिसकी श्रीवृद्धि की थी, ऐसी भाषा को पाकर किसे अभिमान न होगा? अवधी को गोस्वामी तुलसीदासजी ने अपना-

---

१—देखिए देव और उनकी कविता—डॉ० नगेंद्र (पृष्ठ २-४)

कर उसे जो उत्कृष्टता प्रदान की थी एवं जो उच्च स्तर दिया था, वैसा अवधी का कोई भी परवर्ती कवि न कर सका। एक प्रकार से गोस्वामीजी के पश्चात् अवधी की परंपरा मंद पड़ गई। अतएव समस्यापूर्ति के लिए अवधी के उत्तराधिकार का प्रश्न ही नहीं उठता। दूसरे, समस्यापूर्ति काव्य अधिकतर सवैया एवं कवित्त छंदों में ही निर्मित हुआ है जो अवधी की प्रकृति के प्रतिकूल एवं ब्रजभाषा के अनुकूल है। अवधी के प्रिय छंद बरवै, दोहा और चौपाई हैं, जिनमें समस्यापूर्ति बहुत कम हुई है।

जिस समय समस्यापूर्ति का पूर्ण विकास हो रहा था, खड़ी बोली उस समय गद्य में ही प्रयुक्त होती थी। पद्य की भाषा ब्रजभाषा ही थी। भारतेंदु हरिश्चंद्र गद्य में खड़ी बोली का प्रयोग करते थे परन्तु कविता के लिये ब्रजभाषा को ही उपयुक्त मानते थे। द्विवेदी काल में खड़ी बोली द्विवेदीजी के प्रश्रय से ब्रजभाषा से प्रतिद्वंद्विता करने लगी। अंत में इस संघर्ष में खड़ी बोली को सफलता मिली और वह काव्य की भाषा हो गई। खड़ी बोली के काव्य भाषा हो जाने पर भी कवियों ने समस्यापूर्ति ब्रजभाषा में ही करना उचित समझा। ये कविगण द्विवेदी मंडल से अलग रहकर ब्रजमाधुरी की उपासना करते रहे।

प्रश्न हो सकता है कि समस्यापूर्तिकार कवि ब्रजभाषा को इस तन्मयता से क्यों अपनाए रहे? शब्द माधुर्य भाषा का एक विशेष गुण है। जिस भाषा में मधुर शब्दों की जितनी प्रचुरता होगी वह उतनी ही उत्कृष्ट समझी जायगी। अच्छे भाव किसी भाषा में अच्छे ही लगेंगे पर यदि वे मधुर भाषा में हों, तो और भी हृदयग्राही हो जायेंगे। ब्रजभाषा ऐसी ही श्रुति माधुर्य पूर्ण भाषा है जिसके लिये 'साँकरी गली में माय काँकरी गड़तु है' वाली उक्ति प्रसिद्ध है। आधुनिक काल में ब्रजभाषा में कविता होते न देखकर डॉक्टर ग्रियर्सन हिंदी में कविता का होना ही नहीं मानते थे। संस्कृत के प्रकांड पंडित श्रीसुधाकर द्विवेदी एवं पंडित अंबिकादत्तजी व्यास-ऐसे विद्वान कवियों को ब्रजभाषा में कविता करने में जो आनंद मिलता था वह संस्कृत में भी नहीं, यह कहा है। मातृभाषा के प्रेमी, बँगला-साहित्य के मुकुटमणि श्रीरवींद्रनाथ ठाकुर ने इस बीसवीं शताब्दी तक में ब्रजभाषा में कविता करना अनुचित नहीं माना और उन्होंने स्वयं भी 'भानुसिंहेरपदावली' के नाम से अनेक पद शुद्ध ब्रजभाषा में कहे। खड़ी बोली के आचार्य पं० श्रीधर पाठक ब्रजभाषा के विषय में लिखते हैं—

ब्रजभाषा-सरीखी रसीली वाणी को कविता-क्षेत्र से बहिष्कृत करने का विचार केवल उन हृदय हीन अरसिकों के हृदय में उठना संभव है जो उस भाषा के स्वरूप ज्ञान से शून्य और उसकी सुधा के आस्वादन से बिल्कुल वंचित हैं। क्या उसकी प्रकृत माधुरी और सहज मनोहरता नष्ट हो गई है? [1]

१—देखिए साहित्य-सुषमा सं० श्रीनंददुलारे वाजपेयी एवं लक्ष्मीनारायण मिश्र (पृष्ठ ६६), पं० कृष्णबिहारी मिश्र का 'शब्द माधुरी' लेख।

समस्यापूर्ति-कविता के लिये यह आवश्यक है कि वह श्रुति-मधुर हो, एवं उसकी भाषा चमचमाहट-युक्त हो, क्योंकि भाषा की चमचमाहट भाव को तुरंत हृदयंगम कराती है।[1]

समस्यापूर्तिकार कवियों ने व्रजभाषा के इन गुणों को भले प्रकार जान लिया था, और वे यह भी समझ गए थे कि हमारे समस्यापूर्ति-काव्य का यदि श्रोताओं पर कुछ प्रभाव पड़ सकता है, तो व्रजभाषा द्वारा ही। दूसरे, यह काव्य-धारा रीति-कालीन कविता के ही पद-चिह्नों पर चली थी। काव्य के वही आश्रय एवं आलंबन, वही अप्रस्तुत-विधान एवं छंद-योजना ज्यों-की-त्यों समस्यापूर्ति-काव्य में चली आई। अतएव व्रजभाषा का अपनाना समस्यापूर्तिकार-कवियों के लिये स्वाभाविक ही था।

समस्यापूर्ति-कविता मे व्रजभाषा का वह शुद्ध रूप, जो सूर एवं घनानंद आदि की कविता में मिलता है, उसके भी दर्शन रत्नाकर, नवनीत, द्विज वेनी, व्रजराज, पूर्ण, सनेही तथा द्विज वलदेव की कविता में हो जाते है। दूसरी ओर साधारण कवियों मे भाषा-शैथिल्य भी पाया जाता है। कविवर रत्नाकर तो आधुनिक काल में व्रजभाषा के आचार्य ही थे। उनकी पूर्तियों में भाषा की सजीवता और साकारता की शालीनता मिलती है। भाव-व्यंजना और मानसिक अनुभूति के साथ-ही-साथ कुशल कल्पना भी पाई जाती है। उनके शब्द-चयन में किसी प्रकार का शैथिल्य नही मिलता। इन कवियों में बहुत-से ऐसे कवि थे, जिन्होंने अपनी पूर्तियों मे मुहावरों का सुंदर प्रयोग किया है। कुछ कवि ऐसे भी थे, जिन्होंने समस्यागत अर्थ की अनुकूलता के लिये वैसे ही शब्दों का गुंफन किया है। बहुत-सी ऐसी पूर्तियाँ मिलती है, जिनमें अरवी और फ़ारसी के शब्दों का तत्सम रूप में प्रयोग हुआ है। कहीं-कहीं अँगरेज़ी के शब्दों को तोड़कर हिंदी की प्रकृति के अनुकूल लाने का यत्न किया गया है। कविवर नवनीत तथा रत्नाकर के एक छंद को देखिए, जिसमें इन कवियों ने नगाड़े के वोलों को शब्दों द्वारा ध्वनित करने का प्रयास किया है—

किड़ किड़ान धान धिति किट धिति धाँन धाँन,
तत्तड़ान तत्तड़ान करत पुकारे हैं;
कहैं नवनीत चोब चपल चमंकन की,
अर रर रर कड़ां कड़ां गरज हँकारे हैं।

१—देखिए साहित्य-सुषमा, (पृष्ठ ६६)

धू धूं किट धूं धूं क्टि धमक्त धाम-धाम,
धसकत प्रान बिरहीन के बिचारे हैं,
ग्रीसम गनीम जोकों दखल उठाय आज,
बाजत ये मदन महीप के नगारे हैं ॥[1]

उपर्युक्त छंद में किड़ किड़ान धान धिनि क्टि धिनि धान धान ततड़ान ततड़ान तथा धूं धू किट धूं धूं क्टि नगाड़े के बोल हैं, जिन्हें कवि ने छंद में ध्वनित किया है। इसी प्रकार का रत्नाकरजी का एक छंद देखिए—

आये चहुँ ओर सो घुमड़ घनघोर घेरि,
टक्करनि लेत ज्यों मतंग मतवारे हैं,
कहै 'रत्नाकर' धराधर अकास धरा,
एक मेक ह्वै कै धूम धार रंग वारे हैं।
कत्तड़ान कड़ा कड़ा घेडेन् घेड़न् घेन्नड़ान,
धधकड़ान धधकड़ान धधकड़ान धारे हैं,
मनसा महान विस्व विजय विधान आन,
बाजत ये मदन महीप के नगारे हैं ॥[2]

प्रस्तुत छंद में प्रयुक्त भाषा श्रुतिसंवेद्य नगाड़े का बिंब प्रस्तुत करती है। भाषा छंद में उद्दिष्ट वातावरण की सृष्टि करने में पूर्णतया समर्थ है। इस प्रकार के शब्दों की योजना में कवियों का उद्देश्य प्रमुखतः चमत्कार प्रदर्शन रहता था, यह तो मानना ही पड़ेगा। द्वित्व एवं 'ड' की प्रधानता के कारण ये शब्द कठोर हो गए हैं। इस कारण 'परुषा वृत्ति' का यहाँ पर प्रयोग हुआ है। कहीं-कहीं शब्दों को एक ही वजन पर रक्खा गया है—

कारी घुंघुरारी परी अलकैं कपोलन की,
प्यारी छवि प्यारे मुख मोरन मुरन की,
संकर सुकवि नंदरानी ढिंग आवन की,
हँसन हँसावन की दौरन दुरन की।
कटि लचकावन की भृकुटी नचावन की,
मृदु तुतरावन के सोरन सुरन की,

1—'काशी-कवि-समाज', समस्यापूर्ति, भाग १, १२वाँ अधिवेशन, (पृष्ठ १२१)
2— " " " " " " (पृष्ठ १२४)

नाचन नचन की जुलाजन लजन की,
सुबाजन बजन ये अनूप नूपुरन की ।।[1]

उपर्युक्त छंद में आवन के वजन पर हँसावन, लचकावन, नचावन एवं तुतरावन शब्द रक्खे गए हैं तथा नाचन नचन के वजन पर लाजन लजन एवं बाजन बजन शब्दों का प्रयोग हुआ है। एक ही वजन के शब्दों के प्रयोग से छंद में अधिक गति आ गई है तथा लोच बढ़ गया है। पद-लालित्य का एक सुंदर उदाहरण देखिए—

कबों हरसानो जात कबों सरसानों जात—
कबों तरसानो जात हियरो बिछोही सों ;
कबों आँसू धार जात कबों जिय हार जात,
कबहूँ बिचार जात चित्त अति कोही सों ।
अंबादत्त रीति जात सबही प्रतीत जात,
भीति जात नीति जात काम परै द्रोही सों ;
जादू जनु जागि जात सुधि बुधि भागि जात,
जब मन लागि जात काहू निरमोही सों ।।[2]

प्रस्तुत छंद में 'कबों हरसानों जात के वजन पर कबों सरसानों जात, कबों तरसानों जात' आदि तथा रीति जात के वजन पर प्रतीति जात, भीति जात, नीति जात पद रक्खे गए है। ये कला के सामंजस्य को स्थापित करते है। जिस तरह से स्थापत्य-कलाकार एक ही प्रकार की डिजाइनों की पुनरावृत्ति करके अपने निर्मित भवन में एक रचना-कौशल उपस्थित कर देता है, अथवा जिस प्रकार कोई चित्र-कार तूलिका द्वारा रंगों के समसचालन से एक विशिष्ट आकर्षण उत्पन्न करता है, उसी प्रकार प्रस्तुत छंद में एक ही वजन के पदों को अर्थ-चमत्कार के साथ बैठा-कर कवि एक सर्वांगीण प्रभाव डालने में समर्थ होता है।

संस्कृत के कुछ क्रियापदों का प्रयोग तत्समरूप में कहीं-कहीं किया गया है—

नवल निकुंज मंजु गुंजत मलिंद पुंज,
रंजित रतनि ज्योति भूमि भूपुरन की;
नृत्यति किशोर चितचोर मुखमोर मोर,
उपमा अबनै तनै चनै हू पुरन की।

१—काशी-कवि-समाज, समस्यापूर्ति—भाग १, ४था अधिवेशन, (पृष्ठ २७)
२— ,, ,, ,, ,, ६ठा ,, (पृष्ठ ५१)

कहूँ नवनीत पीत पट की चटक तैसी,
खटकी मटक दृग द्वार दू पुरन की,
गाजन गजब कल किंकिनी समाजन की,
वाजन बजन ये अनूप नूपुरन की ॥[१]

प्रस्तुत छंद म प्रयुक्त 'नृत्यति' क्रियापद शुद्ध संस्कृत का है। समस्यापूर्ति रूप म रची कविता मे मुहावरो का भी सुदर प्रयोग हुआ है। कुछ छद देखिए—

कहूँ वैजयन्ती है मुकुट कहूँ शख कहूँ,
काहे इक साथ रमानाथ घबराइ कै,
कहूँ सुधि कहूँ बुधि कहूँ मन कहूँ चित्त,
पूछि उठी रानी कर गहि अकुलाइ कै।
कौने काज होत हौ उतायल श्री प्राणनाथ,
हम सो कहत किन हाल समुझाय कै,
तारन तरन नाथ सुनी अनसुनी करि,
हाथा हाथी हाथी को उबार लीन्हो धाय कै ॥[२]

उपयु क्त छद में रेखाकित पद मुहावरे हैं, जिसके प्रयोग से भाषा मे चमत्कार बढ गया है। मुहावरे भाषा को चमत्कार-युक्त बनाने एव अर्थ को पुष्ट करते हैं। सुनी अनसुनी का तात्पर्य होना है ध्यान न देना तथा हाथा-हाथी का अर्थ है शीघ्रता मे। इसी प्रकार का एक और छद देखिए—

नव कुजन छांह घनी है छई, लगै मारुत शीतल गानन मे,
लपटी लतिका तरु जालन सो, अलि गूजत है जल जातन मे,
चहुँधा बँगला हैं मुकुद सजे, झरे नीर सो पातन पातन मे,
यहि ठाम अराम बटोही करो, है सुपास तुम्हे सब बातन मे ॥[३]

उपर्युक्त छद मे 'सब बातन मे' प्रयुक्त पद मुहावरा है, जिसका आशय है 'हर प्रकार से'। कुछ पूर्तिकारो ने अंगरेजी के शब्दों को तोडकर हिंदी की प्रकृति के अनुकूल बनाने की भी चेष्टा की है। सुशील कवि का निम्नांकित छद देखिए—

१—काशी कवि-समाज, समस्यापूर्ति, प्रथम भाग, ४था अधिवेशन, (पृष्ठ २६)
२—रसिक वाटिका, भाग १, क्यारी ११, २० फरवरी, १८९८ ई०
३—रसिक-वाटिका, भाग ३, क्यारी ४, २० जुलाई, १८९९ ई०—मुकुदलाल

व्यास मनु गौतम कनाद की कमीना अजों,
जिन्हैं धर्म देस हित वासना भरी रहै ;
धारैं कोपीन वे, ये धारैं पतलून कोट,
कथा के समान लागी लेक्चर झरी रहै ।
शास्त्र जन्मदाता वे हैं, ऐक्ट के विधाता यहू,
शोध्र-परिशोध होते घरि ही घरी रहै;
तीरथ सुशील जासु कंग्रस औ कंफरस,
फीते की जनेऊ चेन माला-सी परी रहै ॥[1]

उपर्युक्त छंद में रेखांकित 'कंग्रस' शब्द अँगरेजी के कांग्रेस शब्द का अपभ्रंश रूप है तथा 'कंफरस' अँगरेजी के कान्फ्रेंस शब्द का तोड़ा हुआ रूप है ।

एक सोरठा देखिए—

नियम पुराना छूट पाठक गुडमारनिंग करैं;
वालक करैं सिलूट, कौन करै अब बंदगी ।[2]

उपर्युक्त सोरठे में रेखांकित शब्द शुद्ध अँगरेजी के हैं । कुछ ऐसी पूतियाँ हुई हैं, जिनमें अरबी-फ़ारसी शब्दों का प्रयोग हुआ है ।

आपही पाक सफ़ात मुअज्ज़म ने मक़बूल किया फ़रज़ंदगी ;
दत्तद्विजेंद्र मकान में नंद के श्रीयशुदा को दिखा लबे ख़ंदगी ।
क्यों दिलदार रुजू नहीं होगा, हुई गर है दिल में नहीं गंदगी ;
नाफरमांवरदार वनो मत, लाज़िम है तुमको करो बंदगी ॥[3]

प्रीति को वसूल है उदूल कुलकानिही को,
कोटि कोटि भाँति कै कबूल सरमिंदगी ;
प्रेम को गँवाये फिरैं एक अलि येई,
येई एक अलि प्रेम में गँवाये फिरैं ज़िंदगी ।
होत ना दयाद्र चित्त हित की न जानै जऊ,
सहि सहि हारे तऊ गातन की गंदगी ;

१—काशी-कवि-समाज, समस्यापूर्ति प्रथम भाग १०वाँ अधिवेशन, १९५३ वि० ।
२—काव्य-सुधाधर (त्रैमासिक द्वितीय वर्ष) चतुर्थ प्रकाश, मार्च, अप्रैल, मई, १८९९ ई० (पृष्ठ १६)
३— „ „ „ „ „ (पृष्ठ २०)

फिरि फिरि आयो करे विनय सुनायो करे,
नितहि बजायो करे मालती की वदगी ॥[1]

उपर्युक्त छन्दों में रेखांकित शब्द अरबी और फारसी भाषा के हैं। किन्हीं किन्हीं पूर्तिकारों ने अरबी फारसी मिश्रित भाषा में ही अपनी पूर्तियाँ की हैं और कहीं कहीं छन्द के आधे चरण में हिन्दी और शेष आधे में अरबी-फारसी शब्दों का प्रयोग हुआ है। ऐसा ही एक छन्द देखिए—

क्यों मन मेरो भुलायो फिरै चरा नाहक जाय (कुनोहम) जिंदगी
वाद विवाद में मिश्र रमे कित शाद शवो न दरी परा गदगी
ध्यावत क्यों न पदाम्बुज ब्रह्म का मुस्त नशीनो चरादर गदगी
वद कहै जगदीश्वर एक है वाजिव ऊरा इताअतो बंदगी ॥[2]

उपर्युक्त छन्द में रेखांकित अर्ध चरण अरबी फारसी के हैं।

समस्यापूर्ति काव्य में प्रादेशिक शब्दों का भी यत्र तत्र प्रयोग हुआ है। जैसे—

मीर जू जीव के भोग जिते तिते भोग चुके सुखमाकर थोक,
जाइए जू विक्टोरिया स्वर्ग बुलावत ठाढ़ प्रभू ढिग धोक।
देव त्रिमान पै राज के जा प्रवशोगी जबै विबुधान के लोक,
ह्वै मघवा अगवान बतावहिगा रहिय तुहि बाग अशोक ॥[3]

उपर्युक्त छन्द में रेखांकित धोक शब्द बुन्देलखंडी का है जिसका अर्थ होता है स्मरण करके। मैथिली शब्द का प्रयोग निम्नांकित छन्द में देखिए—

होत छिपाए कहाँ द्विज आनद आनदते बितई निशि भोर लौं
वगुन माल हिए अरु भाल पै जावक लाल त्यों काजर ठोर लौं,
आलस अंग भरे अगिरात हो आँखें सुबीरबहूटी के ओर लौं,
केलिमई सिगरी बतियाँ सुनि फैल गई अब छोरथि छोर लौं ॥[4]

ठोर शब्द मैथिली भाषा का है इसका अर्थ है ओठ।

१— काव्य सुधाधर (त्रैमासिक द्वितीय वर्ष) चतुर्थ प्रकाश मार्च अप्रैल मई १८९९ ई० (पृष्ठ ६)
२— (पृष्ठ १३ १४)
३— (मासिक) चतुर्थ वर्ष सप्तम प्रकाश ३० जून १९०१ ई० (पृष्ठ १२ १३)
४— मासिक ३० अक्टूबर १९०१ ई० (पृष्ठ ३४) (पूर्तिकार—पूर्णानन्द ओझा)

ठेठ हिंदी के भी शब्द प्रयुक्त हुए हैं—

ऋच्छप बात सुने भयो गर्गज,
बात जगा ज्यौं लज्यो घनघोर लौं ।[1]

'गर्गज' शब्द ठेठ हिंदी का है । इसका अर्थ होता है—अति प्रसन्न होना । अवधी में लिखे हुए एक छंद को देखिए—

आई न विलाइति ते मालु याक झंझी क्यार,
भूखन के मारे मरि जैहैं वाके पुरखा ;
होई याको पुतरा न पुतरीघरन मैहाँ,
लागि जाई दुष्टन के मुँह मैहाँ करखा ।
विष्णु जब चरखा घुमैहैं औ' बनैहैं सब,
सूतु काति-काति लै कै कुरता-अँगरखा ;
तोंद जैहै पचकि विदेशिन के आपै आप,
गाजी घर-घर जब गांधी क्यार चरखा ।।[2]

एक और उदाहरण देखिए, जिसमें अवधी शब्द का प्रयोग हुआ है—

बैठी रंगरावटी में संग लै सखीनन को,
कीरति-किशोरी कान्ह मन की विलासिनी ;
ताही समय औचक कहूँ ते आय बेनीद्विज,
स्याम धाम ओर ते देखाई तिन्हें काँचनी ।
छाय गई झिलमिली झपाक अँखियानन में,
मूँदि गईं पलकें सभी की रही जै जनी ;
आई तबै उपमा अभूत ये ही मेरी जान,
मानो रबि कंजन पै डारत है चाँदनी ।।[3]

उपर्युक्त छंद में रेखांकित 'जै जनी' शब्द अवधी का है । कुछ ऐसी पूतियाँ भी हुई है, जिनमें लघुमात्रिक शब्दों का ही प्रयोग मिलता है । इस प्रकार का एक छंद अगले पृष्ठ पर देखिए—

१—काव्य-सुधाधर तृतीय प्रकाश, सं० १९०० ई० (पूर्तिकार हरदेवबख्श)
२—सुकवि वर्ष २, अंक १, अप्रैल, सन् १९२९ ई०, (पृष्ठ ३६)
३—काशी-कवि-समाज, समस्यापूर्ति, भाग १, १०वाँ अधिवेशन, (पृष्ठ ९४)

पर धन हरन करन परतिय-रति,
परजन मरन नरन नसवन की ,
मदमत रहन-सहन नहिं सत पर,
असत परन हट सट मन धन की ।
परुस वचन पर भवन जरन लखि,
अभिमति रहत जगत छलवन की,
पर उपकरन न भरन उदर निज,
यह गति खल नर नरक गमन की ।।[1]

प्रस्तुत छंद म चरणांत के 'की' शब्द को छोड़कर शेष सभी लघुमात्रिक शब्द ही हैं । ब्रजभाषा के सामान्य शब्द 'भटकि', 'कहति' आदि का दोघ ईकारांत होकर भटकी, कहती रूप मिलता है । देखिए—

बिरह भरी घबरानी तिय लट छोर ।
भटकी कहती चित्त गे जीवन मोर ।।[2]

कालांतर मे ब्रजभाषा क अतिरिक्त खड़ी बोली म भी समस्यापूर्तियाँ हुईं । ये पूर्तियाँ कवि समाजो के रूप म, जैसा कि ब्रजभाषा की समस्यापूर्ति होती थी, नहीं हुईं, बल्कि स्फुट रूप से कवियो ने खड़ी बोली मे अपनी पूर्तियाँ की, जो पत्रिकाओं म प्रकाशित हुईं । इस दृष्टि से 'सुकवि' मासिक पत्रिका का नाम उल्लेखनीय है जिसम खड़ी बोली की समस्यापूर्तियाँ भी प्रकाशित होती थी । खड़ी बोली की कुछ पूर्तियाँ देखिए—

मेरे हरे पख की अनप हरियाली यह,
तेरी ही हरीतिमा के सग जुड़ने की है,
लालसा सुफल खा विहगम बिहार की है,
रवीर से हमारी चित्त वृत्ति मुड़ने की है ।
अब न पसद है वलद मान मदिर ये,
करनी यहाँ न धरनी मे गुड़ने की है,
ए हो वन देव लेके पिंजर उड़ेंगे हम,
पूंछ लें परो से यह बात उड़ने की है ।।[3]

१—सुकवि वर्ष १, अक ६, सितबर, १९३८ ई० (पृष्ठ ४५)
२—काशी कवि समाज प्रथम भाग, चौथा अधिवेशन (पृष्ठ ३०)
३—बात उड़ने की है' समस्या की पूर्ति कविवर अनूप शर्मा ने की थी ।

विष्णु वन पालता है पीड़ितों को कष्ट हर,
अन्न-वृष्टि करता है बन शक्र चरखा;
'रसिकेंद्र' उदर-विकार करने को छार
अश्विनीकुमार की दवा है तक्र चरखा।
स्वार्थ-लिप्त मिलों के कपाट कर देता बंद,
कुटिलों की काट देता नीति वक्र चरखा;
भक्ति-भरी भावना भरेंगे भारतीय सभी,
फेर देगा भारत का भाग्य-चक्र चरखा ॥[1]

जैसे सिंधु पार लंका क्षार की जलाके उन,
वैसे ये करेगा लंकाशायर में करखा;
जैसे उन्हें पूंछ को बढ़ाते पेख, वैसे इसे,
सूत को बढ़ाते देख बैरी रहे डर खा।
कवि 'वचनेश' रणारंभ में कुशल वीर,
उन्हें रामजी ने, इसे मोहन ने परखा;
जैसे भूमिजा की बंदि-मोचन को हनूमान,
वैसे मातृभूमि-बंदि-मोचन को चरखा ॥[2]

गूंज है शृंगार की, समा गया धरा में हास्य,
बहती धड़ाके से है धारा शोक-रस की;
रौद्र सारा रुद्र के ही रूप में समा गया है,
होती है नहीं कहीं पै बात वीर-रस की।
भैरव ने ले लिया भयानक को, मानो लोग
डरते हैं सुनके कथा बीभत्स-रस की;
'विष्णु' कैसा अद्भुत जमाना आ गया है आज,
चरचा है चारों ओर खासी शांत-रस की ॥[3]

हिलने मही में अमरावती सवेग लगी,
सहित समाज इंद्रराज डरने लगा;

१—सुकवि, वर्ष २, अंक १, एप्रिल, १९२९ ई०। (पृष्ठ ५२)
२— ,, ,, ,, ,, ,, (पृष्ठ ५३)
३— ,, ,, ,, ४ जुलाई, सन् १९२९ ई०। (पृष्ठ ४९)

डोल गए छन में सहस्र भयभीत भोग,
अमित अशेष शेष साँसें भरने लगा।
डोलने दिगंत लगे, काँपे लोक-लोक सब,
गगन अपार हाहाकार करने लगा,
राम के सकाम अभिराम धनु तानते ही
सहम समुद्र मानो पानी भरने लगा॥[1]

उपर्युक्त छंदों में खड़ी बोली का प्रयोग हुआ है। यहाँ पर खड़ी बोली के और अधिक छंद देने की आवश्यकता नहीं प्रतीत होती। उपर्युक्त उदाहरणों से ही स्पष्ट हो जाता है कि समस्यापूर्ति किसी भी भाषा में की जा सकती है। रही उसके अनुकूल एवं प्रतिकूल भाषा की बात, वह पहले ही स्पष्ट की जा चुकी है।

समस्यापूर्तिकार कवियों की मुख्य भाषा ब्रजभाषा थी। अनेक कवियों ने ब्रजभाषा की मधुरता एवं उनकी प्रौढ़ता का ध्यान रखते हुए सुंदर पूर्तियाँ की। समस्यापूर्ति-काव्य में भाषा के रूप में कोमला तथा उपनागरिका वृत्ति के बहुल प्रयोग मिलते हैं। यही कारण है कि भाषा में माधुर्य एवं प्रसाद-गुण अधिकांश रूप में पाया जाता है। माधुर्य-गुण से पूर्ण 'ललित'जी का एक छंद देखिए—

मधु, माखन, दाखन पाई कहाँ मधुराई रसाल की घातन में,
समताई अनारन की की कहै, कमताई अंगूर के गातन में,
ललिते करी कंद की मंद जबै, तबै का है तमोल के पातन में,
रस को है सुधा में, सुधा न कहो, रस तो है कबीन की बातन में॥[2]

भाषा के उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि समस्यापूर्ति-काव्य की मुख्य भाषा ब्रजभाषा ही रही। कवियों ने ब्रजभाषा की शब्द-माधुरी पर विशेष ध्यान दिया। कुछ सामान्य कवियों ने ब्रजभाषा की प्रवृत्ति के प्रतिकूल कुछ वर्ण कटु एवं संस्कृत तत्सम शब्दों तथा क्रिया-पदों का प्रयोग किया है। ऐसे प्रयोग ब्रजभाषा की मधुरिमा को क्षीण कर देनेवाले हैं, किंतु उत्कृष्ट कवियों ने भाषा-सौष्ठव, भाव-प्रवणता एवं ध्वनि-व्यंजकता पर दृष्टि रखते हुए भाषा का प्रयोग किया है, जिससे समस्यापूर्ति-काव्य में भाषा की कलात्मकता स्पष्ट लक्षित होती है।

१—'माधव-मधुप'—माधवचरण द्विवेदी। (पृष्ठ ३०)
२—रसिक-वाटिका, भाग ३, क्यारी ४, २० जुलाई, १८९९ ई०।

छंद

भाषा यदि काव्य का शरीर है, तो छंद निश्चित रूप से उसमें स्फूर्ति भरनेवाली गति। 'कविता हमारे प्राणों का संगीत है, छंद हृत्कंपन; कविता का स्वभाव ही छंद में लयमान होना है।'[1] इस कथन का तात्पर्य यही है कि छंद कविता का एक अनिवार्य अंग है। छंद में प्रकट करने से साधारण बात में भी एक ऐसी गति आ जाती है, जो मनुष्य के चित्त की अनुवर्तिनी हो उठती है।

भारतीय साहित्य के अध्ययन से पता चलता है कि यहाँ पर अति प्राचीन काल में भी छंदों का अस्तित्व पाया जाता था। वैदिक काल मे भी कई प्रकार के छंद प्रचलित हो गए थे। ऋग्वेद के शौनक-प्रातिशाख्य में इनका विशेष उल्लेख पाया जाता है। छंदों का संगीत-शास्त्र तथा कला से बड़ा ही घनिष्ठ संबंध है। सामवेद प्रायः गाया जाता था, अतएव सामवेद में छंदो का विशेष वर्णन पाया जाता है। सामवेद के निदानसूत्र में ये विशेष रूप से मिलते है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि वैदिक काल में भी छंदों का अच्छा प्रचार था। वेद-पाठ में छंदों की बड़ी आवश्यकता पड़ती थी। सायणाचार्य ने लिखा है कि जो बिना छंद-ज्ञान के वेद-पाठ करता है, वह पापी है।

यदि वेद पुरुष है, तो छंद उसका पैर, ऐसा आचार्य पिंगल ने भी माना है—

छंदः पादौ तु वेदस्य हस्तौ कल्पोऽथ पठ्यते;
ज्योतिषामयनं चक्षुर्निरुक्तम् श्रोत्रमुच्यते।
शिक्षा घ्राणन्तु वेदस्य मुखं व्याकरणं स्मृतम्;
तस्मात् सांगमधीत्यैव, ब्रह्मलोके महीयते।

इस विवेचन से छंद की अनिवार्यता स्पष्ट हो जाती है। कालांतर में विभिन्न आधारों के ऊपर छंदों का विभाजन एवं वर्गीकरण किया गया है।

भारतीय छंद-विधान के दो प्रधान आधार हैं—मात्रा-विचार और वर्ण-विचार। प्रथम में हम मात्राओं के ह्रस्व अथवा दीर्घ प्रयोग के आधार पर छंद-संगठन करते है तथा दूसरे में केवल वर्णों की गणना के आधार पर छंद का निर्माण एवं निर्णय किया जाता है। इन्ही के अनुसार उनके मात्रिक और वर्णिक दो भेद किए गए हैं। अपनी प्रकृति के अनुसार ही भाषाएँ इन छंदों का चयन करती है। हिंदी की रुचि स्वभाव से ही मात्रिक छंदों पर रही, परंतु इसका आशय यह नहीं कि उसमें वर्णिक वृत्तों के प्रयोग का अभाव है। वीर-गाथा-काल मे दोनो

१—देखिए 'पल्लव' की भूमिका। —पंत

प्रकार के वृत्तों का प्रचलन था। भक्ति-काल में गेय पद मात्रिक छंदों के कोमलतम रूप कहे जा सकते हैं। इसी प्रकार रीति-काल में सवैया और घनाक्षरी-जैसे वर्ण-वृत्तों का बाहुल्य मिलता है।

समस्यापूर्ति-काव्य में उपर्युक्त दोनों प्रकार के छंद पाए जाते हैं। छंद प्रयोग में यह विशेषता सर्वत्र दीख पड़ती है कि अधिकतर उत्कृष्ट कवियों ने सवैया और कवित्त छंद का ही प्रयोग किया है। सवैया के अनेक भेद—मदिरा, किरीट, मालती (मत्तगयंद) अरसात, दुर्मिल, मुक्ताहरा, मल्लिका आदि का प्रयोग हुआ है। छंदों के प्रयोग में जैसी विविधरूपता काव्य-सुधाकर-जैसे मासिक पत्र में दृष्टिगोचर होती है, वैसी अन्यत्र नहीं। काशी एवं कानपुर के कवि-समाजों में अधिकांश कवित्त, सवैया और घनाक्षरी छंदों का प्रयोग हुआ है। यत्र-तत्र कुंडलिया तथा बरवै और दोहा-सोरठा आदि का भी प्रयोग किया है, परन्तु बरवै-जैसे छंद को ब्रजभाषा में प्रयुक्त करके एक प्रकार से इन कवियों ने उसका उपहास ही किया है। बरवै तो अवधी का चिर-परिचित ललित छंद है। ब्रजभाषा इस छंद की प्रकृति के अनुकूल नहीं। इन विशिष्ट छंदों के अतिरिक्त अन्य जिन छंदों का प्रयोग हुआ है, उन सबका, प्राप्त सामग्री के आधार पर, हम विवेचन करते हैं।

मात्रिक छंद—

बरवै—इसके विषम (पहले, तीसरे) चरणों में बारह मात्राएँ होती हैं और सम (दूसरे, चौथे) में सात। इस प्रकार इसके प्रत्येक दल में १९ मात्राएँ होती हैं। सम चरणों के अन्त में जगण इसकी सुंदरता को बढ़ा देता है। उदाहरण—

विचरति निशि बन राम धरे धनु-बान,
कह्यो सुधाकर निरखि उदित भो भानु॥[1]

रूपमाला—१४-१० अन्त में ऽ।[2] उदाहरण—

जाम्बवान कह्यो समीरज, ओज निज अनुमानु,
होत मंद तवाग्र सुतरुण तरणि-तेज कृशानु।
लाँघि सिंधु निशंक लंक प्रविश्य सिय सुधि आनु,
दीन नित अनुकूल तुम पर रहत रवि-कुल भानु।[3]

१—काव्य-सुधाधर, चतुर्थ प्रकाश, मार्च, एप्रिल, मई, सन् १८९८ ई० (पृष्ठ २२)

२—छंद-प्रभाकर—'भानु' कवि, (पृष्ठ ६४)

३—काव्य-सुधाधर, चतुर्थ प्रकाश, मार्च, एप्रिल, मई, सन् १८९८ ई० (पृष्ठ २२)

गंग छंद—९ मात्रा, अंत में ऽऽ[1] : उदाहरण—

प्रेम छाके ये, नेम पाके ये;
दास काके हैं, शारदा के हैं ।[2]

सोरठा—'सम तेरा विषमेश, दोहा उलटै सोरठा'[3] ।

अर्थात् सम (दूसरेऔर चौथे) चरणों मे १३ और विषम (पहले और तीसरे) चरणों में ११ मात्राएँ होती हैं। जैसे—

दसरथ साजि बरात, राम बिवाहन को चले;
गज-घंटा घहरात, छबि निरखे बनि आवहीं ।[4]

रोला—प्रत्येक चरण में ११ और १३ के विराम से २४ मात्राएँ ।

रोला की चौबीस कला यति शंकर तेरा;
सम भरणन के आदि, विषम सम कला बसेरा ।[5]

उदाहरण—

तुम हो चतुर सुजान, अहैं हम निपट गँवारी;
जोरि कहौं कर दोउ, सबै बिधि तुम सों हारी ।
नगर नारि जल खरी, विनय इतनी सुन लीजै;
पट-आभूषन बेगि लला ! सबको दै दीजै ।[6]

छवि छंद—आठ मात्राएँ, अंत में 'ल', 'ग', 'ल' ।[7] उदाहरण—

श्रीकृष्ण चंद्र ! आनंदकंद;
यश-गान ठानु, भव-तमहिं भानु ।[8]

१—छंद-प्रभाकर, 'भानु' कवि-कृत। (पृष्ठ ४३)
२—काव्य-सुधाधर, चतुर्थ प्रकाश, मार्च, एप्रिल, मई १८९८ ई० । (पृष्ठ २१)
३—छंद-प्रभाकर, 'भानु' कवि-कृत। (पृष्ठ ८९)
४—काव्य-कलानिधि, वर्ष ८, अंक ३, (मासिक) जुलाई, १९०७ ई० । (पृष्ठ १३)
५—छंद-प्रभाकर 'भानु' कवि-कृत। (पृष्ठ ६३)
६—काव्य-कलानिधि, वर्ष ८, अंक १ (मासिक), मई १९०७ ई० । (पृष्ठ १७)
७—छंद-प्रभाकर 'भानु' कवि-कृत। (पृष्ठ ४३)
८—काव्य-सुधाधर, चतुर्थ प्रकाश, मार्च, एप्रिल, मई, १८९८ ई० । (पृष्ठ ४३)

दीप छंद—१० मात्राएं, अंत म । । । ऽ । ।[1] उदाहरण—

मेरे रमण धन्य, तो सम जग न अन्य,
करि दर्शन प्रमानु, सरसिज बनहि भानु ।।[2]

आभीर छंद—(११ मात्राएं, अंत में ग ल)[3]। उदाहरण—

जिन्हे मिलि सुखहि लीन, अहो दुख तिनहि दीन,
उपमहि उपमहि मानु, जलजहि अनजहि भानु ।[4]

तोमर छंद—१२ मात्राएं अंत में ग ल ।[5] उदाहरण—

जग मह सनातन रीति, दुख ही लहैं करि प्रीति,
जरि मरत कीट कृशानु, अलि कमल बांधत भानु ।[6]

कज्जल छंद—(१४ मात्राएं अंत में ग ल)[7] उदाहरण—

श्रुति धरि सुनहु, विनवहुँ श्याम,
नित चित्त मम बसहु करि धाम ।
मति कहुँ टरहु तजि हिय थानु,
बनि भव कठिन तम हित भानु ।[8]

दोहा—आन विषम तर कला, सम शिव दोहा मूल ।[9] उदाहरण—

उठहु प्राणपति विगत निशि, बेगि बचन मम मानु,
छिटकन चाहत धूप अब, निकसन चाहत भानु ।[10]

१—छंद प्रभाकर । (पृष्ठ ४४)
२—काव्य-सुधाधर, चतुर्थ प्रकाश, मार्च, एप्रिल, मई, १८९८ ई० । (पृष्ठ ४३)
३—छंद प्रभाकर । (पृष्ठ ४४)
४—काव्य सुधाधर, चतुर्थ प्रकाश, मार्च, एप्रिल, मई, १८९८ ई० । (पृष्ठ ४३)
५—छंद प्रभाकर । (पृष्ठ ४४)
६—काव्य-सुधाधर, चतुर्थ प्रकाश, मार्च, एप्रिल, मई, १८९८ ई० । (पृष्ठ ४३)
७—छंद प्रभाकर । (पृष्ठ ४६)
८—काव्य-सुधाधर, चतुर्थ प्रकाश, मार्च, एप्रिल, मई, १८९८ ई० । (पृष्ठ ४३)
९—छंद प्रभाकर । (पृष्ठ ८४)
१०—काव्य-सुधाधर, चतुर्थ प्रकाश, मार्च एप्रिल, मई, १८९८ ई० । (पृष्ठ ३१)

कुंडलिया—दोहा रोला जोरिकैं, छै पद चौबिस मत्त;
आदि-अंत पद एक-सो, कर कुंडलिया सत्त ।[१]

अर्थात् आदि में एक दोहा, उसके पश्चात् रोला छंद को जोड़कर ६ पद रक्खो। प्रत्येक पद मे २४ मात्राएं हों, और आदि-अंत का पद एक-सा मिलता रहे।

उदाहरण—

वसुधा में तीरथ घने सुनियत सुमति बिचित्र,
ईस विराट विभूतिमय, महिमा परम पवित्र।
महिमा परम पवित्र तिनहु में गंग-धार की,
जाहि लहे नर तरे, तरहिंगे किते नारकी;
जासु भार लखि उपमा यह आवत प्रतिभा मे,
चली जलधि कहँ मिलन बहोरि सुधा वसुधा में।[२]

कुंकुम छंद—(१६-१४, अंत में ऽऽ)[३] उदाहरण—

देखि कदम पै बृज-तिय बोली, जनि बृजराज अनय कीजै,
नगन नारि जौ पुरुष विलोकहिं, दोष लगै अरु वय छीजै।
हम जल भीतरि कँपति जाड़-बस, बरु आभूषन लै लीजै;
लाल 'मुकुंदनाथ' बलसाली, अवलम्ह कर पट दै दीजै।[४]

सार छंद—(१६-१२, अत में कर्णऽऽ)[५]

भारतवासी ! करो न हाँसी, आँख उठा अव देखो,
आलस त्यागो, मन अनुरागो, देर न होय निमेखो।
साहस राखो, व्यर्थ न भाखो, यही मंत्र लै लीजै,
करिके श्रम वैसी यज्ञ स्वदेशी सर्वस हूँ दै दीजै।[६]

१—छंद-प्रभाकर। (पृष्ठ ९७)
२—काव्य-सुधाधर (त्रैमासिक), तृतीय वर्ष, तृतीय प्रकाश, १९०० ई०। (पृष्ठ ७)
३—छंद-प्रभाकर। (पृष्ठ ७३)
४—काव्य-कलानिधि, वर्ष ८, अंक १, मई १९०७ ई०। (पृष्ठ १३)
५—छंद-प्रभाकर। (पृष्ठ ६९)
६—काव्य-कलानिधि, वर्ष ८, अंक १, मई १९०७ ई०। (पृष्ठ १३)

चौपाई—चौपाई के प्रत्येक चरण में १६ मात्राएं होती हैं। इसके अन्त में जगण या तगण आने से छन्द की सुन्दरता नष्ट हो जाती है, अतएव इसके अन्त में ग ल नहीं होना चाहिए[1]। उदाहरण देखिए—

मारग रोकि मंद मुसुकाई, ग्वालिन से अस कह्यो कन्हाई ;
नाम धाम को पीछे लीजै, प्रथम दान हमरो दै दीजै।[2]

उपर्युक्त छन्द के प्रत्येक चरण में १६ मात्राएं हैं, और अन्त में लघु भी नहीं है, अतएव यह शुद्ध चौपाई छन्द है। समस्यापूर्ति रूप में चौपाई छन्द का बहुत स्वल्प प्रयोग हुआ है।

योग छंद—१२-८, अन्त में य। ऽऽ।[3]

देखि दशा भारत मन आरत धारो, सो न गाढ़ नींद मीत, आँख उघारो ;
रानी विक्टोरियाहि हाय पुकारो, धाय बंधु हिंद देश-हितै विचारो।[4]

हुल्लास छंद—पादाकुलक के अन्त में एक त्रिभंगी छन्द रखकर कविजनों ने उसका नाम हुल्लास छन्द रक्खा है।[5]

चार भुजा, तन रक्त विराजै, भाल-मध्य शुभ चंदन भ्राजै,
चक्षु तीन, रद एकहि जाके, इभ चत तुंड शुंड है ताके।
ताके गुणगाई मंगल दाई, मोद बढाई नित्त नितै,
सुर, नर, मुनि बृंदा करत अनंदा, तजि भ्रम-फंदा रूप चितै।
दीक्षित गणनायक, जन-सुखदायक, सिद्धि विधायक दै कमला ;
शिर मुकुट विशाला, गर बिच माला, माथे वाला चंद्रकला।[6]

१—छन्द-प्रभाकर। (पृष्ठ ५३)

२—काव्य-कलानिधि, वर्ष ८, अंक १, मई १९०७ ई०। (पृष्ठ १४)

३—छन्द प्रभाकर। (पृष्ठ ५९)

४—काव्य-सुधाधर (त्रैमासिक), द्वितीय वर्ष, प्रथम प्रकाश, १८९८ ई०। पूर्तिकार—'हेम'

५—छन्द-प्रभाकर। (पृष्ठ ७५)

६—काव्य-सुधाधर (त्रैमासिक), द्वितीय वर्ष, प्रथम प्रकाश, १८९८ ई०। पूर्तिकार—भगवानदीन दीक्षित

झूलना द्वितीय—सैंतिस यगंत यति दोष दस, दोष मुनि,
जानि रचिए द्वितीय झूलना को।[१]

अर्थात् १०, १०, १० और ७ के विश्राम से ३७ मात्राएँ तथा अंत में यगण होता है। उदाहरण देखिए—

सुजन सन प्रीत हित, गुरुन सन रीत नित,
दया चित्त चाह परिवार की है;
विपत महँ धीरता, समर महँ वीरता,
शील - जुत प्रकृति उपकार की है।
संत सनमानतर, दुष्ट अपमान कर,
हिताहित - वृत्ति संसार की है;
ईश्वराराधना, ज्ञान - मन - साधना,
न्याय - पथ धार तरवार की है।[२]

छप्पय—रोला के पद चार, मत्त चौबीस धारिए,
उल्लाला पद दोय, अंत माहीं सुधारिए।[३]

अर्थात् इस छंद के आदि में रोला के चार पद, जो चौबिस-चौबिस मात्राओं के होते हैं, और इसके पश्चात् उल्लाला के दो पद अट्ठाइस-अट्ठाइस मात्राओं के रक्खे जाते है। उल्लाला में कहीं छब्बीस मात्राएँ होती हैं और कही अट्ठाइस। निम्न-लिखित उदाहरण देखिए, जिसमें अट्ठाइस मात्रा का उल्लाला छंद रक्खा गया है—

उदक-विंदु जग जोय, होय रघुबर दिशि रहिए,
चित्त धीर धरि टेक नाम सुमिरन की गहिए।
मा चंचलानुमानि मान मन में मति ठानो;
बदन राम सिय-राम राम-सिय राम बखानो।
त्यों दीन देखि करिए कृपा प्रिय उत्तम उपदेश हैं;
इनको विचित्र यजिबो उचित विभु गुरु गौरि-गणेश हैं।[४]

१—छंद-प्रभाकर। (पृष्ठ ७८)
२—काव्य-सुधाधर मासिक, मई, जून, जुलाई, अगस्त, १९०२ ई०।
(पृष्ठ ५)
३—छंद-प्रभाकर। (पृष्ठ ९८)
४—काव्य-सुधाधर, तृतीय प्रकाश, १८९७-९८ ई०। (पृष्ठ ६-७)

हाकलि—९-५ मात्राएँ, अन्त में गुरु।[1] उदाहरण देखिए—

हरिनाम के कर जापना,
यहि सो कटे भव - तापना।
बुद्बुद - समा तव जिंदगी,
करिके बिता हरि बंदगी।[2]

राधिका छंद—१३-९ मात्राएँ।[3] उदाहरण देखिए—

चंपक चामी से चारु स्वच्छ चंदन से,
चाँदनी चंद से रुचिर कुंद कुंदन से,
स्फुरित दुग्ध सित फेन सु समुद्रा के हैं,
शुभ सिद्ध प्रदापद कमल शारदा के हैं।[4]

हरिगीतिका—१६-१२ मात्राएँ, अंत में लघु गुरु।[5]
शृंगार भूषण अंत लग जन गाइए हरिगीतिका। उदाहरण—

भारत प्रजा अति दीन देकर वे लगें कर का करें,
नाथ कह घबरात हौ, युगती नहीं कोउ एक लगें,
कइ वर्ष सो दुर्भिक्ष छायो, प्लेग धन-जन दोउ हरें,
पियरान लागे सोच सो, कीजै कृपा, जो दुख भगें।[6]

गीतिका—१४-१२ मात्राएँ। अंत में लघु गुरु।
रत्न रवि कल धारि कै लग अंत रचिए गीतिका।[7] उदाहरण—

जस रावरो लजपति जू चहु ओर लोग सुगावही,
बिन तोहि बीर जुहाय देसिन्ह कौन देव हितावही,
अब संगमो उर सूल है विपरीत दृश्य दिखावही,
कहँ बीर भारत पूत आजु अनेक तो बनि आवही।[8]

१—छंद-प्रभाकर। (पृष्ठ ४६)
२—काव्य-सुधाधर (त्रैमासिक), चतुर्थ प्रकाश, द्वितीय वर्ष। (पृष्ठ २०)
३—छंद-प्रभाकर। (पृष्ठ ६०)
४—काव्य-सुधाधर, चतुर्थ प्रकाश, मार्च एप्रिल मई, १८९८ ई०। (पृष्ठ १०)
५—छंद-प्रभाकर। (पृष्ठ ६९)
६—काव्य-सुधाधर (मासिक), चतुर्थ वर्ष, ८, ९, १०, ११ वाँ प्रकाश। (पृष्ठ ३४)
७—छंद-प्रभाकर। (पृष्ठ ६७)
८—काव्य कलानिधि, वर्ष ८, अंक ३, जुलाई, सन् १९०७ ई०। (पृष्ठ १९)

मात्रिक छंदों के उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि समस्यापूर्ति-काव्य में इनका यथेष्ट प्रयोग हुआ है। कुछ मात्रिक छंद ऐसे है, जिनके नाम और लक्षण में पर्याप्त अंतर पाया गया है। ऐसे छंदों में वारि, भानु एवं रोला प्रमुख रूप से है। मात्रिक् छंदों के पश्चात् वर्णवृत्तों का विवेचन कर लेना भी आवश्यक है।

वर्णवृत्ति

कला छंद—(भ ग)[1] उदाहरण—

नायक है, पावक है, केकि रला, चंद्रकला।[2]

मनिबंधो अथवा मणिमध्वा—(भ म स)[3] उदाहरण—

मोहन तेरे दर्श विना, काम सतावै रैन-दिना;
हूकनि बाढ़ी ही हहला, ऊक लगाती चंद्र-कला।[4]

सारंगिक छंद—(न य स)[5] उदाहरण—

गरब गुमानै तजु री, अलि घनश्यामै भजु री;
वन चलु शीघ्रं नवला, तब वदना चंद्रकला।[6]

प्रमिताक्षरा छंद—(स ज स स)[7] उदाहरण—

उर नंद नंद डमरू कर है, अरधंग अंग अगजा वर है;
तन व्याल, माल-नर, भाल भला, गज छाल बाल सिर चंद्रकला।[8]

१—छंद-प्रभाकर। (पृष्ठ ११९)
२—काव्य-सुधाधर, (त्रैमासिक), द्वितीय वर्ष, प्रथम प्रकाश, १८९८ ई०।
—हरदेवबख्श
३—छंद-प्रभाकर। (पृष्ठ १३०)
४—काव्य-सुधाधर, (त्रैमासिक), द्वितीय वर्ष, प्रथम प्रकाश, १८९८ ई०।
—हरदेवबख्श
५—छंद-प्रभाकर। (पृष्ठ १३०)
६—काव्य-सुधाधर, (त्रैमासिक), द्वितीय वर्ष, प्रथम प्रकाश, १८९८ ई०।
—दंडपाणि पांडेय
७—छंद-प्रभाकर। (पृष्ठ १५०)
८—काव्य-सुधाधर (त्रैमासिक), द्वितीय वर्ष, प्रथम प्रकाश, १८९८ ई०।
—दंडपाणि पांडेय

तोटक—(स स स स)[1] उदाहरण—

मृग - रूप सिंगार विभा बिमला,
रस प्रेम - पियूष भरो सकला।
सुख को न लहै बलदेव भला,
लखि काव्य - सुधाधर चन्द्रकला।[2]

√वसततिलका—(त भ ज ज ग ग)[3] उदाहरण—

हे सभ्यवर्ग कवि शब्द हिये सभारो,
ता अर्थ हेतु चित चेत न व्यर्थ पारो,
साहित्य अंग लखि मारग को निहारो
हांसी प्रपच तजि देश हितै बिचारो।[4]

इद्रवज्रा—(त त ज ग ग)[5] उदाहरण—

जैहो कहाँ जू कलि पथ न्यारो,
दर्भीन को दीन जुरो अखारो,
देखो महाभ्रष्ट भयो अचारो,
एकत्र ह्वै देश हितै बिचारो।
गीता पढ़ै ग्यान कथै करारो
माला गरे माल तकै परारो
सेवै सदा छिद्र अनंग बारो,
एकत्र ह्वै देश - हितै बिचारो।[6]

१—छन्द प्रभाकर। (पृष्ठ १५०)
२—काव्य-सुधाधर (त्रैमासिक) द्वितीय वर्ष प्रथम प्रकाश १८९८ ई०।
—लाला बलदेवप्रसाद—कवि (सटवारा)
३—छन्द प्रभाकर। (पृष्ठ १६६)
४—काव्य-सुधाधर (त्रैमासिक) द्वितीय वर्ष प्रथम प्रकाश १८९८ ई०।
—ब्रजराज
५—छन्द प्रभाकर। (पृष्ठ १३९)
६—काव्य-सुधाधर (त्रैमासिक) द्वितीय वर्ष प्रथम प्रकाश १८९८ ई०।
—भगवानदीन दीन मिश्र

उपेंद्रवज्रा—(ज त ज ग ग)[1] उदाहरण—

कहाँ सदा नाम मुखै त्रिवेणी,
दहो सबै पातक - पुंज - श्रेणी;
दया धरो, कार्य निजै सँभारो,
सुनो ममादेश - हितै बिचारो।
स्वकर्म साधो, स्वसुतै पढ़ावो,
अनेकधा उद्यम को बढ़ावो;
चलो त्रिवेणी, मधि पाप जारो,
अहो मितै, देश - हितै बिचारो।[2]

उपजाति—'उपेंद्रवज्रा अरु इंद्रवज्रा,
दोऊ जहाँ हैं उपजाति जानो।'[3]

उदाहरण—

प्लावी बखान्यो दशकंठ ये रे,
अजौंहु बीसों चख अंध तेरे;
दै जानकी मा, उपदेश धारो,
जु आपनो देश - हितै विचारो।[4]

सुमुखी—(न ज ज ल ग)[5] उदाहरण—

अधरन बाँसुरी गाजि रही,
उर बनमाल बिराजि रही;
तन-दुति सोह, मनो चपला,
मनहर मोर कि चंद्रकला।[6]

१—छंद-प्रभाकर। (पृष्ठ १३९)
२—काव्य-सुधाधर (त्रैमासिक), द्वितीय वर्ष, प्रथम प्रकाश, १८९८ ई०।
—शंभुनारायण
३—छंद-प्रभाकर। (पृष्ठ १३९)
४—काव्य-सुधाधर (त्रैमासिक), द्वितीय वर्ष, प्रथम प्रकाश, १८९८ ई०।
—भगवानदीन दीक्षित
५—छंद-प्रभाकर। (१४५)
६—काव्य-सुधाधर (त्रैमासिक), द्वितीय वर्ष, प्रथम प्रकाश, १८९८ ई०।
—हरदेवबख्श

कुसुमस्तवक छंद—(स ९ वा अधिक)[1] उदाहरण—

पग पायल, छागल चारु छड़ा,
सुख-सद्म कड़ा सुश्रगार करे नवला,
कटि किंकिणि औ' कुच कंचुकि ही,
नँद नंद बसै कलधौत हमेल गला।
कर कंज बिराजत कंज मनोहर,
गंधव हो नथ मौक्तिक मंजु भला,
श्रुति दोउन कुंडल हैं मुकता, सुक
मानु द्विजेशम् चंद्रम चंद्रकला।[2]

तिलका छंद—(स स)[3] उदाहरण—

वृषभान लली, चलि कुंज-थली,
लखु आजु भला, ब्रज-चंद्रकला।[4]

हरिणी—(ज ज ज ल ग)[5] उदाहरण—

अली कंजनेह निबाह तज्यो,
बलाहक चातक चाहत ज्यों,
कुधातुहि चुंबक चोप चला,
चकोर चहै तिमि चंद्रकला।[6]

सारवती—(भ भ भ ग)[7] उदाहरण—

१—छंद प्रभाकर। (पृष्ठ २११)
२—काव्य-सुधाधर (त्रैमासिक), द्वितीय वर्ष, प्रथम प्रकाश, सन् १८९८ ई०।
—दंडपाणि

३—छंद प्रभाकर। (पृष्ठ १२१)
४—काव्य-सुधाधर (त्रैमासिक), द्वितीय वर्ष, प्रथम प्रकाश, सन् १८९८ ई०।
—लाल रमेशसिंह

५—छंद प्रभाकर। (पृष्ठ १४४)
६—काव्य-सुधाधर (त्रैमासिक), द्वितीय वर्ष, प्रथम प्रकाश, सन् १८९८ ई०।
—हरदेवबख्श

७—छंद प्रभाकर, (पृष्ठ १३४)

चंद्रकला हरि हीय बसी,
कुंज-कुटी उनसों बिलसी;
हैं घनस्याम सचंद्र कला,
कै घनस्याम सचंद्र कला ।[१]

चकोर—(भ ७+ग ल)[२] उदाहरण—

लालन हू ललना पै लटू,
ललचाय भटू निरखे अखियान;
प्राणप्रिया जित जात छिनौ,
तित-ही-तित लाय रहे अखियान ।
संग - सखा वर त्याग दियो,
घर बैठ सुनै रस की बतियान्;
भूलि सखी सपने में कभू सु,
मनो नहि आनत आन तियान ।[३]

मालती—(ज ज)[४] उदाहरण—

भयो सुतकर्ण । शरीर, सुवर्ण । सुमंत्र विधान । मिल्यो जब भानु ।।[५]

मल्लिका—(र ज ग ल)[६] उदाहरण—

होत ज्वाल भासमानु , मेदिनी सुआसमानु ;
प्रात को रहै न जानु , जात गो निधान भानु ।।[७]

१—काव्य-सुधाधर (त्रैमासिक), द्वितीय वर्ष, प्रथम प्रकाश, सन् १८९८ ई० ।
—हरदेवबख्श

२—छंद-प्रभाकर । (पृष्ठ २०३)

३—काव्य-सुधाधर, चतुर्थ प्रकाश, मार्च, अप्रैल, मई, सन् १८९८ ई० ।

४—छंद-प्रभाकर, (पृष्ठ १२२)

५—काव्य-सुधाधर, चतुर्थ प्रकाश, मार्च, अप्रैल, मई, सन् १८९८ ई० ।
—बक्सराम पांडेय

६—छंद-प्रभाकर । (पृष्ठ १२५)

७—काव्य-सुधाधर, चतुर्थ प्रकाश, मार्च, अप्रैल, मई, सन् १८९८ ई० ।
—बक्सराम पांडेय

मथान—(त त)[1] उदाहरण—

श्रीराम को मानु, औधेश जो जानु,
त्रैलोक में ठानु। है तेज ज्यों भानु।[2]

सूर छद—(ल म ल)[3] उदाहरण—

दोऊ महा आनद, कै मौन द्वारा बद,
सोवें सुनो दै कानु, श्यामो रजाई भानु।[4]

षडाक्षरावृत्ति—(६४)(स ज)[5] उदाहरण—

सिर मग लेहु, त्रण दत देहु, करिहैं सनेहु, प्रभु दीन जानु।
कर जोर जोर, करिके निहोर, सिव मान मोर, तजिए गुमानु।
यह साच जीय, तजि गर्व पीय, यह आन तीय, पति यानु धानु।
निज दास जानु, रखिहै जु मानु, करुणानिधानु, रघु-वश-भानु।[6]

कदुक छद—(ग य य य ग)[7] उदाहरण—

बसै मजु ही मानसै नेह पाके हैं,
भए धन्य आनद सौगधि छाके हैं;
उतै भौंर ह्वां दास त्यों खास ताके हैं,
लसै पद्म से पाद की शारदा के हैं।[8]

१—छद-प्रभाकर। (पृष्ठ १२२)
२—काव्य-सुधाधर, चतुर्थ प्रकाश, मार्च, एप्रिल, मई, सन् १८९८ ई०।
—भगवानदीन दीक्षित

३—छद प्रभाकर। (पृष्ठ १२४)
४—काव्य-सुधाधर, चतुर्थ प्रकाश, मार्च, एप्रिल, मई, सन् १८९८ ई०।
—भगवानदीन दीक्षित

५—छद प्रभाकर। (पृष्ठ १२१)
६—काव्य सुधाधर, चतुर्थ प्रकाश, मार्च, एप्रिल, मई, सन् १८९८ ई०।
—गनेशीलाल

७—छद प्रभाकर। (पृष्ठ १५९)
८—काव्य सुधाधर, चतुर्थ प्रकाश, मार्च, एप्रिल, मई, सन् १८९८ ई०।
(पृष्ठ २१)

मोती दाम—(ज ज ज ज)[1] उदाहरण—

चली किन जाति जहाँ रघुबीर,
तहाँ डर नाहिं, बधू धरु धीर;
सदा वृत एक त्रिया भगवान,
मनो नहिं आनत आन तियान ।[2]

मुक्ताहरा—यह 'मोती दाम' का दुगुना होता है अर्थात् ज ८ ।[3] उदाहरण—

अमी इव लोल महा मधुरे,
मुसुक्यानि मनोहर त्रिज्जु-समान;
लसैं अधरामृत पल्लव से, द्विज
दाड़िम बीजन से सुचि सान ।
शुका - सम नाक लसै मुदृदा,
सफरी - सम चंचल नैन निदान;
छपाकर-सों मुख उज्जल पेखि
मनो नहिं आनत आन तियान ।[4]

कमल छंद—(दूसरा नाम पद्म । न स ल ग)[5] उदाहरण—

न कल मन धारती, सकल तन गारती;
बिकल तिय क्लेश में, बलम परदेश में ।[6]

मनहंस—(स ज ज भ र)[7] उदाहरण—

नहिं धाम काम सुहात नेक हमें अली,
चिनगारि-सी तन दाहती सियरी कली;

१—छंद-प्रभाकर । (पृष्ठ १५२)
२—काव्य-सुधाधर, चतुर्थ प्रकाश, मार्च, अप्रैल, मई, सन् १८९८ ई० । (पृष्ठ १४)
३—छंद-प्रभाकर । (पृष्ठ २०५)
४—काव्य-सुधाधर, चतुर्थ प्रकाश, मार्च, अप्रैल, मई, सन् १८९८ ई० ।(पृष्ठ १३)
५—छंद-प्रभाकर । (पृष्ठ १२७)
६—काव्य-सुधाधर, (त्रैमासिक), द्वितीय वर्ष, प्रथम प्रकाश । (पृष्ठ ४९)
७—छंद-प्रभाकर । (पृष्ठ १७२)

न पियूष को रह लेश शेष निशेश मे,
जब ते गयो मनभावनो परदेश मे।[1]

शुद्धगा—(य ग य ग)[2] उदाहरण—

गई बर्सात यो सारी, सरद चहुँ ओर छाई है,
भये जल-थल सबै निर्मल, शशी नभ शोभ पाई है,
विदेशी आय घर अपने हिये आनँद बढायो री,
न जानो किसलिये मेरो मदनमोहन न आयो री।[3]

तारिका अथवा तारक—(स स स स ग)[4] उदाहरण—

दबि दाख रह्यो गहि माख जिया मे,
सकुच्यो सितसर्कर हारि हिया मे,
कछु आब रहो नहि स्वर्ग-सुधा मे,
लखि के वर काव्य-सुधा बसुधा में।[5]

द्रुतविलम्बित अथवा सुदरी—(न भ भ र)[6] उदाहरण—

तपित अग अनग कि आँच है,
छपित अक निशाक किया चहै,
कथित मो सुनि नैन न फेरिए,
व्यथित बाल-वियोगिनि हेरिए।[7]

१—काव्य-सुधाधर (त्रैमासिक), द्वितीय वर्ष, प्रथम प्रकाश, १८९८ ई०। (पृष्ठ ४९-५०)

२—छद-प्रभाकर। (पृष्ठ ११८)

३—काव्य-सुधाधर (मासिक), चतुर्थ वर्ष, पचम प्रकाश, ३० नवम्बर, १९०० ई०। (पृष्ठ २०)

४—छद-प्रभाकर। (पृष्ठ १६१)

५—काव्य-सुधाधर (त्रैमासिक), तृतीय वर्ष, तृतीय प्रकाश, १९०० ई०। (पृष्ठ ६)

६—छद-प्रभाकर। (पृष्ठ १५५)

७—काव्य सुधाधर (त्रैमासिक), द्वितीय वर्ष, द्वितीय प्रकाश, १८९८ ई०। (पृष्ठ ६४)

विमोहा छंद—(र र) 'क्यों विमोहा ररी।'[१] उदाहरण—

देवकी नंदनै, भक्त भौ भंजनै;
प्रेम सों टेरिए, ध्यान कै हेरिए।[२]

असंवाधा—(म त न स ग ग)[३] उदाहरण—

क्यों भागा भाई, इधर-उधर जाता है,
स्वामी का प्यारे, घट-घट यह नाता है;
बैठा ही के भीतर, परस अँधेरे में,
देखो ध्यानी होकर सुरत उजेरे में।[४]

प्रमाणिका—(ज र ल ग)[५] उदाहरण—

गुहार भारतीन की, सुनो न काह दीन की;
प्रभू जु द्यौस फेरिग, दया कि दृष्टि हेरिए॥[६]

वीरवर—(न स ल)[७] उदाहरण—

लखि चलत लाल, कह्यो बिलखि ग्वाल;
तजि हमहिं तात कहँ दुरत जात?[८]

१—छंद-प्रभाकर। (पृष्ठ १२१)

२—काव्य-सुधाधर (त्रैमासिक), द्वितीय वर्ष, द्वितीय प्रकाश, १८९८ ई०। (पृष्ठ ७३)

३—छंद-प्रभाकर। (पृष्ठ १६४)

४—काव्य-सुधाधर (त्रैमासिक), द्वितीय वर्ष, द्वितीय प्रकाश, १८९८ ई०। (पृष्ठ ७३)

५—छंद-प्रभाकर। (पृष्ठ १२६)

६—काव्य-सुधाधर (त्रैमासिक), द्वितीय वर्ष, द्वितीय प्रकाश, १८९८ ई०, मीर। (पृष्ठ ७७)

७—छंद-प्रभाकर। (पृष्ठ १२४)

८—काव्य-सुधाधर (त्रैमासिक), द्वितीय वर्ष, तृतीय प्रकाश, १८९९ ई०, रमेश। (पृष्ठ ४)

शार्दूलविक्रीडित—(म स ज स त त ग) मैं साजौं सलनैं गुरू सुमिरिकैं, शार्दूलविक्रीडितै।[1] उदाहरण—

आये री ऋतुराज आज बन मे, छाये छटा यो नए,
टेसू, अब, कदब बौरि बिकसे, मदै मरदै भए।
बोलैं कोकिल, कीर आदि पपिहा, माते मलिदै लए,
भापै औरहि रग कौन जु सबै तारे गुलाबी भए।[2]

जैसा ऊपर कहा जा चुका है, छद प्रयोग की यह विविधरूपता कुछ सीमित क्षेत्रो म ही मिलती ह। अनेक प्रकार के वर्णवृत्तो एव मात्रिक छदो का जैसा सुष्ठु एव सुदर प्रयोग हमे बिसवाँ-कवि मडल से प्रकाशित होनेवाली 'काव्य-सुधाधर' पत्रिका मे देखने को मिलता है, अन्यत्र नहीं। समस्यापूर्तिकार कवियों ने छदों के अनेक प्रयोगो म केशव की रामचद्रिका की शैली को आदर्श माना था, और उसी के अनुसार इन्होंने छोटे-छोटे मात्रिक एव वर्णवृत्तों के प्रयोग किए। कुछ अप्रचलित छदों का प्रयोग भी हुआ है। यह उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट हो जाता है। कुछ छदों के नाम या तो उनके लक्षणो के अनुसार नहीं हैं या उनके भिन्न नाम रक्खे गए हैं। वारि, सेनिका, अनिगीता, मलिदपाद तथा अश्वविराज आदि इसी प्रकार के छद हैं। यत्र-तत्र कुछ उर्दू छदा का भी प्रयोग मिलता ह। यहाँ समस्यापूर्ति रूप मे एक गजल देखिए—

बखाने जात गुण मुझसे अहो गनिके न तेरे हैं,
हँसी की फाँसना केते बँधे नादान तेरे हैं,
जिन्हें दारिद्र मै घेरा, उन्ही को जान लेरे हैं,
यही हरदम दुखाने को कुबाने बान तेरे हैं।
जहाँ जे मीत दौलत के, वही तन-प्रान तेरे हैं,
पियारे मीत दिल से तो कोई ना ज्वान तेरे हैं,
कहैं शिवराम जे प्यारे प्रभू के, ते न तेरे हैं,
नशे को इश्कबाजो के 'नशीले नैन तेरे हैं'।[3]

१—छद प्रभाकर। (पृष्ठ १९१)

२—काव्य-सुधाधर (त्रैमासिक), द्वितीय वर्ष, तृतीय प्रकाश, १८९९ ई०, सीताराम शर्मा। (पृष्ठ ६१)

३—काव्य-सुधाधर, तृतीय प्रकाश, सन् १८९७-९८ ई०, शिवराम शास्त्री। (पृष्ठ ४९)

कुछ कवियों ने समस्यापूर्ति में भजन की 'टेक' शैली भी अपनाई है—

समस्या—'वृषभानु लली को'

पूर्ति— बोलौ री वृषभानु लली को,
पूछौ ऐसी चाल चली को। टेक वृष०
सुधि सहेट की गैल गहावे,
घर की ओर लाज लौटावे;
इर - फिर चकरी - सी चकरावे,
रोकि रही कुलकानि गली को। टेक वृष०
अटकी जानि उमंग रिसाई,
सटकी भय शंका सुकुचाई;
चटकी चाह, चौक लौं लाई,
लै गई लगन बिहार-थली को। टेक वृष०
पायो रसिकराज मन भायौ,
नख-शिख लौं अनुराग समायो;
रस रसनायक ने बरसायौ,
खेल खेलाय मनोज बली को। टेक वृष०
ननदी ठीक थाँग लै आई,
भौजी के ढिग भेजौ भाई;
काली बनि बैठे यदुराई,
आय गयौ अनुमान हली को। टेक वृष०
मठ की आड़ पिया ने टारी,
नारी पूजा करति निहारी;
रिस बिसारि बोल्यो सुन प्यारी,
कबहुँ न लगत कलंक भली को। टेक वृष०
छोड़ि समाधि सती सो रोई,
नाथ कहीं किन मोहिं बिगोई;
परहित हानि करै जो कोई,
ता समान जग माहिं भली को। टेक वृष०

भगिनी के छल पै पछितायो,
घन को घीर घनी घर लायो।
शंकर ताको भेद न पाए,
प्रेम-लता वनि फूल फली को।' टेक वृष०

छंदों के उपर्युक्त विवेचन से यही कहा जा सकता है कि समस्यापूर्ति सभी छंदों में हो सकती है। इन समस्यापूर्तिकार कवियों को छंद का सम्यक् ज्ञान था। प्रचलित एवं अप्रचलित, दोनों प्रकार के छंदों का प्रयोग इनके छंद ज्ञान का द्योतक है। समस्यापूर्ति में इन्होंने छंदों के रखने में भी पूर्ण कौशल दिखलाया है। पहले छोटे वृत्तों में प्रसंग की भूमिका का उल्लेख करके फिर बड़े वृत्त—सवैया अथवा कवित्त—में भावों को विशद रूप दिया गया है। कहीं-कहीं समस्या के घोतित छंद में उसकी पूर्ति न करके अन्य छोटे अथवा अप्रचलित छंद में पूर्ति करके भी कवियों ने चमत्कार प्रदर्शन किया है। 'आयो री' समस्या की ध्वनि से ऐसा लगता है कि इसकी पूर्ति किसी बड़े छंद—सवैया, कवित्त अथवा घनाक्षरी में ही सुंदर हो सकेगी किंतु कुछ कवियों ने 'सुदमा' एवं 'भक्ती'-जैसे छंदों में भी इसकी पूर्ति की है—

भक्ती छंद—झिल्ली झनकारैं री, मड्डूक पुकारैं री,
वर्षा नियरायोरी, पै पीव न आयोरी।'

कवि के प्रस्तुत छंद का नाम भक्ती दिया है जब कि इसका नाम भक्ति ही अधिक मिलता है। यह वर्ण-वृत्त है। 'त य ग' के लक्षण से ७ वर्णों पर यति होती है। उपर्युक्त समस्या की पूर्ति बड़े छंद में भी देखिए—

३१ वर्ण का मनहरण छंद—

अंबर अबीर धूरि पूरि पहले ही वीर,
धीरन को आपनो पताका दरसायो री,
फूले मंजु कुसुम कदंब कचनार साथ,
पुहुप पलास घेरि दावा ज्यों लगायो री।
श्रीद्विजेंद्रदत्त बोलैं कोकिल कलापी कूकि,
मानहु नकीब टेरि आगम सुनायो री,

१—काव्य सुधाधर (मासिक), चतुर्थ वर्ष, पूर्ण प्रकाश, सन् १९०१ ई०।
—'शंकर'। (पृष्ठ २६ २७)

२—काव्य-सुधाधर, तृतीय प्रकाश, १९०० ई०।

बिरहीन बधिबो विचारि ब्रजराज आज,
ऋतुराज करन अकाज औनि आयो री ॥[1]

मनहर अथवा मनहरण छंद (जिसे कवित्त भी कहते है) में ३१ वर्ण होते है। ८, ८, ८, ७ तथा अंत में गुरु का विधान है। उपर्युक्त छंद में १६, १५ पर यति है, और अंत में गुरु, अतएव यह मनहरण छंद है।

समस्यापूर्ति-काव्य में छंद की व्यापक प्रवृत्ति, जैसा कि कहा जा चुका है, सवैया और घनाक्षरी के प्रयोग की है। कविवर रत्नाकर, हरिऔध, किशोरीलाल गोस्वामी, अंबिकादास व्यास, पं० सुधाकर द्विवेदी, लछिराम, द्विजवेनी, नवनीत, राय देवीप्रसाद 'पूर्ण', ललिताप्रसाद त्रिवेदी, सनेही, नाथूराम शर्मा 'शंकर', हनुमान, रसीले, ब्रजराज तथा द्विजबलदेव, जिन्हे हम समस्यापूर्ति-काव्य के प्रतिनिधि कवि मान सकते है, सभी ने कवित्त, घनाक्षरी एवं सवैया का सम्यक् प्रयोग किया है। इन कवियों ने उपर्युक्त प्रधान छंदों के रागात्मक तत्त्व को भली भाँति समझ लिया था। कविवर 'निराला' को भी अपने स्वच्छंद छंद का मूल उपर्युक्त 'कवित्त' छंद में ही दीख पड़ता था। उन्होंने इसके महत्त्व पर प्रकाश डालते हुए लिखा है—

"जिस दिन कवित्त छंद की सृष्टि हुई थी, उस दिन वह भले ही हिंदी-भाषी अगणित मनुष्यों की अपनी वस्तु न रही हो, परंतु समय के प्रवाह ने हिंदी के अन्यान्य प्रचलित छंदों की अपेक्षा अधिक बल उसे ही दिया, उसी की तरंग में हिंदी जनता को अपने मनोमल के धोने और सुभाषित रत्नों की प्रशंसा में बहुत कुछ कहने और सुनने की आवश्यकता पड़ी।"[2] ......"इस छंद में एक ऐसी विशेषता है, जो संसार के किसी छंद में न होगी।"[3]

'निरालाजी' का यह कथन अधिकांश रूम में सत्य है। कवित्त का जितना अधिक प्रभाव हमारे हृदय पर पड़ता है, उतना संभवतः और किसी वर्ण-वृत्त का नही। इस छंद की इतनी व्यापकता हुई कि यह छंद का पर्यायवाची-सा बन गया, और किसी भी छंद के लिये कवित्त का ही उल्लेख किया जाने लगा। 'भानु'जी ने लिखा है—

"यों तो सभी छंदों की संज्ञा कवित या कवित्त है, परंतु आजकल 'कवित्त' शब्द मनहरण, जलहरण, रूपघनाक्षरी और देवघनाक्षरी के लिये ही विशेषकर व्यवहृत होता है।"[4]

१—काव्य-सुधाधर, तृतीय प्रकाश, सन् १९०० ई०।
२—देखिए 'प्रबंध-पद्म,' निराला। (पृष्ठ ८४)
३— ,, ,, (पृष्ठ ८५)
४—देखिए छंद-प्रभाकर, जगन्नाथप्रसाद 'भानु'। (पृष्ठ २१५)

कवित्त को रूपघनाक्षरी एवं देवघनाक्षरी से विशेष रूप से संबंधित करने में 'भानु'जी का मत कुछ अधिक पुष्ट नहीं प्रतीत होता। सामान्य संज्ञा तो किसी भी छंद की 'कवित्त' हो सकती है, परंतु कवित्त विशेष रूप से घनाक्षरी से भिन्न है। कवित्त को हम मनहर या मनहरण छंद कह सकते हैं, क्योंकि दोनों के लक्षण समान हैं—३१ वर्ण और १६, १५ पर यति। रूपघनाक्षरी ३२ वर्णों की और देवघनाक्षरी ३३ की मानी गई है।

सवैया छंदों में अधिकतर २३ वर्णों का मत्तगयंद सवैया प्रयुक्त हुआ है, किंतु गणों का क्रम सब चरणों में समान नहीं पाया जाता। मत्तगयंद सवैया में (भ७ग ग) होना है। भगण में एक गुरु होता है, किंतु इस नियम का पालन सर्वत्र नहीं हुआ है। भगण के उपर्युक्त नियम को पढ़ने की लय में निभाया जा सकता है। भगण के एक गुरु के स्थान पर दो गुरु भी पाए जाते हैं। उदाहरण देखिए—

मत्तगयंद सवैया—(भ ७ ग ग)[१]

सुंदर वर्ण-विभूषण-भूषित हावन-भावन प्रीति पसारी,
माधुरता रस-व्यंग भरी, धुनि आगम नेम निबाहन वारी,
शंभुसहाय पुरातन पुण्य अचानक आय मिली व्रतधारी,
यों विधि की कविता वनिता वर ह्वै गइ पाहुनी प्राण की प्यारी।[२]

सवैया के कुछ अन्य भेदों के भी उदाहरण देखिए—

चकोर—(भ ७ ग ल)[३]

पावत मोद मलिंद घनो करके अरविंदन को रस पानु,
कारज-सिद्धि विचारि चहूँ दिशि पारत पथिक पथ पयानु,
शंभुसहाय सबै जग जीव सुखी अति होत मिटे तम तानु,
केवल चोर, चकोर, उलूक दुखी मन होत बिलोकत भानु॥[४]

मुक्तहरा—(ज ८)[५]

गिरा नित राम जपै जस, पै चित प्रेम सदा सतसंग सुकर्म,
जितेंद्रि बिराग क्षमायुत शील दया सब जीवन पै मनन मैं,

१—छंद प्रभाकर। (पृष्ठ २०२)
२—काव्य-सुधाधर, चतुर्थ प्रकाश, १८९६ ई०, सुजान। (पृष्ठ २८)
३—छंद-प्रभाकर। (पृष्ठ २०३)
४—काव्य-सुधाधर, चतुर्थ प्रकाश, १८९८ ई० शिवसहाय दीक्षित। (पृष्ठ २१)
५—छंद प्रभाकर। (पृष्ठ २०५)

निरंतर मातु-पिता-गुरु-भक्ति-विचार सुआतम सो धन मर्म,
'मुकुंद' कहै भल ते जग धन्य, निछावर हेत तनो धन-धर्म ।[१]

मदिरा—(भ ७ ग)[२]

आवत ही भृगुनंदन के अवनी प सबै अकुलान लगे,
शंकित ह्वै अपने-अपने मन-प्रानन को दुचितान लगे;
'शंभुसहाय' क्षनेक ही में मख में वह ऐसे सुहान लगे,
पाय प्रभात प्रभाकर को नभ-तारे मनौ पियरान लगे ।[३]

दुर्मिल—(स ८)[४]

रितु ग्रीषम ते शिशिरांत लगे, तन-अस्थि समस्त दिखान लगे,
ननदी-मुख बालम की अनुहारि निहारति नैन पिरान लगे ;
कवि 'शंभुसहाय' लगे जब हीं मधु, चातक शब्द सुनान लगे ,
तरु-पात वियोगिनि-गात तबै सँग-ही-सँग में पियरान लगे ।।[५]

सवैया छंद के उपर्युक्त उद्धरणों के पश्चात् यहाँ कवित्त और घनाक्षरी छंद का भी एक-एक उदाहरण दिया जा रहा है, जिससे समस्यापूर्ति के रूप में घनाक्षरी अथवा मनहरण छंदों के प्रयोग का स्वरूप भी स्पष्ट हो जायगा—

कवित्त, मनहरण अथवा मनहर छंद—(३१ वर्ण, अंत में गुरु)[६]

नींद लै हमारी हूँ, दुनींदे ह्वै सुनींदे सोए,
सुनत पुकार नाहिं, परी हौं चहल में ;
कहै 'रतनाकर' न ऐसी परतीत हुती,
प्रीति-रीति हाय ! हिये जानी ही सहल में ।

१—काव्य-सुधाधर, चतुर्थ प्रकाश, १८९९ ई० (पृष्ठ ५०)—मुकुंदीलाल ।
२—छंद-प्रभाकर । (पृष्ठ २००)
३—काव्य-सुधाधर (मासिक), सन् १९०१ । ८, ९, १० तथा ११वाँ प्रकाश, (पृष्ठ ३१)
४—छंद-प्रभाकर । (पृष्ठ २०५)
५—काव्य-सुधाधर (मासिक), सन् १९०१ । ८, ९, १० तथा ११वाँ प्रकाश, दीक्षित । (पृष्ठ ३१)
६—छंद-प्रभाकर । (पृष्ठ २१४)

देखत ही आपने द्रिगन हित हानि करी,
अब पछताति परी ताही की दहल मे,
बीर ! मैं अजान वलबीरहि निवास दियो,
नीर सिंचे बरनी उसीर के महल मे ॥'

कवि ने उपयुक्त छंद चुनकर भाव मे एक मस्ती भर दी है। इसी म कहा गया है—जैसे श्रेष्ठ खराद करनेवाले के हाथो मे जाकर हीरे की चमक बढ़ जाती है, बहुत कुछ वही हाल छंद का है।' भावानुकूल छंद का चयन और उस म अक्षर बैठाने की कला कवि की प्रतिभा को और अधिक प्रभावित कर देती है। घनाक्षरी प्रयोग म अधिकतर कवियो ने रूपघनाक्षरी का ही प्रयोग किया है।

रूपघनाक्षरी—(३२ वर्ण, अंत मे लघु)'

जागो, सबै जागो, निज काजन मे लागो, पुण्य
बीचिन मे पागो मानि उपदेश को प्रमानु,
सध्या करो, पूजा करो, तरपन-पाठ करो,
पापन को दाप हरो करि गग असनानु।
पूरब दिशा के आसमान अरुणाई छाई,
जैसे दुष्ट दूषन को सूखन महाकृशानु,
तम को नसावत, उलूकन लुकावत,
कुमोदन मुंदावत है आवत, बिलोको भानु॥'

रूपघनाक्षरी का एक दूसरा उदाहरण देखिए—

आज नव नागरी-सहित सरसाय सुख,
बृज अलबेली करै मजु तानि गीत गानु।
हलकै हिये मे नील नौरतन हार सजे,
मोतिन किनारीदार, सारी सात पीत जानु।

१—काशी कवि-समाज, प्रथम भाग, ११वां अधिवेशन (समस्यापूर्ति)
—रतनाकर। (पृष्ठ १०८)
२—रेखाटट। —डॉ॰ विपिनविहारी त्रिवेदी। (पृष्ठ ३९)
३—छंद प्रभाकर, (पृष्ठ २१७)
४—काव्य-सुधाधर, चतुर्थ प्रकाश, सन् १८९८ ई०। (पृष्ठ ३६ ३७)
—शिवप्रसाद पांडेय।

द्विज 'गंग' शारदा मुदित अंग-आभा लखि,
वदन अनूठो अति उपमान मीत मानु;
मानो महि-मंडल में दामनीन-वृंद-मध्य
संयुत सितारन के भासमान शीतभानु।[१]

छंद के उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि समस्यापूर्ति-प्रणाली द्वारा जनता के हृदय मे छंद-ज्ञान-प्राप्ति की भावना पूर्ण रूप मे जाग्रत् हो चुकी थी। समस्यापूर्ति करने का वही व्यक्ति प्रयत्न कर सकता था, जिसे छंद का सम्यक् ज्ञान हो। जिन कवियों ने समस्यापूर्ति-रूप में कविता करने का प्रथम प्रयास किया, उन्होंने अपने चमत्कार-प्रदर्शन के लिये छदों के न्यून मात्रिक एवं न्यून वर्णिक रूपों का ही प्रयोग अधिक किया है। दूसरी ओर उत्कृष्ट कवियो ने चमत्कार-प्रदर्शन के साथ-साथ भाव-गांभीर्य लाने के लिये बड़े वृत्तों का प्रयोग किया है। मात्रिक एवं वर्ण-वृत्तों के उपर्युक्त विवेचन से यह ज्ञात हो जाता है कि समस्यापूर्ति दोनो प्रकार के वृत्तों में की जा सकती है। समस्यापूर्ति-रूप में प्रयुक्त छंदो के आधार पर यह कहना अनुचित न होगा कि समस्यापूर्ति-काव्य छंदों का एक अनुपम भंडार है।

समस्यापूर्ति-काव्य में अलंकार

हिंदी-काव्य अलंकार-निरूपण में संस्कृत-साहित्य से पूर्णतया प्रभावित है। संस्कृत-साहित्य में अलंकार की परंपरा अति प्राचीन है, जिस प्रकार रस के आदि-प्रवर्तक भरत मुनि माने जाते हैं, उसी प्रकार अलंकारों का विवेचन भी सर्वप्रथम हमें भरत के 'नाट्य-शास्त्र' में ही मिलता है। भरत मुनि ने केवल चार अलंकारों का उल्लेख किया है। यथा—

उपमा दीपकं चैव रूपकं यमकं तथा।
काव्यस्येते ह्यलंकाराश्चत्वारः परिकीर्तिताः॥[२]

कालांतर में इनका विस्तार भामह ने किया। भामह का काव्यालंकार प्रथम ग्रंथ है, जिसमें अलंकारों का वैज्ञानिक विवेचन किया गया है। काव्यालंकार

१—काव्य-सुधाधर, चतुर्थ प्रकाश, सन् १८९८ ई०। (पृष्ठ २४)
—पं० गंगाधर 'द्विज गंग'

२—नाट्य-शास्त्र—भरत मुनि। (१६-४१)

के अनन्तर अग्निपुराण मे अलकारो का कुछ वर्णन किया गया है। इसमें तीन प्रकार के अलकार माने गये हैं—शब्दालकार, अर्थालकार तथा उभयालकार। परन्तु अग्निपुराण का यह वर्णन वैज्ञानिक नहीं है।[1] आचार्य भामह ने ३८ अलकारों का उल्लेख किया है। उन्होंने वक्रोक्ति को उन सबका प्राण माना और अलकारों को काव्य का प्रधान अग बताया है। इस प्रकार भामह के अनुसार काव्य का प्राण है अलकार और अलकार की आत्मा है 'वक्रोक्ति'। यथा—

> सैषा सर्वत्र वक्रोक्तिरनयार्थो विभाव्यते,
> यत्नोऽस्या कविना कार्यं कोऽलकारोऽनया विना।
>
> (काव्यालकार)

आचार्य दडी ने अलकारों के विवेचन मे अधिक ख्याति प्राप्त की, और प्रमुख आलकारिक माने गए। इन्होंने काव्य की शोभा बढ़ानेवाले धर्मों को अलकार कहा—

> काव्य शोभाकरान् धर्मान् अलकारान् प्रचक्षते।[2]

इन्होंने स्पष्ट रूप मे स्वीकार किया है कि काव्य की शोभा सर्वथा अलकार के आश्रित है, अतएव अलकार काव्य के शाश्वत धर्म हैं। दडी ने अलकारों की सख्या ३८ मानी और भामह के मान्य उपमेयोपमा, प्रतिवस्तूपमा, उपमा रूपक उत्प्रेक्षावयव आदि को छोड़ दिया है। दडी ने यमक, चित्रबध तथा प्रहेलिका आदि का विस्तृत विवेचन करते हुए शब्दालकार को अपेक्षाकृत अधिक महत्त्व दिया है। इन्होंने अतिशयोक्ति को अलकार की आत्मा माना है—

> अलकारान्तराणामिप्येकमाहु परायणम्।
> वागीशमहिता मुक्तिमिमातिशयाह्वयाम्।।[3]

दडी के पश्चात् उद्भट ने अलकार-सम्प्रदाय की और भी अधिक श्री-वृद्धि की। इन्होंने अलकारों की सख्या को ३८ से ४१ कर दिया, और दृष्टान्त, काव्यलिंग एव पुनरुक्तवदाभास की सर्वथा नवीन उद्भावना की। श्लेष के दो भेद किए—शब्द-श्लेष तथा अर्थ-श्लेष, और दोनो को अर्थालकार माना। व्याकरण के आधार पर उपमा के २५ भेद किए।

१—अग्निपुराण (३४३-३४४वाँ अध्याय)

२—काव्यादर्श (२-१)

३—काव्यादर्श (२ २)

आचार्य रुद्रट इस संप्रदाय के सर्वप्रमुख आचार्य थे। इन्होंने अलंकारों की संख्या ५० तक कर दी, और वास्तव, औपम्य, अतिशय और श्लेष के आधार पर उनका वैज्ञानिक वर्गीकरण किया। रस और भाव को अलंकार के अंतर्गत मानने की जो त्रुटि भामह के समय से चली आ रही थी, उसको रुद्रट ने सर्वप्रथम दूर किया।

आचार्य मम्मट ने अलंकारों को उचित स्थान दिया। काव्य को सालंकार मानते हुए भी "अनलंकृती पुनः च क्वापि" कहकर उसकी अनिवार्यता का निषेध किया। इन्होंने गुण और अलंकार का भेद स्पष्ट किया। गुणों को काव्य का साक्षात् धर्म माना, और अलंकारों को काव्य के अंगभूत शब्द और अर्थ के शोभा-कारक धर्म प्रतिपादित किया—

उपकुर्वन्ति तं सन्तं येऽगंदारेण जातुचित,
हारादिवदलंकारास्तेऽनुप्रासोपमादयः ॥

(काव्य-प्रकाश)

अलंकार काव्य के अंग अर्थात् शब्दार्थ-रूपी शरीर की शोभा बढ़ाते हुए काव्य का उपकार करते हैं—चमत्कृति में योग देते है। काव्य में उनका स्थान वही है, जो मनुष्य के व्यक्तित्व में हार आदि आभूषणों का। शब्द-अर्थ काव्य के शरीर हैं, और रसादिक आत्मा। माधुर्यादि गुण शौर्यादि की भाँति, श्रुति-कटुत्वादि दोष काणात्वादि की तरह, वैदर्भी आदि रीतियाँ अंग-रचना की तरह, और उपमादिक अलंकार कटक-कुंडल आदि के तुल्य होते हैं।[1] तात्पर्य यह कि अलंकार काव्य के अस्थिर धर्म है। अलंकार की यह परंपरा राजानक रुय्यक के 'अलंकार-सर्वस्व' तक बड़े वेग से आई, और बीच में कुछ मंद हो गई, किंतु जयदेव, विद्याधर तथा अप्पय दीक्षित आदि ने उसकी गति पुनः तीव्र कर दी। जयदेव ने तो यहाँ तक कह डाला—

अंगी करोति यः काव्यं शब्दार्थावनलंकृती।
असौ न मन्यते कस्मादनुष्णमनलंकृती ॥

(चंद्रालोक)

अर्थात् जो काव्य को विना अलंकार के ही स्वीकार कर लेता, वह अग्नि को ही शीतल क्यों नहीं मान लेता ?

तदुपरांत अलंकार की यह परंपरा हिंदी के रीति-कवियों के काव्य में चली आई। आचार्य केशवदास ने स्पष्ट घोषणा की थी—

१—'साहित्य-दर्पण'—विश्वनाथ (विमला टीका)

भूपण बिन नहिं राजई कविता-वनिता मित्त ।

किंतु एक स्थान पर केशवदास नैसर्गिक सौंदर्य को प्रतिपादित करते हुए कहते हैं—

भृकुटी कुटिल जैसी, तैसी न करेउ, होहिं
आँजी ऐसी आँखें केशवराय हिय हारे हैं,
काहे को सिंगारिकै बिगारति है मेरी आली,
तेरे अंग बिना ही सिंगार के सिंगारे हैं।

आभूषणों की उपर्युक्त उपेक्षा यही सिद्ध करती है कि अलंकार केवल सौंदर्योद्दीपन में सहकारी हो सकते हैं। वे साधन हैं, साध्य नहीं।

अलंकार के लक्षण एवं काव्य में अलंकार

वैयाकरण अलंकार शब्द की व्युत्पत्ति दो प्रकार से करते हैं—

१ 'अलंकरोतीति अलंकार ' अर्थात् जो सुशोभित करता है, वह अलंकार है।
२ 'अलंक्रियते अनेन इति अलंकार' अर्थात् जिसके द्वारा किसी की शोभा होती है, वह अलंकार है।

प्रथम व्युत्पत्ति आचार्य दंडी की है, जिनके अनुसार अलंकार काव्य के विधायक हैं और दूसरी के अनुसार अलंकार काव्य के साधन हैं। प्रथम परिभाषा अलंकार संप्रदाय की सिद्धांत वाक्य-सी रही, किंतु कालांतर में जब रस की मान्यता अधिक हो गई तो अलंकार की परिभाषा भी बदल गई। रसवादी विश्वनाथ महापात्र ने स्पष्ट कहा—

शब्दार्थयोरस्थिरा ये धर्मा शोभातिशायिन ।
रसादीनुपकुर्वन्तोऽलंकारास्तेऽङ्गदादिवत् ॥[1]

शोभा को अतिशयित करनेवाले रस भाव आदि के उपकारक जो शब्द और अर्थ के अस्थिर धर्म हैं वे अंगद (बाजूबंद) की तरह अलंकार कहाते हैं।

विश्वनाथ के अनुसार अलंकार काव्य के लिये अनिवार्य तत्व नहीं हैं। ये तो काव्य की शोभा बढ़ानेवाले हैं। सत्काव्य अलंकारों के बिना भी सुंदर कहा जा सकता है। आचार्य शुक्ल ने अलंकार की व्याख्या करते हुए लिखा है—

'कविता में भाषा की सब शक्तियों से काम लेना पड़ता है। वस्तु या व्यापार की भावना चटकीली करने और भाव को अधिक उत्कर्ष पर पहुँचाने के लिये कभी किसी वस्तु का आकार या गुण बहुत बढ़ाकर दिखाना पड़ता है कभी

१—साहित्य दर्पण (१०-१)

उसके रूप-रंग या गुण की भावना को उसी प्रकार के और रूप-रंग मिलाकर तीव्र करने के लिये समान रूप और धर्मवाली और-और वस्तुओं को सामने लाकर रखना पड़ता है। कभी वात को घुमा-फिराकर भी कहना पड़ता है। इस तरह के भिन्न-भिन्न विधान और काव्य के ढंग अलंकार कहलाते है।[1]

संस्कृत-आलंकारिको ने अलंकारो के मूलाधार को निर्दिष्ट करते हुए अनेक मतों का प्रतिपादन किया। भामह ने वक्रोक्ति को अलंकारों का आधार माना, दंडी ने अतिशयोक्ति को तथा वामन ने औपम्य को समस्त अलंकारों का प्राण मानते हुए इनका मूलाधार निर्दिष्ट किया है। इसी प्रकार आचार्य रुद्रट एवं राजानक रुय्यक ने भी अलंकारों के मूलाधार निर्दिष्ट करके उनका वर्गीकरण किया।

अलंकारों का काव्य में महत्त्व

मनुष्य संसार की प्रत्येक वस्तु को सुदर देखना चाहता है। वह केवल देखना ही नहीं, अपितु अपने को भी संसार के समक्ष सुंदर प्रदर्शित करना चाहता है। आत्म-प्रदर्शन की यह भावना ही मानव के अलकार-प्रेम की द्योतक है। हमारे अलंकार-प्रेम की प्रेरक प्रवृत्ति है आत्म-प्रदर्शन और प्रदर्शन में अतिशय का तत्त्व अनिवार्यतः रहता है।[2] साहित्य मानव-जीवन की सुंदर अभिव्यक्ति है, उसकी सर्वश्रेष्ठ साधना साहित्य के रूप में प्रकट हुई है। अतएव काव्य का अलंकारत्व निष्प्रयोजन नही है। वह मानव हृदय की अलंकार-प्रियता का परिचायक है अथवा मनुष्य का आत्म-प्रदर्शन तथा अलंकार-प्रेम ही काव्यालंकारों के रूप मे मूर्तिमान हो गया है। काव्य की आत्मा रस मानी गई है, और भाव से रस की निष्पत्ति वतलाई गई है, किंतु ये भाव स्वतः ही रस-निष्पत्ति में सक्षम नही होते। इनकी सहायता के लिये अन्य साधनो की आवश्यकता रहती है। अलंकार इनमें प्रमुख है। अलंकार हमारे भावों को उद्दीप्त करते है, विचारों को स्पष्ट करते हैं, तथा कल्पना में गति भरते हैं। भाव, विचार और कल्पना काव्य की अंतरात्मा के मुख्य स्वरूप कहे गए हैं, और वास्तव में काव्य की महत्ता इन्हीं के कारण प्रतिपादित तथा व्यंजित होकर स्थिरता धारण करती है। अलंकार उक्त महत्ता को वढ़ाकर उसे और भी अधिक सुंदर वना देते है।

मानव-जीवन अलंकार-प्रेम से विलग नही हो सकता। उसकी वात-वात मे अलंकारत्व भरा हुआ है। अपनी वात को अधिक प्रभावशाली वनाने के लिये,

---

१—देखिए 'रस-मीमांसा'।—आचार्य रामचंद्र शुक्ल। (पृष्ठ ४८)

२—देखिए रीति-काव्य की भूमिका तथा देव और उनकी कविता।
—डॉ० नगेंद्र। (पृष्ठ ९४)

श्रोता को चमत्कृति तथा उसका मनोरंजन करने के लिये वह सुंदर-सुंदर उपमाएँ उत्प्रेक्षाएँ, व्याजोक्ति, वक्रोक्ति, कहावत और मुहावरे-जैसी उक्तियाँ प्रस्तुत किया करता है। इन अलंकारों को मानव अपने दैनिक जीवन की अनुभूतियों से ही ग्रहण करता है, इसीलिये ये हमारे हृदय को अत्यधिक प्रभावित करते हैं। हिंदी का रीति-काल अलंकार प्रदर्शन के लिये अधिक प्रसिद्ध रहा। इस प्रसिद्धि से उसको अप्रसिद्धि भी मिली हुई है अथवा यों कहिए, कुछ आधुनिक आलोचकों ने उसकी घोर निंदा भी की है, किंतु उनकी इस निंदा का कोई अधिक प्रभाव नहीं दीख पड़ता और आधुनिक छायावादी काव्य तो अलंकार-प्रयोग में रीति काल से भी किसी अर्थ में बढ़ा हुआ है। प्रसाद, पंत, निराला तथा महादेवी—सभी के काव्य में अलंकार-प्रियता के दर्शन होते हैं। महादेवी के काव्य में सुंदर एवं सूक्ष्म रूपकों की भरमार है। इस प्रकार हम देखते हैं कि अलंकार काव्य में अपना विशिष्ट महत्त्व रखते हैं, ये स्वाभाविक हैं, अस्वाभाविक नहीं।

भारतीय अलंकार शास्त्रों का महत्त्व प्रदर्शित करते हुए आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी कहते हैं—"भारतीय अलंकार-शास्त्रों की चरितार्थता इसी में है कि उन्होंने काव्यार्थ को समझने के लिये वैज्ञानिक मान निश्चय करने का मार्ग दिखाया है। यदि वे संस्कार बनकर पाठक को देश और काल के बाहर जाने में बाधा दें, तो उनकी उपयोगिता नहीं रहेगी। पर मेरा निश्चित मत है कि हमारे अलंकार शास्त्र रस-बोध में सहायक हैं, बाधक नहीं। हमें आज उन्हें प्रेरणा-स्रोत के रूप में स्वीकार कर आगे बढ़ना चाहिए। वे पाठक को आगे बढ़ने से रोककर यह नहीं कहते कि इसके आगे जाना मना है। वे काव्यार्थ में प्रवेश कराने का मार्ग दिखाते हैं। उन्हें इसी रूप में ग्रहण करना चाहिए। भारतीय मनीषा के सर्वोत्तम अंगों में से एक का प्रतिनिधित्व करनेवाले इन ग्रंथों को यों ही नहीं छोड़ देना चाहिए। नई भारतीय मनीषा इन्हें प्रेरणा-स्रोत मानकर चरितार्थ होगी।"[1]

आचार्य द्विवेदी के उपर्युक्त कथन से अलंकार-शास्त्रों के साथ-साथ काव्य में अलंकारों का महत्त्व भी स्पष्ट हो जाता है। इसी दृष्टि से हमें समस्यापूर्ति-काव्य में अलंकार-योजना को देखना होगा।

समस्यापूर्ति-काव्य में अलंकारों का अत्यधिक प्रयोग किया गया है। और, सबसे आश्चर्य की बात तो यह है कि अग्निपुराणकार ने प्रहेलिका एवं समस्यापूर्ति आदि को शब्दालंकार के अंतर्गत रक्खा है[2]। किंतु समस्या को अलंकार का एक भेद मानना कुछ समीचीन नहीं जान पड़ता। समस्यापूर्ति-काव्य में दोनों प्रकार

१—'साहित्य का मर्म'—आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी।
२—देखिए अग्निपुराण (अध्याय ३४३-३४४)

के अलंकारों का प्रयोग हुआ है। शब्दालंकारों में अनुप्रास, यमक, श्लेष एवं वक्रोक्ति का तथा अर्थालंकारों मे साधर्म्यमूलक अलंकार जैसे उपमा और रूपक से लेकर दृष्टांत और अर्थान्तरन्यास, विरोध एवं विभावना-जैसे वैषम्य-मूलक अलंकार तथा यथासंख्य एवं स्वाभावोक्ति-जैसे औचित्य-मूलक अलंकारों का सुंदर प्रयोग हुआ है। इनमें से कुछ अलंकार सोदाहरण यहाँ प्रस्तुत किए जाते हैं—

अनुप्रास—शब्दालंकारों में अनुप्रास का विशिष्ट स्थान है। इसके प्रमुख तीन भेद हैं—

(१) छेकानुप्रास—"छेकोव्यंजन संघस्य सकृत्साम्यमनेकधा।"[१]

अर्थात् एक ही स्वरूप के व्यंजन उसी क्रम से यदि दूसरी बार आएँ, तो छेकानुप्रास होता है। निम्न-लिखित पंक्तियों में छेकानुप्रास देखिए—

१—जाके सुर प्रबल प्रबाह को झकोर तोर, सुर-मुनि-वृन्द धीर विटप बहावै है।[२]

२—संदली बहारदार व्यजन डोलावै सखी, करत बिहार तामें दंपति दुपहरें।[३]

३—फूलन के झूलन पै सहित अनंद लेत, सीतल सुगंध मंद मारुत की लहरें।[४]

उपर्युक्त प्रथम पंक्ति में प्र ब एक ही क्रम से दो बार आए हैं, दूसरी पंक्ति में हा और र की क्रम से आवृत्ति हुई है तथा तीसरी पंक्ति में ल न का भी उसी प्रकार से प्रयोग हुआ है। अतएव उपर्युक्त समस्त पंक्तियों में छेकानुप्रास का संयोजन हुआ है।

(२) वृत्यनुप्रास—अनेकस्यैकवासाम्यमसकृद्वाप्यनेकधा।
एकस्य सकृदप्येष वृत्यनुप्रास उच्यते॥[५]

अर्थात् अनेक व्यंजनों की एक ही प्रकार से (केवल स्वरूप से ही, क्रम से नहीं) समानता होने पर अथवा अनेक व्यंजनों की अनेक बार आवृत्ति होने पर यद्वा अनेक प्रकार से (स्वरूप और क्रम दोनों से) अनेकबार अनेक वर्णो की आवृत्ति

१—साहित्य-दर्पण (१०-३)

२—देखिए समस्यापूर्ति, द्वितीय भाग, पूर्तिकार रत्नाकर, संग्रहकार, बाबू रामकृष्ण वर्मा। (पृष्ठ १५०)

३—,, ,, भाग १, ११वाँ अधिवेशन, नकछेदी त्रिपाठी। (पृष्ठ १०१)

४—,, ,, ,, पूर्तिकार रत्नाकर। (पृष्ठ १०३)

५—साहित्य-दर्पण (१०-४)

होने पर, किंवा एक ही वर्ण की एक ही बार समानता (आवृत्ति द्वारा) होने पर, या एक ही वर्ण की अनेक बार आवृत्ति होने पर वृत्यनुप्रास-नामक शब्दालंकार होता है। निम्न-लिखित छन्दों में वृत्यनुप्रास देखिए—

(१) जानत न पीर हीन पीर परिवारन की,
तातें तिन्हे पीर-पाक रोचक चिखाय दै,
कहै 'रतनाकर' प्रिया के नख-रेखन सौं,
जन्म-कुंडली में प्रेम परख लिखाय दै।
सलिता दया की लली ललिता सुनी मैं कान,
प्रगट प्रमान ताको आँखिनि दिखाय दै,
सरल सुभाय स्वामिनी को समुझाय टेक,
पैया परौं, नेक मान करिबो सिखाय दै॥[1]

(२) पल-पल पलटि पलक-पट पुनि-पुनि,
प्रेम को प्रसून पेखि 'पाल' पवि पारौ ना,
जोरदार जालिम जलूसदार जगमग,
जोबन की जोतिन जराय जिय जारौ ना।
मदन महीपति की महिमा महान माहिं,
मद-मद मुरि मुसुकाय मोहिं मारौ ना,
गोरे गोल गालन सों गहब गरूर गोरी,
गरजी गरीबन पै गजब गुजारौ ना॥[2]

उपर्युक्त प्रथम छंद के प्रथम चरण में प तथा अंतिम चरण में स की आवृत्ति से वृत्ति अनुप्रास हुआ है। द्वितीय छंद के चारों चरणों में क्रम से प, ज, म और ग की पूर्ण आवृत्ति हुई है, अतएव इसमें भी वृत्यनुप्रास है।

(३) लाटानुप्रास—शब्दार्थयो पौनरुक्त्यभेदे तात्पर्यमात्रत।
लाटानुप्रास इत्युक्तो।[3]

१—देखिए समस्यापूर्ति, प्रथम भाग, दूसरा अधिवेशन, रत्नाकर। (पृष्ठ ६)
पूर्तिकार—(काशीकवि-समाज)

२— " 'सुकवि', वर्ष २, संख्या ३, जून १९२९ ई०। (पृष्ठ ३३)
पूर्तिकार—बदरीप्रसाद पाल

३—साहित्य दर्पण (१०-७)

अर्थात् केवल तात्पर्य भिन्न होने पर तथा शब्द और अर्थ दोनों की आवृत्ति होने से लाटानुप्रास होता है। निम्न-लिखित बरवै छंद में लाटानुप्रास देखिए—

वृज जीवन जीवन सों, जीवन मोर;
वृजजीवन जीवन सों, जीवन मोर।[1]

उपर्युक्त छंद में 'जीवन' शब्द की अर्थ-सहित आवृत्ति हुई है, अतः इसमें लाटानुप्रास है।

यमक—सत्यर्थे पृथगर्थायाः स्वरव्यंजनसंहतेः।
क्रमेण तेनैवावृत्तिर्यमकं विनिगद्यते॥[2]

अर्थात् यदि अर्थवान् हो, तो भिन्न अर्थवाले स्वर-व्यंजन-समुदाय को उसी क्रम से आवृत्ति को यमक कहते है। उदाहरण—

पावन परम प्रीति धन्य व्रजबालन की,
जा पैं नदनंद सुधि प्रान बिसर्‌यो करै;
ज्ञानिन के ज्ञान में, न ध्यानिन के ध्यान आवै,
सोई नित गोपिन के गेह ठहर्‌यो करै।
सारद, महेस, सेस, नारद, पुरान शास्त्र,
पावत न भेद, वेद नेति उचर्‌यो करै;
टहल लगावै वह महल-महल जासु,
तीनहू सुसील लोक 'टहल कर्‌यो करै'।[3]

उपर्युक्त छद के अतिम चरण में टहल शब्द दो बार प्रयुक्त हुआ है, किंतु इसका अर्थ भिन्न हो गया है। पहले टहल का अर्थ है विचरण करना और दूसरे का सेवा करना। इस प्रकार यहाँ यमक अलंकार का प्रयोग हुआ है।

श्लेषालंकार—"श्लेप अलंकृति अर्थ बहु एक शब्द में होत।"

—भाषा भूषण

अर्थात् जहाँ एक शब्द के अनेक अर्थ होते है, वहाँ श्लेष अलंकार होता है। आगे दिए छंद में श्लेष अलंकार देखिए—

१—देखिए समस्यापूर्ति, प्रथम भाग, चौथा अधिवेशन। (पृष्ठ ३२)
पूर्तिकार—रत्नाकर, (काशी-कवि-समाज)

२—साहित्य-दर्पण (१०-८)

३—समस्यापूर्ति, प्रथम भाग, काशी-कवि-मंडल, चौथा अधिवेशन।
(पृष्ठ ७)

द्वेषी दुरयोधन के दर्प का दबानेवाला,
दुश्शासन - मुख में लगानेवाला करखा,
धर्म-पक्षी भारत की दीनता मिटानेवाला,
आर्त जो खलों से पराधीनता मे डरखा।
'वचनेश' दिव्य शक्ति अद्भुत दिखानेवाला,
परखाया गांधी ने, सभी ने नीके परखा,
कृष्णा जनता की जाती लाज का बचानेवाला,
कृष्ण-ऐसा बसन बढ़ानेवाला चरखा।[1]

उपर्युक्त छंद में दुरयोधन, दुश्शासन, धर्म-पक्षी एवं कृष्णा शब्दों में श्लेष है, क्योंकि इनके दो-दो अर्थ निकलते हैं। जैसे दुश्शासन का अर्थ है कौरव सेना का महान् योद्धा एवं बुरा शासन, धर्म पक्षी का अर्थ है धर्मराज एवं धर्म का आश्रय लेनेवाली भारतीय जनता तथा कृष्णा का अर्थ है द्रौपदी एवं भारतीय जनता, दोनों है, अतएव यहाँ श्लेष अलंकार का संयोजन हुआ है।

उपमालंकार—साम्यं वाच्यमवैधर्म्यं वाक्यैक्य उपमाद्वयोः।[2]

अर्थात् एक वाक्य में दो पदार्थों के वैधर्म्य-रहित वाच्य सादृश्य को उपमा कहते हैं। उदाहरण—

भई सब भांति बदनाम ब्रज मंडल तूं,
खोय धोय लाज चुकी यामे न असित है,
कहत रसीले पीक लपटी कपोलन पे,
टूटि हिय हार मोती भूमि मे खसति है।
जागी रैन जागी अनुरागी प्रेम पागी कहूँ,
मोरें भकुवानी अँगराई लें हँसति है,
अधमुँदी अंखियां उनीदी ये खुमारी-भरी,
अरुन उदै की कंज-कली-सी लसति है॥[3]

१—'सुकवि', वर्ष २, अंक १, एप्रिल, सन् १९२९ ई०। (पृष्ठ ३३)
पूर्तिकार—वचनेश

२—साहित्य-दर्पण (१०-१४)

३—काशी-कवि-समाज, प्रथम भाग, ४था अधिवेशन। (पृष्ठ २२)
पूर्तिकार—बचऊ चौबे

कारे-कारे कज्जल पहाड़-से घिरत आवें,
चारों ओर गरजें, घुँमड़ें, घेर डारे हैं ;
सुंडन सों बरसें अपार वारि बेनी द्विज,
बोरे देत गहरे तड़ाग नदी-नारे हैं।
दंत बगपाँति-सी पसारे नभ-मंडल में,
भाले पौन वाले के इसारे टरे टारे हैं ;
विना प्रानप्यारे धीर तरु ये उखारे देत,
मेघ मनमथ के मतंग मतवारे हैं ॥[1]

उपर्युक्त छंद के अंतिम तथा द्वितीय छंद के प्रथम एवं तृतीय चरण में उपमालंकार है—

सांगरूपक अलंकार—"अंगिनो यदि सांगस्य रूपणं सांगमेवतत् ।"[2]

अर्थात् यदि अंगी के सब अंगों का रूपण किया जाय, तो सांग रूपक होता है। उदाहरण—

रूप - सरवर में अनूप रस - रंग - भरी,
तरल तरंग अंग अंगनि बसति है ;
नवनीत जोवन प्रवाल औ' सुबाहु नाल,
मीन दृग चिकुर सिवारन फसति है।
कुच चकवाक ताक-ताक नियराने कछू,
सिसुता कमोद कुल लाजनि गसति है ;
एहो नँदनंदन तुम रसिक मलिंद यह,
अरुन उदै की कंज कली-सी लसति है।[3]
रहति सदाई हरियाई हिय-घायनि में,
ऊरधि उसास सो झकोर पुरवा की है ;
पीव-पीव गोपी-पीर पूरित पुकारित हैं,
सोई रतनाकर पुकार पपिहा की है।

१—काशी-कवि-समाज, प्रथम भाग, १२वाँ अधिवेशन। (पृष्ठ १२७)
पूर्तिकार—द्विज वेनी

२—साहित्य-दर्पण (१०-३०)

३—काशी-कवि-समाज, प्रथम भाग, ४था अधिवेशन। (पृष्ठ २३)
पूर्तिकार—नवनीत

लागी रहै नैनन सो नीर की झरी औ'
उठै चित में चमक सो चमक चपला की है,
बिन घनश्याम धाम-धाम ब्रजमंडल में,
ऊधो नित बसति बहार बरसा की है ॥[1]

उपर्युक्त दोनों छंदों में रूपक अलंकार है। प्रथम छंद में सरोवर और द्वितीय में वर्षा का रूपक बांधा गया है।

उत्प्रेक्षा—"भवेत्संभावनोत्प्रेक्षा प्रकृतस्य परात्मना।"[2]

अर्थात् किसी प्रस्तुत वस्तु की अप्रस्तुत के रूप में संभावना करने को उत्प्रेक्षा कहते हैं। उदाहरण—

आज नव नागरी-सहित सरसाय सुख,
वृज अलबेली करैं मंजु तान गीत गानु,
हलकै हिये में नील नीरतन हार सजे,
मोतिन किनारीदार सारी सात पीत जानु।
द्विजगंग शारदा मुदित अंग आभा लखि,
बदत अनूठो अति उपमान मीत मानु,
मानो महि मंडल में दामिनीन वृंद-मध्य,
संयुत सितारन के भासमान शीत भानु।[3]

चली मोहन सो मिलन निशि नील पट शिर धारि,
चाल गज-सम शाल करि उर बाल बाल बगारि,
प्रभा आनन जगमगै नौरतन बेंदी जानु,
मनहुँ घन की घटा मे युत चंद भो सित भानु।[4]

उपर्युक्त दोनो छंदो के अंतिम चरणों में उत्प्रेक्षालंकार है।

१—काशी-कवि-समाज, प्रथम भाग, १२वां अधिवेशन। (पृष्ठ १२०)
पूर्तिकार—रत्नाकर

२—साहित्य-दर्पण (१०-३८) कविराज विश्वनाथ।

३—काव्य सुधाधर, चतुर्थ प्रवाह, मार्च, अप्रैल, मई, सन् १८९८ ई०। (पृष्ठ २४)
पूर्तिकार—गंगाधर द्विजगंग।

४— " " " " "

५—साहित्य-दर्पण (१०-६६)

विभावनालंकार—"विभावना विना हेतुं कार्योत्पत्तिर्यदुच्यते ।"[५]

अर्थात् हेतु के विना यदि कार्य की उत्पत्ति का वर्णन हो, तो विभावना अलंकार होता है । उदाहरण—

कहत बनै ना कृष्ण देख कै अचंभो मोहि,
विना अंगराग दुति अंगन सवाई है;
वीरी विना अधरान छाई अरुनाई रहै,
जावक लगाये विना एड़िन ललाई है।
आंजै विन अंजन के नैन कजरारे रहें,
विन ही अतर भूरि सौरभ सुहाई है;
विन ही सिंगार छाई अंगन लुनाई रहे,
जबते नवेली अंग जोवन अवाई है।[१]

संदेहालंकार—"संदेह प्रकृतेऽन्यस्य संशयः प्रतिभोत्थितः ।"[२]

"अर्थात् प्रकृत उपमेय में अन्य अर्थात् उपमान के संशय को संदेहालंकार कहते हैं, परंतु उस संशय को कवि की प्रतिभा से उत्थित होना चाहिए । उदाहरण—

चंचला के देश घनश्याम कौ प्रवेश भयो,
रति के सदन के मदन सोभ छाई है;
कंजबन आतुर मधुप अभिराम आयो,
रूपधाम कैधौं रसराज सुघराई है।
कंजन की आकर में नीलमनि आभा धसी,
धूम धार कैधौं चंद्र - मंडल समाई है;
प्रेम अनुराग संधि अनुपम भाई किधौं,
मोहन की राधा के भवन में अवाई है।[३]

उपर्युक्त छंद में संदेहालंकार है ।

भ्रांतिमान अलंकार—"साम्यादतस्मिंस्तद्बुद्धिर्भ्रान्तिमान् प्रतिभोत्थितः ।"[४]

१—रसिक-वाटिका, भाग ४, क्यारी ८, नवंबर १९०० ई० । (पृष्ठ ५)
पूर्तिकार—कृष्ण कवि

२—साहित्य-दर्पण । (१०-३५)

३—रसिक-वाटिका, भाग ४, क्यारी ८, नवंबर १९०० ई० । (पृष्ठ ४)
पूर्तिकार—पूर्णजी

४—साहित्य-दर्पण । (१०-३६)

अर्थात् सादृश्य के कारण अन्य वस्तु मे अन्य वस्तु के निश्चयात्मक ज्ञान को यदि वह कवि की प्रतिभा से उत्थित हो—भ्रांतिमान अलंकार कहते हैं। उदाहरण—

अब तो न जैहों भूलि जमुना के तीर,
बडी है बलाइ तौन मुख ते कही न जाय,
बिंब फूल जानि आनि बैठे कुच कुंभन पै,
पीर बिन कीर मीर धहै अधरानि आइ।
ललित भुजंग भ्रमवैनी बगराई मोर,
सोरत मराल मुक्तमाल छल छाइ-छाइ।
चंद जानि मंद मति कोमल कपोलन पै,
चोच दै-दै भागत चकोर वृंद धाइ-धाई॥[1]

कहा कहौं आज मैं बिपिन ओर भूलि गई,
दशा देखि मेरी एरी करै को न हाय-हाय,
ब्यालो जानि मोरन विमोर डारे केश वेश,
बिंबमानि अधर शकुन काटे आय-आय।
कंज जानि दीन्हे हैं कपोलन भ्रमर डंक,
भागत मे खेद रतनेश रह्यो छाय-छाय,
कुंजन की ओर आइबे मे है कलेश येते,
नोचत है कीसन के वृंद तहाँ धाय-धाय[2]॥

उपर्युक्त दोनो छंदों मे भ्रांतिमान अलंकार की संयोजना हुई है।

अपह्नुति अलंकार—'जहाँ किसी पदार्थ का निषेध-पूर्वक अपह्नव (गोपन) कर किसी अन्य पदार्थ का स्थापन किया जाय, वहाँ अपह्नुति अलंकार होता है।' इसके ६ भेद हैं, जिनमें से कुछ के उदाहरण दिए जाते हैं—

बादर न होय चढी तोपैं चली आवति हैं,
गरज न होत फैली धुनि है अवाज की,
बूँदें ना परति, बरषत हैं विषीले बान
इंद्रधनु है ना है कमान रन-काज की।

१—रसिक वाटिका, भाग ३, क्यारी ३, २० जून, सन् १८९९ ई०। (पृष्ठ ३)
२— „ „ „ „ „ (पृष्ठ ९)
३—भारती भूषण (पृष्ठ ११३)

हरिऔध धुरवा न होय फाँस जेवरी है,
झरना लगी है झरी आयुध - समाज की;
बीजुरी न होय एरी बधन वियोगिनी की,
तीखन कृपान है मनोज महाराज की।[१]

प्रस्तुत छंद मे वर्षा का क्रिया-कलाप छिपाकर युद्ध का आरोप किया गया है। इसमें शुद्धापह्नति है। हेत्वपह्नुति का एक उदाहरण देखिए—

कंपित शरीर ऊनी वस्त्र तूल तेल प्रिय,
ताप और तमोल अब सभी को सुहाते हैं;
चलता समीर, दीन दशा सभी मानवों की,
आया है हेमंत, दंत-दल भिड़ जाते हैं।
शीत के प्रताप सभी सिकुड़े हुए 'मुकुंद',
भानु भगवान अग्निकोण में जड़ाते हैं;
कोहरा नहीं है, यह धूम सलिलानल का
भानु तापने को आग पानी में लगाते हैं॥[२]

प्रस्तुत छंद मे कोहरा उपमेय का "नहीं है......" पद द्वारा निषेध-पूर्वक गोपन कर धूम्र उपमान का स्थापन, सूर्य के जाड़ा लगने पर तापने के हेतु-सहित किया गया है, अतएव यहाँ पर हेत्वपह्नुति अलंकार है।

यथासंख्य अलंकार—"यथासंख्यमनुद्देश उद्दिष्टानां क्रमेण यत्।"[३] अर्थात् यदि कहे हुए पदार्थों का पुनः उसी क्रम से कथन हो, तो यथासंख्य अलंकार होता है। उदाहरण—

तन-दुति-दीपक पै धाय प्रान वारै कोऊ,
आनन-सरोज प्रेमी कोऊ रस-प्रेरे हैं;
दसन छटा की दामिनी पै मोहि नाचैं नाच,
कोऊ मंजु बानी ही सुनन-हेतु चेरे हैं।

१—काशी-कवि-समाज समस्यापूर्ति भाग २। (पृष्ठ ४५)

२—'भारती भूषण' (पृष्ठ ११७) लेखक श्रीअर्जुन दास केडिया। प्रस्तुत समस्या की पूर्ति पं० विश्वनाथप्रसादजी मिश्र ने की थी। सन् १९२६ ई० में कानपुर-कांग्रेस के अंतर्गत कवि-सम्मेलन हुआ था, जिसका सभापतित्व भानुजी ने किया था। प्रस्तुत समस्या उसी में दी गई थी, जिसकी पूर्ति पंडित जी ने की थी।

३—देखिए साहित्य दर्पण (१०-७९)

कोऊ काम माते मद गजगति देखि मेरी,
सुबरन बिना रूप लीन्हे देत फेरे हैं,
बापुरे ये पुर के पतग भृग बरही,
कुरग औ मतग सखी पीछे परे मेरे हैं ॥[1]

उपर्युक्त छद म तन-दुति-दीपक पै पतग प्राण बारते है आनन-सरोज का रस भृग ले रहे हैं दसन छटा की दामिनी पै मोहि बरही नाचते है, और मधु बाणी सुनने क लिये कुरग चेरे हो गए तथा गति देखकर मतग मुग्ध हो गए हैं। इस प्रकार प्रस्तुत छद मे ऊपर कहे हुए पदार्थों का क्रम से निर्वाह किया गया है अतएव यहाँ पर यथासख्य अलकार है।

परिसख्या अलकार— जहाँ किसी वस्तु को उसके योग्य स्थान से हटाकर किसी अन्य स्थान पर नियुक्त (स्थापित) किया जाय वहाँ परिसख्या अलकार होता है।[2] उदाहरण—

टोपी दूध-बोतलो में, गल्ला नीम-तरु में है,
दान पानदान, श्रमदान निवसत है,
नम्रता छिपी है जा वना की द्रुम-बेलियो में,
लज्जा के प्रसग में अकेली लाजवत है।
भाव हाट हाटक में ही अब सुनाई दत,
मेल दूध घी में, चीनी, नमक पिसत है,
प्रम पोथियो में, पूजा-व्रत नारियों मे अब,
बसा दखो पोथा ही बसतन बसत है।[3]

उपर्युक्त छन्द मे टोपी अपने योग्य स्थान सिर को छोडकर दूध की बोतलों पर सुशोभित हो रही है गल्ला केवल नीम के वृक्ष में ही पाया जाता है, दान का नाम अब केवल पानदान और श्रमदान के ही प्रसग मे लिया जाता है। इसी प्रकार लज्जा अब स्त्रियों को छोड़कर लाजवती पुष्प में ही देखने को मिलती है भाव कविता म नही रह गया प्रत्युत बाजार क प्रसग में ही सुनने को मिलता है

१—रसिक वाटिका भाग ३ क्यारी १२ मार्च सन् १९०० तक।

२—भारती भूषण। (पृष्ठ २७५)

३—प्रस्तुत छन्द की रचना डॉ० भगीरथ मिश्र ने बसत है समस्या की पूर्ति के रूप में की थी। यह समस्या अवध-साहित्य परिषद (लखनऊ) की बसत गोष्ठी मे जो बसत पचमी सन १९६० को आयोजित हुई थी दी गई थी।

मेल मनुष्यों में नहीं रह गया है, अब तो दूध, घी और चीनी आदि में ही मेल (मिलावट) देखने को मिलता है। प्रेम का नाम केवल पुस्तकों में ही देखने को मिलता है और पूजा-व्रत अब भक्तों और साधुओं में नहीं, प्रत्युत स्त्रियों तक ही सीमित रह गया है। इस प्रकार कवि ने प्रस्तुत छंद में वर्तमान स्थिति पर व्यंग्य करते हुए बड़ी कुशलता से परिसंख्या अलंकार का प्रयोग किया है।

व्यतिरेक अलंकार—जहाँ उपमेय में (उपमान की अपेक्षा) उत्कर्ष या उपमान में अपकर्ष दिखलाकर उपमेय की उत्कृष्टता (विशेषता) का वर्णन हो, वहाँ 'व्यतिरेक' अलंकार होता है।[1] उदाहरण—

वाकी कला भंग होत दिन में सदैव अरु,
याहि दिन-रैन माहिं एकरसता को है ;
वामें है कलंक ये निशंक अकलंकित है,
वाको लखो मंद यहु पूरन प्रभा को है।
वाको छित मंडल पै प्रकट प्रकाश तिहु-
पुर में उजास अवलोकियत याको है;
नैन की तुला पै धरि तौलो है मुकुंद मुख,
चंद ते दुचंद वृषभानु की सुता को है।[2]

उपर्युक्त छंद में उपमेय 'वृषभानु की सुता को मुख' से उपमान 'चंद' का अपकर्ष दिखलाया गया है, अतएव इसमे व्यतिरेक अलंकार हुआ।

प्रतीप अलंकार—प्रसिद्धस्योपमानस्योपमेयत्व प्रकल्पनम्।
निष्फलत्वाभिधानं वा प्रतीपमिति कथ्यते ॥[3]

अर्थात् प्रसिद्ध उपमान को उपमेय बनाना या उसको निष्फल बतलाना 'प्रतीप अलंकार' कहलाता है। उदाहरण—

गोरे गात अंगराग करिकै कपूर धूर,
कीन्हो अभिसार उर आनंद पसरिगो ;
साजे सेत भूषण जटित हीर भीरन सों,
तीरन रह्यो री तम देश ते निकरिगो।

१—भारती भूषण, श्रीअर्जुनदास केडिया। (पृष्ठ १७८)
२—रसिक वाटिका, भाग ३, क्यारी ७, २० अक्टूबर, सन् १८९९ ई०। (पृष्ठ १७)
३—साहित्य-दर्पण (१०-८७)

ब्रजराज हेतु साजि बादले की सारी
तामे मोतिन किनारी सा प्रकास इमि भरिगो ,
घूघट खुलत मुख तारापति भयो
नभ-तारन-समेत तारापति फीको परिगो ।।'

उपर्युक्त छन्द के अन्तिम चरण म प्रसिद्ध उपमान 'तारापति' को उपमेय बनाकर नभ के तारापति को निष्फल सिद्ध किया गया है अतएव यहाँ प्रतीप अलकार है ।

एकावली अलकार—जहाँ पूर्व कथित विशेष्य अर्थो म उत्तरोत्तर कथित अर्थों का विशेषण भाव से गृहीत मुक्त रीति पूर्वक स्थापन या निषेध किया जाय वहाँ एकावली अलकार' होता है ।' इसके दो भेद होते हैं—

(१) स्थापन (२) निषेध । यहाँ पर स्थापन का एक उदाहरण देखिए—

बास करै जल पै नित कच्छप कच्छप पै कस कोल भला ,
कोल पै शेष लसै सुख सो विधि शेष पै वेश धरी अचला
त्यो अचला पै हिमचल मजु हिमचल पै खरी धनु लला
धनु लला पर शभु विशाल है शभु प राजति चद्रकला ।।'

यहाँ पहले कहे हुए कच्छप आदि विशेष्या मे उनके पश्चात् धनु लला आदि शब्दो का विशेषण भाव सगृहीत मुक्त रीति-पूर्वक स्थापन हुआ है ।

व्याघात अलकार— व्याघात स तु केनापि वस्तु येन यथाकृतम् ।
तेनव चेदुपायेन कुरुतेऽन्यस्तदन्यथा ।।'

अर्थात् जो वस्तु किसी एक न एक प्रकार से सिद्ध की है दूसरा यदि उसी उपाय से उसी वस्तु को पहले से विपरीत कर दे तो व्याघात अलकार होता है ।
उदाहरण—

कीरन को भावै रस करुओ बकाइन को
नीम की निबौरी कटु कौवन को भावती

१—काशी कवि-समाज समस्यापूर्ति भाग २ । (पृष्ठ १२६)
२—भारती भूषण । (पृष्ठ २६४)
३—काव्य-सुधाकर (त्रैमासिक) प्रथम प्रकाश १८९८ ई० । (पृष्ठ ६)
४—साहित्य-दर्पण (१० ७८)

लगि कै गऊ के थन लखहू जलूका तिमि,
लोहू खैंच पीवै दूध मन ही न लावती।
सुधा-सी दवाई लगै रोगिनै हलाहल-सी,
दु:खद कुपथ्य वस्तु दूनो हुलसावती;
पूरन जू तैस ही सुरा की जहरीली धार,
मुख में सुरापी के पियूष बरसावती।[1]

प्रस्तुत छंद में रोगियों को सुधा-सी औषध हलाहल-सी लगती है अर्थात् सुधा के प्रभाव को विपरीत सिद्ध किया गया है, अतएव यहाँ पर 'व्याघात अलंकार' है।

विरोध अलंकार—जहाँ विरोधी पदार्थों का संसर्ग कहा जाय, वहाँ 'विरोध अलंकार' होता है।[2] उदाहरण—

चंपक बरन मंजु पंकज चरन दुति,
हंसक सहित गति हंसन सिखावती;
दीन विखईन को मलीन जानि मानि ग्लानि,
पीन कुछ छीन कटि पटन छिपावती।
हारन शृंगारन के हीरन हजारन सों,
अंबर रसित जनु तारन उगावती;
सुखमा को कंद पूर्ण चन्द सों मुखारबिंदु,
बचन अनंद सों पियूष बरसावती।[3]

प्रस्तुत छंद के अंतिम चरण में चंद्र और अरबिंद, जो एक दूसरे के विरोधी हैं, एक ही स्थान पर रख दिए गए हैं, अतएव यहाँ पर 'विरोध अलंकार' है।

मीलित अलंकार—"मीलितं वस्तुनो गुप्तिः केनचित्तुल्यलक्षणा।"[4]

अर्थात् किसी तुल्य लक्षण वस्तु से किसी के छिप जाने पर 'मीलितालंकार' होता है। जैसे—

१—रसिक वाटिका, भाग १, क्यारी ५, १८९७ ई०।

२—भारती भूषण। (पृष्ठ २१२)

३—रसिक वाटिका, भाग १ क्यारी ५, २०।८।१८९२ ई०। (पृष्ठ १०)

४—साहित्य-दर्पण—१०-८९।

पट सुदर सेत सजे तन मे प्रति अगन अग आभूषण धारे,
सित भाल विशाल गरे बिच डाल सुबाल किहूँ विधि सेत सँवारे,
सित देखि के छदा सुचाँदनी चद की चद्रमुखी मन में मुदधारे,
चुप जाति चली मिलिबे मनमोहन लोग खरे सब हेरत हारे।'

प्रस्तुत छद म शुक्ताभिसारिका नायिका मनमोहन से मिलने के लिये चली गई, किंतु सभी लोग खड़े ही रहे और उसे पहचान न सके। नायिका का शारीरिक सौंदय चाँदनी मे इस प्रकार मिल गया कि दोनो एक ही गए, अतएव यहाँ पर 'मीलितालकार' हुआ।

मुद्रालकार—"जहाँ प्रस्तुतार्थ प्रतिपादिक शब्दो से किसी अन्य सूचनीय अर्थ का भी बोध कराया जाय, वहाँ 'मुद्रालकार' होता है।' उदाहरण—

मेघ देस-देस नटखट आसा पूरि आए,
कान्हर लै गूजरी हिंडोरे छवि-छाकी है,
दीप-दीप भैरव भए हैं नारि-वृदन सो,
ललित सुहाई लीला सारग-छटा की है।
स्यामल तमाल कोस-कोस लौं कुमोद कीन्हो,
'अबादत्त' सोहनी त्यो छाया बदरा की है,
कोऊ सुघरई सो श्रीकृष्ण को जू पाओ तब,
आली! या कल्यान को बहार बरषा की है।'

कवि ने प्रस्तुत छद मे वर्षा ऋतु-प्रतिपादक शब्दों से मेघ, देश, नट, खट, आशा, पूरिया, कान्हरा, गूजरी, हिंडोल, दीपक, भैरव, ललित, सूहा, लीलावती, सारग, श्याम, मालकोश, कौसिया, कामोद, सोहनी, छाया, सुघरई, श्री, अलैया, कल्याण और बहार राग रागनियो के नाम भी सूचित कर दिए हैं, अतएव यहाँ पर 'मुद्रालकार' का प्रयोग हुआ है। मुद्रालकार का दूसरा उदाहरण देखिए—

पचानन, सूकर, अवी, तेंदुआ, रीछ, लुलाय,
मारजार है लोमरी, गज, बकरी, हरि गाय,

१—काव्य सुधाधर (मासिक) १०-११वाँ प्रकाश, अक्टूबर, नवबर, १९०२ ई०।

२—भारती भूषण। (पृष्ठ ३१५)

३—काशी-कवि-समाज, प्रथम भाग, १२वाँ अधिवेशन।

कुत्ता, केहरि, सूकरें, हरिना, मेंख, लुलाय;
मारजार है लोमरी, गज, बकरी, हरि गाय ।[1]

अलंकारों के उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि समस्यापूर्ति-काव्य में अलंकारों का सम्यक् प्रयोग हुआ है। चमत्कार-मूलक अलंकारों का समस्यापूर्ति-काव्य में अधिक प्रयोग हुआ है। ऐसे अलंकारों में मुख्य रूप से अपह्-नुति, संदेह, प्रतीप एवं उत्प्रेक्षा हैं, जिनका प्रयोग अधिक हुआ है। परिसंख्या, यथासंख्या एवं उन्मीलित अलंकारों का भी कवियों ने यत्र-तत्र प्रयोग किया है। सारांश यह कि अलकार-प्रयोग में यह काव्य अपना समुचित स्थान रखता है।

ध्वनि

काव्य के विभिन्न सिद्धांतों में, भारतीय दृष्टिकोण से, सर्वोपरि एवं सर्व-व्यापक सिद्धांत ध्वनि का माना गया है, क्योंकि इसके अंतर्गत अलंकार, रस उक्ति-वैचित्र्य आदि सभी विशेषताओं को अपने अंतर्गत समाविष्ट कर लेने की विशेषता सिद्ध हुई है। ध्वनि व्यंग्यार्थ-प्रधान होती है। व्यंग्यार्थ होने से किसी भी काव्य में जो रमणीयता और चमत्कार आ जाता है, वह अपना विशिष्ट आकर्षण रखता है। साथ-ही-साथ शब्द-शक्तियों के विश्लेषण द्वारा शब्दार्थ-संबंध की जो विलक्षणता और कमनीयता रहती है, वह अन्य सिद्धांतों में प्रत्यक्ष नही होती। अतएव समस्यापूर्ति काव्य जो कि शब्दार्थ-संबंध की विशेपता रखता है, ध्वनि की दृष्टि से भी अध्ययन एवं विश्लेपण की अपेक्षा रखता है, अतः समस्यापूर्ति साहित्य में ध्वनि का स्वरूप किस प्रकार पाया जाता है अर्थात् व्यंग्यार्थ का चमत्कार किस प्रकार से अंतर्निहित है, इसको स्पष्ट करने का यहाँ प्रयत्न किया जाता है।

ध्वनि के असंख्य भेद हैं, परंतु भेद-अभेद की जटिलता एवं ध्वनि-सिद्धांत की शास्त्रीय प्रणाली के आधार पर उस विश्लेपण को शास्त्रीय बनाने की अपेक्षा उसकी रोचकता और रमणीयता का व्यंग्यार्थ एवं ध्वन्यान्वेषण का स्वच्छंद प्रयत्न अधिक रोचक होगा, अतएव समस्यापूर्ति-काव्य के उत्कृष्ट उदाहरणों में ध्वनि अथवा व्यंग्यार्थ-चमत्कार किस प्रकार का है, यह यहाँ स्पष्ट किया जाता है।

सबसे पहले हम अभिधा पर आधारित चमत्कार-पूर्ण व्यंग्यार्थ से प्राप्त होने-वाली असंलक्ष्यक्रम व्यंग्यध्वनि या रसध्वनि का उदाहरण लेते है—

१—द्विजेश-दर्शन—लेखक श्रीबलरामप्रसाद मिश्र 'द्विजेश'। (पृष्ठ ७१)

सुनि सौंह आवन की ललिता हरपयुत,
आरसी समक्ष करि बारन सुधारै लगी,
पारै लगी पटियान धारै लगी सिंदुरहि,
फारै लगी पटकन बेसरि सँवारै लगी।
टारै लगी सखियान बारै लगी दीप-बाति,
हरदेव कलिका प्रयक पर धारै लगी,
मोहन न आये प्रात चिरियाँ पुकारै लगी,
मारै लगी मन तौ निशाकर निहारै लगी।[1]

उपर्युक्त छद मे 'असलक्ष्यक्रम व्यग्यध्वनि' है। असलक्ष्यक्रम व्यग्यध्वनि के विषय मे विद्वानों का कथन है कि जहाँ पर वाच्यार्थ ग्रहण करने का क्रम लक्षित नहीं होता, हम यह अनुभव नहीं करते कि यह वाच्यार्थ है और उसके बाद यह व्यग्यार्थ है, वहाँ यह ध्वनि होती है। इसमे व्यग्यार्थ के आगे-पीछे का ध्यान नहीं रहता। वाच्यार्थ के ग्रहण करते ही हम व्यग्यार्थ से अभिभूत हो जाते हैं।[2] इसके आधार पर छद को पढ़ते ही पहले वाच्याथ फिर व्यग्यार्थ समझने का क्रम लक्षित नही होता, वरन् वाच्यार्थ के साथ ही व्यग्यार्थ-रूप मे हर्ष, उत्कठा आदि सचारी प्रारभ मे और अतिम पक्ति मे नैराश्य और विषाद भाव प्रतीत होते हैं, और वही प्रधान है, अत यह भाव-ध्वनि है। व्यग्य से यह लक्षिता नायिका है। असलक्ष्यक्रम व्यग्यध्वनि का एक दूसरा उदाहरण देखिए—

आई देखि जब ते गोविंद जु को गोकुल में,
तब ते न चैन छिन एक हू घरी रहै,
ऊझि-ऊझि भरती उसासैं धरती न धीर,
बिछलि परैं ज्यो नीर-हीन सफरी रहै।
बूझै तैं न बोलति न खोलती हिये को भेद,
जगली मलोल तें ही खेदन खरी रहै,
आली शोकशाला में बिचारी ब्रजबाला वह,
मजु मालती की मली 'माला-सी परी रहै'॥[3]

१—काव्य सुधाधर, द्वितीय वर्ष, प्रथम प्रकाश, जून, अगस्त, १८९८ ई०,
—हरदेवबक्स।

२—देखिए काव्य शास्त्र, डॉ० भगीरथ मिश्र। (पृष्ठ २४५)

३—काशी-कवि-मडल (समस्यापूर्ति) प्रथम भाग, १०वाँ अधिवेशन, सं० १९५३ वि०।

प्रस्तुत छंद में असंलक्ष्यक्रम व्यंग्यध्वनि का समावेश हुआ है। छंद में वाच्यार्थ और फिर व्यंग्यार्थ का क्रम नहीं, वरन् वाच्यार्थ के साथ-साथ व्यंग्यार्थ रूप में विरह शृंगार प्रतीत होता है। "गोबिंद जु" आलंबन तथा व्रजबाला आश्रय है, जिसके हृदय में वियोग की भावना उत्पन्न हुई है। इस प्रकार हम देखते हैं कि उपर्युक्त छंद में विरह-शृंगार के रूप में असंलक्ष्यक्रम व्यंग्यध्वनि का प्रयोग हुआ है। प्रस्तुत ध्वनि से संबंधित एक और उदाहरण देखिए—

चलि चंचलता तजि पाहन को सो बसी दृग द्वै जल जातन में,
कटि छीन ह्वै लीन नितंब भई कि गई बँटिकै उर जातन में;
ललिते तिय के तन पानिप की सरि मानों बड़ी बरसातन में,
सुघराई चढ़ै लगी गातन में मधुराई मढ़ै लगी बातन में॥[1]

उपर्युक्त छंद में उद्दीपन भाव के कारण असंलक्ष्यक्रम व्यंग्यध्वनि है। इसमें 'युवावस्था का सौंदर्य' व्यंग्य है।

अब दूसरा उदाहरण संलक्ष्यक्रम व्यंग्यध्वनि का दिया जाता है—

नैनन सों कंजन को खंजन को गंजन कै,
मृगन को मीनन को बन में बिहारै लगी;
अधर ललाई बिंब बिद्रुम लजावै लगी,
गति सों मराल औ' गयंद गति हारै लगी।
द्युति दरसाय दन्त दाड़िम दरारै लगी,
लोनी लट हेरि गार पन्नगी सिधारै लगी;
टारै लगी आरसी दिपति तन देखि-देखि,
आनन सों निंदित निशाकर निहारै लगी॥[2]

उपर्युक्त छंद मे प्रतीप अलंकार है। इसमें प्रसिद्ध उपमान उपमेय द्वारा निरादृत हो गए है, परंतु उसका कारण अंग-प्रत्यंग का सौंदर्य है, अतः इस प्रतीप अलंकार के द्वारा अंग-प्रत्यंग का सौंदर्य व्यंग्य है, इस कारण अलंकार से वस्तु व्यंग्यध्वनि है। इसी अलंकार से वस्तु व्यंग्यध्वनि का दूसरा उदाहरण देखिए—

वेनी को बिलोकि नाग पेट को घिसत पुनि,
भाल को बिलोकि चंद अभ्र में अटकिगो;

१—रसिक वाटिका, भाग ३, क्यारी ४, २० जुलाई, १८९९ ई०।
२—काव्य-सुधाधर, द्वितीय वर्ष, प्रथम प्रकाश, जून, जुलाई, अगस्त, १८९८ ई०—भारतसिंह

भौंह को विलोकि काम मानस तें मान तजि,
विमल विजय चापपान ते पटकिगो ।
नाक को निरखि दीप सीस को डुलात पुनि,
लोचन विलोक मृग बन में सटकिगो
गोबिंद सुकवि तैसे राधिका रसाल तेरे,
उन्नत उरोज लखि श्रीफल चटकिगो ।'

प्रस्तुत छंद मे भी प्रतीप अलकार के सयोजन से अलकार से वस्तु व्यग्यध्वनि है। अलकार मे वस्तु व्यग्यध्वनि का एक और उदाहरण देखिए—

सोहत रसीले अरसाले अलमस्त हैं पै,
पूरित उमग प्रेम जग में जुरे परे,
काढि लेत कातिल करेजो निरशक ह्वै पै,
लाज - बस काहू छन दबकि दुरे परें।
जोर जरबीले गरबीले औ' हठीले हैं पै,
सनिकै सनेह माँहि ललकि लुरे परें,
मृगमान मोचन ए चाहैं मन गोचन पै,
लोचदार लोचन सकोचन मुरे परे ।।'

उपर्युक्त छद मे विरोधाभास अलकार से नेत्रों का सौंदर्य व्यग्य है, अतएव प्रस्तुत छद मे सलक्ष्यक्रम व्यग्यध्वनि है। अब वस्तु से वस्तु व्यग्यध्वनि के कुछ उदाहरण देखिए—

मूढ महा मदिरा पी त्रिवेणी,
अन्हायबे को मुखसो कह्यो जायक,
सो न गयो कहूँ शभु नारायण,
बीचहि आय धर्यो यम धायक।
लैकर चक्र त्रिशूलरु शक्ति,
त्रिदेवन के गण नैन रुठायक,

१—काशी-कवि-मडल (समस्यापूर्ति) प्रथम भाग, ९वाँ अधिवेशन।
—गोबिंद गिल्ला भाई

२—रसिक-रहस्य, मई १९१० ई०—'सनेही'।

यों यमराज को जाइ ग्रस्यो ज्यों कुमा,
शशि को रवि को निशि नायक ॥[१]

प्रस्तुत छंद में माहात्म्य व्यंग्य है, अतः वस्तु से वस्तु व्यंग्यध्वनि है। इसी प्रकार वस्तु से वस्तु व्यंग्यध्वनि के अन्य उदाहरण देखिए—

नारिन के काज करि जानत न नीके तें,
अनारिन के साथ सीखे कारज अनारी के;
गाढ़े करि छान्यों लाख लाखि मा मिलान्यों रहो,
हाय कैसे लेख लिखे निपट गँवारी के।
रंग न सुरंग लसै गहरी ललाई अति,
सुलुप सुढार अंग संगिनि हमारी के;
हाहा हठि नाइनि निहारु तौ निहोरे लखु,
जावक के भार पग उठत न प्यारी के।[२]

उपर्युक्त छंद में जावक के भार से पैर न उठने के कार्य द्वारा अतिशय सुकुमारता व्यंग्य है, अतः वस्तु से वस्तु व्यंग्यध्वनि का प्रस्तुत छंद में समावेश हुआ है।

कामरी ओढ़े इतै चले आवत रावरे को तौ कछू नहीं भै है;
जो कहूँ टूटिहै मोतीकि माल तौ नंद बबा को धनीपनो जैहै।
दूरि रहो व्रजराज खरे उत मोहि इतौ अठिलैबो न भैहै;
साँवरे छैल छुओगे जो मोहि तो गातन मोरे गुराई न रैहै।[३]

यहाँ नायिका व्रजराज से दूर खड़े रहने की बात कहती है। उसका तात्पर्य है कि हे व्रजराज, तुम अस्पृश्य हो, छूने लायक नहीं हो। नायिका के इस कथन में कालिमा और गोरेपन दोनो व्यंग्य हैं। वस्तु से वस्तु व्यंग्य होने के कारण यहाँ संलक्ष्यक्रम अलंकार व्यंग्यध्वनि है।

१—काव्य-सुधाधर, तृतीय वर्ष, प्रथम प्रकाश, जून, जुलाई, अगस्त, १८९८ ई०—शिवनाराण शुक्ल

२—काव्य-सुधाधर, (त्रैमासिक) द्वितीय वर्ष, प्रथम प्रकाश, सन् १८९८ ई०। (पृष्ठ ४२)—व्रजराज

३—माधुरी, जनवरी-जून, १९३१ ई०। (पृष्ठ ८२०)—व्रजराज

पुतलीघर, अंजन, रेल, जहाजन की लखिये जग पाँति खरी,
सब खेल प्रवीनता ही कौ अहै पुनि उद्यम चाहिये साठ घरी।
जिनि लोह औ' कोयला ही की बदौलत दौलत खैंच के भौन भरी,
प्रिय भारतवासियो ! सीखो कछू अमरीका फिरंग की कारीगरी॥[1]

यहाँ पर लोहा और कोयला का तात्पर्य मशीनों से है अर्थात् लोहे और कोयले से दौलत खींच ली गई है। इसका लक्ष्यार्थ हुआ कि मशीनों द्वारा धन उपलब्ध किया गया है। यहाँ पर व्यंग्यार्थ लक्ष्यार्थ पर आश्रित है, अतएव यह लक्षणा मूलाध्वनि है। प्रस्तुत छंद में 'भारत का औद्योगिक विकास करो' यही व्यंग्य है। उपर्युक्त ध्वनि का यह अर्थान्तर संक्रमित भेद है, क्योंकि उपर्युक्त छंद में वाच्यार्थ अपना पूर्ण तिरोभाव न करके अपना अर्थ रखते हुए भी अन्य अर्थ में संक्रमण करता है। इस विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि प्रस्तुत छंद में अर्थान्तर संक्रमित लक्षणा मूलाध्वनि है।

सेतताई जह्नुजा असितता तरनिसुता,
लालिमा दृगनि भारती निहारियतु है,
संगम तिहूँ को मिलै पुन्यथल पूरो होत,
अचरज हेरि कै हिए बिचारियतु है।
भृकुटी चढ़ाय कै अनख भरी आली कंत,
पीतम पै कुटिल कटाक्ष डारियतु है,
अनुचित-उचित सँभार करिबे हूँ अरी,
तीरथ के तीर काहू तीर मारियतु है।[2]

प्रस्तुत छंद में सारोपा गौणी लक्षणा पर आधारित व्यंजना है, जिससे अर्थ निकलता है कि नेत्र त्रिवेणी हैं, किन्तु यह लक्ष्यार्थ है। व्यंग्यार्थ से यह आशय निकलता है कि जिस प्रकार बड़े पुण्य से तीर्थ के दर्शन होते हैं, उसी प्रकार बड़े पुण्य से नेत्रों के दर्शन हुए अथवा इनके दर्शन से बड़ा सुख मिला। अंतिम चार पंक्तियों में वाच्यार्थ से स्पष्ट होता है कि तीर्थ के किनारे किसी को दुख नहीं दिया

१—रसिक वाटिका, भाग ४, क्यारी २, मई सन् १९०० ई०।
—राय देवीप्रसाद 'पूर्ण'।

२—माधुरी, वर्ष ९, जनवरी जून, १९३१। (पृष्ठ ८३०)—ब्रजराज

जाता, जिसका व्यंग्यार्थ यह हुआ कि तुम भी स्नेह-भाव को प्रकट करो और रोप त्याग दो। तुम्हारा शरीर नेत्र-रूपी त्रिवेणी के साथ होने से सदैव तीर्थ है, अतः तुम्हें कभी रोष नहीं करना चाहिए—यही व्यंग्यार्थ है।

सब झूठी फुरी बतियाँ गढ़ि कै सिगरे ब्रज में मिल बाँटति हैं,
करिहैं हम सोई जो ठानि चुकीं, वह नाहक ही हमें डाटति हैं।
मिलकै सब आपस में ये 'ललाम' चवाव के ठाटन ठाटति हैं,
हम तो ब्रजराज की ह्वै चुकी हैं ये लिये कुलकानि को चाटति हैं।[1]

उपर्युक्त छंद में तात्कर्म्य सबंध से शुद्धालक्षणा है। यह कुलकानि को उसी तरह अपनाए हुए है, जैसे किसी भी वस्तु को अपनाया जाता है—यह लक्ष्यार्थ है। चाटते हैं, मानो उन्हें उससे बहुत प्रेम है—यह व्यंग्य है। अब हम यहाँ ध्वनि के प्रसंग में गुणीभूत व्यंग्य के एक-दो उदाहरण देकर प्रस्तुत विषय को समाप्त करते हैं।

गुणीभूत व्यंग्य

जहाँ व्यंग्यार्थ वाच्यार्थ से अधिक चमत्कारक न होकर गौण होता है, वहाँ गुणीभूत व्यंग्य होता है। इसके आठ भेद होते हैं—

(१) गूढ़, (२) अपरांग व्यंग्य, (३) वाच्य सिद्ध्यंग व्यंग्य, (४) अस्फुट व्यंग्य, (५) संदिग्धप्राधान्य व्यंग्य, (६) तुल्य-प्राधान्य व्यंग्य, (७) काक्वाक्षिप्त व्यंग्य, (८) असुंदर व्यंग्य। इनमें से अस्फुट व्यंग्य का एक उदाहरण यहाँ दिया जाता है—

भागीरथी तेरी महिमा को मैं बखानौ कहा,
हारे सेस सारद निगम जाहि गाय-गाय;
परसत पाँयन सों चारु भुज धारि-धारि,
चढ़िकै गरुड़ बैठो विष्णु लोक जाय-जाय।
डारि मुख माँहि बुंद वारिक कमंडल ते,
चारि मुख वारे बन जात हंस पाय-पाय;
सीस पै चढ़ाय नीर पंचमुख बनै कोउ,
बैल पे सवार जायँ शिव-लोक धाय-धाय।

१—देखिए काव्य-कुंज, सं० १९८४ वि०—पं० बाबूलालजी शर्मा 'ललाम'

प्रस्तुत छंद में वाच्यार्थ ही मुख्य है और व्यंग्यार्थ अत्यंत अस्फुट। अतएव यहाँ गुणीभूत व्यंग्य है।

ध्वनि के उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि समस्यापूर्ति-काव्य में ध्वनि के अनेक प्रयोग हुए हैं। इनमें असंलक्ष्यक्रम व्यंग्यध्वनि एवं संलक्ष्यक्रम व्यंग्यध्वनि के प्रयोग अधिक मिलते हैं। इस दृष्टि से हम कह सकते हैं कि समस्यापूर्ति काव्य ध्वनि की कसौटी पर भी कसा जाने योग्य उत्तम काव्य है।

उक्ति वैचित्र्य

काव्य के अंतर्गत उक्ति-वैचित्र्य हमारे चित्त को चमत्कृत करनेवाली वृत्ति है। वचन भंगिमा अथवा उक्ति-वैचित्र्य का संस्कृत-साहित्य में बड़ा महत्त्व रहा है। आचार्य कुंतक का संपूर्ण वक्रोक्ति सिद्धांत इसी उक्ति-वैचित्र्य पर आधारित है। अपने 'वक्रोक्ति-जीवितम्' ग्रंथ के प्रथम उन्मेष में वक्रोक्ति का स्वरूप स्पष्ट करते हुए कुंतक कहते हैं—

"वक्रोक्तिरेव वैदग्ध्यभंगी भणितिरुच्यते।"

इस प्रकार वक्रोक्ति का महत्त्व स्पष्ट कर कुंतक ने इसे काव्य की आत्मा माना है।

'चमत्कारोत्पादन' को काव्य का एक आवश्यक गुण मानते हुए क्षेमेंद्र ने कहा है—

"न हि चमत्कार विरहितस्य कवे
कवित्वं काव्यस्य वा काव्यत्वम्।"

अर्थात् यदि कवि में चमत्कार उत्पन्न करने की शक्ति नहीं है, तो वह कवि नहीं है, और यदि काव्य चमत्कार-पूर्ण नहीं है, तो काव्य में काव्यत्व नहीं। आचार्य कुंतक ने वक्रोक्ति को 'काव्य जीवितम्' मानते हुए भी ध्वनि एवं रस को पूर्णतया छोड़ नहीं दिया। उन्होंने 'वक्रोक्ति-सिद्धांत' को एक व्यापक अर्थ में ग्रहण करते हुए ध्वनि को भी इसी के अंतर्गत माना है। उनकी वक्रता के अंतर्गत वाक्य-वैचित्र्य की वक्रता तथा वस्तु-वैचित्र्य की वक्रता दोनों आ जाती हैं। हम इस सिद्धांत को वहीं तक ग्रहण कर सकते हैं जहाँ तक यह हमारे भावों की अनुरूपता प्राप्त करता है और हमारी मार्मिक अंतर्वृत्ति से संबंधित है। परंतु आचार्य क्षेमेंद्र का उपर्युक्त कथन कोरे चमत्कारवाद का द्योतक है। यह कथन उन चमत्कार-वादियों को भले ही तथ्य-पूर्ण एवं न्याय-संगत मालूम होता हो, जिनकी आँखों के

सामने से काव्य का प्रकृत स्वरूप ओझल हो गया हो अथवा जिन्होंने अद्भुत रस को ही काव्य का सर्वस्व मान रक्खा है।[१]

चमत्कार-प्रतिपादन की यह परंपरा परवर्ती काल में आचार्य केशवदास द्वारा हिंदी-काव्य में विकसित हुई। केशवदासजी ने लगभग सभी प्रकार के चमत्कार को अपनाया। "चमत्कार-प्रयोग से तात्पर्य यहाँ उक्ति-वैचित्र्य के प्रयोग से ही है। उक्ति-वैचित्र्य के अंतर्गत वर्ण-विन्यास की विशेषता (जैसे, अनुप्रास में), शब्द-क्रीड़ा (जैसे, श्लेष, यमक आदि में) वाक्य की वक्रता या वचन-भंगी (जैसे, काव्यार्थापत्ति, परिसंख्या, विरोधाभास, असंगति आदि में) तथा अप्रस्तुत वस्तुओं का अद्भुतत्व अथवा प्रस्तुत वस्तुओं के साथ उनके सादृश्य या संबंध की अनहोनी या दूरारूढ़ कल्पना (जैसे, उत्प्रेक्षा, अतिशयोक्ति आदि मे) इत्यादि बातें आती हैं।"[२]

उक्ति-वैचित्र्य का उपयोग यदि भाव की तीव्रता बढ़ाने के लिये किया जाता है, तो काव्य में उसका विशिष्ट स्थान है। उक्ति-चमत्कार अथवा सूक्तियाँ कहने-वाले की वेदना को प्रत्यक्ष कर श्रोता के हृदय में सहानुभूति भर देती है। यदि श्रोता का हृदय उक्ति-कथन से भाव-विह्वल न हो जाय, तो उससे कहने का स्वाद ही क्या ? ऐसा न माननेवालों को कवि वोधा के वचनों पर ध्यान देना चाहिए—

"कवि वोधा कहे मैं सवाद कहा, को हमारी कही पुनि मानतु है,
हमें पूरी लगी कि अधूरी लगी, यह जीव हमारोइ जानतु है।'

जिस उक्ति से श्रोता भाव-विह्वल न हो, वह काव्य कहलाने की अधिकारिणी भी न होगी। सूक्तियाँ वही सरस कही जा सकती हैं, जिनका मानव-मनोभावों से सीधा लगाव रहता है। "अपने 'रत्नावली' नाटक में हर्षदेव कहते है—"वसंत पहले लोगों के चित्त को कोमल बनाता है और उस कोमलीभूत चित्त में प्रेम का देवता आसानी से अपने पुष्प-वाणों को चुभा देता है—

१—रसे सारश्चमत्कारः सर्वत्राप्यनुभूयते।
तच्चमत्कारसारत्वे सर्वत्राप्यद्भुतो रसः॥
(नारायण पंडित) रस-मीमांसा—आचार्य शुक्ल

कुछ विद्वानों ने धर्मदत्तजी को प्रस्तुत श्लोक का रचयिता माना है। देखिए—मतिराम-ग्रंथावली (पृष्ठ ३३) प्रकाशक : गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय, लखनऊ

२—देखिए चिंतामणि, प्रथम भाग, आचार्य शुक्ल (पृष्ठ १६८)

३— „ साहित्य का मर्म—आ० हजारीप्रसाद द्विवेदी

इह पढमें महुमासो जनस्स चित्ताइ कुणइ मिउलाई,
पच्छा विज्झइ कामो लद्धप्पसरेहि बाणेहि।

"भावों की सहायता के लिये सूक्तियाँ भी बहुत कुछ वही काम करती है, जो वसंत प्रेम के देवता की सहायता के लिये करता है।"[1]

यह कथन सत्य है कि चुटीली उक्तियाँ हमारे मर्मस्थल को आहत कर उनमें एक 'टीस' भर देती हैं, पर उक्ति के लिए यह आवश्यक नहीं कि वह सदा विचित्र या लोकोत्तर हो। उक्ति ऐसी हो, जो कभी हमारे कानों में न पड़ी हो या अधिकतर लोक विश्रुत न हो।

किसी वस्तु के वर्णन में जब कवि, बुद्धि के प्रयास से, किसी ऐसे प्रसंग की योजना करना चाहता है, जो बिल्कुल नया एवं विलक्षण हो, तो इस विलक्षणता एवं नवीनता के कारण श्रोता अथवा पाठक के हृदय में एक प्रकार का कौतूहल उत्पन्न होगा। यह कौतूहल उत्पन्न करना ही चमत्कार का उद्देश्य होता है। रस संचार करनेवाले वर्णनों अथवा कथनों में भी कभी कभी कुछ असाधारण मार्ग का अवलंबन किया जाता है, पर यह आवश्यक नहीं कि जिस प्रसंग की योजना की जाय, वह पाठक को नया, अनूठा अथवा विलक्षण लगे। उसके लिए यही आवश्यक है कि वह अपने मर्मस्पर्शी स्वरूप के कारण भाव की गहरी व्यंजना करे या श्रोता के हृदय में वासनारूप में स्थित किसी भाव को जाग्रत् करे।

सूक्ति एवं शुद्ध काव्य में आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने जो भेद किया है, उसे यहाँ उद्धृत करना समीचीन होगा—

'ऐसी उक्ति, जिसे सुनते ही मन किसी भाव या मार्मिक भावना (जैसे, प्रस्तुत वस्तु का सौंदर्य आदि) में लीन न होकर एकबारगी कथन के अनूठे ढंग, वर्ण-विन्यास या पद-प्रयोग की विशेषता, दूर की सूझ, कवि की चातुरी या निपुणता का विचार करने लगे, वह काव्य नहीं 'सूक्ति' है। बहुत से लोग काव्य और सूक्ति को एक ही समझा करते हैं। पर इन दोनों का भेद सदा ध्यान में रहना चाहिए। जो उक्ति हृदय में कोई भाव जाग्रत् कर दे या उसे प्रस्तुत वस्तु या तथ्य की मार्मिक भावना में लीन कर दे, वह है 'काव्य'। जो उक्ति केवल कथन के ढंग के अनूठेपन, रचना वैचित्र्य, चमत्कार, कवि के श्रम या निपुणता के विचार में ही प्रवृत्त करे, वह है 'सूक्ति'।"[2]

१—साहित्य का मर्म—आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी।
२—चिंतामणि, प्रथम भाग (पृष्ठ १७१)—आचार्य शुक्ल।

इस प्रकार काव्य की सर्वमान्य परिभाषा 'वाक्यं रसात्मकं काव्यम्' के अनुसार जिस उक्ति में रसात्मकता का पुट अधिक होगा, वही काव्य के अन्तर्गत मानी जायगी। जिस उक्ति में केवल कथन की विचित्रता होगी, वह सूक्ति कही जायगी। विद्वानों ने सूक्ति के लिये चार तत्वों की आवश्यकता मानी है—

(१) वचन-वक्रता हो।

(२) प्रत्युत्पन्नमतित्व अपेक्षित है।

(३) अनुभव तथा ज्ञान संक्षेप में व्यक्त हो।

(४) दृष्टांत ढूंढ़ लाने की क्षमता हो।

सूक्ति मे दृष्टांत की बड़ी महत्ता है। आचार्य शुक्ल ने कहा है—"यदि वचन-विदग्धता तलवार है, तो दृष्टांत उसकी मूठ।"

सूक्ति के उपर्युक्त गुण उसके स्वरूप को और भी स्पष्ट कर देते हैं। काव्य में रसात्मक एवं चमत्कारात्मक दोनों प्रकार के वाक्यों की आश्वकता है। दोनों मिलकर ही काव्य के स्वरूप को निर्धारित करते है। दोनों के समन्वित भाव को दृष्टिगत करके ही अग्निपुराणकार ने कहा है—

'वाग्वैग्ध्यप्रधानेऽपि रस एवात्र जीवितम्।'

आचार्य हजारीप्रसाद द्ववेदी भी उक्त मत की पुष्टि करते हुए कहते हैं—

"अर्थ की वक्रिमता को प्रकट करनेवाली सूक्तियाँ मनुष्य के चित्त में गुदगुदी जरूर उत्पन्न करती हैं, साहित्य में उनकी आवश्यकता भी होती है। इन सूक्तियों के सहारे कोमलीकृत चित्त में कवि सहज ही भावों को प्रवेश करा देता है। वृहत्तर मानव-जीवन को गाढ़ भाव से उपलब्ध कराने में सूक्तियाँ सहायक होती है, परंतु उससे विच्छिन्न होने पर उनकी उपयोगिता कम हो जाती है। नाटक, काव्य और उपन्यास में ये बहुत उपयोगी होती हैं, क्योंकि इनके विना पाठक का चित्त भाव को ग्रहण करने में तत्परता नहीं दिखाता।"[१]

वाग्वैदग्ध्य अथवा उक्ति-वैचित्र्य के विषय में उपर्युक्त कुछ भारतीय विद्वानों के मत स्पष्ट किए गए हैं। अब कुछ पाश्चात्य विद्वानो का मत भी जान लेना आवश्यक होगा।

हॉब्स के मतानुसार मनुष्य की वाणी से चार शास्त्र उत्पन्न होते हैं। इनमें से पहला काव्य-शास्त्र (Poetics), दूसरा वक्तृत्व-शास्त्र (Rhetorics), तीसरा तर्क-शास्त्र (Logic) और चौथा व्यवहार-शास्त्र (Science of Justice)

१—साहित्य का मर्म—आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी।

है ।' इनमे वक्तृत्व शास्त्र के विषय मे अरिस्टाटल का मत है कि उसका उपयोग मुख्यत चार प्रकार का होता है—एक कुतर्क की दुरुस्ती या शुद्धि करने के लिये, दूसरे शिक्षा देने के लिये, तीसरे यथार्थ सुझाने के लिये और चौथे वाद-विवाद मे आत्म-रक्षा करने के लिये। इनमे से अधिकाश हमारे यहाँ सूक्तियो के अतर्गत आ जाते हैं। अरिस्टाटॅल को 'चमत्कृति-जनक रूपक'-नामक एक विशिष्ट प्रकार बहुत पसद था। उसने इसकी व्याख्या इस प्रकार की है—'ऐसा आनददायी साम्य ढूढ निकालना, जो पहले कभी देखा न गया हो।"

अरिस्टाटल का यह प्रकार निश्चित रूप से अंगरेजी का 'Wit' या हिंदी का उक्ति चमत्कार ही है। अंगरेजी मे 'विट' पर लिखनेवाले कई विद्वान् हैं। एडिसन ने अपने 'Six Papers on Wit' लेख मे 'विट' अथवा उक्ति-चमत्कार के विषय मे अच्छा प्रकाश डाला है। उसने कहा है—"सच्चा उक्ति-चमत्कार ऐसा होता है, जिसका भाषातर दूसरी भाषाओं मे हो सकता है। यदि भाषांतर करने मे उसका आनद कम या नष्ट हो जाय, तो मानना चाहिए कि वह उक्ति चमत्कार नही, बल्कि शब्द-श्लेष है।' 'विट' की व्याख्या करते हुए, एक दूसरे स्थान पर, एडिसन कहते हैं कि 'पदार्थों' के जिस सबध-दर्शन से पाठकों (या श्रोताओ) मे प्रसन्नता और आश्चर्य या चमत्कृति उत्पन्न हो, और उसमे भी विशेषतया चमत्कृति जान पड़े, उसे उक्ति-चमत्कार कहते हैं।' एक दूसरे विद्वान् लेहट के मत से 'साधर्म्य या विरोध दिखलाने के उद्देश्य से विषम या असबद्ध कल्पनाओ को एक ही स्थान पर, पास पास रखना ही 'विट' है। विलियम हृजलिट 'विट' के लिये एक प्रकार की

१—बाबू रामचद्र वर्मा ने भी अपनी 'सुभाषित और विनोद'-नामक पुस्तक में व्यवहार शास्त्र के लिये 'Science of Justice' लिखा है।

2— "True wit is that which can be translated in different Languages, if it bears the test, you may pronounce it true, but if it vanishes in the experiment, you may conclude it to be a pun "—Addison (सुभाषित और विनोद—रामचद्र वर्मा)

3—"Wit is the resemblance or contrast of ideas that give the reader delight and surprise, especially the later"—Addison

सुसंस्कृत कल्पना-शक्ति और कला-ज्ञान की आवश्यकता मानते हैं। एक दूसरे विद्वान् उक्ति-चमत्कार को 'बुद्धि की प्रेयसि' बतलाते हैं।[1]

इस प्रकार दोनों दृष्टिकोणों से समस्यापूर्ति-काव्य में उक्ति-वैचित्र्य का निरूपण करना उचित होगा। प्रायः लोग समस्यापूर्ति को चमत्कार-प्रदर्शन से अधिक संबंधित करते हैं, और जहाँ तक तात्कालिक प्रभाव का संबंध है, समस्या-पूर्ति में चमत्कार-चारुता की आवश्यकता है भी। जहाँ एक ही समस्या द्वारा अनेक कवियों की काव्य-प्रतिभा की परीक्षा ली जाती हो, वहाँ उन कवियों को प्रतियोगिता में अपने उक्ति-चमत्कार दिखलाने से ही सफलता मिल सकती थी। जो भावुक कवि होते थे, वे उक्ति-चमत्कार के साथ-साथ रसात्मकता का भी ध्यान रखते थे। इसलिये उनकी पूर्तियाँ कवित्व की दृष्टि से खरी उतरी हैं। अधिकांश समस्यापूर्तियाँ ऐसी हुई हैं, जिनमें उक्ति-वैचित्र्य होते हुए भी रसात्मकता पाई जाती है।

यह चमत्कार भाव-व्यंजना, वस्तु-वर्णन एवं तथ्य-प्रकाश, तीनों रूपों में हो सकता है। उक्ति-चमत्कार में कवियों ने शब्द-चमत्कार एवं वचन-भंगिमा, दोनो का प्रयोग किया है। शब्द-चमत्कार में अधिकांशतः अनुप्रास एवं यमक की योजना द्वारा चमत्कार उत्पन्न किया गया है।

भाव-व्यंजना के अंतर्गत समस्या-पूर्ति में चमत्कार-योजना देखिए—

रहित सदाई हरियाई हिय-धायनि मैं,
ऊरध-उसास सो झकोर पुरवा की है ;
पीव-पीव गोपी पीर-पूरित पुकारति है,
सोई रतनाकर पुकार पपिहा की है।
लागी रहै नैननि सों नीर की झरी औ,
उठै चित मैं चमक, सो चमक चपला की है ;
बिनु घनस्याम धाम-धाम ब्रज-मंडल मैं,
ऊधौ नित बसति बहार बरसा की है ॥[2]

उपर्युक्त छंद में कवि ने गोपियों की विरह-जन्य स्थिति से वर्षा का सांग रूपक बाँधा है। वर्षाकालीन हरीतिमा, पुरवा की झकोर, पपीहा की पुकार, दिन-

---

१—"Wit is the darling of the intellect." (विस्तृत विवेचन के लिये देखें—रामचंद्र वर्मा कृत 'सुभाषित और विनोद'।)

२—काशी-कवि-समाज ११वाँ अधिवेशन, पूर्तिकार—रत्नाकर। (पृष्ठ १२०)

रात बूंदो की झडी तथा चपला की चमक, सभी कुछ गोपियो के वियोगी शरीर में विद्यमान है, परन्तु इस वर्षा में विशेषता यह है कि यह बिना बादलो के ही हो रही है। कवि ने जबरदस्त उक्ति-चमत्कार से वर्षा की सटीक उद्भावना की है। रूपक, श्लेष, विरोधाभास एव विभावना आदि सभी कुछ है। साराश यह कि कवि की उक्ति में एक सावयव कल्पना है, मजमून की पूरी बंदिश है, पूरा चमत्कार या अनूठापन है। पर इस उक्ति-वैचित्र्य के बीच में भावो की सश्लिष्ट योजना तथा विरह-वेदना स्पष्ट झलक रही है, उक्ति की चकाचौंध में अदृश्य नहीं हो गई है।

प्रेम के फद फँसे बलदेव जू,
 और ही मारग के गहिबे पर,
नेक बुझात नही बिरहानल,
 नैनन नीर नदी बहिबे पर।
सूधे भये दृग होइ है कहा मन,
 चेरो भयो तिरछे रहिबे पर,
ना कहिबे पर वारे है प्राण,
 कहा अब वारिहैं हाँ कहिबे पर॥[1]

प्रस्तुत छद में कवि ने उक्ति-वैचित्र्य का सुदर प्रयोग किया है। उसने उक्ति के चमत्कार से भावो मे गहरी मार्मिकता भर दी है। कवि प्रेम के पाश में बँध गया है। प्रेम का पूरा जादू उस पर चल गया है, जिससे उसकी स्थिति बडी विचित्र हो गई है। ससार मे प्रचड अग्नि की ज्वाला जल मे शात हो जाती है, परन्तु कवि का कथन है कि उसके हृदय मे लगी हुई विरहाग्नि उसके नेत्रो से बहनेवाली 'नीर नदी' से भी शात नही होती है, प्रत्युत बढती ही जाती है। उसकी बडी विषमावस्था है। अतिम दोनों चरणो में कवि पाठक अथवा श्रोता को अपनी उक्ति से कल्पना के द्वद्व में छोड देता है। जब उसने अपने प्रिय की तिरछी चितवन पर ही अपने मन को उसका दास बना दिया है। तब विचारणीय प्रश्न यह है कि वह 'प्रिय' की सीधी चितवन पर किसको दास बनाएगा। तथा जब उसने अपने प्रिय के निषेधात्मक उत्तर 'ना' कहने पर ही अपने प्राणो को न्योछावर कर दिया है, तब उसके पास क्या शेष रहा, जो वह अपने प्रिय के स्वीकारात्मक उत्तर 'हाँ' पर वारेगा। भावों की मार्मिकता के चित्रण में कवि ने

१—कविवर द्विज बलदेव-रचित समस्यापूर्ति।

उक्ति-वैचित्र्य को अपनाकर दोनों को एक कर दिया है। ऐसा ही वाग्वैदग्ध्य काव्य के लिये आवश्यक होता है।

वाग्वैग्ध्य का एक सुंदर उदाहरण और देखिए—

जाके सुर प्रवल प्रबाह को झकोर तोर,
सुर, मुनि-बृन्द धीर विटप बहावै है;
कहै रतनाकर पतिव्रत परायन की,
लाज कुलकान की करार बिनसावै है।
करगहि चिबुक कपोल कल चूमि चाहि,
मृदु मुसकाय जो मयंकहि लजावै है;
ग्वालिनि गुपाल सों कहति इठिलाय कान्ह,
ऐसी भला कोऊ कहूँ बाँसुरी बजावै है ॥[1]

कृष्ण ने ऐसी बंसी बजाई है, जिसकी अपूर्व ध्वनि ने संसार में गड़बड़ी मचा दी है। बड़े-बड़े मुनियों का ध्यान भंग हो गया है, उनका धैर्य नष्ट हो गया है एवं पतिव्रता स्त्रियाँ बंसी की मधुर तान सुनकर, कुल की मान-मर्यादा एवं लज्जा छोड़कर उसी की ओर चल पड़ी है। इस प्रकार संसार के नियमों का उल्लंघन देखकर गोपी वचन-चातुरी से गोपाल से कहती है कि ऐ कृष्ण! भला इस प्रकार की कोई बाँसुरी बजाता है, जो संसार में अस्तव्यस्तता मचा दे। वास्तव में वह कृष्ण की बंसी की मनोहारिणी तान की प्रशंसा करना चाहती है, उसी को कवि ने वचन-भंगिमा से इस प्रकार कहलाया है, मानो वह कृष्ण की भर्त्सना कर रही हो। भावों की गभीरता में इस उक्ति-चमत्कार ने एक ताजगी भरकर उसकी तीव्रता बढ़ा दी है।

वस्तु-चित्रण में भी उक्ति-वैचित्र्य का प्रयोग हुआ है। ऐसे कुछ मार्मिक स्थल देखिए—

मै वृषभानु व्रजेश की बाल गुपाल,
तू ग्वाल न मो सम पैहै;
दूर रहौ नवनीत प्रिया तुमरी,
छवि छाँह छिनों परि जैहै।

१—काशी-कवि-समाज, समस्यापूर्ति, भाग २

तौ फिर गोकुल के कुल की कोऊ,
गूजरी मोहि न ऊजरी कैहै,
सांवरे छैल छुवोगे जु मोहि,
तो गातनि मेरे गुराई न रैहै ॥'

जिस वचन चातुरी से राधिका कृष्ण से न छूने के लिये कहती है। उन्हें आशंका है कि यदि कहीं यह सांवला ग्वाल मुझे छू लेगा, तो मेरे शरीर की गुराई नष्ट हो जायगी और फिर गोकुल की कोई भी स्त्री उसे 'गोरी' कहकर न पुकारेगी। कवि ने प्रस्तुत छंद में एक चुभती हुई उक्ति रखकर चमत्कार भर दिया है।

भूलि जिन जैयो ब्रजराज बरसाने कहूँ,
गोरिन के गोल तें किशोरी जो निहारैगी,
घोरि रंग रोरिन तें केसर कमोरिन तें,
प्रीत झकझोरिन तें पकरि पछारैगी।
याद करि सांकरी गली में लूटि गोरस की,
सो रस की आज नीत कसर निकारैगी,
मलिके गुलाल रसख्याल में गुपाल गाल,
देखत ही लाल तुम्हें लाल करि डारैगी ॥'

एक गोपी कृष्ण को सूचित कर रही है कि आप भूल कर भी बरसाने न आइये, क्योंकि वहाँ जाने पर यदि राधिका तुम्हें देख लेगी, तो वह अपने पिछले दिन की गोरस की लूटि को याद कर आज सारी कसर निकाल लेगी। वह रंग की वर्षा कर प्रीति के झोंके से तुम्हें झकझोर देगी। फिर वह तुम्हारे कोमल कपालों में गुलाल मलकर तुम्हारे सम्पूर्ण शरीर को लाल रंग में रंजित कर देगी। बड़ा ही स्वाभाविक वर्णन था, परन्तु कवि ने इस तथ्य को इस प्रकार से वर्णित किया है कि उसमें पूरा चमत्कार आ गया है। यह चमत्कार कवि ने शब्द-योजना द्वारा ही उत्पन्न किया है। उसने इसके लिये अनुप्रास एवं यमक का भी आश्रय लिया है। पछारैगी, लाल करि डारैगी आदि शब्द ऐसे हैं, जो किसी के द्वारा किसी पर आक्रमण किए जाने की सूचना देते हैं।

कुछ ऐसी भी समस्याएँ मिलती हैं, जिनकी पूर्ति में कवियों को पूरा बुद्धि-कौशल दिखलाना पड़ा है। जैसे—"पावक पुंज में पंकज फूलो, चुम्बक मुगन बीच

१—काशी कवि-समाज, समस्यापूर्ति, प्रथम भाग।
२— " " " ।

मानो लोह फँसिगो, मोम के मंदिर माखन के मुनि बैठि हुतासन आसन मारे" आदि। इसी प्रकार की एक क्लिष्ट समस्या महात्मा गांधी तथा उनके असहयोग आंदोलन की निंदा करते हुए ब्रिटिश गवर्नमेंट के एक भारतीय भक्त ने दी थी:—

समस्या—गाँधी जमराज है असहयोग रोग है।

पूर्ति— देश लूट खायो ताते पेट में अजीरन भो,
धन ज्वर बाढ़्यो महावैद्य सहयोग है;
दिन-दिन बाढ़्यो बढ़ गाढ़ो भयो छिन-छिन,
रोग भी उरधाम रोगी भो अधांग है।
वात को प्रकोप कैधों बात को प्रकोप ओप,
सीत मे अमीत महापंथ भ्रमयोग है;
वैरिन के चित्त चिंता चिता पै जराय दीन्हों,
गाँधी जमराम है असहयोग रोग है।[1]

प्रस्तुत छंद में कवि ने बुद्धि-कौशल से उक्ति को गढ़कर समस्या की पूर्ति कर दी है। ऐसी समस्यापूर्तियों में किसी कवित्व के दर्शन यदि न हों, तो कोई आश्चर्य की बात नहीं। समस्या-पूर्ति में कवि को वैसे ही अधिक स्वच्छंदता नहीं रहती, फिर यदि समस्या भी दुरूह हो, तो श्रेष्ठ कवि भी उसकी भाव-पूर्ण पूर्ति में चूक सकते हैं।

सारांश यह कि समस्या-पूर्ति-काव्य में उक्ति-वैचित्र्य की अधिकता के साथ ही भाव-प्रवणता एवं रसात्मकता भी है। भावुक कवियों में सर्वत्र यह विशेषता पाई जाती है कि जहाँ उन्होंने उक्ति-चमत्कार दिखलाया है, वहाँ भावों को भी उत्कृष्टता प्रदान की है। कोरा चमत्कार केवल कुछ ही दुरूह समस्याओं की पूर्तियों में पाया जाता है। अतएव यह कथन कि समस्यापूर्ति-काव्य में कोरा चमत्कार या बौद्धिक प्रयास है, ठीक नहीं है। समस्या-पूर्ति द्वारा कवि एक प्रकार के बंधन में बँधकर भी ऐसी सुंदर एवं भाव-पूर्ण कविता कर सके, यह उनके उक्ति-चमत्कार की ही द्योतक नहीं, प्रत्युत उनके भावुक हृदय की परिचायिका भी है। इन कवियों की विशेषता इस बात में और भी बढ़ जाती है कि इन्होंने दोनों पक्षों का सुंदर समन्वय किया है—एक ही पक्ष की प्रधानता नहीं है। इस प्रकार भावुक एवं चमत्कारवादी दोनों प्रकार के पाठकों की काव्य-रुचि की रक्षा की गई है।

१—सन् १९२१ ई० में एक ब्रिटिश सरकार-भक्त भारतीय द्वारा दी गई समस्या की पूर्ति। पूर्तिकार—श्रीअनूप शर्मा

कल्पना

उक्ति वैचित्र्य जहाँ अपने कथन की विदग्धता और शब्दावली के चमत्कार का प्रभाव डालती है वहाँ कल्पना रूप की सृष्टि से हमारी आँखों के समक्ष हमारे इन्द्रियानुभव द्वारा संवेद्य ऐसे रूपों और चित्रों को प्रस्तुत करती है, जिसमें हमारा मन रम जाता है। यह कल्पना का तत्त्व कवि की प्रतिभा का मुख्यतया परिचायक है। कल्पना के आधार पर ही बिंब की सृष्टि होती है। अप्रस्तुत योजना भी कल्पना के सहारे ही की जाती है। भाव आदि के वर्णन के प्रसंग में आलंबन उद्दीपन अनुभाव आदि का स्वरूप भी कल्पना द्वारा ही प्रस्तुत किया जाता है। इस प्रकार काव्य में कल्पना अनेक रूपों में कार्य करती है। यह कल्पना काव्य का कारण है और 'प्रतिभा' के नाम से पुकारी गई है। इस संबंध में आचार्य हेमचंद्र का मत है कि काव्य रचना का कारण केवल प्रतिभा है व्युत्पत्ति और अभ्यास उसके संस्कारक हैं, कारण नहीं।

प्रतिभैव च कवीनाम् काव्यकारणकारणम्।
व्युत्पत्त्यभ्यासौ तस्या एव संस्कारकारकौ न तु काव्य हेतु।[1]

पंडित रामचंद्र शुक्ल ने भी कहा है कि 'काव्य-वस्तु का समस्त रूप-विधान इसी की क्रिया से होता है।'[2] परन्तु काव्य में उसी कल्पना का महत्त्व एवं स्थान है जो हमारी हार्दिक प्रेरणा से उद्भूत होकर हमारे हृदय पर प्रभाव डालती है। यह प्रभाव तभी पड़ता है जब मानव-जीवन से संबंधित कोई रूप, दशा अथवा तथ्य हमारे मन में आकर जम जाता है और हमारा मन उससे संस्पर्श ग्रहण करता है।

कवि अनेक प्रकार से अपनी कल्पना का प्रकाश करता है और अनेक रूपों में जीवन जगत के संबंध में अपने भाव प्रकट करता है। कल्पना द्वारा कवि हमारे मन में लोकोत्तर उत्कर्ष के चित्र उपस्थित किया करता है तथा अमर लोक की कहानी भी सुना देता है। इसी से कहा गया है कि 'जहाँ न जाय रवि तहाँ जाय कवि।' इस लोकोक्ति से कल्पना की गति जानी जा सकती है।

भारतीय दृष्टिकोण से काव्य का मूल तत्त्व भाव माना गया है परन्तु पाश्चात्य काव्यशास्त्रियों ने काव्य का मूल तत्त्व कल्पना माना है। कल्पना को भारतीय रस शास्त्रों में पृथक स्थान नहीं दिया गया है। यह बात नहीं कि उसका अस्तित्व स्वीकार नहीं किया गया है। कल्पना के बिना तो काव्य हो ही नहीं सकता केवल इतिहास प्रस्तुत किया जा सकता है। हाँ बात इतनी-सी है कि जहाँ पाश्चात्य

१—देखिए काव्यानुशासन आचार्य हेमचंद्र।
२—रस मीमांसा आचार्य रामचंद्र शुक्ल। (पृष्ठ २९१)

विचारक कल्पना को काव्य का एक अनिवार्य तत्व मानकर उसका पृथक् स्थान निरूपित करते है, वहाँ भारतीय रस-शास्त्री उसे काव्य का सर्वस्व मानकर दोनो को एक में समाहित कर देते है। कल्पना के विषय में एक विद्वान् का कथन है—"विज्ञान में जो बुद्धि है, दर्शन में जो दृष्टि है, वही कविता में कल्पना है।"[१]

कल्पना के धनी कलाकार अथवा कवि अमूर्त भावों को भी मूर्तिमान चित्रित कर देते है, किंतु सच्चे कवि या कलाकार की कल्पना और इतर जनों की कल्पना में पर्याप्त अंतर है। "कल्पना जब रस-सिद्ध कवि के हाथों में आकर शक्ति बनती है, तब जैसा कि इसकी प्रकृति से ही सिद्ध है कि वह अनुभूति-आधार-युक्त, निश्चयात्मक और स्रजनोन्मुखी होती है। प्रथम उसे सत्यता का बल देता है, द्वितीय उसमें विश्वास का अंश भरता है, और तृतीय उसे सौंदर्य प्रदान करता है। यही कल्पना कवि के हाथों साकार शक्ति बनती है।"[२] इसी शक्ति के कारण कवि "लोकद्रष्टार: तथा परिभू: स्वयंभू:।" तक कहे गए है। वे विश्व को जैसा चाहते है, वैसा निर्मित कर लेते है। इस संबंध में डॉ० श्यामसुदर दास का कथन है—

"कवियों ने अपनी कल्पना के बल मे कितने ऐसे महान् पात्रों की सृष्टि की है, जो संसार के हृदय पर शासन करते हैं, और चिरदिन तक करेंगे। उन्होंने कितनी ही कामिनियों का श्रृंगार सजाया है, जिन्हें देखकर मनुष्य एकांत भाव से मुग्ध हुआ। कलाकार की कल्पना संसार की प्राय: समस्त उज्ज्वल, उदात्त और उर्जस्वित भावनाओं को पुष्ट करनेवाली, उन्हें मनोरम बनाकर मनुष्य-जीवन में मिला देनेवाली सिद्ध हुई है। कवि अपनी कल्पना के इंगित से सहस्रों वर्षों तक, अमित काल-पर्यंत, संसार-व्यापी समाज के मन पर शासन करता है। मानव-हृदय के सिंहासन पर अधिष्ठित होकर वह अपनी प्रभुता का विस्तार करता है और लोक की श्रद्धांजलि उसके चरणों का नित्यप्रति अभिषेक करती है।"[३]

मनुष्य अपने ज्ञान का संचय केवल वर्तमान की परिधि में ही नही करता, प्रत्युत प्रत्यक्ष के परे भी देखता है। प्रत्यक्ष के परे से तात्पर्य यहाँ मनुष्य के अतीत से है। अतीत की कोमल कल्पना मानव में आशा का संचार एवं विश्वास की दृढ़ता उत्पन्न करती है। अतीत की कल्पना कर मनुष्य थोड़ी देर के लिये वर्तमान की जटिलताओ एवं दुश्चिंताओं से मुक्ति पाकर शांति की सांस लेता है। "कल्पना के इस मार्मिक प्रभाव का कारण यह होता है कि यह सत्य का आधार लेकर खड़ी होती है। इसका आधार या तो आप्त शब्द होता

१—साहित्यालोचन—डॉ० श्यामसुंदरदास। (पृष्ठ १०३)

२—साहित्य-जिज्ञासा—आचार्य ललिताप्रसाद सुकुल। (पृष्ठ १६६)

३—साहित्यालोचन—डॉ० श्यामसुंदरदास। (पृष्ठ १०४)

है, अथवा शुद्ध अनुमान।"[1] जहाँ यह एक ओर अनुमान पर आधारित होती है वहीं वह दिवा-स्वप्न से भिन्न होती है। यह अनुमान चाहे स्वार्थानुमान की कोटि का हो अथवा परार्थानुमान की कोटि का, उसके भीतर शुद्ध निष्कर्षोन्मुखता की सिद्ध स्वीकृति अपेक्षित होगी और इस पर आधारित कल्पना कभी भी दिवा-स्वप्न की भाँति मिथ्या नहीं हो सकती।[2]

अतीत से संबंधित कल्पना को ही आचार्य शुक्ल ने 'स्मृत्याभास कल्पना' कहा है। मनुष्य अपने व्यक्तिगत जीवन की मधुर स्मृतियों से जिस प्रकार पुलकित हो उठता है, उसी प्रकार समस्त मानव जीवन के अतीत की भी एक प्रकार की स्मृत्याभास कल्पना होती है, जो इतिहास से संबंधित होती है। 'इसकी मार्मिकता भी व्यक्तिगत जीवन की स्मृति की मार्मिकता के ही समान होती है। यह मार्मिकता सत्य पर आधारित होती है। सत्य से अनुप्राणित होने के कारण ही कल्पना स्मृति और प्रत्यभिज्ञान का-सा रूप धारण करती है।'[3] सत्य से तात्पर्य यहाँ घटित वृत्त ही नहीं, प्रत्युत संभावित वृत्त भी है। हम उन दृश्यों अथवा वस्तुओं की कल्पना नहीं कर सकते, जो हमारे दृष्टि-पथ से ओझल रहे हों अथवा जिनका विवरण हमें न सुनाई पड़ा हो। कवि-कल्पना मानव भूमि को पूर्णतः त्याग नहीं सकती। इसी से तो कल्पना की तुलना उस पक्षी से की गई है जो अनंत आकाश में उड़ता हुआ भी अपनी दृष्टि पृथ्वी पर बाँधे रहता है। इसी भाव को अँगरेज़ कवि वर्ड्सवर्थ अपनी 'To the Skylark' कविता में और भी स्पष्ट करता है।[4] कल्पना के स्वरूप एवं उसके महत्त्व के विवेचन के उपरांत काव्य में इसके प्रयोग का क्या प्रकार है, इस पर भी कुछ विवेचन करना समीचीन होगा।

प्रत्यक्ष जगत् में हम जो कुछ देखते या सुनते हैं उसके विषय में हमारा मन एक कौतूहल से भर जाता है। हमारे मन में तत्संबंधी अनेक भाव-तरंगें उठने लगती हैं। मन इन भाव-तरंगों को मूर्तरूप देने के लिए छटपटाने लगता है, और तब कल्पना उसकी सहायता करके काव्य के रूप में उन भावनाओं को मूर्तिमान चित्रित कर देती है। भावना विशेष पर केंद्रित होकर कल्पना का यही प्रयोग प्रतीकों का

१—रस मीमांसा, आचार्य रामचंद्र शुक्ल। (पृष्ठ २८१)
२—साहित्य जिज्ञासा, आचार्य ललिताप्रसाद सुकुल। (पृष्ठ १६६)
३—रस मीमांसा, आचार्य रामचंद्र शुक्ल। (पृष्ठ २८२)
४—Type of the wise who soar, but never roam
True to the kindred points of Heaven and Home
—wordsworth

सृजन करने में समर्थ होता है। काव्य के प्रस्तुत और अप्रस्तुत दोनों रूपों में कल्पना का सम्यक् प्रयोग किया जाता है। जैसा कि अभी कहा जा चुका है, प्रस्तुत विधान के अंतर्गत शृंगार, वीर, करुण आदि रसों के आलंबनों और उद्दीपनों के वर्णन तथा प्राकृतिक दृश्यों के चित्रण में एवं अनुभाव कहे जानेवाले व्यापारों और चेष्टाओं द्वारा आश्रय को जो रूप दिया जाता है, उन सबमें कल्पना का ही प्रयोग होता है। इस रूप-विधान में भी जहाँ कल्पना का प्रयोग केवल कार्य-कारण-विवेचन में ही होता है और भावों की गंभीरता पर ध्यान नही दिया जाता, वहाँ इसमें वैचित्र्य-ही-वैचित्र्य रह जाता है, और मार्मिकता दब जाती है।

ऊपर स्पष्ट किया जा चुका है कि उक्ति-वैचित्र्य भी काव्य के लिये आवश्यक तत्त्व है। यह भावों की तीव्रता को बढ़ानेवाली एवं हृदय पर प्रभाव डालनेवाली शक्ति है, किंतु यह उक्ति-चमत्कार भी कल्पना पर ही आधारित होता है। एक प्रकार से उक्ति-वैचित्र्य का साधन कल्पना ही है। कल्पना द्वारा कवि अनूठी उक्तियों का संयोजन करता है, जो काव्य में चमत्कार की सृष्टि कर देती है। यह कहा जा चुका है कि उक्ति-वैचित्र्य के अंतर्गत वर्ण-विन्यास की विशेषता, शब्दों की क्रीड़ा अथवा अप्रस्तुत वस्तुओं का अद्भुतत्त्व किंवा प्रस्तुत के साथ उनका सादृश्य आदि बातें आती हैं। इन सबमें कल्पना की ही उपयोगिता सिद्ध है। काव्य में चमत्कारोत्पादन करने के प्रमुख साधन अलंकार ही कहे गए हैं। इन अलंकारों की जननी कल्पना ही है। सुंदर उत्प्रेक्षाएँ एवं अतिशयोक्तियाँ, जो कि काव्य में अनूठापन भर देती हैं, श्रोता के मन को क्षण भर के लिये विस्मय में डाल देती है, वस्तुतः कल्पना पर ही आधारित हैं। इस दृष्टि से उक्ति-वैचित्र्य के लिये भी कल्पना अनिवार्य तत्त्व है।

कल्पना के उपर्युक्त विवेचन से समस्यापूर्ति-काव्य में इसकी गंभीरता एवं मार्मिकता का स्वरूप स्पष्ट हो जायगा। यह काव्य उक्ति-वैचित्र्य एवं कल्पना के समुचित रूप से ही निर्मित हुआ है। क्लिष्ट एवं दुरूह समस्याओं की पूर्ति में कवियों को इन्ही दोनो शक्तियों का अवलंबन लेना पड़ा है। यह कल्पना-प्रयोग काव्य के दोनो विधान—प्रस्तुत तथा अप्रस्तुत के रूप में हुआ है। अधिकांश पूर्तिकारों ने कल्पना का प्रयोग केवल उपमा एवं उत्प्रेक्षा ढूंढ़ने में ही किया है। इसके विपरीत भावुक कवियों ने कल्पना का विधान भाव की गंभीरता एवं उसकी रसव्यंजकता के लिये किया है। जहाँ अलंकारों के प्रयोग में कल्पना का स्थूल स्वरूप ही प्रयुक्त हुआ है, वहाँ भाव बिलकुल दब गए हैं, कोरी कल्पना-ही-कल्पना दीख पड़ती है; परंतु जहाँ अप्रस्तुत विधान स्वाभाविक रूप से हुआ है, वहाँ कल्पना की गंभीरता सर्वत्र लक्षित होती है। यह मानने में कोई आपत्ति न होगी कि कुछ श्रेष्ठ कवियों को छोड़कर अधिकांश कवियों नें परंपरा-प्रयुक्त कल्पनाओं का ही

उपयोग किया है। इन कवियों की समस्यापूर्तियों में किसी नवीनता के दर्शन नहीं होते परन्तु जिन उत्कृष्ट कवियों ने कल्पना की गंभीरता एवं उसकी मार्मिकता पर कुछ भी ध्यान दिया है उनकी पूर्तियाँ बड़ी ही सरस भाव पूर्ण एवं मार्मिक हुई हैं। ये पूर्तियाँ रीति-काल के किसी भी उत्कृष्ट कवि के छन्दों से होड़ ले सकती हैं। नीचे कुछ इसी प्रकार की पूर्तियों के उदाहरण दिये जाते हैं—

समस्या— जावक के भार पग उठत न प्यारी के

पूर्ति —नारिन के काज करि जानन में नीच तें
अनारिन के साथ सीख कारज अनारी के,
गाढ़ करि छाया लाख लालिमा मिलायो रहा
हाय कम लख लिख निपट गँवारी में।
रंग न सुरंग लसै गहिरी ललाई अति
गुलुफ सुढार अंग संगिनि हमारी के,
हाहा हटि नाइनि निहारु तो निहोरे लघु
जावक के भार पग उठत न प्यारी के।'

उपर्युक्त छन्द में कवि एक ऐसी बाला की मंद गति की कल्पना करता है कि वह अपनी सुकुमारता के कारण ही पाँव उठाने में असमर्थ नहीं है प्रत्युत उसके पाँव में एक गँवार नाइनि ने अत्यधिक गाढ़ लाख के रंग से चित्र बनाए हैं और इस प्रकार उस नायिका के पाँव में अत्यधिक लालिमा छा गई है जिससे उसका स्वाभाविक सौन्दर्य ही नष्ट नहीं हो गया बल्कि आवक का भार भी बढ़ गया है। इसी भार के कारण वह बाला तीव्र गति से पाँव नहीं उठा पाती है। कवि ने किसी कोमल कल्पना से समस्या की पूर्ति कर उसमें भाव-गांभीर्य एवं भावाभ्यंजकता भर दी है। जब किसी साधन से सौन्दर्य-वृद्धि नहीं होती है तब वह भार बन ही जाता है। इस छन्द में यह व्यंजना भी है कि गाढ़ी छानी गई लाख में लालिमा अधिक आ गई जिसने नायिका के स्वाभाविक रंग को आच्छादित कर लिया है। लाख की लालिमा उसके पाँव की लालिमा से मिलकर एक नहीं हो पाई अतः लाख का रंग दूर से ही झलक रहा है। इसीलिये वह आवक नायिका को भार स्वरूप प्रतीत हो रहा है।

एक पूर्ति देखिए जिसमें कवि ने वसन्त को सागर के रूप में कल्पित किया है और इस प्रकार वियोगिनी स्त्री के वियोग को और भी तीव्र करने के लिये समुद्र में उठनेवाली बड़वानल की भी कल्पना कर दी है—

१—काव्य सुधाधर (मासिक) द्वितीय वर्ष प्रथम प्रकाश जून जुलाई अगस्त १८९८ ई०। (पृष्ठ ४२)

बारिधि बसंत बढ्यो चाव चढ्यो आवत है,
बिलखि बियोगिनि करेजो थामि थहरैं ;
कहै रतनाकर त्यों किंसुक प्रसून जाल,
ज्वाल बड़बानल की हेरि हिये हहरैं।
तुम समुझावति कहा हौ समुझौ तौ यह,
धीरज धरा पै अब कैसे पग ठहरैं ;
भौंर चहुँ ओर भ्रमैं एकौ पल नाहिं थमैं—
सीतल सुगंध मंद मारुत की लहरैं ॥[1]

वियोग में कोई भी वस्तु सुखकर प्रतीत नहीं होती है। आनंद देनेवाली वस्तुएँ भी विपरीत गुणवाली हो जाती है। कवि यह जानता है कि चारो ओर छाया हुआ वसंत वियोगिनी को सुखी नहीं कर सकता, प्रत्युत उसकी विरहाग्नि को और भी उद्दीप्त कर देगा। चारो ओर पलाश के पुष्प विरहिणी को दग्ध करनेवाली ज्वाला-सदृश प्रतीत होंगे। अस्तु, कवि कल्पना करता है कि यह चारो ओर छाए हुए वसंत के रूप में समुद्र बढ़ता चला आ रहा है, कुसुमित पुष्पों के रूप में वड़वानल की लपटें उठ रही हैं, भ्रमर आदि जीव-जंतु भ्रमरकर भागे जा रहे हैं और वायु भी सतत वेगवती होती जा रही है। इस प्रकार पूरे प्रलय का-सा दृश्य कल्पित किया गया है। यह संपूर्ण कल्पना विरहिणी के वियोग की भावना को तीव्र करने के लिये की गई है। इसीलिये भावों में गांभीर्य स्पष्ट लक्षित होता है।

जासों तप्यो जीवन जुड़ात सियरात नैन,
चैन परै जैसे चारु चंदन चहल में ;
कहै रतनाकर गुपाल हौं बिलोकी हाल,
ऐसी बाल होत सुख जाकी है टहल में।
करत कहा हौ बैठि वट के बितान बीच,
बेगि चलो धाय तो दिखाऊँ हौं सहल में ;
ग्रीषम की भीति मनो सीतलता आन छिपी,
धारि के सरीर वा उसीर के महल में ॥[2]

१—काशी-कवि-समाज, प्रथम भाग, ११वाँ अधिवेशन, पूर्तिकार—रतनाकर।
(पृष्ठ १०३)

२— ,, ,, ,, (पृष्ठ १०९)

ऊपर कहा जा चुका है कि भाषा शैली को अधिक व्यंजक चमत्कार-पूर्ण एवं मार्मिक बनाने में भी कल्पना का योग रहता है। प्रस्तुत छंद में कवि गोपाल को 'वट के बितान' के बीच से उसीर के महल में ले जाना चाहता है। वह उसीर के महल की शीतलता के आधिक्य को प्रकट करने के लिये कल्पना करता है कि मानो ग्रीष्म के भय से भागकर शीतलता शरीर धारण कर उसीर के महल में छिप गई हो। शीतलता के छिपाने में कवि ने मानवीकरण का आश्रय लिया है जिससे कल्पना के साथ साथ भाषागत चमत्कार भी आ गया है। यह कहने की अपेक्षा उसीर के महल में अधिक शीतलता है उसीर के महल में शीतलता आकर छिप गई है में व्यंजना अधिक है। ऐसे ही व्यंग्य प्रधान कथन भाषा के चमत्कार को बढ़ा देते हैं। उदाहरण देखिए—

शरद निशा में कहूँ बासुरी बजाई श्याम,
धाईं ब्रज बालैं चारु चाँदनी बदन की,
दौरें बिललानी अकुलानी-सी भुलानी भूमि,
कोटिन कला है मनोसिंधु के सुवन की।
आहे परी भौन, शोक-सिंधु मे अथाहे परी,
वीथिन कराहैं परी धाहैं परी धन की,
भूली सुधि छन की न कानि गुरु जन की,
न सुधि रही तन की न चिंता रही मन की ॥[1]

शरद रात्रि मे कृष्ण ने कहीं पर अपनी मधुर बंसी की तान छेड़ दी है। बंसी की मधुर ध्वनि गोप बालाओ को मनोमुग्ध करनेवाली है इसीलिये उस बंसी की ध्वनि कान म पड़ते ही गोपियाँ गृह कार्य छोड़कर इधर-उधर व्याकुल होकर दौड़ पड़ी हैं। उनकी दौड़ धूप इतनी तीव्र गति मे हो रही है कि रात्रि म उनका गोरा शरीर चमक चमककर रह जाता है। इसी साम्य के आधार पर कवि गोपियों के लिये चंद्रमा की कान्ति कलाओ की कल्पना करता है। गोपियों की सुंदर आकृति एव उनके चमकीले वस्त्राभूषणों के लिये चंद्रमा की कलाओ की कल्पना करना युक्ति युक्त ही है।

श्रमित भये है कुंज क्रीडा करि श्यामाश्याम,
करती विश्राम जोरी सुंदर सुहावती,
पौढ़ी प्रान प्यारी पीत अबर बिछौना करि,
सीस धरि पीतम की जघा पर भावती।

१—सुकवि, वर्ष १ सितंबर १९२८ ई० (पृष्ठ ३६)

झूमि अलकावलि सुवक घनश्यामजू की,
स्वेद बुंद ललना के आनन पै च्वावती ;
देखुरी अनोखी छवि पूरन सुधाधर पै,
विषधर मंडली पियूष बरसावती ॥[1]

कुंज-क्रीड़ा करके कृष्ण और राधा दोनों थक गए है। राधिका पीताम्वर को विछौना बनाकर कृष्ण की जांघ पर अपना सिर रखकर लेट गई है। कृष्ण की अलकावली राधिका के चंद्र-मुख पर लटकी हुई है। यह दृश्य देखकर कवि परं-परामूलक कल्पना को एक अभिनव स्वरूप प्रदान कर यह उत्प्रेक्षा करता है कि चंद्रमा के ऊपर सर्प-वृंद अमृत-वर्षा कर रहा है। साहित्य में मुख को चंद्रमा कहना और केशों के लिये विषधर का प्रयोग करना अति सामान्य रहा है, किंतु विषधर-मंडली का पीयूष बरसाना समस्यापूर्तिकार कवि की अपनी कल्पना है। समस्या-पूर्ति के लिये कवि को इसी प्रकार की कल्पनाएँ करनी पड़ती हैं। एक छंद देखिए, जिसमें कवि ने हेतु की कल्पना कर समस्या की पूर्ति की है—

शरद निशा में व्योम लखि के निशेश बिन,
पूरन जू कारन यों मन में विचारे है।
विरह जराई अबलान को दहत चंद,
ताते आज तापें विधि कोपि दयावारे हैं ॥
निशपति पातकी को तम की चटान बीच,
पटक पछारि अंग निपट बिदारे हैं।
ताते भयो चूर-चूर उचटे अनंत कन,
छिटके सघन सो गगन-मध्य तारे हैं ॥[2]

शरद् रात्रि में कवि को आकाश में चंद्रमा नही दीख पड़ा, चारो ओर आकाश में तारे-ही-तारे दिखाई पड़ रहे है। कवि एक अनूठी कल्पना करता है कि चंद्रमा ने विरह-व्यथिता अबलाओं को और भी जला दिया है, यह देखकर दयालु विधाता चंद्रमा के ऊपर अति क्रोधित हुए और उस पापी चंद्र को तम की चट्टान पर पटककर उसे अंग-भंग कर दिया। चट्टान पर पटके जाने से चंद्रमा के टुकड़े-टुकड़े हो गए, जो छिटककर आकाश में तारों के रूप में दीख पड़ रहे हैं। इस प्रकार कवि ने आकाश में केवल तारों के निकलने के हेतु की बड़ी सुंदर कल्पना की है। इसी प्रकार की दूसरी कल्पना के प्रयोग का छंद देखिए—

१—रसिक वाटिका, भाग १, क्यारी ५, २० अगस्त, १८९७ ई०।

२—रसिक वाटिका, भाग १, क्यारी ९, २० दिसंबर १८९७ ई०।

पूर्तिकार—'पूर्ण'

वध दिनराज का हुआ है, पक्षी रो रहे हैं,
पश्चिम में रुधिर-प्रवाह अभी जारी है,
दिशा-वधुओं ने काली सारी पहनी है, नभ-
छाती छलनी है, निशा रोती-सी पधारी है।
तड़प-तड़प के वियोगी प्राण खो रहे हैं,
कैसी चोट चोखी कलेजे पर मारी है,
तमराज नहीं, जमघट जमराज का है,
नवचंद्र नहीं, क्रूर काल की कटारी है॥[1]

सान्ध्य वेला है। पश्चिम में सर्वत्र लालिमा छा गई है। चारों ओर पक्षी चहचहा रहे हैं, चारों ओर अंधकार छाने लगा है और रात्रि का आगमन हो चुका है, आकाश में तारे घनीभूत होकर निकल पड़े हैं तथा नव चंद्र के दर्शन हो रहे हैं किंतु कवि को कुछ दूसरी ही कल्पना सूझ पड़ी है। उसकी दृष्टि में सूर्य का वध हुआ है जिसमें संपूर्ण प्रतीची रक्तिम हो उठी है। दिग्वधुओं ने शोक के काले वस्त्र पहन रखे हैं और रात्रि भी रोती हुई शोक में सम्मिलित होने के लिये आ गई है। दुख से आकाश की भी छाती छलनी हो गई है। यह आकाश में निकला हुआ चंद्रमा नहीं, प्रत्युत दुष्ट काल ने अपने हाथ में कटारी ले रखी है। उगते हुए चंद्र का दर्शन करना कितना मनोरम लगता है किंतु कवि की कल्पना में वह इस समय अत्यंत भयकारी बना हुआ है। कवि कल्पना से क्या संभव नहीं है!

उपर्युक्त विवेचन से यह कहा जा सकता है कि समस्यापूर्ति-काव्य में सुंदर एवं कोमल कल्पनाओं का प्रयोग हुआ है। कल्पना प्रयोग में इन कवियों ने काव्य भूमि को एकदम छोड़ नहीं दिया, वरन् इस महत्त्व को समझा है कि कल्पना वही महत्त्वपूर्ण और सार्थक हो सकती है जो संभाव्य हो और जिसका जीवन से बहुत कुछ संबंध हो। हमारी भावनाओं को तीव्र करने में समस्यापूर्ति-काव्य में कल्पना का अधिकांश प्रयोग हुआ ... यह काव्य रीतिकालीन परंपरा पर चला था, अतः एव नवीन कल्पनाओं के ... मार्ग अधिक विस्तृत न था, तथापि उत्कृष्ट कवियों ने कल्पना की नवीनता और ...ी समीचीनता पर पर्याप्त ध्यान दिया है। इस कारण समस्यापूर्ति-काव्य ... प्रयोग की दृष्टि से उत्तम कहा जायगा। यह कहना अधिकांश में सत्य है कि समस्यापूर्ति-काव्य उक्ति-वैचित्र्य एवं कल्पना की कोमल क्रीड़ा भूमि है।

१—सुकवि, वर्ष ७ अंक १०, ... १९३५, पूर्तिकार—सनेही (पृष्ठ ४३)

७

समस्यापूर्ति-काव्य का भाव-पक्ष

भाव—भाव एवं रस काव्य में वाक् एवं अर्थ की ही भाँति एक दूसरे से संपृक्त हैं।[1] भाव-पूर्ण एव सरस काव्य ही उत्कृष्ट काव्य माना जाता है। काव्य के विभिन्न अंगों की भाँति भाव और रस का ज्ञान भी हमें सर्वप्रथम भरत के 'नाट्य-शास्त्र' मे ही मिलता है। आचार्य भरत ही, शास्त्रीय दृष्टि से, रस-संप्रदाय के आदि प्रवर्तक माने जाते है। यद्यपि आचार्य ने अपने पूर्व महामुनि 'द्रुहिण' को ही इस विषय का आविष्कारक माना है—

"एते ह्यष्टो रसा: प्रोक्ता द्रुहिणेन महात्मना।"[2]

काव्य-मीमांसाकार राजशेखर द्रुहिण के स्थान पर नंदिकेश्वर को ही रस-सिद्धांत का आदि प्रवर्तक मानते हैं। आदि-प्रवर्तक कोई भी रहा हो, किंतु रस की शास्त्रीय मीमांसा करनेवाले सर्वप्रथम आचार्य महामुनि भरत ही हैं। भरत ने भाव एवं रस के घनिष्ठ संबंध के विषय में स्पष्ट कहा है—

"न भाव हीनोस्ति रसो न भावो रस वर्जित:।"[3]

अर्थात् न भाव के विना रस की उत्पत्ति हो सकती है, और न रस के विना भाव का अस्तित्व है, अतएव दोनो का अन्योन्याश्रय संबंध है। आचार्यों ने भाव से ही रस की उत्पत्ति मानी है, अत: रस के प्रसंग में भाव का महत्त्व-पूर्ण स्थान है। एक आचार्य का मत है—

"भावहि ते रस होत है, समुझि लेउ मन माहि।
याते पहिलै भाव सब वरनत सुकवि सराहि॥"[4]

मन के विकार को भाव कहा गया है—"विकारो मानसो भाव:" (अमरकोष)। विकार का लक्षण वतलाते हुए सोमनाथ कहते हैं—

१—वागर्थाविव संपृक्तौ वागर्थप्रतिपत्तये। (रघु० कालिदास)
२—नाट्य-शास्त्र—भरत मुनि
३— " "
४—रस-प्रबोध।

चित किहि हेतुहि पाय जब होय और तें और।
ताको नाम विकार कहि बरनत कवि सिरमौर ॥[1]

काव्य शास्त्र के आचार्यों ने मानसिक विकार अथवा वासना को ही भाव माना है। ये वाणी, अंग रचना और अनुभूति द्वारा काव्यार्थों की भावना कराते हैं, इसीलिये इन्हें भाव कहते हैं—"वागङ्गसत्वोपेतान् काव्यार्थान् भावयन्तीति भाव ।"

ये भाव अनेक प्रकार के हैं, जैसा कि गोस्वामी तुलसीदासजी ने कहा है—

"भाव-भेद, रस-भेद अपारा ।"

परन्तु गहराई की न्यूनाधिक मात्रा के अनुसार भाव दो प्रकार के होते हैं—

(१) जो छोटी छोटी तरंगो की भांति उठकर थोड़े ही समय में विलीन हो जाते है, वे सचारी भाव कहलाते हैं। ये हमारे मन में क्षण-मात्र आकर नष्ट हो जाते है, मन में स्थायित्व ग्रहण नहीं कर पाते। इन्हीं को व्यभिचारी भाव भी कहते हैं।

(२) इनके विपरीत जो भाव हमारे मन में वासना-रूप से सतत विद्यमान रहते है, और जिन पर किसी प्रकार के अन्य भावो का कुछ भी प्रभाव नही पड़ता, वे स्थायी भाव कहलाते हैं। "जैसे लवण समुद्र में गिरकर सभी वस्तुओं का स्वाद लवण हो जाता है, स्वय लवण-समुद्र के स्वाद में किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं होता, उसी प्रकार अनेक प्रकार के भाव स्थायी भाव को किसी प्रकार से विकार-ग्रस्त नहीं कर पाते—उसमे अस्थायित्व नहीं आता, वह ज्यो-का-त्यो स्थायी बना रहता है।"[2] भरत मुनि ने—रति, हास, क्रोध, उत्साह, भय, जुगुप्सा, विस्मय और शोक—आठ स्थायी भाव माने हैं। इसी प्रकार—स्तंभ, प्रलय, रोमाच, स्वेद, वैवर्ण्य, वेपथु, अश्रु, और स्वर भंग—आठ सात्विक भाव हैं। आठ स्थायी भाव एव इतने ही सात्विक भाव तथा तैंतीस सचारी भाव मिलकर भावो की सख्या उनचास हो जाती है। रस निष्पत्ति में इन सबका यथा-स्थान उपयोग होता है।

रस— भावो के उपर्युक्त संक्षिप्त विवेचन से रस-निरूपण में अधिक सरलता रहेगी। नाट्य-शास्त्र के कर्ता भरत ने नाटक के विषय में ही रस का वर्णन

१—रस-पीयूष निधि
२—मतिराम-ग्रथावली, सपादक पंडित कृष्णविहारीजी मिश्र। (पृष्ठ २७)
प्रकाशक—गगा-पुस्तकमाला-कार्यालय, लखनऊ

किया है, अतः बहुत समय तक साहित्य में रस का संबंध नाटक से ही माना जाता रहा। रंगमंच पर चतुर अभिनेताओं के कला-पूर्ण अभिनय देखकर दर्शकों के हृदय में जिन भावो की उत्पत्ति होती थी, उसका मार्मिक विवेचन ही रस की कल्पना का कारण ज्ञात होता है।

कालांतर में रस का संबंध काव्य से किया गया, और नाटक भी काव्य का एक प्रमुख अंग माना जाने लगा। रस की व्युत्पत्ति 'रस्' धातु से हुई है, जिसका अर्थ है आस्वाद—"आस्वाद्यत्वाद्रसः।" भोज्य पदार्थो की ही भाँति काव्य-रस का भी स्वाद लिया जाता है। जिस काव्य में यह स्वाद न मिले, वह काव्य नीरस एवं निष्फल कहा जायगा। भरत मुनि के अनुसार तो कोई काव्य रस-हीन होना ही नही चाहिए—"न रसादृते कश्चिदर्थः प्रवर्तते।" —'नाट्य-शास्त्र'

आगे चलकर अग्निपुराणकार ने रस को काव्य का जीवन माना। यथा—
"वाग्वैदग्ध्य प्रधानेऽपि रस एवात्रजीवितम्।" —'अग्निपुराण'

काव्य में रस के सर्वव्यापक महत्व एवं रस-सिद्धांत के प्रचलन की प्रतिक्रिया-स्वरूप अन्य अनेक काव्य-सिद्धांतों की भी स्थापना हुई। आचार्य भामह और दंडी ने काव्य में अलंकारों को ही सर्वस्व माना। परंतु इन अलंकारवादियों ने भी रस को बिलकुल छोड़ नही दिया, वे रसवत् और प्रेयस् अलंकारों द्वारा रस और भाव के अस्तित्व को स्वीकार करते हैं। रीति-संप्रदाय के प्रधान आचार्य वामन भी रस के प्रभाव से नही बच पाए। वह रीति को काव्य की आत्मा मानते हुए भी रसों को भुला नहीं देते। वह रसों को, दंडी आदि की भाँति, रसवत् अलंकार के अंतर्गत न मानकर कांति-गुण से संबंधित करते हैं —'दीप्तरसत्वंकांतिः।'

वक्रोक्ति-सिद्धांत के आचार्य कुंतक भी रस की महत्ता स्वीकार करते हैं। वह काव्य में कथा को मुख्यता न देकर रस को ही प्रधानता देते है। रस के कारण ही कवियों की वाणी सजीव रहती है—

> निरन्तर रसोद्धारगर्भ संदर्भ निर्भराः।
> गिरः कवीनाम् जीवन्ति न कथामात्रमाश्रिताः॥

रस-संप्रदाय के समान लोकप्रिय होनेवाला ध्वनि-संप्रदाय था। इसके अंतर्गत ध्वनि-प्रधान काव्य को सर्वोत्तम माना गया। ध्वनि-सिद्धांत के आचार्यो ने रस का पृथक् अस्तित्व न मानकर उसे ध्वनि के अंतर्गत ही समाहित कर लिया। असंलक्ष्य-क्रम-व्यंग्य-ध्वनि के अंतर्गत ही रस, भाव, रसाभास, भावाभास आदि को स्थान दिया गया, और रस-ध्वनि को ही सर्वप्रमुख माना गया। इस प्रकार हम देखते हैं, रस-सिद्धांत ने अपने व्यापक महत्व के कारण सभी काव्य-सिद्धांतों को

एक प्रकार से पराभूत कर लिया था। ध्वनि सिद्धात को मुक्तक काव्य के निरूपण में विशेष सम्मान मिला, क्योंकि स्फुट पद्यो मे प्राय ऐसा रस-परिपाक नहीं होता, जैसा कि प्रबध काव्य एव नाटकों में होता है। परवर्ती काल मे रस ही काव्य की आत्मा माना गया। आचार्य विश्वनाथ महापात्र ने स्पष्ट रूप से घोषित किया है—

वाक्य रसात्मक काव्यम् ।'

अर्थात् रस युक्त वाक्य ही काव्य है। यह मत प्राय सर्वमान्य प्रतिपादित हुआ। ब्रज भाषा के आचार्यों ने भी इसी मत का समर्थन किया है। आचार्य चिंतामणि कहते हैं—

'बत कहाउ रस मे जु है, कवित कहावे सोय।'

—कविकुलकल्पतरु

साराश यह कि अन्य काव्यागों के महत्त्वशील होते हुए भी रस काव्य की आत्मा है और आत्मा के नष्ट होने पर काव्य-शरीर का अस्तित्व नहीं रह सकता। भरत मुनि ने प्रधान रस चार माने हैं—शृगार, वीर, बीभत्स और रौद्र। इन्हीं से चार और रस उत्पन्न होते हैं— शृगार से हास्य, वीर से अद्भुत बीभत्स से भयकर और रौद्र से करुण। भरत मुनि ने इन्हीं आठ रसों का वर्णन किया है परतु भरत के पश्चात रसों की सख्या नौ प्रतिपादित हुई। शात रस भी मान लिया गया। इसके अतिरिक्त कुछ विद्वान् वात्सल्य-नामक दसवाँ रस भी मानते हैं। रसो के श्रेणी विभाजन म शृगार को रसराज की पदवी मिली। पूरे रीति-काल में शृगार रस की धूम रही। समस्यापूर्ति-काव्य म भी शृगार रस को ही प्राधान्य मिला अन्य रसो की अपेक्षाकृत कम पूर्तियाँ हुई। जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है रस परिपाक का पूर्ण सबध प्रबध काव्य से ही होता है मुक्तक मे इसकी सभावना कम ही रहती है। उसम तो भावों की विविधता ही दर्शनीय होती है। समस्यापूर्ति काव्य म भी रस परिपाक के साथ भावों की व्यजना अधिक हुई है। रसाभास और भावाभास भी पाए जाते हैं। भाव सबलता भावोदय एव भाव शानि आदि की भी योजना परिलक्षित होती है। भाव एव रस के उपयुक्त विवेचन के पश्चात अब हम समस्यापूर्ति काव्य मे रस का विश्लेषण करेंगे।

शृगार रस—शृगार रस की परिभाषा देते हुए आचार्य भरत ने लिखा है—

'यत्किञ्चिल्लोके शुचमेध्यमुज्ज्वल दर्शनीय वा तच्छृगारेणोपमीयते।'

—नाट्य शास्त्र।

अर्थात जो कुछ लोक मे पवित्र उत्तम, उज्ज्वल एव दर्शनीय है वह शृगार-रस कहलाता है। साहित्य-दर्पणकार लिखते हैं—

श्रृंगं हि मन्मथोद्भेदस्तदागमनहेतुकः ।
उत्तमप्रकृतिप्रायो रसः श्रृंगार इष्यते ।।
—साहित्य-दर्पण

अर्थात् काम के उद्भेद (अंकुरित होने) को श्रृंग कहते है। उसकी उत्पत्ति का कारण, अधिकांश उत्तम प्रकृति से युक्त, रस श्रृंगार कहलाता है।

श्रृंगार-रस के दो पक्ष होते हैं—

(१) संयोग (संभोग)।

(२) वियोग (विप्रलंभ)।

संयोग-श्रृंगार में नायक और नायिका के प्रेम-पूर्ण विविध कार्यों का मिलन-वार्तालाप, दर्शन, स्पर्श आदि का वर्णन होता है। वियोग में प्रेमी और प्रेमिका के एक दूसरे से अलग रहने के कारण उत्पन्न उनकी दशा का वर्णन होता है। श्रृंगार-रस का स्थायी भाव रति या प्रेम है। आलंबन (विभाव) उत्तम प्रकृति का नायक अथवा नायिका है। उद्दीपन (विभाव) के अंतर्गत नायक या नायिका की वेश-भूषा, विविध चेष्टाएँ आदि पात्रगत उद्दीपन आते हैं, और पात्र से वहिर्गत उद्दीपन चंद्र-ज्योत्स्ना, वसंत, सुरभित पवन, एकांत स्थल आदि आते हैं। अनुभाव के अंतर्गत अनुराग-पूर्ण आलाप, अवलोकन, भृकुटि-भंग, कटाक्ष, अश्रु, वैवर्ण्य आदि आते हैं। संचारी भावों में लगभग सभी मान्य संचारी आ जाते हैं। श्रृंगार-रस के अंतर्गत सभी संचारियों का समावेश रहता है, इसीलिये इसे रसराज कहा जाता है। उदाहरण—

नजर धरा पै, अधरा पै पपरानि परी,
कर दै कपोल लोल, लोचनि कहा करै ;
कहै रतनाकर कन्हैया कहूँ दीठि पर्यो,
करति दुराव, कहा प्रगट दसा करै।
यों सुनि सखी के बैन, सलज रसीले नैन
नैसुक उठाए, जिन्हें हैरन बिथा करै ;
लाज-काज दुहुन दबायो दुहुँ औरन सों,
प्रान परे सांकरे, न हाँ करे, न ना करै ।।[1]

१—काशी-कवि-समाज, प्रथम भाग, छठवाँ अधिवेशन, समस्यापूर्ति।
पूर्तिकार—रतनाकर (पृष्ठ ५०)

कृष्ण के संबंध में नायिका गोपिका के चित्त में मनोविकार उत्पन्न हुआ है, अतएव कृष्ण ही आलंबन विभाव हैं। सखी के वचन एवं कृष्ण का कहीं दृष्टिगत होना उद्दीपन विभाव है। नायिका के अधरों पर पपरानि पड़ना, कपोलों पर हाथ रखना एवं नेत्रों का लज्जायुक्त होना आदि कायिक अनुभाव हैं। नायिका का अपनी दशा का प्रकट न करना एवं नेत्रों के लज्जायुक्त हो जाने के कारण व्रीडा संचारी है। व्रीडा संचारी के लक्षण स्त्रियों का पुरुष की ओर देखना, सिर नीचा रखना, आँखों का सामना न कर सकना आदि होते हैं। प्राणों का 'साँवरे' में पड़ जाने के कारण जड़ता संचारी भी है। इष्ट अथवा अनिष्ट वस्तु के देखने या उसके विषय में सुनने से थोड़ी देर के लिये ऐसी दशा उपस्थित हो जाती है, जिसमें मनुष्य किंकर्तव्य विमूढ़ हो जाता है, इसी को जड़ता कहते हैं। इसमें टकटकी लगाकर देखते रहना, चुप हो जाना आदि चेष्टाएँ होती हैं। इस प्रकार आलंबन-उद्दीपन विभावों द्वारा उद्दीप्त एवं परिपुष्ट तथा संचारी भाव की सहायता से प्राप्त अनुभाव द्वारा पूर्णता को पहुँचता हुआ रति-स्थायी संयोग शृंगार का समुचित रस परिपाक करता है। यह दर्शनजन्य शृंगार है।

> औसर के बिनहीं मिलिबे मे अबै सिगरे ब्रज चौचद ह्वैहैं।
> हे ब्रजराज ! बिनै सुनो मेरी, इतै मग मे कछु हाथ न ऐहै ॥
> देखती हैं, ते कलंक लगैहैं, कलंक की कालिमा अंगन छैहै।
> साँवरे छैल ! छुवोगे जु मोहि, तौ गातन मेरे गुराई न रैहै ॥[1]

ब्रजराज कृष्ण प्रस्तुत छंद में आलंबन विभाव हैं। अवसर के बिना मिलना तथा 'साँवरे-छैल का छूना' उद्दीपन विभाव की पूर्ति करते हैं। देखनेवाली अन्य स्त्रियाँ कलंक लगाएँगी—इस आशंका से शंका संचारी का भी प्रस्फुटन हो जाता है। नायिका का समस्त कथन तथा 'उसकी शरीर की गुराई न रहेगी' आदि अनुभाव के अंतर्गत आ जायेंगे। नायिका का गर्व के कारण अभिनंदित वस्तु में भी अनादर दिखाने के कारण 'बिब्बोक हाव' होगा। इस प्रकार विभाव, अनुभाव एवं संचारी के योग से पुष्ट हुआ रति-स्थायी भाव रस की पूर्णता को पहुँचकर संयोग शृंगार का रस परिपाक करता है।

> जो पै आप जात हैं जू लौटि मथुरा को ऊधौ,
> सत्य या सँदेस मेरो उन्है जाय कहिए,

१—काशी कवि-समाज, समस्यापूर्ति, प्रथम भाग, ८वाँ अधिवेशन।
प्रतिकार—'ब्रजराज'

दैके प्रेम-फाँसी ऐसे निठुर भए हैं कहा,
कैसी यह प्रीति-रीति, ऐसी नाहिं चहिए।
कहै कवि 'रंग', पल जुग से सिरात हाय,
बिरह-बिथा की ये कहाँ लौं पीर सहिए ;
जीवन-जहाज अब सोक-सिंधु डूबो चहै,
गोकुल के नाथ ! नेक मेरो हाथ गहिए॥'

कृष्ण आलंबन हैं। उनका प्रेम-फाँसी देकर चला जाना तथा उनकी विचित्र प्रीति-रीति उद्दीपन-विभाव के अंतर्गत आता है। गोपिका का संदेश एवं विरह-व्यथा की पीर सहन करना अनुभाव है। दुःख-सागर में डूबते हुए कृष्ण से विनय करना दैन्य संचारी के अंतर्गत आएगा। इस प्रकार विभाव-अनुभाव एवं संचारी के योग से रति-स्थायी भाव पुष्ट होकर विप्रलंभ-शृंगार का रस-परिपाक करता है। शृंगार-रस के अधिक उदाहरण न देकर अन्य रसों का भी क्रम से विवेचन करना अभीष्ट होगा।

हास्य रस—किसी व्यक्ति की विचित्र आकृति, अनोखे ढंग की वेश-भूषा, चेष्टाएँ एवं भाव-भंगिमा देखकर हृदय में एक प्रकार का विनोद-भाव उत्पन्न होता है। यही विनोद का भाव 'हास' कहलाता है। यह हास-विभाव, अनुभाव और संचारी के योग से हास्य-रस कहा जाता है। इसमें अधिकतर आलंबन-विभाव का वर्णन ही अभीष्ट होता है। अनुभाव आदि की योजना की आवश्यकता नहीं पड़ती।

इसका स्थायी भाव हास होता है, और आलंबन-विभाव विचित्र वेश-भूषा-वाला व्यक्ति। आलंबन की समस्त चेष्टाएँ तथा हास्य-मंडली आदि उद्दीपन-विभाव के अंतर्गत आ जायँगी। आश्रय की मुस्कराहट तथा नेत्रों का मिच जाना आदि अनुभाव होंगे। निद्रा, आलस्य एवं अवहित्था व्यभिचारी भाव होंगे। हास्य-रस का एक सुंदर उदाहरण देखिए—

ऊजरी पोसाक देखि जान्यो धनवान कोऊ,
झंझिहू न दीन्हीं, दीन्हें झाँसे मुलाकातन में ;
खाना खायो तान-तान, पान पै चबायो पान,
आँखे फारि-फारि देखो नाच-गान रातन में।

१—काशी-कवि-मंडल, समस्यापूर्ति, प्रथम भाग, पहला अधिवेशन।
पूर्तिकार—रंगलाल 'रंग' (पृष्ठ ६)

जरे पै लगायो लोन, जानो धौं पधारी किते,
हाथ हू लगाय गयो बिजुरी औ पातन में ,
ऐसो मिलो पाजी सो लाहौल बिला कूवत है,
आइ गई वल्ला ! मैं मुए की उन बातन मे ॥'

यहाँ 'कजरी पोशाक' पहननेवाला व्यक्ति आलबन है। उसका ठान ठानकर खाना खाना, पान चबाना, आँखें फाड-फाडकर रात-भर नाच-गाना देखना और इस पर 'बिजुरी और पातन' में हाथ लगा जाना उद्दीपन विभाग के अतगत आता है। 'जरे पै लोन लगाना' तथा 'जाओ धौं पधारी किते' आदि कथन अनुभाव के अतगत आते हैं। अतिम पक्ति मे नायिका का—'ऐसो मिलो पाजी' एव 'आइ गई वल्ला मैं मुए की उन बातन मे' यह कथन विषाद, अमर्ष एव स्वप्न सचारी के अतगत आता है, क्योंकि विषाद सचारी के अतर्गत नायिका को पश्चात्ताप होता है, अमर्ष के अतर्गत उसे क्रोध आता है, तथा स्वप्न सचारी से उसे दुख होता है। इस प्रकार विभाव-अनुभाव एव सचारी भाव से पुष्ट होकर हास स्थायी भाव हास्य रस का रस परिपाक कर देता है। हास्य रस के दो उदाहरण और देखिए—

सारी रैन पूरनै सतायो खटकीरन है,
प्रात नियराग्यो, नींद नैनन न आवती ,
छाँडि के अहिंसा नेम वैरी दल दलन के,
लखियत पाँति तिनकी पै तऊ धावती ।
रक्त बीज वसी देवता के बरदानी ऐसे,
मरि-मरि जीवत से गति सो न भावती ,
ग्रीषम में मानो खटकीरादार भौनन में
साँचो साँच चाँदनी पियूष बरसावती ॥'

प्रस्तुत छद मे खटमल ही आलबन हैं, जिनके कारण हास्य की सृष्टि हुई है।

१—रसिक वाटिका, भाग ३, क्यारी ४, २० जुलाई, १८९९ ई०।

पूर्तिकार—'सेवक'

२—रसिक वाटिका, भाग १, क्यारी ५, २० अगस्त, १८९७ ई०।

—पूर्तिकार 'पूर्ण'

कोतवाल ललिता, विशाखा जमादार बनी,
चंद्रावलि चार वेश लेखक की ह्वै गई ;
औरो जिती गोपी हती, सुघर सिपाही-रूप,
पुलिस - प्रबंध-चौकी ठौर - ठौर ठै गई ।
भाषै 'बचनेश', नई लीला भई वृंदावन,
कुंज-कोतवाली में निराली छवि छै गई ;
बनि फरियादी, श्याम कीन्हो फरियाद आय,
हाय ! मेरो राधिका चुराय चित्त लै गई ॥[1]

प्रस्तुत छंद में कवि ने हास्य के साथ-साथ व्यंग्य भी मिश्रित कर दिया है, जिससे छंद की भाव-प्रवणता के साथ-साथ उसकी रोचकता भी बढ़ गई है।

करुण-रस—शृंगार की भाँति करुण-रस भी काव्य में महत्त्व-पूर्ण रहा है। कठोर हृदयों को भी द्रवीभूत करके उनमें सहानुभूति का संचार करनेवाला यह रस काव्य में विशिष्ट स्थान रखता है। इसी से महाकवि भवभूति ने कहा था—"एको रसः करुण एव निमित्तभेदात् ।" किसी प्रिय वस्तु के विनाश होने अथवा किसी अनिष्ट वस्तु या व्यक्ति के आगमन से हृदय में जो क्षोभ एवं क्लेश होता है, उसी की अभिव्यक्ति से करुण-रस की उत्पत्ति होती है। करुण-रस का स्थायी भाव शोक है। आलंबन-विभाव के अतर्गत विनष्ट प्रिय व्यक्ति अथवा ऐश्वर्य आदि आते हैं। विनष्ट व्यक्ति का अंतिम संस्कार, उससे संबंधित वस्तुएँ तथा उसकी कथा आदि उद्दीपन-विभाव होंगे। आश्रय का प्रलाप, भाग्य-निंदा, भूमि-पतन आदि चेष्टाएँ अनुभाव कहे जायँगे। निर्वेद, मोह, अपस्मार, व्याधि, ग्लानि, स्मृति, श्रम, विषाद, जड़ता, उन्माद और चिंता, ये करुण-रस के ग्यारह संचारी भाव होते हैं। इन विभाव, अनुभाव एवं संचारी भावों के योग से करुण-रस की निष्पत्ति होती है। एक उदाहरण देखिए—

परम प्रताप लखि रिपुन मिलाप किए,
कीरति पुनीत रही छाय सब लोक-लोक ;
राजभार सासन सम्हार किए भली भाँति,
उचित बिचार, नीति-निपुण, धरम-थोक ।

१—पूर्तिकार—'बचनेश'।

ऐसे को भुआल जगती-तल 'मुकुदलाल —
बालक से प्रजागण पालक दया के ओक ,
हाय ! महारानी विक्टोरिया हिरानी कहाँ ?
आरत ह्वै भारत पुकारत दुसह शोक ।।'

यहाँ विक्टोरिया आलबन विभाव ह चारो ओर छाया हुआ उसका यश तथा तत्सबधी कथाएँ उद्दीपन विभाव हैं। भारतवासियों का बिलख बिलखकर रोना तथा 'एस को भुआल जगती-तल' आदि कथन अनुभाव होंग। विक्टोरिया की यशोगाथा के स्मरण करने से स्मृति सचारी हुई एव विक्टोरिया हिरानी कहाँ इस कथन मे उन्माद सचारी तथा आरत ह्वै भारत पुकारत' के कारण विषाद सचारी होगी। इस प्रकार विभाव अनुभाव और सचारी के समुचित सयोग से पुष्ट होकर शोक स्थायी भाव करुण रस का रस-परिपाक करता ह।

रौद्र रस—शत्रु-पक्षवाले अथवा किसी दुष्ट व्यक्ति की चेष्टाएँ काय अथवा अपना अपमान अपकार एव गुरुजनों की निंदा आदि के कारण उत्पन्न क्रोध स रौद्र रस का सचार होता है। इसका अनुभव पाठक अथवा श्रोता को किसी अन्यायी के प्रति वचनो और चेष्टाओ मे की गई व्यजना द्वारा होता है। रौद्र रस का स्थायी भाव क्रोध होता ह। शत्रु विपक्षी अथवा कोई धृष्ट व्यक्ति ही आलबन होता ह। आलबन की गर्वोक्तियाँ चेष्टाएँ, अपराध आदि ही उद्दीपन होंग। नेत्रों का लाल होना दाँत और ओठो को चबाना कठोर वचन कहना पृथ्वी को जोर से चापना गजन तजन रोमाच आदि अनुभाव होंग तथा अमष मद मोह आवग गव चपलता आदि सचारी भाव के अतगत आएँग। उदाहरण—

नीति-युत प्रथम बिनीत-युत बोल्यो बैन
कारज अनीति-युत पै न चित चोप्यो है,
मादवारे बहुरि प्रमाद अपवाद वारे
बढत विवाद के अनल अग ओप्यो है।
मान मद भजन कै, गजन गुमान-गज
जगलो अभग भमि प्रण-पद रोप्यो है,
हालि उठी अवनि बिहालि दशशीश उठ
वालि-सुत जब ही पटकि कर कोप्यो है।'

१—काव्य-सुधाधर, सप्तम प्रकाश ३० जनवरी १९०१ ई०।
२—'काव्य-सुधाधर ९वाँ प्रकाश, सितबर १९०२ ई०।

आलंवन-विभाव रावण है, इसके अनीति-युक्त कार्य एवं विवाद करना उद्दीपन-विभाव हैं। अंगद के शरीर में क्रोधाग्नि का उत्पन्न होना, प्रण करके पृथ्वी पर अपना पैर रोपना एवं पृथ्वी का कंप-युक्त हो जाना आदि अनुभाव के अंतर्गत आएँगे। अंगद के शरीर में क्रोधाग्नि बढ़ना एवं विवाद और अनीति-युक्त कार्यों की असहनीयता के कारण अमर्ष एवं उग्रता संचारी होंगे। इस प्रकार विभाव, अनुभाव और संचारी से युक्त क्रोध स्थायी में रौद्र-रस की सिद्धि हुई।

वीर-रस—कविराज विश्वनाथ ने "उत्तमप्रकृतिर्वीरः" लक्षण देकर वीर-रस को अन्य रसों से श्रेष्ठ माना है। इसकी उत्पत्ति, शत्रु का उत्कर्ष, उसकी ललकार, दीनों की दशा, धर्म की दुर्दशा आदि से किसी पात्र के हृदय में उनको मिटाने के लिये जो उत्साह उत्पन्न होता है, उसी के वर्णन से, पाठक या श्रोता के हृदय में होती है। वीर-रस के भेदों के संबंध में आचार्यों का मतभेद है। साहित्य-दर्पणकार दान-वीर, धर्म-वीर, युद्ध-वीर तथा दया-वीर, इन चारो को ही मानते है,[1] किंतु अग्नि-पुराणकार वीर के तीन ही भेद मानते है। इसमे दया-वीर का उल्लेख नही है। पंडितराज जगन्नाथ ने भी उपर्युक्त चार भेद माने है। आप इन चारो प्रकार के वीर-रस का कारण चार प्रकार का उत्साह ही मानते है।[2] आगे चलकर आचार्यों ने वीर-रस के अन्य अनेक भेद किए। श्रीवियोगी हरि ने अपनी वीर-सतसई में विरह-वीर नाम से एक और विभाग किया है। वीर-रस के अनेक भेद होते हुए भी इन सबमें युद्ध-वीर ही प्रधान माना गया है, अतएव इसी का यहाँ विश्लेषण किया जाता है। इसका आलंवन शत्रु अथवा जिसे जीतना हो, वह होता है। उसकी चेष्टाएँ, सेना, रण-वाद्य, सेना का कोलाहल, शत्रु या विपक्षी के प्रताप, उत्कर्ष आदि का श्रवण इत्यादि उद्दीपन-विभाव होगा। भुजाओं का फड़कना, अस्त्र-शस्त्र का प्रहार, अपने पराक्रम का कथन, आक्रमण आदि अनुभाव है। वितर्क, स्मृति, धृति, सुमति, गर्व, रोमांच, उग्रता और औत्सुक्य आदि व्यभिचारी भाव होंगे। ऊपर कहा जा चुका है कि वीर एवं रौद्र, दोनो का आलंबन शत्रु होता है, इस कारण दोनो की अभिन्नता में शंका उठ सकती है। इस संबंध में साहित्य-दर्पणकार कहते हैं कि नेत्र तथा मुख का लाल होना रौद्र-रस में होता है, वीर-रस में नही, क्योंकि वहाँ उत्साह ही स्थायी होता है। यही इन दोनो में भेद है।[3]

उदाहरण—

१—स च दानधर्मयुद्धैर्दयया च समन्वितश्चतुर्धा स्यात्। (२३४, सा० द०, परिच्छेद ३) —विश्वनाथ

२—दानदयायुद्धधर्मैस्तदुपाधेरुत्साहस्य चतुर्विधत्वात् (रसगंगाधर)
—पंडितराज जगन्नाथ

३—रक्तास्यनेत्रता चात्र भेदिनी युद्धवीरतः। (२३१, सा० द०, परि० ३)
—विश्वनाथ

अरे अंगद अंध ! न जानत तू वर वीरता मो परिवार की है,
क्षण मे वधौं वानर-भालु सवै, कहा हिम्मत वा वरवार की है।
दश-चारि ते तीनि लौं जीति सकौं, तब बात ही क्या सर वार की है,
सकिहै रण-भूमि में कौन चलो भट मार परे तरवार की हैं।'[1]

प्रस्तुत छंद में अंगद आलंबन विभाव है। अंगद के पूर्व-कथित वचन ही यहाँ उद्दीपन विभाव के अन्तर्गत आवेंगे। रावण का अपना पराक्रम-कथन ही अनुभाव है। अंगद को दुर्वचन कहना तथा धमकाना चपलता-संचारी भाव है। 'दश चारि ते तीनि लौं जीति सकौं।' से गर्व-संचारी सिद्ध होता है। इस प्रकार विभाव, अनुभाव एवं संचारी भाव से परिपुष्ट होकर उत्साह स्थायी भाव वीर रस का परिपाक करता है।

भयानक रस—किसी भयप्रद वस्तु का वर्णन, जिसमे कोई व्यक्ति भयभीत हो गया हो, उस भयभीत व्यक्ति की चेष्टाएँ एवं वाणी का उल्लेख करने से पाठक या श्रोता को भी भय की प्रतीति होने से भयानक रस की उत्पत्ति होती है। भयानक रस का स्थायी भाव भय है। कोई भयानक वस्तु अथवा जीव या व्यक्ति ही आलंबन विभाव होगा। भयंकर दृश्य, जीवों आदि की चेष्टाएँ एवं उनके कार्य आदि उद्दीपन विभाव होंगे। कंप, स्वेद, रोमांच, पलायन, भौचक्का होना अनुभाव तथा संभ्रम, आवेग, त्रास, शंका, दैन्य, चिंता आदि संचारी भाव हैं। एक उदाहरण देखिए—

देखि नरसिंह को भयानक कराल रूप
भागे भूरि असुर, सु कोऊ मग लागो ना,
शिथिल शरीर परो पीरो, चित चिंता चपो,
चकित चपलता को पलता को त्यागो ना।
अंगन मे जड़ता समानी जात, कांपै गात,
ऐसे में सँभारत बनत वस्त्र - बागो ना,
नीर-भरे नैनन निहारत त्यों आरत ह्वै
दैत्यप पुकारत मरत भ्रम भागो ना।'[2]

1—'काव्य-सुधाधर', ५, ६, ७, ८वाँ प्रकाश, मई-अगस्त, १९०२ ई०।
समस्या—'तरवार की है।"—दंडपाणि शर्मा

2—'काव्य-सुधाधर', वर्ष ५, ५, ६, ७, ८वाँ प्रकाश, मई-अगस्त, १९०२ ई०।
—देवीदत्त त्रिपाठी

आलंवन-विभाव नरसिंह है। उनका भयानक कराल रूप उद्दीपन-विभाव है। शरीर का शिथिल पड़ना, चित्त में चिंता बढ़ना, शरीर का काँपना, वस्त्रों का ढीला पड़ना तथा असुरों का इधर-उधर भागना अनुभाव है। चित्त में चिंता आना, शरीर का पीला पड़ना आदि में चिंता-संचारी है। शरीर में कंपन होने से कंप संचारी है। नेत्रों में आँसू भरकर पुकारने से दैन्य एवं 'मरत भम भागो ना' में मरण-संचारी भाव है। इस तरह विभाव, अनुभाव और संचारी भाव से पुष्ट होकर 'भय' स्थायी भाव भयानक रस का रस-परिपाक करता है।

वीभत्स-रस—घृणास्पद वस्तुओं—मज्जा, मांस, रक्त, अँतड़ियाँ आदि और इन सबसे उत्पन्न दुर्गंध आदि—के वर्णन से हृदय में जो ग्लानि होती है, उसी से वीभत्स-रस की उत्पत्ति होती है। इस रस में भी केवल आलंबनों का वर्णन यथेष्ट होता है, अनुभावों एवं संचारियों का वर्णन आवश्यक नही होता। इसका स्थायी भाव जुगुप्सा है। घृणास्पद वस्तुएँ ही आलंबन है। उनकी दुर्गंध, चेष्टाएँ, कीड़ों का पड़ना आदि उद्दीपन-विभाव होंगे।

नाक सिकोड़ना, थूकना, मुँह फेर लेना, आँख मीचना आदि अनुभाव होंगे। मूर्च्छा, मोह, आवेग, अपस्मार, व्याधि आदि संचारी भाव होंगे।

टिप्पणी—समस्यापूर्ति के उद्देश्यों पर प्रकाश डालते हुए कहा गया है कि इसका प्रमुख उद्देश्य मनोरंजन होता है, अतएव इसे दृष्टि में रखते हुए यह कहा जा सकता है कि पूर्तिकारों ने प्रायः उन्हीं रसों का यथेष्ट उपयोग किया, जो हृदय एवं मन, दोनो को प्रसन्न करने में सहायक होते है। वीभत्स-रस श्रोताओं के मन में अरुचि उत्पन्न करनेवाला ही कहा जा सकता है। प्रबंध-काव्य अथवा महा-काव्य में तो प्रबंधत्व का निर्वाह करना आवश्यक होता है, एवं अन्य रसों—शृंगार, वीर अथवा करुण—का प्राधान्य रहता है, जिसके अंतर्गत वीभत्स-रस का वर्णन भी कर दिया जाता है, जो एक प्रकार से उचित माना जा सकता है, किंतु जहाँ प्रातियोगिक भाव से काव्य-रचना की जा रही हो, वहाँ कोई भी कवि अपने श्रोताओं के मन में वीभत्स-रस की पूर्तियाँ सुनाकर अरुचि न उत्पन्न करेगा। यही कारण है कि वीभत्स-रस की पूर्तियाँ नहीं उद्धृत की जा सकीं।

अद्भुत रस—किसी असाधारण लौकिक वस्तु को देखकर हमारे हृदय में एक विशेष प्रकार का कौतूहल भर जाता है। हम उसके विषय में सोचकर मुग्ध हो जाते है। यही आश्चर्य का भाव किसी वर्णन में आने से अद्भुत रस कहलाता है। इस रस में भी अधिकतर आलंबन का वर्णन ही पर्याप्त होता है। अद्भुत रस का स्थायी भाव विस्मय या आश्चर्य होता है। आलंबन के अंतर्गत अलौकिक वस्तु, असंभाविक व्यापार, लोकोत्तर कार्य-कलाप अथवा आश्चर्य-जनक व्यक्ति आते हैं।

इनका देखना अथवा वर्णन सुनना आदि उद्दीपन विभाव के अन्तर्गत आएगा। मुँह खोलकर हँसना, अश्रुपात, स्वेद, गद्गद वाणी, आँखें फाड़कर देखते रह जाना आदि अनुभाव हैं। इसके संचारी भाव के अन्तर्गत वितर्क, भ्रांति, आवेग, उन्माद, गर्व हर्ष आते हैं। उदाहरण—

जाकर रूप विराट कहैं श्रुति, आदि औ' अंत की थाह न पावै,
रोम में कोटि लसैं ब्रह्मंड, मुनीसन हू पै न ध्यान में आवैं,
सर्व विश्व में व्यापक जो, सुनि ताकि कथा विसमै मन छावैं,
नंद के भौन में सूप के कौन परो सोइ, देखत ही बनि आवैं।[1]

यहाँ विश्व में व्याप्त, मुनियों के भी ध्यान में न आनेवाले तथा जिनके रोम रोम में करोड़ों ब्रह्मांड निवास करते हैं ऐसे विराट भगवान का नंद के भवन में सूप के एक कोने में बालक रूप में विद्यमान होना ही आलंबन विभाव है। विराट रूप होना, आदि और अंत रहित कहा जाना तथा मुनि जनों के भी ध्यान में न आना आदि उद्दीपन विभाव हैं। उसकी कथा सुनकर विस्मित होना तथा 'देखत ही बनि आवैं' कथन अनुभाव होगा। 'देखत ही बनि आवै' से हर्ष संचारी लक्षित होती है। इस प्रकार विभाव, अनुभाव तथा संचारी के योग से पुष्ट हुआ स्थायी आश्चर्य भाव अद्भुत रस की प्रतीति कराता है।

शांत रस—संसार में किसी भी प्रकार का स्थायित्व न देखकर मानव जीवन संसार से विरक्त हो उठता है। वह एकांत चिंतन कर ईश्वर विषयक ज्ञान प्राप्त करता है जिससे उसके हृदय में अभूतपूर्व शांति मिलती है। इसी शांति का वर्णन पाठक अथवा श्रोता के हृदय में शांत रस की उद्भावना करता है। शांत रस का स्थायी भाव निर्वेद होता है। परमार्थ ही आलंबन विभाव के अन्तर्गत आएगा। उद्दीपन विभाव के अन्तर्गत ऋषियों के आश्रम, तीर्थ-स्थान, महात्माओं का सत्संग, शास्त्रानुशीलन आदि आएँगे। अनुभाव रोमांच, पुलक, अश्रु विसर्जन आदि होंगे तथा धृति, मति, हर्ष, निर्वेद, स्मरण, विबोध आदि संचारी भाव होंगे। उदाहरण—

कंचन धाम खड़े रहिहैं, रहिहैं दरवाजन में पड़े ताला,
संपति साथ नहीं चलिहै, मलिहै कर, साथ न देयगी बाला।
'दीन' कहै विधि सृष्टि असार, वृथा गज, बाजि, सुहावनी साला,
आसन मारि समाधि लगाय जपै परमेश्वर नाम की माला।[2]

१—'रसिक-वाटिका' भाग २ क्यारी २ २० एप्रिल १८९८ ई०।—सेवक'
२—'माला' (समस्या) पूर्तिकार—भगवानदीन मिश्र 'दीन,' खैराबाद, सीतापुर

यहाँ सृष्टि के असार होने का ज्ञान आलंबन-विभाव है। इसके अंतर्गत स्वर्ण-महलों में ताले पड़े रहना, संपूर्ण संपत्ति का यहीं रह जाना तथा जीवन-सहचरी का भी अंत में साथ न देना उद्दीपन-विभाव होगा। आश्रय के हृदय में संसार की असारता देखकर जो उदासीनता उत्पन्न होती है, तथा इससे अपने को सचेत कर परमेश्वर नाम की माला जपना अनुभाव होगा। सांसारिक वस्तुएँ यहीं रह जायँगी, तथा सगे-संबंधी भी तुझे त्याग देंगे, इससे तू उन्हें अभी से क्यों नहीं त्याग देता, मे मति-संचारी है। अतः यहाँ विभाव, अनुभाव एवं संचारी के संयोग से स्थायी निर्वेद के पुष्ट होने पर शांत-रस की निष्पत्ति होती है।

भक्ति एवं वत्सल-रस को आचार्यों ने शृंगार-रस के ही अंतर्गत माना है। भक्ति को देव-विषयक रति तथा वत्सल को पुत्र-विषयक रति के अंतर्गत रक्खा गया है। किंतु कुछ आचार्यों एवं विद्वानों ने वात्सल्य एवं भक्ति को भी रसों के अंतर्गत मान लिया है,[1] अतएव इनका भी विवेचन यहाँ किया जाता है।

भक्ति-रस—भक्ति-रस में इष्टदेव ही आलंबन-विभाव है। उनके संबंध के सभी विचार और सभी सामग्रियाँ उद्दीपन-विभाव हैं। स्तंभ, स्वेद, रोमांच, स्वर-भंग, वेपथु, अश्रु आदि अनुभाव हैं। ये अनुभाव भक्ति-भाव के सूचक भी है, और प्रवर्द्धक भी। संचारी भाव इस रस के सहायक अंग हैं। उदाहरण—

गज ग्राह ते छोरि निबाह कियो, मृग-संकट को चित लाइए तो;
ब्रज इंद्र सौं भारत में भरुही पे करी करुणा, त्यों बचाइए तो।
अब संग दुकूल के जात है लाज, अहो ब्रजराजजू ! आइए तो;
यहि मूढ़ दुशासन के कर सों "उरझो अँचरा सुरझाइए तो।[2]

प्रस्तुत छंद में ब्रजराज कृष्ण ही आलंबन-विभाव है। उनका गज को ग्राह के बंधन से मुक्त करना, मृग-संकट को ध्यान में रखना तथा इंद्र के कोप से ब्रज की रक्षा करना और भारत-युद्ध में भरुही के ऊपर दया करना आदि कार्य-व्यापार उद्दीपन-विभाव के अंतर्गत आएँगे। द्रौपदी के वस्त्रों के खींचने में उसकी पुकार ही अनुभाव है। वस्त्रों के खींचने से लज्जा जाने में चिंता-संचारी है, तथा 'अहो ब्रजराजजू ! आइए तो।' में दैन्य-संचारी है। इस प्रकार विभाव, अनुभाव एवं संचारी के योग से पुष्ट हुआ स्थायी भक्ति-भाव भक्ति-रस की प्रतीति कराता है।

१—पूज्य गुरुवर डॉ० भगीरथजी मिश्र ने भी भक्ति-रस और वत्सल-रस को अलग रस के रूप में स्वीकार किया है।

२—'उरझो अँचरा सुरझाइए तो' (समस्या), पूर्तिकार—कविवर श्रीब्रजराज, गँधौली, सीतापुर

वत्सल रस—शिशु क्रीड़ा स्वाभाविक चपलता तोतली बोली एवं निर्विकार सौंदर्य देखकर जिन भावों की प्रेरणा से मन बच्चों की ओर तुरन्त आकर्षित हो जाता है और अपने पराए का भेद भाव किए बिना ही अनुपम आनंद से भर जाता है उसी से वत्सल रस की निष्पत्ति होती है। वात्सल्य स्नेह इसका स्थायी भाव होता है। पुत्रादि इसके आलंबन और उसकी चेष्टा तथा विद्या शूरता, दया आदि उद्दीपन विभाव हैं। आलिंगन-स्पर्श सिर चूमना, देखना, रोमांच आनंदाश्रु आदि इसके अनुभाव हैं। अनिष्ट की आशंका, हर्ष गर्व आदि संचारी माने जाते हैं। शृंगार रस की भाँति इस रस के भी दो पक्ष होते हैं—(१) संयोग तथा (२) वियोग। वत्सल रस का एक सुंदर उदाहरण देखिए—

बीते दिन सात भए हरि के शिथिल गात,
घटिगो प्रकाश मुख चंद की जुन्हैया को,
ह्वैहै कहा दैया, दबि जैहैं बाल - गैया,
नहिं संकट हरैया कोउ साँकरी समैया को।
शंकर सुकवि जोरि बैठे हो अथैया,
खात माखन मिठैया तजि शक सुरैया को,
थाँभो दौरि भैया, करो कछुक सहैया,
गिरि गिरन चहत, 'कर काँपत कन्हैया को।'[१]

प्रस्तुत छंद में कन्हैया ही आलंबन विभाव है उनका कर काँपना, शरीर का शिथिल पड़ जाना मुख का प्रकाश धूमिल पड़ना आदि उद्दीपन विभाव है तथा वह वृद्ध ही जो कि कृष्ण के विषय में ऐसा कह रहा है आश्रय है। आश्रय के हृदय में उद्भूत भय कि क्या होगा, तथा गोपों को व्यंग्य-वचन सुनाना अनुभाव है। 'ह्वैहै कहा दैया' में शंका संचारी है। 'थाँभो दौरि भैया' इस कथन से आवेग संचारी लक्षित होती है। 'गिरि गिरन चहत' में चिंता संचारी है। इस प्रकार से कई संचारी हैं। आलंबन एवं उद्दीपन विभाव तथा अनुभाव और संचारी से पुष्ट हुआ स्थायी अपत्य प्रेम वत्सल रस की निष्पत्ति करने में समर्थ हुआ है।

रस के उपर्युक्त विवेचन से समस्यापूर्ति-काव्य की गंभीरता एवं उत्कृष्टता का द्योतन हो जाता है। रस विवेचन के माध्यम से स्पष्ट हो जाता है कि समस्या पूर्ति काव्य में शृंगार\हास्य, करुण एवं वत्सल रस की पूर्तियाँ अधिक हुई हैं। समस्यापूर्ति काव्य में भाव चित्रण ही अधिक मिलता है क्योंकि मुक्तक काव्य में रस का पूर्ण परिपाक स्वल्प रूप में ही हो पाता है। अतएव भावों की विविधता एवं रस का यत्किंचित निरूपण ही इस काव्य की महत्ता को प्रकट कर देता है।

१—कर काँपत कन्हैया को (समस्या) पूर्तिकार—शंकर कवि, दरियाबाद बाराबंकी

८

समस्यापूर्ति-काव्य और समसामयिक समाज

साहित्य और समाज का चिरंतन संबंध है। समाज के लिये साहित्य एक प्राणदायिनी अमोघ ओषधि है, और समाज साहित्य के लिये एक प्रेरणा-स्रोत। दोनो का एक अटूट संबंध है। समाज का प्रतिबिंबन साहित्य में होता है, और साहित्य अपनी विचार-धाराओं से समाज को एक नया मोड़ दे देता है। एक प्रकार से मानव-जीवन का शरीर समाज है, और उस शरीर में स्पंदन भरनेवाली आत्मा साहित्य है।

मनुष्य की सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक एवं धार्मिक वृत्तियों का चित्रण एवं तत्संबंधी स्थितियों का दिग्दर्शन साहित्य द्वारा बहुत कुछ हो जाता है। इस संबंध में एक अँगरेज आलोचक का कथन है—"साहित्य जीवन का वह लेखा है, जिसे साहित्यकार मानव-जीवन में देखता और अनुभव करता है, और फिर भाषा द्वारा वह उसे व्यक्त कर देता है।"[1] साहित्य का प्रत्येक अंग समाज से संबंधित है। समस्यापूर्ति-काव्य के प्रसंग में भी यह देखा जाता है कि समस्याएँ या तो पौराणिक कथाओं से या समवर्ती मानव-जीवन से संबंधित होती हैं, अतएव समकालीन जीवन से भी समस्यापूर्तियों का बराबर संबंध रहता है। समस्यापूर्ति-काव्य पर समकालीन समाज का प्रतिफलन हुआ है। समस्यापूर्तिकार कवियों ने समाज से ही अपने काव्य का उपकरण ग्रहण किया, और पूर्ति-रूप में उसे समाज को प्रदान कर दिया। इस प्रकार से समस्यापूर्ति-काव्य का समाज से घनिष्ठ संबंध रहा है। समस्यापूर्ति-काव्य में केवल राजनीतिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक स्थितियों का ही चित्रण नही हुआ, वरन् समस्यापूर्ति द्वारा समाज-सुधार, राष्ट्र-प्रेम, राजनीतिक चेतना, आर्थिक स्वतंत्रता, सांस्कृतिक उत्थान एवं धर्म-प्रचार की भी प्रेरणा दी गई है।

यहाँ यह बतला देना आवश्यक है कि समस्यापूर्ति-रूप में संगृहीत काव्य अधिकांशतया आधुनिक काल से ही संबंधित है। प्राचीन सामग्री इतनी पर्याप्त नही कि उसके आधार पर हम उपर्युक्त तथ्यों का अध्ययन कर सकें, अतएव

१—ऐन इन्ट्रोडक्शन टु दि स्टडी ऑफ़् लिटरेचर—वि० हे० हडसन (पृष्ठ १०)

भारतेंदु-युग एवं उसके उपरांत समस्यापूर्ति रूप में निर्मित काव्य के आधार पर ही तत्कालीन राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक स्थितियों का विवेचन करना संभव है। और, इसके आधार पर हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि समकालीन जीवन समस्यापूर्तियों में प्रतिबिंबित है।

भारतेंदु-युग की सबसे प्रमुख राजनीतिक घटना महारानी विक्टोरिया का राज्यारोहण है। उस समय कवियों ने विक्टोरिया के शासन एवं उसके राज्य के प्रति पूर्ण राज्य भक्ति प्रदर्शित की। साथ ही साथ भारत की दरिद्रता एवं उसकी दीन-हीन अवस्था को देखकर उन्होंने आर्थिक स्वतन्त्रता की भी माँग की। यहाँ पर प्रथमतः इन्हीं दृष्टियों से हम विचार करेंगे।

राजनीतिक स्थिति—

सन् १८५७ ई० के प्रथम स्वातन्त्र्य-संग्राम के फलस्वरूप भारत में महारानी विक्टोरिया का राज्य स्थापित हो गया। विक्टोरिया ने भारत का शासन-सूत्र अपने हाथ में लेते समय यह घोषणा की— मेरी प्रजा चाहे वह किसी भी जाति या मत की हो अपनी शिक्षा योग्यता और सत्यता के बल पर यथासंभव स्वतन्त्रता-पूर्वक तथा निष्पक्ष भाव से सरकारी नौकरियों के कर्तव्य-पालन के लिये भर्ती हो सकेगी।' इस घोषणा के अंतिम भाग में भारतीयों की भौतिक तथा नैतिक उन्नति के उपायों का वचन दिया गया था और कहा गया था कि उनकी समृद्धि में हमारा बल है उनके संतोष में हमारी सुरक्षा है और उनकी कृतज्ञता ही हमारा सर्वोत्तम इनाम है।" महारानी विक्टोरिया की उस घोषणा से देशी राजाओं और प्रजा को आश्वासन मिला। उनके हृदय में व्याप्त असंतोष दूर हुआ, विक्टोरिया-जैसी सहृदया महारानी को पाकर उनकी भय जाता रहा, और वे प्रसन्न होकर अँगरेजी राज्य की प्रशंसा करने लगे। कवियों ने भी अँगरेजी राज्य के प्रशंसा-गीत लिखे।

राजभक्ति—

भारतीयों ने विक्टोरिया के शासन का स्वागत किया, और उसके चिरजीवी रहने की कामना की। जनता की शुभकामनाओं और राजभक्ति को समस्या पूर्तिकारों ने अपनी सरस पूर्तियों में मुखर किया। पंडित प्रतापनारायण मिश्र ने विक्टोरिया की यश-वृद्धि की कामना करते हुए सपरिवार चिरजीवी रहने का आशीर्वाद दिया। यह भाव 'चिरजीवो रहो विक्टोरिया रानी' समस्या की निम्न लिखित पूर्ति में देखिए—

१—देखिए ब्रिटिशकालीन भारत का इतिहास। लेखक, पी० ई० राबर्ट्स, अनुवादक, डॉ० आर० आर० सेठी। (पृष्ठ २९१)

पालत प्रीति - समेत प्रजाहि, सबै बिधि है सबकी सुखदानी,
धौल धुजा जस की फहरावत, लेत अरिंदन की रजधानी;
जो लगिहैं नभ में ससि-सूरज जन्हु-सुता जमुना मँह पानी,
पूत-पतोहुन साथ सुखी 'चिरजीवी रहो विक्टोरिया रानी'।[१]

कविवर द्विजश्याम तो विक्टोरिया की महिमा का वर्णन करते हुए उसका पार ही नहीं पाते है। वह तो उसे 'पुण्य' और 'कीर्ति' बटोरनेवाली कहते है—इसे 'चिरजीवी रहो विक्टोरिया रानी' समस्या की पूर्ति में देखिए—

क्यों हू बखानि तिहारो प्रताप न पार लहै द्विजश्याम की बानी,
भारत की सुनि लेत सदैव अनाथ पुकार सु आरत खानी;
बातन के जड़ की टक्टोरिया पुन्य-सुकीर्ति बटोरिया दानी,
शत्रुन को विष की-सी कटोरिया, 'जीती रहो विक्टोरिया रानी'।[२]

भारतेंदु बाबू तो विक्टोरिया के राज्य को राम-राज्य के समान मानते है। उन्हें विक्टोरिया के राज्य में राम-राज्य की-सी रीति-नीति दीख पड़ती है। रेल और तार, जो भारत को सुख-संपन्न बनाने के अभिनव साधन थे, पाकर भारतवासी फूले न समाए। भारतेंदु बाबू 'जीवो सदा विक्टोरिया रानी' समस्या की पूर्ति-रूप में गा उठे—

राज में जाके सबै सुख-साज, सुकीरत जासु न जात बखानी,
जो सुन्यो श्रीरघुनंदन के समै, नैनन सों सोई रीति लखानी;
तार औ' रेल की चाल करी, 'हरिचंद' जो लोगन को सुखदानी,
याते कहै सबरे मिलिकै, 'चिरजीवो सदा विक्टोरिया रानी'।[३]

विक्टोरिया के शासन की इस प्रकार प्रशंसा करने का कारण भी था। इसके पहले शासन-व्यवस्था अस्त-व्यस्त थी। विक्टोरिया ने शासन-सूत्र अपने हाथ में सँभालकर पूर्ववर्ती अस्त-व्यस्तताओं को दूर करने की चेष्टा की। उनके शासन-काल में भारत मे यातायात के साधनो का निर्माण हुआ। रेल बनी, जिससे यात्रा की दूरी कम हो गई, और समय की बचत हुई। पक्की सड़कों का निर्माण हुआ, और स्थान-स्थान पर सुरक्षात्मक पुलिस-चौकियों एवं रोगियों के लिये अस्पताल बनवाए गए। समाचार भेजने के लिये डाकखानों एवं तार का प्रबंध किया

१—देखिए—विक्टोरिया रानी। संपादक—रामकृष्ण वर्मा।
२—देखिए—वही।
३—भारतेंदु-ग्रंथावली, दूसरा भाग। (पृष्ठ ८६७)

गया। न्याय-व्यवस्था के लिये न्यायालय एवं शिक्षा प्रसार के लिये विद्यालयों की स्थापना की गई। सभाएँ करने एवं धार्मिक प्रचार की भी स्वतन्त्रता दे दी गई। देश है' समस्या की पूर्ति में उपयुक्त तथ्य को देखिए—

रेल बैठ थोसव मे घूमिए हजार मेल
तार समाचार, चाल बीजुली अशेश है,
थाने, तोपखाने डाकखाने, शफाखाने घने,
सडक सराय आदि सुख को निदेश है।
मीटिंग की प्रेस की रिफार्म की स्वतन्त्रता है
धर्म की स्वतन्त्रता प्रशसित विशेष है,
पूरन विद्यालय न्यायालय अपार लखो,
अमन ब्रितानियों को भारत के 'देश है'।[1]

भारतीय जनता ने विक्टोरिया के शासन को अपेक्षाकृत अधिक सुखप्रद एवं कल्याणप्रद रूप में देखा और अपनी पूर्ण राजभक्ति प्रदर्शित की किन्तु राजभक्ति के साथ-साथ भारतवासी अपनी देश भक्ति को भी न भूल सके। उन्होंने अँगरेजी शासन की परोक्ष रूप में आलोचना की और आर्थिक शोषण का घोर विरोध किया। ब्रिटिश शासन ने अनेक प्रकार के कर लगाकर भारत का धन खींचकर विलायत भेज दिया, और लसम एवं चुंगी से भारतीय व्यापार को ठेस पहुँचाई अतएव भारतवासियों ने इन विभिन्न प्रकार के व्यापारिक प्रतिबंधों एवं आर्थिक स्वतन्त्रता देने की माँग की। करो को दूर कर आर्थिक स्वतन्त्रता देने की माँग की। यह भाव देश है समस्या की पूर्ति में इस प्रकार प्रकट हुआ है। देखिए—

नृपति पुराने ज बखाने गुनवान भए
तिनकी सुनीति नीति जग में विसेस है,
प्रजा को बिहाल काहू काल में न देखि सकै,
हर्यो सब भाँतिन सो तिनको कलेस है।
सोई रतनेश रीति रावरी निहारी नीकी,
दोई दुख भारी जातें सुख को न लेश है,
टिक्कस के कस सो निकस बैपारी सबै
चंगुल सो चुंगी के दुखित सब देश है'।[2]

1—रसिक-वाटिका भाग १ क्यारी ३ २० जून १८९७ ई०।—पूर्ण'
2— ,, ,, —रतनेश

विविध प्रकार के करों से भारतीय जनता की रीढ़ टूट गई। 'यों विक्टोरिया रानी के राज्य के बारह वरसों में भारत से धन की वार्षिक निकासी चौगुनी हो गई, और इस घाटे की पूर्ति के लिये जनता के कर का बोझ पचास फ़ीसदी बढ़ गया, जिसमें नमक-कर ही विभिन्न प्रांतों में पचास से सौ फ़ीसदी तक बढ़ा।'[१] विक्टोरिया की हीरक जुबली के अवसर पर भारतीय जनता ने नमक-कर एवं आर्म्स-ऐक्ट तोड़ देने की प्रार्थना की, तथा बार-बार के बंदोबस्त से उत्पन्न कठिनाइयों को भी दूर कर देने का निवेदन किया। यह 'देश है' समस्या की पूर्ति-रूप में इस प्रकार मुखर हुआ है—

आशा बरसन ते लगी है जा दिना की हिये,
आज दिन आयो सोई आनंद को वेश है;
छोड़ि दीजै साल्ट-टैक्स, तोड़ि दीजै आर्म्स-ऐक्ट,
बार-बार बंदोबस्त दुखद हमेश है।
भूषण भनत, कृपा कीजै विक्टोरियाजू,
जानिए भलाई यामे प्रजा की विशेष है;
पूत औ' पतोहू साथ राज करौ याही भाँति,
हृदै से अशीस देत भारत को 'देश है'।[२]

आर्थिक शोषण होने से भारतवासी हर प्रकार से दीन-हीन और असहाय हो गए। पेट-भर अन्न न पाने से उनकी शारीरिक शक्ति समाप्त हो गई, और उनका बौद्धिक ह्रास होने लगा। धन के बिना प्रजा की वही दशा हो गई, जो पानी के बिना मछली की होती है। भारतेंदुजी ने 'जीवो सदा विक्टोरिया रानी' समस्या की निम्न-लिखित पूर्ति में भारतीयों की इसी दशा का चित्रण करते हुए टैक्स छुड़ा देने की प्रार्थना की है—

दीन भए, बल-हीन भए, धन-छीन भए, सब बुद्धि हिरानी,
ऐसी न चाहिए आपु के राज, प्रजागन ज्यों मछरी बिनु पानी।
या रुज की तुम ही अहो बैद, कहै तिहितै 'हरिचंद' बखानी,
टिक्कस देहु छुड़ाइ कहै सब, 'जीवो सदा विक्टोरिया रानी'।[३]

१—देखिए—इतिहास-प्रवेश, राजस्थान संस्करण। जयचंद विद्यालंकार। (पृष्ठ ७००-७०१)

२—रसिक-वाटिका, भाग १, क्यारी ३, २० जून, १८९७ ई०। —व्रजभूषणलाल गुप्त

३—भारतेंदु-ग्रंथावली, भाग २। (पृष्ठ ८६७)

आर्थिक स्थिति—

प्रतापनारायण मिश्र ने भी 'टिक्कस की न बियाधि टरी' तथा 'जानि है भारत आरत शाह अहै सिर पै विक्टोरिया रानी।'[1] की पुकार लगाई। भारत की आर्थिक स्थिति बहुत बिगड़ गई थी। आएदिन जनता पर नए-नए कर लगते थे, और भारत की सम्पत्ति इंगलैंड भेजी जाती थी। यही नहीं, ब्रिटिश सरकार ने रुपए का मूल्य बढ़ा दिया, जिससे गरीब किसानों का कर्ज और भी बढ़ गया। रुपए की मूल्य-वृद्धि से केवल समृद्ध जन का लाभ हुआ, किन्तु गरीब जनता कर्ज की चक्की से पिस गई। एक प्रसिद्ध इतिहासकार का कथन है—'भारत के गरीब कर्जदार वर्ग के गले में बंधी पत्थर की चक्की का बोझ बढ़ गया, उन समृद्ध वर्गों को लाभ हुआ, जो जनता की मुसीबत पर जीते हैं। भारतीय जनता की हालत तब यह थी कि देहात में मजदूरी की दर दो आने रोज थी, और 'भूखे' रहना बहुत कुछ आदत बन गया था।'[2] अँगरेजी राज्य ने जहाँ यातायात के साधन जुटाए, सूचना भेजने के लिये तार और समाचार प्रकाशन की व्यवस्था करवाई, रोगियों की चिकित्सा के लिये अस्पताल एवं डिस्पेंसरियाँ स्थापित कीं, वहीं अकाल और उसके प्रति सरकारी उपेक्षा ने जनता में त्राहि त्राहि मचा दी, और जो कसर रह गई थी उसे प्लेग ने पूरी कर दी। इसका वर्णन एक समस्या 'न जात कहीं' की पूर्ति में देखिए—

दुरभिच्छ की पीरसों त्राहि मची,
नहिं टेर दुखीन की जात सही,
बढ्यो प्लेग को ता पर त्रास महा,
रहे आतुर दीन प्रजा नित ही।
हुती दारिद - दुख - व्यथा प्रथमे,
अब दाद में खाज मनो उलही,
प्रिय भारत आरत की कुदशा
करुणाकर ईश, 'न जात कही'।[3]

१—विक्टोरिया रानी १८९७ ई०। संपादक—रामकृष्ण वर्मा।
२—इतिहास प्रवेश, राजस्थान-संस्करण, उत्तरार्द्ध। जयचंद्र विद्यालंकार। (पृष्ठ ७१३)
३—रसिक-वाटिका, भाग ४, क्यारी ९, दिसंबर, १९०० ई०। पूर्तिकार—पूर्ण

इतिहासकार लिखता है—'विक्टोरिया के सम्राज्ञी बनने के उपलक्ष में १ जनवरी, १८७७ ई० में दिल्ली में दरबार किया गया। तभी मदरास और मैसूर प्रांतों में घोर दुर्भिक्ष था, जिसमें बरस-भर में ५० लाख मनुष्य भूख से तड़प-तड़पकर मर गए, और यह दिखा गए कि अँगरेज़ी साम्राज्य की नीव उनकी लाशों पर थी।'[1] सरकार की ओर से दुर्भिक्ष के प्रति बरती गई उदासीनता अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच गई। एक ओर देश में दुर्भिक्ष फैला था, और दूसरी ओर भारत से करोड़ों रुपए का अनाज विलायत भेजा जाता था। सन् १८९६-९७ ई० में भारत में व्यापक दुर्भिक्ष फैला, जिसमें क़रीब १० लाख आदमी मरे। उस दुर्भिक्ष के बीच भी सीमांत का खर्चीला युद्ध चलता रहा, और १४ करोड़ रुपए का अनाज इँगलिस्तान गया। उसी साल बंबई में पहलेपहल प्लेग आई। जनता में घोर असंतोष था, और वह अँगरेज़ी शासन को ही अपने इन कष्टों का कारण अनुभव करने लगी थी। सरकारी अफ़सरों ने प्लेग के कारण लोगों के रहन-सहन में दस्तंदाज़ी की, तो लोग और भी खीझे, और पूना मे दो अँगरेज़ मारे गए।'[2] यही नहीं, अकाल की विभीषिका और भूख की पीड़ा इतनी बढ़ी कि माता-पिता अपने-छोटे-छोटे बच्चों को बेंच-बेंचकर अपने पेट भरने लगे। इसका वर्णन 'देश है' शीर्षक समस्या की निम्न-लिखित पूर्ति में देखिए—

ऐसो अकाल परो न कबों कि प्रजा मन में सुख को नहिं लेस है,
बेंचत मात-पिता लघु बालक, दुःख अनाथन को अति बेस है;
भाषत 'गंगाप्रसाद' सुनाय, यही अरजी सरकार में पेस है,
कीजै कृपा विक्टोरियाजू अब ह्वै रह्यो आरत भारत 'देस है'।[3]

इतना ही नहीं, प्रत्युत अकाल की स्थिति में धर्म-अधर्म का विचार भी जाता रहा। लोग माँग-माँगकर इधर-उधर बिना विचारे खाने लगे। भूख की ज्वाला यहाँ तक बढ़ी कि रोटी बनने के पूर्व ही लोग उसकी लोई को ही खा जाते थे। शासन की दुर्नीति से ग़रीब जनता और भी त्रस्त हो गई। जनता की आर्त वाणी सुनने-वाला कोई न था। धनी वर्ग अपना पेट भरने में व्यस्त था, और सरकार में भी उसी की रसाई हो रही थी। 'शीत बड़ो विपरीत करै।' समस्या की पूर्ति में इसका वर्णन देखिए—

१—इतिहास-प्रवेश—जयचंद विद्यालंकार। (पृष्ठ ७०४)

२—वही " " (पृष्ठ ७२०-२१)

३—रसिक-वाटिका, भाग १, क्यारी ३, २० जून, १८९७ ई० —गंगाप्रसाद

ऐसो अकाल परयो ना कभूं, बसुधा बिनु अन्न गरीब मरै,
बानी सुनै ना कोऊ दुखिया की, सदैं सुखिया निज पेट भरै,
धर्म की कौन 'केदार' कथा कहै, मंगन फेरत मांग्यो धरै,
खायगो लोई बनात थे बधक 'शीत बडो विपरीत करै'।[1]

अँगरेजी अर्थ-तंत्र के अनुसार भारत की आर्थिक दशा बिगड़ गई थी। अँगरेजी राज्य ने भारतवर्ष का आर्थिक शोषण कर उसे दीन-हीन और असहाय बना दिया था। चुंगी और कर से एक ओर जहाँ भारतीय व्यापार को ठेस लगी, वहीं दूसरी ओर अन्नदाता किसान को जमींदारों और सरकारी अफसरों ने चूस डाला। जो गाँव सुख, शान्ति और सपन्नता के केंद्र थे, वही अब पीडा, अशांति और दरिद्रता के आगार बन गए। समाज के मुट्ठी-भर उच्च वर्ग को छोडकर अन्य सभी गरीबी और दैन्य का जीवन बिता रहे थे। मध्यम वर्ग की कहानी तो अत्यत करुण थी। गरीबी और अकाल की अवस्था में उसका सारा जीवन-स्तर छिन्न-भिन्न हो गया था। आय-कर, जल-कर, लैसंस आदि उसे देने ही पडते थे, चाहे अकाल पडे, और चाहे प्लेग आए। नगर मे रहनेवाला मध्यम वर्ग अत्यंत दयनीय बन चुका था। कठोर शीत में चार चार व्यक्ति एक ही रजाई मे सोते थे। इस करुण स्थिति का चित्रण 'एक ही रजाई मे' समस्या की पूर्ति में देखिए—

आयो विकराल काल, भारी है अकाल परयो,
पूरे नाहि खर्च घर-भर की कमाई में,
कौन भाँति देवे टैक्स इनकम, लैसन और
पानी की पियाई, लैंटरन की सफाई में।
कैसे हेल्थ साहब की बात कछू कान करे,
पडे न सुसीत भूमि, पौढें चारपाई में,
किमि के बचावें श्वास, और कौन ओर घुसें,
सोवैं साथ चार-चार एक ही रजाई में।[2]

अकाल की अवस्था मे एक तो वैसे ही गरीब जनता बिना अन्न के मर रही थी, दूसरी ओर शीत की तीव्रता से उसे और भी कष्ट पहुँच रहा था। कविवर

१—'काशी-कवि-समाज', समस्यापूर्ति, प्रथम भाग, सं० १९५३ वि०।
पूर्तिकार—केदारनाथ'
२—काशी-कवि मंडल, समस्यापूर्ति, भाग १, अधिवेशन १०। (पृष्ठ २५ २६)
पूर्तिकार—पुत्तनलाल सुशील।

बेनी हर प्रकार के सहारे को छोड़कर गोकुल-नाथ भगवान् से सहायता करने की प्रार्थना करते है। जब मनुष्य सब ओर से निराश हो जाता है, तब ईश्वर ही उसकी सहायता करता है। इस भाव का द्योतन 'शीत बड़ो विपरीत करै।' समस्या की निम्न-लिखित पूर्ति में इस प्रकार हुआ है—

इक तो इहि काल दुकाल, धनी जग-जीव सों खोटी कुरीत करै,
मरै भूखन अन्न विना दुनिया, तेहिके वस ह्वै अनरीत करै;
'द्विज बेनी' कहै, तेहि ऊपर ते यह ठंड महा भयभीत करै,
करो गोकुलनाथ ! सनाथ, न तो अब शीत बड़ो बिपरीत करै।[१]

ग़रीब जनता मुहताज हो गई थी, और करोड़ों कँगले इधर-उधर अनाथों की भाँति फिरते थे। पता नही, उन दीन-दुखियों से कौन-सा अपराध हो गया था, जिससे उनके पास धन का लेश-मात्र भी न था। 'देश है' शीर्षक समस्या की पूर्ति में कवि ने इसी ओर इंगित किया है—

कँगला करोरिन करै है करतार कैसे,
कौन-सो कसूर, जाते धन को न लेस है;
जुवती, जवान, वृद्ध, बालक के जोम जरें,
माँगै मोहताज ये मलीन महाभेश हैं।
'मन्नी' कवि कहैं देखि ऐसी दशा दीनन की,
दया के निधान कान्ह ! कठिन कलेश है ;
बरसे न पानी, अकुलानी प्रजा भारत की,
अन्न की गिरानी तें बिकल सब 'देश है' ॥[२]

वह भारत, जो कृषि-प्रधान देश था, जहाँ की धरती सोना उगलती थी, और जो पूर्वी विश्व का अन्नागार कहलाता था, आज वहीं अन्न देखने को नही मिलता। वे किसान, जो अन्नदाता कहलाते थे, प्रतिवर्ष पड़नेवाले दुर्भिक्षों ने उन्हें कंगाल और मोहताज बनाकर द्वार-द्वार भीख माँगने के लिये विवश कर दिया। एक तो दुर्भिक्ष से वे वैसे ही ग्रसित थे, दूसरे ज़मींदारों ने उन्हें और भी पीस डाला था। कविवर 'पूर्णजी' ने महारानी विक्टोरिया से दुःख और दारिद्रय दूर कर देने का

१—काशी-कवि-समाज (समस्यापूर्ति) प्रथम भाग, ११वाँ अधिवेशन, १९५३।
बि० द्विज बेनी।

२—'रसिक-वाटिका', भाग १, क्यारी ३, २० जून, १८९७ ई०। (पृष्ठ १४)
पूर्तिकार—'मन्नी'

निवेदन देश है समस्या की निम्न लिखित पूर्ति में किया है। देखिए—

साल-साल बैरी दुभिक्ष आय ठारो होत,
देत सोई अगनित दीनन को कलश है,
दूबरे पिमान-हीन, कँगला किसान मारे,
दत जमींदारन नादारन को वेश है।
पूरब की भ्रनरी में अन्न ना जुहात हाय,
ताते यही एक दीन हिंद को सँदश है,
सुनिए उदार राजरानी विक्टोरियाजू,
दुखदायी दारिद दरेरे देत 'दश है' ॥[1]

भारत की जो आर्थिक अवस्था भारतेंदु-काल में रही और जिसका चित्रण समस्या पूर्तिकारों ने पूर्ण उत्साह से किया वही स्थिति लगभग द्विवेदी काल तक चली आई। सन १९०१ ई० में महारानी विक्टोरिया की मृत्यु हो गई और एडवर्ड सप्तम भारत के सम्राट घोषित किए गए। भारतवासियों ने एडवर्ड से आशा की थी कि वह उनकी दीन-दशा पर तरस खाएँगे और शासन में सुधार करवाकर भारतवासियों की दीनता और उनके प्रति किए गए नौकरशाही के अत्याचारों को दूर करवा देंगे किंतु यह आशा भी फलान्वित होती न देख पड़ी। सरकारी अधिकारी जो प्रजा के हित के लिये रक्खे जाते थे प्रजा का रक्त चूसते थे। ब्रिटिश सरकार के भारतीय अधिकारी भारतवासियों पर अँगरेजों से भी कभी-कभी बढ़कर अत्याचार करते थे। भारत का धन खींच खींचकर विलायत भेजा जा रहा था और भारतवर्ष दैन्य का जीवन व्यतीत करता था। भारतीय कलाएँ अपने दिन गिन रही थीं तथा भारतीय शिल्पी भूख से व्याकुल हो काल के हवाले हो रहे थे। भारतीय जन-जीवन की गति अत्यंत मंद पड़ गई थी। उस समय की करुण दशा का चित्रण करते हुए कविवर मीर ने भारतवर्ष को तत्कालीन शासक एडवर्ड सप्तम के दरबार में अपनी अर्जी पेश करने के लिये भेजा है। भारत अपनी आर्त वाणी में जो कुछ कह रहा है उसे देख लीजे। समस्या की निम्न लिखित पूर्ति में देखिए—

अहो राज अधिराज सातवें एडवर्ड महराजा!
विनवै भारत आरत ह्वैके रख लो मेरी लाजा।
उर्द्ध उछवास चलै अब लागी सुधि ऐसे में लीजै,
ओपधि मुहि[illegible]से बूढ़े की कर प्रान-दान दै दीजै ॥१॥

१—रसिक-वाटिका भा[illegible] १ क्यारी ३ २० जून १८९७ ई०। (पृष्ठ १४)
पूर्तिकार—पूर्ण

वृष्टि - दोष, भूकंप, प्लेग इत दइ प्रेरे इतरावैं ;
जिनकहँ रक्षक आप वनाएँ, उलटे तेइ सतावैं ।
अन्न, पवन, जल, नमक हमारो खाके, नमक-हरामी—
करैं हमारे जाए ही सुत अध के हो अनुगामी ॥२॥

पितु बिनु पुत्र, स्वामि बिनु सेवक, पति के विनु ज्यों नारी;
नृप बिनु प्रजा परै दुख-सागर, तैसो भयो दुखारी ।
ऐसो जानि परै या बिरियाँ देखि पुंज खोरी को ;
हौं अनाथ वन गयो सरासर, विना धनी धोरी को ॥३॥

संपति-हरन विदेशी कीन्ह्यो, संतति जम हरि लीन्ही ;
कला-कुशलता गई विलायत, गवाँ वीरता दीन्ही ।
विभव हमारे हुते अन्य जे, सोई नहि अब दीसै ;
पालि-पालि सिखरायो जिनकहँ, वे रद मुरि पै मीसै ॥४॥

सुधि इतने पै जो बिसराई, मोहि जियत न पैहौ ;
प्रान गँवाय राज के अपने फिर पीछे पछितैहौ ।
'मीर' वुझाय वहुत का कहहूँ, समुझि यत्न कछु कीजै ;
प्रान वचा, अपनाय दास कहँ अभय वचन 'दै दीजै' ॥[1]

कविवर मीर की उपर्युक्त पंक्तियों में तत्कालीन भारत की दयनीय दशा का अत्यंत मार्मिकता से चित्रण हुआ है। भारत की संपत्ति को विदेशियों ने हरण करके उसे दीन और कंगाल बना दिया तथा दुर्भिक्ष और प्लेग ने भारतीय जनता को अकाल मृत्यु के घाट उतार दिया ।

जैसा ऊपर कहा जा चुका है कि चुंगी और कर से व्यापार और उद्योग-धंधों को बड़ी क्षति पहुँची, और उन्हें किसी प्रकार का वढ़ावा नहीं दिया गया, "क्योंकि भारत को उद्योग-हीन बनाने से ही इँगलैंड का उद्योग आदि वृद्धिमान हो सकता और वहाँ की मिलें चल सकती थीं। यदि ऐसा न होता, तो मैन-चेस्टर की मिलें शुरू ही में बंद हो जातीं, और फिर भाप की ताक़त से भी न चल सकतीं।"[2] आर्थिक शोषण होने से न केवल भारतीयों की आर्थिक स्थिति बिगड़ी, प्रत्युन उनकी आत्मचेतना भी मंद पड़ गई। उन्हें अपनी स्थिति का भी सम्यक् ज्ञान न रहा, और वे आलस्य एवं जड़ता से ग्रसित हो गए।

१—काव्य-कलानिधि मासिक, मई, १९०७ ई०। पूर्तिकार—सै० अमीरअली 'मीर'
२—इतिहास-प्रवेश—जयचंद्र विद्यालंकार ।

आत्मचेतना की प्रेरणा—समस्यापूर्तिकार कवियो ने उन्हे आत्मचेतना की स्मृति कराई, और प्रेरणा का सचार किया। 'उजेरे मे।' समस्या की पूर्ति के रूप मे इस भाव को देखिए—

उद्यमशील विदेशी अपनी-अपनी उन्नति करते है,
पर ये भारतवासी ठाली बैठे भूखन मरते हैं।
चख मीचे चकराय पश्चिमी चपला के चकफेरे मे,
दीखन नाहि उलूकन को ज्यो दिन के दिव्य 'उजेरे में'॥[1]

इन कवियों ने भारतवासियो के समक्ष अमेरिका आदि औद्योगिक देशों की झाँकियाँ प्रस्तुत की, जिन्होने कल-कारखानों को चला-चलाकर अपने को सुसपत्ति से भर लिया है। समस्यापूर्तिकार कवियों ने भारत को उद्योगशील बनाने तथा विदेशी कारीगरी एव कुशलता प्राप्त करने पर बल दिया। 'कारीगरी' समस्या की पूर्ति मे इसका वर्णन हुआ है—

पुतलीघर, अजन, रेल, जहाजन की लखिए जग पाँति खरी,
सब खेल प्रवीनता ही को अहै, पुनि उद्यम चाहिए साठ घरी।
जिनि लोह औ' कोयला ही की बदौलत दौलत खैचकै भौन भरी,
प्रिय भारतबासियो सीखो कछू, अमरीका फिरगी की कारीगरी॥[2]

स्वदेशी-प्रचार—इस प्रेरणा एव आत्मचेतना का परिणाम यह हुआ कि विदेशी-बहिष्कार और स्वदेशी का अनुराग जाग्रत् हो गया। सन् १९०५ ई० में वग भग के पश्चात् तो भारतीय राजनीति मे बहुत बडे परिवर्तन हो गए। अब केवल आर्थिक स्वतन्त्रता की ही बात न रह गई थी, वरन् पूर्ण स्वतन्त्रता का उद्घोष किया जाने लगा, जिसमे स्वदेशी प्रचार, विदेशी-बहिष्कार, एकता, देश प्रेम, चर्खा एव खादी प्रचार की ओर भारतीयो का ध्यान विशेष रूप से आकर्षित किया गया। समस्यापूर्तिकार कवियों ने इस तथ्य को भली भाँति ग्रहण कर लिया था कि जब तक स्वदेशी-प्रचार न होगा, तब तक हमारे देश के कला-कौशल को प्रश्रय न मिलेगा, और न हमारी मानसिक एव आर्थिक दासता ही दूर हो सकेगी। वह यह भी जानते थे कि जब तक हम विदेशी वस्तुओं के उपयोग को बद न करेंगे,

---

१—'काव्य-सुधाधर', द्वितीय वर्ष, (अर्ध मासिक), पूर्ण प्रकाश, १८९९ ई०। (पृष्ठ २०)—'शकर'

२—'रसिक-वाटिका', भाग ४, क्यारी २, मई, १९०० ई०। —'पूर्ण'

और उनका बहिष्कार न होगा, तब तक स्वदेशी वस्तुओं का उपयोग न बढ़ सकेगा, और भारतीय संपत्ति बराबर विलायत के कोष को भरती रहेगी। यह स्वदेशी-आंदोलन तभी सफल हो सकता है, जब भारतवासी परस्पर मिल-जुलकर रहें, और उनमें पारस्परिक एकता बनी रहे। कविवर 'दीन'जी ने 'पार न पावै।' समस्या की पूर्ति में इसी ओर संकेत किया है—

हिंद - निवासी सबै मत के, जनकहुँ मेल - मिलाप बढ़ावें;
धर्म-विरोध-बिहाय सबै, मिलि देश उधारन में चित लावें।
बासर चारिक ही में भली विधि मान्य बने, अरु सभ्य कहावै;
'दीन' भनै, पुनि वीरता में कोउ पूरब-पच्छिम पार न पावै।
लोग मिलाप बढ़ाय भले, यदि पुत्रन हूँ कहँ याहि सिखावें;
धारि स्वदेशज वस्तु सबै सब वस्तु विदेशज दूरि बहावें।
चारिक ही दिन में कवि 'दीन' भले दिन भारत के फिर आवै;
मान में, सभ्यता में, सुख में कोउ पूरब-पच्छिम 'पार न पावै'।[१]

यदि भारतवासी अपने धार्मिक विद्वेषों को त्यागकर परस्पर प्रेम-भाव से रहें, और विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार कर स्वदेशी का प्रचार करें, तो निश्चित रूप से थोड़े ही समय में भारतवर्ष प्रत्येक दृष्टि से एक उन्नतिशील देश बन जाय, कवि का ऐसा दृढ़ विश्वास है।

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, भारतवासियों ने अपने अँगरेजी शासन के प्रति पूर्ण राजभक्ति प्रदर्शित की थी। महारानी विक्टोरिया की कवियों ने मुक्त कंठ से प्रशंसा की थी, किंतु शासन की दुर्व्यवस्था एवं उत्पीड़न से भारतीयों की देश-भक्ति राजभक्ति से अधिक प्रबल हो गई। विदेशी शासन के साथ-साथ विदेशी वस्तुओं पर से भी उनकी आस्था उठ गई। अब तो विदेशी की चरचा करना तक अनुचित समझा जाने लगा। उसके बहिष्कार पर बल दिया जाने लगा। उनका दृढ़ निश्चय था कि भारत की सच्ची सेवा तभी हो, सकती है, जब स्वदेशी का प्रचलन और विदेशी का पूर्ण बहिष्कार हो, तथा इसके लिये किसी प्रकार के भी लोभ-लालच एवं बहकावे में भी न आना चाहिए। 'बनि आवही' समस्या की पूर्ति में इसका वर्णन देखिए—

सेवा जु करना है स्वदेशी बंधु भारतवासियो,
तौ सपथ-पूर्वक कार्य करि चरचा विदेशी नासियो।

१—काव्य-कलानिधि (मासिक), मई, १९०७ ई०।

—लाला भगवानदीन 'दीन'

वहकाव - लालच मे न परियो, बैठे रह् निज ठाँव ही ,
डरना नहीं, सिर पै जु कोऊ काल से 'बनि आवही' ॥¹

विदेशी बहिष्कार के विषय मे यत्र-तत्र मतभेद भी था। कुछ लोग केवल बहिष्कार की बात को अनावश्यक एव मिथ्या समझते थे। उनका कथन था कि सरकार से सहयोग करके हमें अपने कर्तव्य का पालन करना चाहिए। इसे 'बनि आवहीं' समस्या की पूर्ति मे देखिए—

ब्रिटिश की बाँह-छाँह चाहत उछाह भरे,
द्वैत की जिकिर भूलि आनन न लावही ,
सतत सहायक हमारी सरकार रहै,
ऐस ही सुजान भाव हिय में बढ़ावही।
मधिहै स्वदेशी के तबै ही काज सहजहि,
करि प्रेम पूरो कर्तव्य तो लखावही ,
लेकचर ठाट पै, न सभा फीट फाट पै,
त्यों कोरे बायकाट पै न बात 'बनि आवही' ॥²

किन्तु, बहुत समय तक विदेशीपन के साथ समझौता चल नहीं सकता था। कवियो ने स्वदेशी-यज्ञ मे सर्वस्व दान कर देने की प्रेरणा दी। इसका प्रतिबिंबन 'दै दीजै।' समस्या की पूर्ति मे इस प्रकार से हुआ है—

भारतवासी, करो न हाँसी, आँख उठा अब देखो।
आलस त्यागो, मन अनुरागो, देर न होय निमेखो ॥
साहस राखो, व्यर्थ न माखो, यही मत्र लै लीजै।
करके श्रम वैसो, यज्ञ स्वदेशी सर्वस हू 'दै दीजै' ॥³

आगे चलकर जब महात्मा गाधी ने असहयोग-आंदोलन चलाया, और विदेशी-बहिष्कार पर बल दिया, तब तो सर्वत्र विदेशी वस्त्रो की होली जलाई जाने लगी, और खादी एव चरखा का गीत गाया जाने लगा। कवियों ने महात्मा गाधी द्वारा प्रचारित खादी को धन-धान्य एव वैभव प्रसारिणी के रूप मे चित्रित किया। 'मानस विहारिणी।' समस्या की पूर्ति रूप में खादी-वदना देखिए—

१—'काव्य-कलानिधि' (मासिक), जुलाई, सन् १९०७ ई०।
—लाखन कवि

२— „ „ „ „ —वक्सराम पाँडेय

३— „ „ „ —रामलखनसिंह

आदिशक्ति-सी हैं ये प्रशंसनीया, पूजनीया,
दीन-दुखियों को है रमा-सी उपकारिणी ;
धन, धान्य, सुख, बल, वैभव-प्रदायिनी है,
कामधेनु-सी है क्लेश-सागर की तारिणी ।
मेट परतंत्रतासुरी को दम लेगी यह,
चंडी के समान है विकट प्रण-धारिणी ;
कूटनीति-हारिणी, प्रसारिणी स्वतंत्रता की,
धन्य-धन्य! खादी गांधी-मानस-विहारिणी ।।[1]

चरखा-प्रसार द्वारा कुटीर-उद्योग को बल प्रदान किया गया, और इसी के द्वारा भारत की आर्थिक स्थिति सुधारने की आशा भी की गई। कविवर 'वचनेश' की दृष्टि में चरखा वही कार्य करेगा, जिसे हनुमान्‌जी ने किया था। यह 'चरखा' समस्या की पूर्ति में देखिए—

जैसे सिंधु-पार लंका क्षार की जलाके उन,
वैसे ये करेगा लंकाशायर में करखा ;
जैसे उन्हें पूंछ को बढ़ाते पेख, वैसे इसे
सूत को बढ़ाते देख बैरी रहे डर खा ।
कवि 'वचनेश' रणारंभ में कुशल वीर,
उन्हें रामजी ने, इसे मोहन ने परखा ;
जैसे भूमिजा की बंदि-मोचन को हनूमान,
वैसे मातृभूमि-बंदि-मोचन को चरखा ।[2]

वचनेशजी का चरखा मातृभूमि को बंधन से मुक्त करानेवाला है। कवींद्र रसिकेंद्र तो उसे भारत के दिन फेर देनेवाला एवं वैभववान् बना देनेवाला कहते हैं। अपने इन भावों को उन्होंने 'चरखा' समस्या की पूर्ति-रूप में निम्न-लिखित ढंग से प्रकट किया है—

१—मोतीलाल मेमोरियल सोसाइटी के तत्वावधान में, १९३८ ई० मे, 'अखिल भारतीय खादी औद्योगिक प्रदर्शिनी' के अवसर पर पढ़ी गई समस्या-पूर्ति। पूर्तिकार—उमादत्त 'दत्त'

२—सुकवि, एप्रिल, १९२९ (पृष्ठ २३)। पूर्तिकार—'वचनेश'

विष्णु बन पालता है पीड़ितों को कष्ट हर,
अन्न-वृष्टि करता है बन शक्र चरखा,
'रसिकेंद्र' उदर-विकार करने को छार,
अश्विनीकुमार की दवा है तक्र चरखा।
स्वार्थ-लिप्त मिलों के कपाट कर देता बंद,
कुटिलों की काट देता नीति वक्र चरखा,
भक्ति-भरी भावना भरेंगे भारतीय सभी,
फेर देगा भारत का भाग्य-चक्र 'चरखा'।[1]

यही नहीं, वरन् चरखा-प्रचार से अन्य अनेक प्रकार की कलाओं का भी सूत्रपात होगा, और भारत के घर घर में धन-सम्पत्ति भर जायगी। यह भी 'चरखा' समस्या की पूर्ति में देखिए—

सदन-सदन में कलाएँ कमला की होंगी,
खोलेगा कुबेर बन धनागार चरखा,
'रसिकेंद्र' चलेगा अजेय अस्त्र गांधीजी का,
तोड़ेगा विदेशी-स्वार्थ-दुर्ग-द्वार चरखा।
दुखियों के जीवन में नई जान डालने को
बरसेगा सुख की, सुधा की धार चरखा,
वैभव-विहार होगा, विश्व बलिहार होगा,
हिंद के हिये का हीर हार होगा चरखा।[2]

जब इस प्रकार से भारत-भर में खादी-प्रचार हो जायगा, और चरखे द्वारा सूत कात-कातकर वस्त्र बनने लगेंगे, तब तो विलायत की कपड़ा-मिलें भी बंद हो जायँगी, और इसका परिणाम यह होगा कि भारतीय बाजार बंद हो जाने से इँगलैंडवाले भूखों मरने लगेंगे। इसका वर्णन 'चरखा' समस्या की पूर्ति में देखिए—

आई ना विलायत ते मालु याकु झझी बयार,
भूखन के मारे मरिजैहैं वाके पुरखा,
होई याको पुतरा न पुतरी घरन मैंहाँ,
लागि जाई दुस्टन के मुँह मैंहा करखा।

१—सुकवि, एप्रिल १९२९ (. ५२)। पूर्तिकार—'रसिकेंद्र'
२—वही " " " "

'विष्णु' जब चरखा घुमैहैं औ' बनैहैं सब—
सूत काति - काति, लैकै कुरता - अँगरखा;
तोंद जैहैं पचकि विदेशिन के आपै आप,
गाजी घर-घर जब गाँधी क्यार चरखा।'[1]

देश-भक्ति—

इस प्रकार हम देखते है कि स्वदेशी-प्रचार से राष्ट्रीय मुक्ति-आंदोलन को बल मिला, और राष्ट्रीयता एवं देश-भक्ति का स्वर तीव्र हो गया। देश-भक्ति की सरिता उमड़ चली। कवियों ने ईश्वर से देश-भक्ति की शक्ति देने की प्रार्थना की है। 'दै दीजै' समस्या की पूर्ति मे इस भाव को देखिए—

राम-कृष्ण अवतार धार जहँ महिमा अति बिसतारी;
कीन्हों रास-विलास मनोहर, लीला ललित, पियारी।
तिहि भारत पर नाथ! घनेरे परे दुःख हर लीजै;
और प्रजा कहँ जन्म-भूमि की भक्ति-शक्ति 'दै दीजै'।[2]

देश-प्रेम से ओत-प्रोत होकर कवियों ने पूर्ण स्वतंत्रता का उद्घोष किया। ब्रिटिश सरकार भारतीयो की बढ़ती हुई राष्ट्रीय भावना को जब साधारण क़ानूनों से न दबा सकी, तब उन्हें कारागार में बंद कर दिया, किंतु ज्यों-ज्यों दमन-चक्र बढ़ता गया, त्यों-त्यों राष्ट्रीय भावनाएँ और भी प्रबल होती गईं। मातृभूमि की रक्षा और उसकी स्वतंत्रता में तन-मन-धन न्योछावर कर देने की भारतीयों ने शपथ ली। जेलखाना उनके लिये तीर्थ बन गया, और जेल के चने उनके लिये अमृत हो गए। इन भावों का वर्णन 'है यह वो दर्द, जो शर्मिंदए दर्मां न हुआ' इस तरह मिसरे पर बने हुए शेरो में देखिए—

जेलख़ाने में बड़े चैन से बैठे हैं हम,
मा की आगोश है यह, गोशए ज़िंदा न हुआ।
जेलख़ाने के चने जिसने कभी चाब लिए,
फिर वो साहब से मटन चाप का ख्वाहाँ न हुआ।[3]

१—सुकवि, एप्रिल, १९२९। (पृष्ठ ३६)
पूर्तिकार—श्रीगंगाविष्णु पांडेय, जबलपुर

२—काव्य-कलानिधि, वर्ष ८, अंक १, मई, १९०७ ई०—पं० कन्हैयालाल।

३—तरानए कफ़स अथवा आगरा जेल का मुशायरा, संग्रहकर्ता कांत मालवीय, पहला मुशायरा, २० जनवरी, १९२२ ई०—कृष्णकांत मालवीय

जो एक बार जेल गया और जिसने वहाँ के चने खा लिए वह फिर किसी प्रकार के भी सरकारी प्रलोभन में नहीं पड़ता था। राष्ट्र के प्रति आत्मसमर्पण एवं बलिदान की भावना ही इंसान बनने की कसौटी हो गई। जो व्यक्ति देश और जाति पर बलिदान न हो जाय, वह मनुष्य कैसा ! अपने देश के भाग्य को हम जाज्वल्यमान नहीं बना सकते, तो हमारा जीवन मृत्यु से भी हीन है। इसका संकेत है 'यह वो दर्द, जो शर्मिंदए दर्मा न हुआ', मिसरे तरह पर बने शेरों में देखिए—

कौम की राह में सर देके जो कुर्बां न हुआ,
मुजरए गोश्त हुआ वह तो फिर इंसान हुआ।
ज़िंदगी मौत से बदतर है हमारे हक़ में,
मुल्क का अपने गर इकबाल दरख्शां न हुआ॥[1]

देश प्रेम का आनंद अवर्णनीय है। यह ऐसी पीड़ा है, जिसकी कोई ओषधि नहीं। 'है यह वो दर्द, जो शर्मिंदए दर्मां न हुआ' इस तरह मिसरे पर बने निम्न लिखित शेर में तथाकथित भाव देखिए—

मुल्क के इश्क़ का पर लुत्फ बयां क्या कीजे,
है यह वो दर्द, जो शर्मिंदए दर्मां न हुआ॥[2]

दासता की शृंखलाओं का तोड़ना उस समय अनिवार्य बन गया था। दासता की शृंखलाओं के टूटने से ही इंगलैंड को परेशान किया जा सकता था। यदि ऐसा न हो पाता, तो गांधीजी का असहयोग-आंदोलन भी एक खिलवाड़ बन गया होता। शायर ने इस भाव को 'है यह वो दर्द, जो शर्मिंदए दर्मां न हुआ' इस मिसरे तरह पर अपने निम्न लिखित शेरों में व्यक्त किया है—

इस गुलामी से निकलने का जो सामां न हुआ,
कोरी बातें ही रहीं, दर्द का दर्मां न हुआ,
खेल एक तर्के मवालात भी गांधी का हुआ,
क्या किया हमने, गर इंगलैंड परीशां न हुआ।[3]

१—नरानए कफस, मुहल्ला मुशायरा, २० जनवरी, १९२२ ई०,
संग्रहकर्ता—कृष्णकांत मालवीय

२— वही

३— वही

अहिंसा-मार्ग—

किंतु इंगलैंड के परेशान करने में भी यह आवश्यक था कि किसी प्रकार की भी हिंसा न होने पाए। अहिंसा हमारा धर्म बना रहे, अन्यथा सभी कार्य निष्फल हो जायँगे। 'है यह वह दर्द, जो शर्मिंदए दर्मां न हुआ' इस तरह मिसरे पर निर्मित निम्न-लिखित शेर में उपर्युक्त भाव को देखिए—

बात बनती हुई बिगड़ेगी यक़ीनन हमदम,
'नानवाइलेंस' जो हर शख्स का ईमाँ न हुआ।[1]

अहिंसा की भावना मे ओत-प्रोत भारतीयो को अपने सुख-दुख एव कष्टों का भी ध्यान न रहा। ब्रिटिश नौकरशाही से मार खा लेने पर भी वह उसका प्रतिरोध नहीं करते, वरन् अपने अहिंसा-मार्ग पर बराबर डटे रहते। इसका वर्णन 'है यह वह दर्द, जो शर्मिंदए दर्मां न हुआ' इस तरह मिसरे पर बने निम्न-लिखित शेर मे देखिए—

मुझसे बढ़कर कहीं होगी न अहिंसा की मिसाल,
मार खाने पे कभी मैं तो परीशाँ न हुआ।[2]

अहिंसा-पथ के पथिक भारतवासी अपने देश की स्वतंत्रता के लिये सब कुछ करने को तैयार थे, और ईश्वर से भी अपने देश की स्वतंत्रता के लिये प्रार्थना करते थे। "दिया है दर्द गर तूने, तो उसको लादवा कर दे" इस मिसरे तरह पर बने निम्न-लिखित शेर में उपर्युक्त भाव को देखिए—

"हफ़ीज़े ग़मज़दा गर जान जाती है, चली जाए,
वतन आज़ाद हो जाए, कहीं ऐसा ख़ुदा कर दे।[3]

क्योंकि उनके हृदय में अपने स्वातंत्र्य वृक्ष को फूलते-फलते देखने की उत्कट अभिलाषा थी। इसको शायर ने "दिया है दर्द गर तूने, तो उसको लादवा कर दे" इस मिसरे तरह पर रचे अपने शेर में व्यक्त किया है। देखिए—

हमारे नख़्ले आज़ादी को फलता-फूलता कर दे,
इलाही हिंद में पैदा बहारे जाँ फ़िज़ाँ कर दे।[4]

१—तरानए क़फ़स, पहला मुशायरा, २० जनवरी, १९२२—कृष्णकांत मालवीय
२— " " " —महावीर त्यागी
३— " दूसरा " २७ जनवरी, १९२२ —हफ़ीजुर्रहमान
४— " " " "

अहिंसा के सच्चे अनुयायी भारतवासियों को भारत के स्वतन्त्र होने की आशा ही नहीं थी, वरन् उनका दृढ़ विश्वास भी था कि एक दिन भारतवर्ष अवश्य ही स्वतन्त्र होगा, और प्रसन्नता का सूर्य उगेगा। उर्दू के तरह मिसरे पर शायरी करनेवाले शायरों ने इस प्रकार के भाव व्यक्त किए हैं। 'हमको तो इन्तजार है रोजे हिसाब का' इस मिसरे तरह की पूर्ति रूप में लिखित निम्न लिखित शेर में शायर ने उपर्युक्त आशय को इस प्रकार से प्रकट किया है, देखिए—

सुराज पावें हिंद मे भी होंगी शादियाँ,
रुख इस तरफ भी होगा कभी आफताब का।[1]

अन्त में अहिंसा-व्रत के व्रती भारतवासियों को अपने उद्देश्य में सफलता प्राप्त हुई—भारतवर्ष स्वतन्त्र हुआ। समस्यापूर्तिकार कवियों ने झूम-झूमकर अहिंसा तथा अहिंसा धर्म के उपदेष्टा महात्मा गांधी का यशोगान गाया। 'सनी है' समस्या की पूर्ति रूप में निम्न लिखित पंक्तियाँ देखिए—

अहिंसा से बापू ने भारत उठाया,
महाशक्तिशाली को सत्वर हटाया।
अहिंसा-विभा से है जाता जगाई,
अहिंसा की शक्ती जगत को दिखाई,
अहिंसा से भारत की महिमा बनी है,
अहिंसा में भारत की धरती 'सनी है'।[2]

शासन-व्यवस्था—

अहिंसा के बल से भारतवर्ष स्वतन्त्र तो हो गया, किन्तु देश में जिस प्रकार का शासन-व्यवस्था की कल्पना की गई थी वह प्रतिफलित होती न दीख पड़ी। लूट-खसोट एवं शोषण की प्रवृत्ति कम न हुई। स्थान स्थान पर अशान्ति एवं अव्यवस्था छा गई। विभिन्न वस्तुओं पर सरकारी नियन्त्रण होने के पश्चात भी चोर-बाजारी और घूसखोरी में कमी नहीं आई। 'सनी है' शीर्षक समस्या की पूर्ति रूप में इसका वर्णन इस प्रकार हुआ है—

नीक स्वराज्य विराजि रह्यो, गई चोरी चली, अब डाकेजनी है,
लाभ कहा कंटरोल कियो, वहु चोरबजारी ब्लैक ठनी है,

१—तरानए क़ौम, चौथा मुशायरा, १० फरवरी, १९२२ (हफीजुर्रहमान)
२—सुकवि, सितंबर, १ ई०, पूर्तिकार—मुरलीधरप्रसादसिंह 'मदन', सैदपुरी।

भाषै 'गुलाम', गई न गुलामी, यों नोनहरामी की भंग छनी है,
आरत गारत आँसू सदा, तब काहे न भारत हो 'व्यसनी है' ।[१]

देश में स्वराज्य आया, राष्ट्रीय सरकार की स्थापना हुई, किंतु जनता के मन के मनोरथ पूर्ण न हुए। भारतवासियों ने जिस सुख-शांति और संपन्नता के स्वप्न सँजोए थे, वे साकार न हो पाए। कर्मचारियो के वेतन ज्यों-के-त्यों बने रहे, किंतु महँगाई बढ़ती ही गई, जिससे उनका जीवन-निर्वाह कठिन हो गया। इसका वर्णन 'सनी है' समस्या की पूर्ति-रूप में देखिए—

वेतन-वृद्धि की बात नहीं, अरु छाय रही महँगाई घनी है,
नाज नहीं मिलता भरपेट, मरे, तऊ पाई नहीं कफ़नी है ;
नेक दया करिए हे दयानिधि, भारत-भूमि मसान बनी है,
और उबारनहार नहीं, ये पुकार न आपको दुःख 'सनी' है ।[२]

जिस स्वतंत्रता की प्राप्ति के लिये भारतवासियों ने अपना तन, मन, धन न्योछावर कर दिया था, वह स्वतंत्रता भी भारतवासियों के लिये तात्कालिक आनंद का स्रोत न बन पाई। महँगाई यहाँ तक बढ़ी कि रुपए का सवा सेर अन्न मिलता और घी, तेल तथा दूध तो शुद्ध रूप में मिलना कठिन ही हो गया। समस्यापूर्ति-कार कवि ने 'पुरानी' शीर्षक समस्या की पूर्ति में महँगाई का यथार्थ चित्रण किया है, देखिए—

क्या विधना का विधान, स्वतंत्रता पाके भी भारत में परेशानी।
अन्न बिके सवासेर रुपै, घृत-तेल रहे कहिबे की कहानी।
दूध की बात न कीजै कछू, मिलती नहीं शुद्ध हवा अरु पानी,
रानी भी आज गिरानी के कारण पैन्हती हैं तन साड़ी 'पुरानी'।[३]

राजनीतिक दल—

भारतीय स्वतंत्रता-संग्राम में भारत के अनेक राजनीतिक दलों ने भाग लिया था। इनमें सर्व-प्रमुख स्थान है भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का। गांधीजी के नेतृत्व मे खद्दर का परिधान धारण कर कांग्रेसी स्वयसेवक सत्याग्रह करते और जेल जाते थे। शांत प्रदर्शनों द्वारा सरकारी आज्ञाओं का निषेध करते, जिसके फल-स्वरूप अपने सिरों पर लाठियों के प्रहार सहन करते थे। हृदय में सेवा-भाव

१—सुकवि, सितंबर, १९५० ई०, पूर्तिकार—रामगुलाम वैश्य 'गुलाम'
२—,, ,, —अजयदान लखाजी चारण
३—सुकवि, ऑक्टोबर, १९४८ ई०, पूर्तिकार—गोपीचंदलाल गुप्त 'प्रेमानंद'

रखकर दीन दुखियो की परिचर्या मे रत रहते थे, किंतु समय बदला, और भारत का शासन सूत्र कांग्रेस के हाथ में आ गया। राजसत्ता ग्रहण करते ही कांग्रेसी नेताओं का कायापलट हो गया। वे सेवा-व्रत भूलकर स्वार्थी हो गए, एवं ईर्ष्या द्वेष से अपनी शक्ति खोने लगे। इसका वर्णन 'जीना है' समस्या की पूर्ति में देखिए—

जेल और लाठियो से स्नेह रखते थे कभी,
मिला अधिकार, समै आया, सुख भीना है,
खद्दर की ओट माँहि गदर को बीज बोवें,
ईर्ष्या-द्वेष-वश मति अति ही मलीना है।
सेवा - भाव भूल उर शूल लगे शूलने हैं,
रंग यों बदलने मे लाज हा लगी ना है,
लोकन हँसाय, धूर घर की उड़ाय, निज
आबरू को मिट्टी मे मिलाय व्यर्थ 'जीना है'।[1]

कांग्रेस के अतिरिक्त अन्य राजनीतिक दलों की भी लगभग यही स्थिति रही है। अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिये ये दल भी बराबर जनता को पथ भ्रष्ट करते रहे हैं। इन राजनीतिक दलों का वर्णन 'भारत भलाई मे' समस्या की पूर्ति में देखिए—

कोई शोसलिज्म, कम्युनिज्म का पिन्हाके जामा,
सुख पहुँचाया चहै निज निपुनाई मे,
कोई राष्ट्र - सेवक हो संघ निरमाण करैं,
गान करैं शिवा औ' प्रताप की दुहाई मे।
जिंदा बना नेताजी को कोई, अग्रगामी बनै,
शांति भंग करैं कोई हिंदू - हिंदुआई मे,
स्वारथ में रत हो सुधारत फिरत लोग,
हाय भगवान! गया 'भारत भलाई में'।[2]

इस प्रकार हम देखते हैं कि समस्यापूर्तिकार कवि अपने समय की गति विधि से पूर्णतया परिचित थे। उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि उन्होंने राजनीतिक एवं राजनीति से प्रभावित सभी परिस्थितियों का चित्रण अपनी समस्या-

---

1—सुकवि, अगस्त, १९५१ ई०, पूर्तिकार—गोपाल माथुर 'श्रीपाल'
2—सुकवि, जून, १९५१ ई०, पूर्तिकार—गोपीचंदलाल गुप्त 'प्रेमानंद'

पूर्तियों में किया है। यहाँ पर समस्यापूर्ति-काव्य में प्रतिबिंबित तत्कालीन सामाजिक, सांस्कृतिक एवं साहित्यिक स्थितियों का भी विवेचन कर लेना समीचीन है।

सामाजिक एवं सांस्कृतिक स्थिति—

अँगरेज़ों द्वारा आर्थिक शोषण होने से भारतीय समाज की स्थिति बिगड़ गई थी। उसमें अनेक प्रकार के दोष आ गए थे। भारतीयों ने समाज के प्राचीन भारतीय आदर्शों को भुलाकर पाश्चात्य आदर्शों को ग्रहण करने की चेष्टा की। अँगरेज़ी सभ्यता और संस्कृति में भारतवासी इस प्रकार से रँग गए कि उन्हें अपनेपन की सुधि भी न रही। उनके असन, वसन और व्यवहार तक में अँगरेज़ियत की छाप लग गई। यज्ञोपवीत पहनना अंधविश्वास और रूढ़िवादिता के अंतर्गत गिना जाने लगा। विधि-विहित और शास्त्र-सम्मत मार्ग लुप्त हो गया, और उसके स्थान पर पाश्चात्य सभ्यता के परिणाम-स्वरूप नए-नए धर्माचरण अपना लिए गए। भारतीय वेश-भूषा को तिलांजलि दे दी गई, और विदेशी कोट और पैंट तथा हैट का प्रयोग होने लगा। इसका वर्णन 'मतवारे' समस्या की पूर्ति में देखिए—

वेद-पुरान पुरान भए हैं, नए-नए कर्म औ' धर्म प्रचारे,
यागूपवीत हेराइ गए, कटि-सूत्र को कोऊ न नाम उचारे;
पैंट औ' कोट, सोहै सिर हैट, घड़ी, छड़ी, बूट सौं अंग सँवारे,
'नाथ' कहै, भय गारत भारतवासि सबै सब ही 'मतवारे'।[1]

भारतीयों ने अपनी संस्कृति को भुला दिया, और विदेशी संस्कृति को अपनाकर गर्व का अनुभव किया। उन्हें अपने मंदिरो में जाना हेय प्रतीत होता था, किंतु गिरजा में जाना उनके लिये प्रतिष्ठा का कार्य बन गया था। इस प्रकार से अनुकरण-वृत्ति प्रधान हो गई थी, और स्वतंत्र-चिंतन एवं विचार का मार्ग अवरुद्ध-सा हो गया था। भारतीयता एवं भारतीय संस्कृति छोड़कर विदेशी संस्कृति अपनाने की वृत्ति बढ़ रही थी। 'रिझावेंगे' समस्या की निम्न-लिखित पूर्ति में इसका वर्णन देखिए—

सूरज को पानी देत हानी हू बड़ी है, हाय!
ठाढ़े मल-मूत्र त्यागि देश को नशावेंगे;
मंदिर में जाना होता मूढ़न को बाना,
अरु गिरजा में जाना थाना स्वर्ग को बतावेंगे।

१—काव्य-सुधाधर (त्रैमासिक), षष्ठ वर्ष, चैत्र, वैशाख, ज्येष्ठ, १९६१ वि०, प्रथम प्रकाश, पूर्तिकार—डॉ० सूर्यनाथ मिश्र, गया।

दड वो धरन अनचड सडवाल मानें
खासी फुटबाल फूकि बूट से उडावग,
वेद को लबद मानें, इजिल सो हित मानें
ऐसे गुणवारे हाय कौन को रिझावेंगे ॥[1]

शिक्षा और ज्ञान के अभाव म भारतीयो का नैतिक पतन भी हो गया। सत्य और न्याय की बात उपहासास्पद जान पडने लगी। झूठ बोलना बहुत कुछ उनके स्वभाव मे आ गया था। चारो ओर पाप बढ रहा था और धम की बात कोई भरकर भी नहीं करता था। न जात कही समस्या की पूर्ति मे इसका वणन देखिए—

दुरि धम गया गिर कदर म
चहुँ ओरन पाप-लता उलही,
सब ठौरन झूठ ही झूठ लह्यो,
खर-स नहि रचक सत्य मही।
सुचि मारग वेदन को तजिके
नरधाम लबेद की राह गही,
मुख मौन गहे बनि आवत है
कलिकाल की बात न जात कही ॥[2]

पारिवारिक स्थिति—

समाज का ढांचा परिवार पर आधारित होता ह और जब परिवार में ही कलह और सघष हो तब फिर समाज का प्रश्न ही क्या। इस समय पिता-पुत्र में विरोध बढ रहा था भाइयो में परस्पर सघष हो रहे थे। यह ही नहीं वरन् पुत्री और पुत्रवधुए अपनी माता और सास तक का न आदर करती थी, और न उनकी आज्ञा का ही पालन करती थीं। पुत्रवधुएँ अपनी सासो से लडती और इस प्रकार वे सामाजिक व्यवस्या एव पारिवारिक मर्यादा का उल्लघन करती थीं। इसका वणन न जात कही' समस्या की पूर्ति मे देखिए—

१—काव्य-सुधाधर (त्रैमासिक) चतुथ वष ३० नवबर १९०० ई०
पचम प्रकाश। पूर्तिकार—प० शिवराज पाडेय

२—रसिक-वाटिका भाग ४ क्यारी ९ दिसबर १९०० ई०
पूर्तिकार—नवीन कानपुर।

पितु-पुत्र में बाढ़ो विरोध महा,
कछु प्रीति न भाइन बीच रही ;
दुहिता नहिं मात की कान करै,
लरै सासु सों बालक की दुलही ।
नहिं अस्व के पीठ पलान लख्यों,
नख ते सिख सोने लखी गदही ;
मुख मौन गहै बनि आवत है,
कलिकाल की बात 'न जात कही' ।।[1]

स्त्रियाँ भारतीय आदर्श को भूल चुकी थी, और पाश्चात्य वेष-भूषा ग्रहण कर फ़िल्म-तारिकाएँ बनने का स्वप्न देख रही थी। उनमे स्वेच्छाचारिता बढ़ चली थी, सिनेमा जाना उनका स्वभाव बन गया था, और शालीनता का उनमें प्रत्यक्ष ह्रास दीख पड़ता था। 'युग का प्रभाव है।' समस्या की पूर्ति में इसका वर्णन हुआ है—

नारियाँ नवोढ़ा बनी प्रौढ़ा-सी प्रगल्भ सदा,
सज्जा का स्वभाव, लोक-लज्जा का अभाव है;
नैम से सिनेमा देख प्रेम का प्रपंच सीखें,
नखरै निराले, नित्य नया हाव - भाव है।
सीना खोल चलती हैं, हँसती-मचलती हैं,
इनको सुरैया बनने का बड़ा चाव है;
क्या ये कर डालें या सँभालें, उसे सोचना
वृथा है, यह 'युग का प्रभाव है'।[2]

दूसरी ओर पुरुष-वर्ग परनारियों में रत हो रहा था। विलायत की सामाजिक स्वच्छंदता और तज्जन्य विलासिता का रंग भारत में भी खूब जम चुका था। होटल मे विदेशी स्त्रियों के साथ खान-पान और मुक्त व्यवहार होता था। गृह-

---

१—'रसिक-वाटिका', भाग ४, क्यारी ९, दिसंबर १९०० ई०।
—'नवीन' कानपुर।

२—'युग का प्रभाव है' यह समस्या पं० श्रीनारायण चतुर्वेदी ने पं० रूपनारायण पांडेय को पूर्ति के लिये दी थी। उपर्युक्त समस्यापूर्ति पांडेयजी ने की थी, इसकी सूचना पांडेयजी ने ही लेखक को दी थी।

महिलाओं की दुर्दशा हो रही थी और वे पुरुषों के कठोर शासन सहने की अभ्यस्त भी हो गई थीं—इसका चित्रण 'रिझावेंगे' समस्या की पूर्ति-रूप में निम्नलिखित पंक्तियों में द्रष्टव्य—

> नारिन को गारी परनारिन को सारी देत,
> होटल में बोतल चढ़ाय तान गावेंगे,
> कोट बूट चश्मा अरु हैट धन धारे हाय !
> भारत के वासी मेम होम में रिझावेंगे ।[1]

सामाजिक कुरीतियाँ—समाज में बाल विवाह और वृद्ध विवाह की कुप्रथा प्रचलित था। बालक-बालिकाओं का अल्पायु में ही ब्याह हो जाता था जिसमें न केवल अस्वास्थ्यकर वातावरण की ही सृष्टि होती थी वरन् अनाचार और व्यभिचार का भी मार्ग प्रशस्त होता था। वृद्ध विवाह भी समाज के लिए कलंक बना हुआ था। वृद्ध-विवाह का परिणाम घोषित करते हुए पूर्ण जी ने उसका मार्मिक चित्रण 'लखते ही बनिआवै' समस्या की निम्नलिखित पूर्तियों में किया है—

> वितवै दिन ओषध खात, तऊ निस आवत पास न सो हरखावै
> मुख चूमिके नाहक अंक भरै कबहूँ करि दन्तकथा बहलावै,
> तन काम-कृशानु बढ़ावै वृथा, रजनी री ! जरे पर लौन लगावै,
> बुढ़वा वर की करतूति अरै, करजक पै 'देखत ही बनिआवै' ॥१॥
> खोंखो करै निस खाँसी करै, खटिया-खट फूकत रैन गँवावै
> सूँघै हुलास करै मुख नास, सखी ! मोहिं तासु न पास सुहावै,
> सोवत घोर घरराट बजै, रस जोबन को तरसै-तरसावै
> बूढ़ के संग विवाह भए की सखी पन देखन ही बनिआवै ॥२॥[2]

अनमेल विवाह ने समाज का बड़ा अहित किया है। अनेक ललनाओं को बूढ़ों ने ब्याह करके अनाचार करने के लिए अवसर दिया। वृद्ध विवाह की ही भाँति समाज में बाल विवाह की भी प्रथा प्रचलित थी। माता पिता दहेज के लोभ से अपने छोटे छोटे बच्चों का विवाह कर देते थे। वे बच्चे जो अभी आँख मिचौनी खेलते थे उन्हें दाम्पत्य जीवन की रहस्यमयी गुत्थियों के सुलझाने का कार्य सौंपा जाता था। उनके साथ ब्याही गई तरुणी अपने भाग्य को कोसने के

१—काव्य-सुधाधर चतुर्थ वर्ष पंचम प्रकाश ३० नवंबर १९०० ई०।
—शिवराज पांडेय

२—रसिक-वाटिका भाग २ क्यारी १ २० एप्रिल १८९८ ई०।—पूर्ण

अतिरिक्त और कर ही क्या सकती। 'देखत ही वनि आवै।' समस्या की पूर्ति-रूप में निर्मित निम्नांकित छंद देखिए, जिनमें कवि ने बालपति की क्रियाओं और तज्जन्य स्त्री की मनोव्यथा का चित्रण किया है—

तन जागी मनोज-कला ही नहीं, छिन-ही-छिन आलस सौ जमुहावै,
अँगिया के झवान सों खेलो करै, पुनि आरसी देखन में चित लावै;
अब लौं शिशुता नहिं नैक छुटी, अँखमूँदवा खेलन में हरखावै,
सखि ! वारे मोरे बलमा को चरित्र परै, ढिग 'देखत ही वनिआवै' ॥१॥
रति-केलि कहाँ कि कहाँ शिशु-खेल, पिया जो अनंग को रंग दिखावै,
बलमा लघु बैस को, साहस-जोर सबै सजनी री ! अकारथ जावै;
घृत होमिवो होत कृशानु में हाय ! कहाँ लौं कोऊ दुख रोय सुनावै,
लरिकान को खेल, चिरीन की मौत, दसा सोई 'देखत ही वनिआवै' ॥२॥[1]

समाज में ये कुरीतियाँ विस्तृत रूप से व्याप्त थीं। बाल-विधवाओं की दशा तो अत्यंत करुण थी। बालपन के विवाह की प्रथा ने अनेक ललनाओं का सुख-सौभाग्य लूटा है। माता-पिता अपनी पुत्रियों का व्याह शैशवावस्था में ही कर देते थे। दुर्भाग्य से यदि उसी अवस्था में उन्हें वैधव्य मिल जाता था, तो सारा सुख-सौभाग्य नष्ट हो जाता था। बालिका को अपने प्रियतम की मृत्यु का तनिक भी ज्ञान नहीं होता था। मस्तक में लगी हुई सिंदूर-बिंदी को छुड़ा देने पर भी उसे कुछ भी पीड़ा नहीं होती थी। कष्ट का अनुभव तो उसे तब होता था, जब हाथों से उसकी प्यारी चूड़ियाँ उतारी जाती थीं। शैशव-काल में न उसने व्याह का आनंद लूटा, न संयोग का सुख और न वैधव्य की पीड़ा का ही उसे भान हो सका। वह तो बस चूड़ियों के उतारे जाने पर ही व्यथा का अनुभव कर पाती थी। कितना मर्म-भरा और करुणा-प्लावित बाल-विधवा का जीवन होता था, इसका चित्रण कवि ने 'मन की' समस्या की पूर्ति-रूप में निर्मित निम्न-लिखित छंद में किया है—

पीतम - पयान प्यवसार-पलुना में सुन्यों,
कीन्ह्यों परवाह नाहिं मातु के रुदन की;
माथ को सिंदूर दूर होत नहिं व्यापी पीर,
अँसुवा बहायो गति देखि चुरियन की।
विरह-सँयोग, व्याह, वैधव न जान्यों कछू,
व्याह की प्रथा है बिकराल बालपन की;

१—'रसिक-वाटिका', भाग २, क्यारी १, २० एप्रिल १८९८ ई० —'पूर्ण'

सिसुता की गोद मे न बांच्यो भाल लिपि नाथ,
कासो कहौ, कौन सुनै आज बिथा 'मन की'।[1]

वे माता पिता जो अपनी पुत्री को देखकर प्रसन्न होते थे वे ही अब उसको देखकर दुखी होते हैं। वे देवी-देवताओ से उसकी मृत्यु की कामना करते हैं। वह बालविधवा अपने वैधव्य के कारण अपने पिता के लिए काल-समान भाइयो के लिए विष-तुल्य और घर के लिये डाइन सी हो जाती है। इसका वर्णन 'मन की' समस्या की पूर्ति मे देखिए—

देखि मुदि माने ते न देखि मुद माने अब,
देवन मनावैं करि चाह मो मरन की,
जोबन-उभार भारी भार भयो जीवन को,
अबिरल धार पेखि मातु - अँखियन की।
काल सी पिता को भई, कालकूट भाइन को,
असुभ चबाइन की, डाइन सदन की,
हम दुखियो को नाथ! सुख सिरजो ही नाहि,
उदित उमगे भरी हाय! सब 'मन की'।[2]

जब पितृ गृह मे रहने का स्थान शेष न रह गया तब यह सोचकर कि ससुराल मे तो सुख पूर्वक रह ही सकती है इस आशा से ससुराल आई किंतु वहाँ पर तो दासी बनकर भी रहना कठिन हो गया और अनेक प्रकार के नारकीय कष्ट भोगने पडे मन की समस्या की पूर्ति मे इसका वर्णन देखिए—

बाढै गति होती बाढै दीप की सी मेरी ईस!
कलपि - कलपि सहती है ताप तन की,
पीहर सो सासुरे लो आई सुख आस करि,
भोगन लगी पै यातनाएँ नरकन की।
दासी बनी खासी तऊ रहन न पाई राम,
कुल कानि त्यागि नाक काटी हिंदुवन की,
केती ललनाएँ बिलखाएँ यो, गँवाएँ धर्म,
राक्षस समाज की न होती तऊ 'मन की'।[3]

१—सुकवि, वर्ष १ अंक ६ सितंबर, १९२८ ई०—'पिकजी', प्रयाग
२—वही „
३—वही „ „ „ „

इस प्रकार हम देखते है कि समाज में अनमेल विवाह के फल-स्वरूप अनेक प्रकार की बुराइयाँ आ गई थीं, और अनाचार बढ़ गया था। बाल-विवाह एवं वृद्ध-विवाह की ही भाँति दहेज लेना, उत्सवों में वेश्याओं को नचाना, पर-स्त्री के साथ संसर्ग रखना तथा अपनी पत्नी को उपेक्षित कर देना अति सामान्य हो गया था। समस्यापूर्तिकार कवियों ने समाज की इन बुराइयों को दूर करने तथा स्त्री शिक्षा की ओर ध्यान देने की प्रेरणा दी है। 'भामिनी' समस्या की निम्न-लिखित पूर्ति में इसका चित्रण देखिए—

बाल को विवाह, वृद्ध बैस को विवाह,
नीच दैजे को करार, त्यों नचैबो बारकामिनी;
विद्या को अमान, अति व्यय मद-पान,
फूट, बनिज-अरुचि-बानि, त्यागो अधगामिनी।
'पूरन' स्वदेशी गन ! आलस-विहाय हाय !
चेतिए समाज को समृद्ध दिन जामिनी;
धामिनी सचिव अधिकारी निज प्यारी जान,
लाय हित शिक्षित करीजै मीत 'भामिनी'।[1]

समाज के निम्न-श्रेणी के लोग डेढ़ आना प्रतिदिन मजदूरी पाकर भी शराब पीते थे। घर में स्त्री और बच्चे चाहे भूख से तड़प-तड़पकर मर जायँ, किंतु गृह-पति शराब पीने से नहीं चूकते थे। एक प्रकार से इन शराबियों ने देश का बहुत अहित किया है। इसका वर्णन 'देश है।' समस्या की पूर्ति में इस प्रकार हुआ है—

करिकै मजूरी जो कमात डेढ़ आना रोज,
ताहू में बिसाय मद्य पीवत हमेश है;
घर में लोगाई, बाल-बच्चन को फाके होत,
उदर की शूलन ते दारुन कलेश है।
हाय ! ये पिशाची सुरा ऐसी है प्रबल छूत,
धनी ना दरिद्र को रुचत उपदेश है;
'पूरन' कहाँ लौं मद्य-पान को बतावै हानि,
भयो जात जाके सारे बारबाठ 'देश है'।[2]

१—'रसिक-वाटिका', भाग १, क्यारी ११, २० फ़रवरी, १८९८ ई०—'पूर्ण'

२— " " क्यारी ३, २० जून, १८९७ ई० "

मदिरा पान करनेवाले व्यक्तियों को न अपने स्वास्थ्य की चिंता होती है, और न मान-मर्यादा एवं धर्म की। शराब पीकर पाप कर्म करने में भी वह नहीं हिचकते। वेश्यालयों में जाना तो उनका दैनिक कृत्य बन जाता है। 'भामिनी' समस्या की निम्न-लिखित पूर्ति में शराबियों का चित्रण देखिए—

बोतल सुरा को नितप्रति ही चढायो करै,
बासना बढायो करै पाप-अनुगामिनी,
मान, धन, धरम, अरोगता नशायो करै,
पातक कमायो करै, कीन्हो बुधि वामिनी।
'पूरन' भनत क्यों ही कोऊ समुझायो करै,
कुमति भ्रमायो करै मूरख को भामिनी,
पापी वारनारी संग जामिनी बितायो करै,
भौन में बिचारी बिलखायो करै 'भामिनी'।[1]

समाज में मदिरा-पान की जो बुरी आदत बढ़ रही थी, उसे दूर करने के लिये समस्यापूर्तिकार कवियों ने यत्न किया। मदिरा-पान के दोषों एवं हानियों को इन कवियों ने स्पष्ट रूप में चित्रित किया, तथा यह बतलाया कि जिस मदिरा को पशु-पक्षी तक भी नहीं पीते हैं, उसी को मनुष्य पिए, यह कितनी बड़ी विडंबना है। 'सार है'। समस्या की पूर्ति में उपर्युक्त भाव को देखिए—

चील्ह, चमगीदड, उलूक, बाज, काक, गीध,
जेतो नीच पच्छिन को देखो परिवार है,
बानर, बिलार, वृक, भालू, खर, कूकरहू,
पीवत सुरा को नाहिं सूकर-सियार है।
बिबस पियावै मदिरा जो काहू जीव को, तो
डरत, घिनात औ' परात दूजी बार है,
'पूरन' भनत, है सुरा-पी तुम मानुष ह्वै,
मद्य-सार पीवै में निहार्‌यो कौन 'सार है'।[2]

भारतीय समाज में पाश्चात्य समाज के प्रभाव-स्वरूप जो खान पान, व्यवहार एवं वेश-भूषा तथा मदिरा-पान का प्रचलन हो गया था, कवियों ने व्यंग्य रूप

१—'रसिक-वाटिका', भाग १, क्यारी ११, २० फरवरी, १८९८ ई०—'पूर्ण'
२—'रसिक-वाटिका', भाग ३, क्यारी ६, २० सितंबर, १८९९ ई०—'पूर्ण'

में उसकी भी आलोचना की, और इस प्रकार उन्होंने इन सामाजिक कुरीतियों एवं दोषों को दूर करने की 'सार है।' समस्या की निम्न-लिखित पूर्ति में प्रेरणा दी—

खाओ करौ होटल की विसकुट-डवल रोटी,
काट डारौ चोटी, वृथा वारन को भार है;
कोट, पतलून, हैट, जैकट की डाँट नीकी,
नीको दावि दाँतन जराईवो सिगार है।
ओल्ड टाम ब्रांडी, रम, क्लैरट चढ़ाओ करौ।
ताके ठौर उत्तम त्यों कहिवो टकार है,
'पूरन' भनत, गुन और चाहे पाछे गहौ, एतो
पै विशेष मानौ, सभ्यता को 'सार है'॥[1]

हिंदू-समाज में उपर्युक्त दोषों के अतिरिक्त अस्पृश्यता का दोष सबसे बड़ा विघटनकारी था। समाज में अछूतों का बहुत ही निम्न एवं हीन स्थान था। सवर्ण हिंदू अछूतो के प्रति घोर अन्याय करते थे। अत्याचार की चक्की में अछूत पिसे जा रहे थे। उनका जीवन समाज में अत्यंत करुण बना हुआ था। सवर्ण हिंदुओं से यह अछूत लोग सदैव निवेदन किया करते थे, किंतु सवर्ण लोग उन पर तनिक भी दया नहीं करते थे। 'किसी को जब किसी के सामने आजाद करते हैं।' इस मिसरे तरह पर निर्मित निम्न-लिखित शेरों में अछूतों की प्रार्थना देखिए—

तुम्हारे ज़ुल्म की तुमसे ही हम फ़रियाद करते हैं।
मुहब्बत का नया पहलू ये इक ईजाद करते हैं॥
हमें बरबाद करने के निकाले सैकड़ों पहलू,
मगर हम हैं कि हर ज़ुल्मो सितम पर स्वाद करते हैं।
न अपने में मिलाते हैं, न करते हैं जुदा बिलकुल,
न हमको क़ैद करते हैं, न आप आज़ाद करते हैं;
न जीने देते हैं हमको, न हस्ती ही मिटाते हैं,
हमारे हाल पर ये रहम बस, जल्लाद करते हैं।[2]

उपर्युक्त शेरो में अछूतों ने सवर्ण हिंदुओं से कितनी पुरदर्द प्रार्थना की है। अछूतों की इस दयनीय स्थिति को देखकर और उनकी व्यथा का अनुभव करके ही

१—'रसिक-वाटिका', भाग ३, क्यारी ६, २० सितंबर, १८९९ ई०—'पूर्ण'
२—तरानए क़फस, ११वाँ मुशायरा, डॉ० लक्ष्मीदत्त 'मुसाफ़िर'
संपादक—कृष्णकांत मालवीय

महात्मा गांधी ने इनका 'हरिजन' नामकरण किया, और उनमें व्याप्त हेय भावना का दूर करने का प्रयत्न किया। समस्यापूर्तिकार कवियों ने इस ओर भी ध्यान दिया। उन्होंने हरिजनों को गले लगाकर देश में व्याप्त फूट और कलह को दूर करने पर बल दिया। 'कटारी है'। समस्या की निम्न-लिखित पूर्ति देखिए, जिसमें उपर्युक्त भावों को व्यक्त किया गया है—

> आओ हरिजन, तुम्हे कंठ से लगाते हम,
> देश से जघन्य छुआछूत निवटारी है,
> गूदडी के लाल हो हमारे आर्यवर्त बीच,
> वेदो की न वाणी तुम आज लग टारी है।
> मग्न तुम रहते हो पर-उपकार ही मे,
> कामो से तुम्हारे हिंद सोने की अटारी है,
> ऐक्य सरसाना, बहकाने में न आना 'शिव',
> बडी नाशकारी फूट कुटिला 'कटारी है'॥[1]

समस्यापूर्तिकार कवियो ने न केवल सामाजिक सुधार और राष्ट्रीय चेतना लाने की ओर ही ध्यान दिया, वरन् सांस्कृतिक उत्थान की ओर भी उनकी दृष्टि गई। समस्यापूर्ति काव्य में भाषा एव साहित्य की स्थिति पर भी प्रकाश डाला गया है।

साहित्यिक स्थिति—

समस्यापूर्तिकार कवियो ने हिंदी प्रचार पर बल दिया, तथा हिंदी-कविता में उत्पन्न भ्रांतियो को दूर करने तथा तुकबंदी करनेवाले लोगो को रोकने की प्रेरणा दी। इसका वर्णन 'सार है'। समस्या की निम्न-लिखित पूर्ति में हुआ है—

> कविता पुरानी मे खपाय निज नाम दीजै,
> वर्ण पढिबे को कुछ सोच ना विचार है,
> अथवा मृतक छंद लिखिए अखंड नेम,
> ग्रंथ मे रचैयन को जासो उपकार है।
> पिंगल वृथा है, रस-भेद बेमजा है, व्यंग-
> भूषण में का है, तुकबंदी दरकार है,
> रीझिहे रसिक लोग, बात है न झूठी मित्र,
> कविता अनूठी को इतोई बस, 'सार है'।[2]

१—सुकवि, वर्ष ७, अंक १०, जनवरी, १९३५—शिवनंदन शुक्ल
२—'रसिक-वाटिका', भाग ३, क्यारी ६, २० सितंबर, १८९९—'पूर्ण'

सन् १९०० ई० के पूर्व तक हिंदी का प्रचार सरकारी कार्यालयों में बिलकुल न था। अदालतों में उर्दू और फ़ारसी का ही प्रयोग होता था। इससे उत्तर-भारत की हिंदी-भाषा-भाषी जनता को बहुत कष्ट होता था। हिंदी के प्रचार में उर्दू बाधक बनती थी, इसीलिये प्रतापनारायण मिश्र ने कहा—"त्यों न टरी उर्दू 'परताप,' छछौरन और छलीन की नानी।"[1] तथा भारतेंदु हरिश्चंदजी ने भी सवत्र उर्दू का प्रचार होने से अपने सब हिंदी-ग्रंथों को जल में डुबो देने की बात कही है—'भाषा भई उरदू जग की, अब तो इन ग्रंथन नीर डुबाइए।'[2] किंतु १८ अप्रैल, सन् १९०० ई० के सरकारी अध्यादेश के अनुसार जब सरकारी अदालतों में नागरी का प्रचार हो गया, तब हिंदी-भाषा-भाषी जनता में प्रसन्नता की लहर दौड़ गई। समस्यापूर्तिकार कवियों ने तत्कालीन ले० गवर्नर की बड़ी प्रशंसा की। साथ ही उन्होंने नागरी-प्रचारिणी सभा, काशी की भी प्रशंसा की, जिसके प्रयास-स्वरूप ही हिंदी अथवा नागरी को अदालती भाषा मान लिया गया था। इसका वर्णन 'नागरी-प्रचार करि दीनो है।' समस्या की पूर्ति में निर्मित निम्न-लिखित छंदों में हुआ है। देखिए—

संवत उन्नीस सै सत्तावन तुम्हें है धन्य,
जामें रवि भारत प्रकाश ऐसो कीनो है;
लाट मैकडानेल औ' करजन बहादुर ने
ऐसी तम फ़ारसी हटाय शिघ्र दीनो है।
आपनी अदालत में कार नागरी को कियो,
मेरी जान शीतल सरोज दुःख-छीनो है;
जानि गुण-आगरी, उजागरी मयंक-सम
सुधा-रेख 'नागरी-प्रचार करि दीनो है'।[1]
नागरी-प्रचारिणी सभा को कोटि-कोटि धन्य,
जाने सुख भारत अनेक श्रम कीनो है;
तीनि स्वर-व्यंजन बतायो बरदू में जिन,
सोला नागरी में के अनेक यश लीनो है।
बार-बार जाय लाट साहब समीप जिन
फ़ारसी की फाँस को निसारि दूरि कीनो है;

१—'विक्टोरिया रानी,' १८९७ ई०। प्र० रामकृष्ण वर्मा
२—'भारतेंदु-ग्रंथावली', भाग २

काशी सुख-सागरी मे सीतल सभा है एक,
जाने आजु 'नागरी-प्रचार करि दीनो है' ।[1]

जब भारत स्वतन्त्र हुआ, तो देश को अपनी राष्ट्र-भाषा की आवश्यकता का अनुभव हुआ। उदार राष्ट्रीय नेताओ ने बहुजन-भाषी एव सहज ही बोधगम्य हिंदी-भाषा को राष्ट्र-भाषा के पद पर आसीन करने पर बल दिया। समस्यापूर्तिकार कवियो ने भी उसी 'महाभाषा' को राष्ट्र भाषा के रूप मे देखने की अपनी अभिलाषा व्यक्त की। 'मतवाली है।' समस्या की निम्न लिखित पूर्ति में उसी भाव को देखिए—

सस्कृत - सर सुरसरि - सा विमल वारि,
ग्रीषम - शरद सम रहत मृणाली है,
जाने रस जाने ते, न और उर आने मन,
माने चुनि सुमन सजाई मजु डाली है।
वाही कज-कुल को पराग वसुधा पै मेलि,
देवनागरी के माँग सिंदुर की लाली है,
बाल, वृद्ध भारत मही की महाभाषा मृदु,
हिंदी राष्ट्र-भाषा बने, यह 'मतवाली है' ।[2]

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, समस्यापूर्ति के द्वारा अनेक प्रकार का प्रचार भी हुआ है। धार्मिक प्रचार से सबधित 'जय जानकी-जीवन हरे।' समस्या की पूर्ति रूप म निर्मित निम्न-लिखित पक्तियाँ देखिए—

तुम एक गौ की प्रार्थना से क्षीर-सागर छोडकर,
आए यहाँ गोवश-पालन के लिये थे दौडकर।
हैं कट रही जब नित्य गाएँ, मौन क्यों फिर हो धरे,
गोपाल क्यो तुम सो रहे, 'जय जानकी-जीवन हरे ॥१॥

पट को बढा कर द्रौपदी की थी हरी तुमने व्यथा,
पर आज भारत देवियो की क्यो नही सुनते कथा।

१—'काव्य-सुधाधर' (मासिक), पचम प्रकाश, चतुर्थ वर्ष, ३० नवबर, १९०० ई०
—सीतलाबख्शसिंह

२—सुकवि, फरवरी, १९४९ ई०। पूर्तिकार—नदकिशोर अवस्थी 'उदार'

संबंधिनी थी, क्या इसी से की दया तुमने हरे,
तुम तो नहीं थे स्वार्थी, 'जय जानकी-जीवन हरे ॥२॥'[1]

उपर्युक्त पंक्तियों में भगवान् की प्रार्थना की गई है। इसी प्रकार से गीता आदि ग्रंथों का महत्त्व बतलाकर उनके अध्ययन की ओर जनता की प्रवृत्ति को प्रेरित किया गया है। 'पियूष बरसावती' समस्या की निम्न-लिखित पूर्ति में इसी भाव को व्यक्त किया गया है—

भारत में पारथ को कृष्ण उपदेश्यो ज्ञान,
पावन सुखद सो रहस्य सब गावती;
नासिनी कुमोह, कोह, ममता, मदादि दोष,
ब्रह्म की अगाधता की थाह की लहावती।
छलकत जाके प्रति बचन में शांत - रस,
मारग परम निरबान को बतावती;
गीता शांति-दायिनी मुमुक्षन के श्रौनन में,
'पूरन' जु आनंद - 'पियूष बरसावती' ॥[2]

इस प्रकार हम देखते हैं कि समस्यापूर्ति-काव्य में समसामयिक समाज का पूर्णतः प्रतिबिंबन हुआ है। उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो चुका है कि समस्या-पूर्तिकार कवि अपने समय और समाज की गति-विधि से पूर्ण रूप से परिचित थे। उन्होंने उसके विविध पक्षों का पूर्ण लगन एवं तन्मयता से चित्रण किया है। समस्या-पूर्ति-काव्य में राजभक्ति के साथ-साथ देश-भक्ति और मुक्ति-आंदोलन तक का चित्रण हुआ है। सामाजिक सुधार और सांस्कृतिक उत्थान पर भी समस्यापूर्ति-काव्य में समुचित प्रकाश डाला गया है। इन अनेक दृष्टियों से यह स्पष्ट है कि समस्या-पूर्ति और समाज में घनिष्ठ संबंध है।

१—'कविता-कुसुम'—संपादक, गोपालदत्त पंत; संचालक तुलसी-रामायण-समिति, (बुलंदशहर)

२—'रसिक-वाटिका', भाग १, क्यारी ५, २० अगस्त, १८९७ ई०।—'पूर्ण'

९

उपसहार

पिछले अध्यायो म समस्यापूर्ति काव्य के विभिन्न अगा की व्याख्या की गई ह। इस व्याख्या मे प्रथम परिच्छेद मे ही समस्यापूर्ति काव्य की कुछ मुख्य विशेषताओ पर भी सक्षेप म प्रकाश डाला गया है। यहाँ पर हम प्रबध का उपसहार प्रस्तुत करने के पूर्व इस काव्य के दोनो पक्षो—गुण एव दोष—का भी विवेचन कर लेना समीचीन होगा।

किसी वस्तु का गुण-दोष विवेचन शास्त्रीय शैली म समालोचना कहलाता है। समालोचना किसी काव्य के वास्तविक लक्ष्य को प्रकाश म ला देती है तथा कवि की कृति को सर्व-सुलभ बनाने का काय भी इसी का ह। कवि जिन तत्वों को अपनी कृति म छिपाकर रखता है समालोचक उन्हीं का उद्घाटन कर देता है। इसी से एक अगरेज आलोचक ने कहा है कि कवि का कार्य है कला को गुह्य बनाना किंतु आलोचक का काय ह उसको पुन उद्घाटित कर देना[1]। कोई भी काव्य अथवा साहित्य का अन्य अग गुण और दोषो के सामञ्जस्य स मुक्त नही है। प्रत्येक काव्य मे गुणों क साथ दोष भी पाए जाते हैं। क्या काव्य क्या उपन्यास क्या नाटक तथा क्या कहानी सभी में ये दोनो तत्व अनिवाय रूप से विद्यमान हैं। यह ही क्या यह ससार गुण-दोष के छन्द से युक्त ह। इसी म प्रात स्मरणीय गोस्वामी तुलसीदासजी ने कहा ह—जड चेतन गुन-दोष मय बिस्व कीन्ह करतार'[2]। समस्यापूर्ति-काव्य भी इस दृष्टि से गुण-दोष मय है। यहाँ इस काव्य के गुण-दोषो का सामान्य उल्लेख ही अभिप्रेत है। शास्त्रीय विवेचन अधिक स्पष्ट रूप से अन्यत्र किया जा चुका ह।

गुण विवेचन—समस्यापूर्ति साहित्य के उदभव पर जब हम दृष्टि डालते हैं तो ऐसा ज्ञात होता ह कि इस काव्य का उदभव ही मनुष्य जीवन के हास विलास एव सुख-सौन्दर्य में निहित ह। इस साहित्य का विकास स्पष्ट बतला देता ह कि

1— The work of a poet is to hide the art but the work of a critic is to find it again"—W H Hudson (An Introduction to The Study of Literature)

२—देखिए रामचरित मानस बाल कांड ६।

मध्यकालीन भारत सुख-संपन्नता एवं सांस्कृतिक उत्कृष्टता का प्रतीक था। जब तक समाज का संगठन दृढ़ न हो, मानव-जीवन सुख-संपन्न न हो, तथा उसका सांस्कृतिक एवं मानसिक स्तर उच्च न हो, तब तक समाज में उच्च कोटि की कलाओं से युक्त गोष्ठियों का निर्माण नहीं हो सकता। भारतीय काम-तत्त्व-विवेचक महामुनि वात्स्यायन का युग इसी प्रकार का था। इनके समय में समाज में गोष्ठियों का आयोजन होता था, जिसमें ललित-काव्य की समस्यापूर्ति की जाती थी। अग्नि-पुराण के पश्चात् वात्स्यायन के काम-सूत्र में ही हमें समस्यापूर्ति का उल्लेख मिलता है। इस ग्रंथ के आधार पर कहा जा सकता है कि इसका प्रमुख गुण था मनुष्य के हृदय में शैशव-कालीन क्रीड़ा की भावना को पुनः जाग्रत् करना। प्रायः देखा जाता है कि जो बच्चा जितना अधिक क्रीड़ाशील होता है, उतना ही उसका शरीर स्वस्थ एवं मस्तिष्क विकसित होता है। मनुष्य की आयु ज्यों-ज्यों बढ़ती जाती है, वह गंभीर होता जाता है, और जीवन की कठिन स्थितियों में तो उसका जीवन अत्यंत उदासीन हो जाता है। इस उदासीनता का प्रभाव उन व्यक्तियों पर कम पड़ता है, जो प्रायः प्रसन्न-चित्त रहते हैं। समस्यापूर्ति इसी गुण के कारण सर्व-प्रथम मनुष्य-जीवन में ग्राह्य हो सकी।

समस्यापूर्ति का एक गुण 'वादार्थ' भी कहा गया है।[1] संभवतः वाद-विवाद की भावना से ही कालांतर में कवि-परीक्षा की परंपरा का विकास हुआ है। कवि-परीक्षा समस्यापूर्ति का प्रधान गुण माना जा सकता है। कवि एवं काव्य-परीक्षा का विशद वर्णन हमें राजशेखर के काव्य-मीमांसा नाम के ग्रंथ में मिलता है, तथा भोज-प्रबंध में कवि-परीक्षा के अनेकानेक प्रसंग पाए जाते है। इनसे सिद्ध होता है कि कवि-परीक्षा इस काव्य का प्रधान ही नहीं, वरन् मूल गुण था। इसमें संदेह नही कि आत्मप्रशंसक कवियों की काव्य-प्रतिभा के कसने की यह एक सुंदर कसौटी थी, जिस पर प्रातिभ कवि ही खरे उतर सकते थे।

एक ही समस्या पर विभिन्न कवियों की पूर्तियाँ सुनकर हृदय में उत्साह एवं काव्य-अभिरुचि उत्पन्न होती थी। यही कारण है कि भारतेंदु-युग के अवसान एवं द्विवेदी-युग के आदि में समस्यापूर्ति की बाढ़-सी आई। जिस प्रकार मनुष्य अपने जीवन की समस्याओं को सुलझाने में लगा रहता है, और उनके सुलझ जाने पर वह प्रसन्नता का अनुभव करता है, इसी प्रकार काव्य-गत कुछ उक्तियो तथा जिज्ञासाओं के समाधान करने का गुण समस्यापूर्ति के अंतर्गत निहित है। आश्चर्यजनक उक्तियों की अन्वर्थ पूर्ति कर देना इस काव्य का बड़ा भारी गुण है। इससे पूर्ति ही नहीं, वरन् पूर्तिकार कवि भी समादृत होता है।

१—देखिए—काम-सूत्र, अधि० १, अ० ३

चमत्कार प्रदर्शन को कुछ भारतीय आचार्यों ने काव्य का एक गुण माना है, और कहा है—'यदि कवि में चमत्कार उत्पन्न करने की शक्ति नहीं है, तो वह कवि नहीं है, और यदि काव्य चमत्कार-पूर्ण नहीं है, तो काव्य में काव्यत्व नहीं है।'[1] यदि इस कथन को कुछ भी महत्व दिया जाय, तो कहना पड़ेगा कि समस्या पूर्ति-काव्य में इस गुण की सबसे अधिक प्रधानता है। इस प्रधानता का विशेष कारण यह है कि चमत्कार-पूर्ण पूर्ति ही श्रोताओं पर तत्काल प्रभाव छोड़ सकती है।

उक्ति-वैचित्र्य समस्यापूर्ति काव्य का सर्वाधिक महत्व पूर्ण गुण है। इसके अन्तर्गत वाग्विदग्धता एवं प्रत्युत्पन्नमतित्व भी आ जाता है। कवि एवं काव्य दोनो के लिये इस गुण की नितांत आवश्यकता रहती है। उक्ति-वैचित्र्य द्वारा कवि साधारण सी समस्याओ की पूर्तियो में भी चमत्कार भर देता है। 'ललित' कवि की एक पूर्ति देखिए—

मधु-माखन, दाखन पाई कहाँ मधुराई रसाल की घातन में,
समताई अनारन की को कहै, कमताई अंगूर के गातन में।
'ललित' करो कद को मद जबै, तबै का है तमोल के पातन में ?
रसु कौन सुधा में सुधा न कही, रसु जौन कवीन की बातन में।'[2]

एक छोटी-सी समस्या 'बातन में।' की कवि ने कितनी चमत्कार पूर्ण एवं सरस पूर्ति की है। यह कवि की प्रतिभा एवं उर्वर कल्पना-शक्ति की द्योतक है। उक्ति-वैचित्र्य के साथ कल्पना का घनिष्ठ संबंध है। इन्हीं दोनो तत्वों पर इस काव्य का संपूर्ण ढांचा आधारित है।

समस्यापूर्ति का एक विशिष्ट गुण सामाजिक सापेक्षता भी माना जा सकता है। इस काव्य का निर्माण व्यष्टिगत न होकर समष्टिगत ही हुआ है, क्योंकि समस्यापूर्ति, एकान्त की वस्तु नहीं है। यह एक ऐसी अभिव्यक्ति है, जिसे श्रोता की अपेक्षा है, इसमें ऐसी ध्वनि है, जो प्रतिध्वनि प्राप्ति के लिये उपयुक्त स्थल चाहती है। अत काव्य प्रेरणा के उद्गम में, जहाँ आंतरिक शक्ति तथा बाह्य विभाव सहायक होते हैं, वहाँ श्रोता-सापेक्षता भी उसका एक मुख्य तत्त्व है।

१—नहि चमत्कार विरहितस्य कवेः
कवित्व काव्यस्य वा काव्यत्वम्। (क्षेमेंद्र)
२—'रसिक-वाटिका', भाग ३, क्यारी ४, २० जुलाई, १८९९ ई०।
१ ँ कार—'ललित'

श्रोता-सापेक्षता को ही हम समाज-सापेक्षता कह सकते है ।[1] अतएव समाज को छोड़कर समस्यापूर्ति-काव्य का कोई अस्तित्व ही नहीं है। इस प्रकार सार-रूप में कहा जा सकता है कि समस्यापूर्ति-काव्य के मुख्य गुण ये हैं—

१—मनुष्य-जीवन में मनोरंजन की भावना को उद्दीप्त करना ।

२—कवि-परीक्षा एवं काव्य-परीक्षा द्वारा विशिष्ट काव्य-साहित्य का संवर्द्धन करना ।

३—चमत्कार-चारुता, उक्ति-वैचित्र्य एवं कल्पना से युक्त काव्य का निर्माण करना ।

४—कवि-गोष्ठी, कवि-सम्मेलन एवं कवि-समाजों द्वारा सामाजिक तत्वों का पोषण करना ।

इन्ही गुणों के कारण समस्यापूर्ति-काव्य चिरकाल तक समादृत रहा, किंतु जब किसी वस्तु का दुरुपयोग अथवा आधिक्य हो जाता है, तब उसमें गत्यवरोध आ जाता है, तथा उसके गुण भी दोष-युक्त हो जाते है । कालांतर में बहुत कुछ ऐसी ही दशा इस काव्य की भी हो गई। अतएव यहाँ इस विषय पर भी कुछ प्रकाश डाल देना समीचीन होगा ।

दोष-दर्शन—भारतीय काव्य-साहित्य के सर्वमान्य आदि-कवि महर्षि बाल्मीकि हैं। कहा जाता है, क्रौंच पक्षी के एक मिथुन को विहार करते देखकर एक व्याध द्वारा तीर लगने से आहत होकर उस क्रौंच पक्षी के जोड़े की मर्म-व्यथा से इनका हृदय भर गया, और सहसा इनके हृदय से अनुष्टुप् छंद के रूप मे भावोद्‌गार निकल पड़े,[2] जो कि आदि कविता है। इस उद्धरण के देने का तात्पर्य यहाँ केवल यही है कि जब कभी मानव-हृदय अपनी अंतस् अथवा बाह्य विशिष्ट स्थितियों में पड़कर आंदोलित हो उठता है, तो उससे गंभीर भावोद्‌गार फूट निकलते हैं, जिनको कवि एक भावुक शैली में व्यक्त कर देता है। अभिव्यक्तीकरण की यह शैली साहित्य के क्षेत्र में कविता के नाम से अभिहित होती है। कविता के इन लक्षणों की कसौटी पर यदि हम समस्यापूर्ति काव्य को कसें, तो यह पूर्णतया खरा नही उतरता ।

समस्यापूर्ति की गति एक पिंजर-बद्ध कीर की है, जो पिंजड़े के अंदर-ही-

---

१—देखिए, 'साहित्य और सौंदर्य' । —डॉ० फ़तेहसिंह (पृष्ठ ४२)

२—"मानिषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वती समाः ।
यत्क्रौंचमिथुनादेकमवधीः काममोहितम् ॥
वाल्मीकि रामायण । —वाल्मीकि

अदर छटपटाकर रह जाता है। उसके लिये मुक्त गगन का स्वच्छंद वातावरण दुष्प्राप्य है। पिंजडे के भीतर मे ही रटाए हुए राम-राम के शब्द को भले ही वह सुना दे, किंतु पक्षियो की वह विचरणशीला प्रकृति, जो कि हृदय मे एक उल्लास भर देती है दर्शन नहीं होते। इसी कारण उसके प्रत्येक क्रिया-कलाप मे एक अस्वाभाविकता दृष्टिगोचर होती है। समस्यापूर्ति मे कवि के लिये अत्यानुप्रास की एक मापक रेखा पहले से ही निश्चित कर दी जाती है, कवि को उसी अत्यानुप्रास से तुक खाते हुए शब्द गढने पडते हैं। ऐसा करने मे कवि का हृदय-पक्ष पीछे पड जाता है, और मस्तिष्क-पक्ष की प्रबलता हो जाती है। कविता मे हृदय-पक्ष की प्रधानता होनी चाहिए। कविता का व्यापार हृदय से सबधित है न कि मस्तिष्क से।

कभी-कभी यह देखा जाता है कि कुछ कवि समस्या की इतनी सरस पूर्ति करते हैं, जो तुरत अपनी ओर आकर्षित कर लेती है, किंतु ऐसे कवि थोडे होते हैं, प्रधानता तो ऐसे कवियो की दृष्टिगोचर होती है, जो समस्या की उलझन में उलझ जाते हैं। उनमे समस्या की पूर्ति केवल पूर्ति के लिये ही हो सकती है—उनमें किसी रचनात्मक तत्व के दर्शन नहीं होते। अतएव यह कथन कि समस्यापूर्ति द्वारा कवि की भावुकता शिथिल पड जाती है, उसका प्रस्फुरण स्वच्छंद रीति से नहीं हो पाता, बहुत कुछ ठीक माना जा सकता है।

इस सबध में डॉ० श्यामसुदरदास का मत है—"पहलेपहल किसी भाषा मे कविता करने की अभिरुचि उत्पन्न करने के लिये समस्यापूर्ति का सहारा लेना लाभकारक हो सकता है। यह साधन-मात्र है, इसे साध्य का स्थान देना उचित नही। समस्यापूर्ति से पूर्तिकारो की कवित्व-दर्प की वृत्ति भले ही तुष्ट हो जाय, और कवि-सम्मेलनो के सभापतियो की यशोलिप्सा की भी पूर्ति हो जाय, पर इससे कविता का उद्देश्य पूरा नहीं हो सकता, क्योकि समस्यापूर्ति की प्रथा नई कविता को जन्म नही दे सकती। किसी पदाश या चरण को लेकर उस पर जोड-तोड लगाकर एक ढाँचा खडा कर देना कविता की अधूरी नकल हो सकती है, पर कविता नहीं। कविता हृदय का व्यापार है, दिमाग़ को खुजलाकर उसका आह्वान नहीं किया जा सकता। जब तक किसी विषय मे कवि की वृत्ति न रमेगी, वह उसमे तल्लीन न होगा, तब तक उसके उदगार नहीं निकल सकते।"[1]

डॉक्टर श्यामसुदरदास का यह मत बहुत कुछ उपर्युक्त कथन से मेल खाता हुआ है। यह सच है कि समस्यापूर्ति के द्वारा किसी नवीन काव्य धारा की सृष्टि

१—देखिए 'हिंदी-साहित्य का इतिहास।' —डॉ० श्यामसुदरदास।
(पृष्ठ ३०६)

नहीं हो सकती। जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, 'कवि-परीक्षा' लेना समस्यापूर्ति का प्रधान गुण था। कुछ विद्वानों ने तो यहाँ तक कहा है कि संभवतः सर्वप्रथम कवि-परीक्षा के रूप में ही इस काव्य का विकास हुआ, किंतु कालांतर में यही गुण समस्यापूर्ति के लिये दोष बन गया। कवियों ने समस्यापूर्ति को अपने काव्य का मुख्य ध्येय माना, और कवि-सम्मेलन तथा कवि-समाजों के ही कवि बनकर रह गए। साधारण कवियों की तो बात ही क्या, कुछ प्रतिभा-संपन्न कवि भी समस्यापूर्ति को ही लक्ष्य मानकर जीवन-भर कविता करते रहे, और परिणाम यह हुआ कि समस्यापूर्ति के ह्रास के साथ-ही-साथ इन कवियों का काव्य-जीवन भी समाप्त हो गया। उनका नाम अंधकार में पड़ गया, तथा उनकी रचनाओं को उचित महत्त्व प्राप्त न हो सका। ऐसे ही दुर्भाग्य-पूर्ण कवियों में कानपुर के श्रीललिताप्रसाद त्रिवेदी, काशी के द्विजवेनी, हनुमान तथा छबीले आदि और मथुरा के पंडित नवनीत चतुर्वेदी थे। इनकी अधिकांश समस्यापूर्तियों को पढ़ने से इनकी उच्च कोटि की काव्य-प्रतिभा, कल्पना एवं उक्ति-वैचित्र्य के दर्शन होते हैं, जिनके सामने समस्यापूर्ति से मुक्त बड़े-बड़े कवियों को भी नत-मस्तक होना पड़ता है, किंतु समस्यापूर्ति की बाढ़ इन महान् प्रतिभाओं को भी अपने साथ बहा ले गई।

समस्यापूर्ति के रूप में काच की कच्ची मणियों का आधिक्य इतना हुआ कि इन्होंने असली काव्य-मणियों को भी पराभूत कर लिया। जिन कवियों ने समस्यापूर्ति को साधन-मात्र माना था, उन्होंने अपनी प्रतिभा का स्वच्छंद विकास भी किया, और साहित्य में एक विशिष्ट स्थान के अधिकारी हुए। ऐसे कवियों में बाबू जगन्नाथदास 'रत्नाकर', पंडित अयोध्यासिंह उपाध्याय, कविवर जयशंकर प्रसाद, गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही' तथा पंडित नाथूराम शर्मा 'शंकर' आदि थे। रत्नाकरजी का उद्धव-शतक तो अधिकांशतया समस्यापूर्ति-रूप में निर्मित छंदों का ही संग्रह-ग्रंथ है।

जैसा कि कहा जा चुका है, समस्यापूर्ति का संबंध अधिकतर कवि-सम्मेलनों से रहा है। इन कवि-सम्मेलनों की इतनी वृद्धि हुई कि छोटे-छोटे घरेलू उत्सवों पर भी इनका आयोजन किया जाने लगा, और मनोरंजन के अन्य साधनों के स्थान पर ये ही एकमात्र साधन हो गए। कवि-सम्मेलनों के कवियों की विशेषता यह थी कि वे छंद की भाषा एवं भाव पर विशेष ध्यान न देकर छंद को सुरीले ढंग से पढ़ने पर विशेष ध्यान देते थे। उनकी लय एवं ध्वनि को सुनकर श्रोतागण भी वाह-वाह के शब्दों से उनका स्वागत करते थे। ये कविगण पढ़ने के ढंग के अतिरिक्त अपनी वेष-भूषा भी प्रभावशाली बनाते थे, जिससे जनता उनके ०५।
प्रभावित हो उठे। एक कवि ने कवि-सम्मेलनों के विषय में लिखा है—

भाषा हो सरल, जिसे समझे सभी समाज,
वाह-वाह करने को मडली भी मग हो।
खींच लो सुरो को, जो पै पद बढ जाय कुछ,
ढील दे दो थोड़ी-सी, जो छद कुछ तग हो ॥
शिष्यों ने पढे हो मृदु कठ से कवित्त छटे,
जनता मे पहले से रचाया गया रग हो।
कौन पूछता है, तुम कितना पढे हो, यार!
कवि सम्मेलनो मे पढने का ढग हो ॥'

प्रस्तुत छद म कवि न कवि सम्मेलनो के कवियों का सुदर रहस्योद्घाटन किया है। इन कवियो ने वही कार्य किया, जो एक पेशावर गायक कर सकता था। सुर और लय की उमग म इन्होंने भाषा, भाव एव छदों के साथ अच्छा खिलवाड किया। 'अपिमाषमप कुर्यात् छदोभग नकारयेत्' के सिद्धात को इन्होंने तिलाजलि द दी थी, और फिर भी भारत प्रज्ञेदु, कवींद्र, भारत-सर्वस्व, वसुधा-भूषण तथा वसुधा रत्न आदि उपाधियों से विभूषित होते रहे।

उपाधि वितरण

समस्यापूर्ति कविता के साथ उपाधि वितरण का एक कलक लगा हुआ है। यदि यह कलक चद्रमा के कलक की भाँति होता, तो सभवत यह उपेक्षणीय न कहा जाता किंतु यह कलक इसके सर्वथा विपरीत है। पता नहीं, उपाधि वितरण की यह दूषित प्रथा कहाँ स तत्कालीन कवि-मडलो में प्रवेश कर गई। इस प्रथा का परिणाम बडा भयकर हुआ। हमारी समझ में उपाधि वितरण की प्रथा से समस्यापूर्ति-कविता को बडा भारी धक्का पहुँचा। छोटे छोटे तुकबदी करनेवाले कवि कविता कलाधर, काव्याचार्य एव काव्य रसाल कहे जाने लगे, जिससे कवि एव काव्य, दोनो का मानदड समाप्त हो गया और समस्यापूर्ति-कविता भी विद्वानों की दृष्टि में हेय समझी जाने लगी।

तत्कालीन साहित्य के कुछ आलोचको ने उपाधि वितरण की प्रथा की कटु आलोचना भी की। इनमे विशेष उल्लेखनीय स्वर्गीय मिश्रबधु हैं जिन्होंने अपने मिश्रबधु विनोद की भूमिका म समस्यापूर्ति कविता के अतर्गत उपाधि वितरण की प्रथा की तीव्र आलोचना की है।² इस आलोचना का उपाधिधारी कवियों तथा

१—प्रस्तुत छद के रचयिता श्रीप्रसिद्धनारायण गौड हैं।
२—देखें—मिश्रबधु विनोद (प्रथम भाग)
प्रकाशक गगा पुस्तकमाला लखनऊ

उपाधिदाताओं ने प्रतिवाद भी खूब किया, और इसके समर्थन में आदिकवि वाल्मीकि, कवि-कुल-गुरु कालिदास तथा महाकवि गोस्वामी तुलसीदास एवं भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्र के उदाहरण भी दिए। इस प्रकार के वाद-प्रतिवाद 'काव्य-सुधाधर' की प्रतियों में सहज ही देखे जा सकते है।[१]

समस्यापूर्ति-कविता का एक दोष यह भी माना जा सकता है कि यह काव्य रीति-कालीन कविता के अनुकरण पर ही निर्मित हुआ था, अतएव इसमें निजी मौलिकता के दर्शन नहीं होते। वे ही उपमाएँ, वे ही रूपक तथा वे ही स्थूल उत्प्रेक्षाएँ सर्वत्र दीख पड़ती है। एक प्रकार से इस काव्य में नवीनता का अभाव-सा पाया जाता है। शृंगार-रस के स्थूल-से-स्थूल चित्र, नायक-नायिकाओं की दौड़-धूप तथा उनका हास-विलास, सभी कुछ पुराना मसाला नज़र आता है। प्रकृति के साथ भी इन कवियों ने अच्छा खेल खेला है। प्रकृति सदैव उद्दीपन-रूप मे चित्रित की गई है। वह कहीं इनकी नायिकाओं के साथ हँसती, कही रोती और कहीं-कही इनके सुर में सुर मिलाती चलती है। वसंत कही नायिका को समुद्र-सा दीख पड़ता है, कही बादलों की गरज ही कामदेव के नगाड़ों की ध्वनि-सी प्रतीत होती है, और कही कामाग्नि शांत करने के लिये समस्त शीतल पदार्थो की संयोजना की जाती है। भाव यह कि विलास एवं वैभव का पूर्ण वातावरण तैयार किया जाता है। समस्यापूर्ति की इसी प्रवृत्ति को देखकर मिश्रबंधुओं ने अपनी हिंदी-अपील में समस्यापूर्ति-कविता को समाप्त कर नवीन कविता को प्रोत्साहित करने के लिये कहा था—

तजि समस्यापूर्ति कविजन रचैं उत्तम ग्रंथ;
लाभ नहि कछु गहे इक शृंगार ही को पंथ।

१—पं० शिवदास पांडेय (बिलासपुर) ने 'प्रयाग-समाचार' की तीन संख्याओं में 'कवि-समाज में उपाधि की विडंबना' शीर्षक लेख प्रकाशित करवाकर उपाधि-वितरण की प्रथा की कटु आलोचना की थी, जिसका उत्तर देने के लिये पं० महावीरप्रसाद वैद्य 'वीर कवि' ने 'कवि और उपाधि' शीर्षक लेख उसी पत्र में प्रकाशित करवाया, और उनकी अप्रासंगिक बातों का खंडन किया, किंतु अंततः उपाधि-वितरण का विरोध वैद्यजी ने भी किया। उपाधि-वितरण के विरोधी उपर्युक्त दोनो लेखों का उत्तर पं० देवीदत्त 'दत्त द्विजेंद्र' ने अनेक उद्धरण और प्रमाण देते हुए दिया, और उपाधि-वितरण की प्रथा का समर्थन किया। देखिए—काव्य-सुधाधर (मासिक), ९वाँ प्रकाश, पंचम वर्ष, सितंबर, १९०२ ई०।

(पृष्ठ १९-२०)

जमक, अनुप्रास अतिसय उक्ति इनमें एक,
मुख्य अंग न काव्य को, हम कहेंगे गहि टेक।'[1]

मिश्रबंधुओं ने उपर्युक्त मत संभवत: समस्यापूर्ति की बढ़ती हुई शृंगारिकता एवं रूढ़िवादिता देखकर ही निरूपित किया था, किंतु आवश्यकता इस बात की थी कि समस्यापूर्ति काव्य को समाप्त करने के स्थान पर उसमें उचित सुधार किए जाते, नवीन विषयों पर पूर्तियाँ की जातीं, तथा उपाधि वितरण-जैसी कुरीतियाँ दूर की जातीं।

डॉक्टर श्यामसुंदरदास अपने 'हिंदी-साहित्य' में लिखते हैं—"कवि अपने जीवन की अनुभूतियों के निष्कर्ष को संसार के सम्मुख रखना चाहता है, चाहे उससे कोई लाभ उठावे, चाहे न उठावे। क्या यह संदेश समस्यापूर्तिकार दे सकता है? उसके पास वह अनुभूति से भरा हृदय कहाँ! उसे तो अपनी दिमाग़ी कसरत का भरोसा रहता है। वह पद्योत्पादक हृदय हीन मशीन है, जो बाहर से कोई पेंच दबाने से चलती है, उसका परिचालन भीतर से नहीं होता। इसी से उसका काव्य भी निष्प्राण होता है। यही नहीं, उसका काव्य जाति के सामने कोई आदर्श भी नहीं रख सकता, नीति का तो उसके लिये प्रश्न ही नहीं उठ सकता। हिंदी-भाषा की कविता के भविष्य को सुधारने के लिये यह आवश्यक है कि उसमें इस प्रकार के काच की नक़ली मणियों का आदर न हो, और उसका प्रवाह झूठे छायावाद, पाखंड और समस्यापूर्ति की प्रवृत्ति की ओर से हटाकर किसी नए उद्देश्य की ओर मोड़ा जाय।"[2]

डॉ० श्यामसुंदरदास का उपर्युक्त सुधारवादी दृष्टिकोण अत्यंत प्रशंसनीय माना जा सकता है किंतु अपनी सुधार की झोंक में आकर डॉक्टर साहब ने समस्यापूर्ति के साथ उचित न्याय नहीं किया। यदि समस्यापूर्ति-काव्य के दोनों पक्षों को लेकर उन्होंने आलोचना की होती, तो संभवत: न्याय-संगत होता। उपर्युक्त मत उनकी वैयक्तिक भावना का ही परिचायक है, अतएव उससे किसी प्रकार के तथ्य को ग्रहण करना समीचीन नहीं प्रतीत होता।

समस्यापूर्तिकार कवि किसी समस्या की पूर्ति के लिये अपने बुद्धि-वैभव एवं हृदय की अनुभूति, दोनों का समुचित आश्रय लेता है। जीवन की अनुभूति के सहारे ही वह किसी समस्या को संदर्भ-गर्भित कर पाता है, और फिर बुद्धि की क़लई

१—देखिए—मिश्रबंधु-विनोद, प्रथम भाग, तृतीय संस्करण। (पृष्ठ ८५)

२—देखिए—हिंदी-साहित्य—डॉ० श्यामसुंदरदास। (पृष्ठ २०७-२०८)

चढ़ाकर उसमें चमत्कार भर देता है, अतएव समस्यापूर्तिकार कवि के लिये यह कहना कि उसके पास अनुभूति से भरा हुआ हृदय नही होता, अधिक उपयुक्त नहीं जान पड़ता। द्वितीयत: यदि आदर्श एवं नीति के आधार पर ही काव्य का मूल्यांकन किया गया, तो संभवत: साहित्य का अधिकांश भाग इससे वंचित हो जायगा। समस्यापूर्ति-काव्य न नीति से रहित ही है, और न आदर्श से च्युत ही। जिन पूर्तिकारों ने नीति और आदर्श का उल्लंघन किया है, तथा शास्त्रीय पद्धति के विपरीत काव्य-रचना की है, उनकी आलोचना भी की गई है। समस्यापूर्ति और समाज के अध्याय में इस ओर भी प्रकाश डाला गया है कि समस्यापूर्तिकार कवियो ने सामाजिक कुरीतियों एवं नीति-विहीनता की कटु आलोचना की, और उसके सुधार की प्रेरणा प्रशस्त की। यह अवश्य है कि इस प्रकार की रचनाएँ अत्यधिक परिमाण में उपलब्ध नहीं, किंतु उनका महत्त्व कम नहीं किया जा सकता। यह अवश्य है कि समस्यापूर्ति-काव्य में बुद्धि-वैभव एवं चमत्कार-चारुता अधिक है, और हृदय की तल्लीनता एवं भाव-प्रवणता अपेक्षाकृत कम, जो कि इस काव्य का दोप ही माना जा सकता है। समग्र रूप से समस्यापूर्ति-काव्य उत्कृष्ट नहीं कहा जा सकता, किंतु अपने कुछ दोषों से युक्त होने पर भी ग्राह्य अवश्य है।

○

सिंहावलोकन

भारतीय साहित्य में समस्यापूर्ति की प्रारंभिक स्थिति बड़ी ही अनिश्चय-पूर्ण थी। न इसका एक रूप था और न लक्षण। अग्निपुराण काल से लेकर वर्तमान समय तक इस काव्य को विविध रूप धारण करने पड़े। अग्निपुराण में समस्या पूर्ति को शब्दालंकार के अंतर्गत रखकर प्रहेलिका का एक भेद माना गया। काम सूत्र में वात्स्यायन ने इसे चौंसठ कलाओं में परिगणित किया। इससे आगे चलकर समस्यापूर्ति को एक कला माना जाने लगा और उसका विशेष उद्देश्य वाद विवाद एवं क्रीडा निर्धारित किया गया। फिर समस्यापूर्ति का यह उद्देश्य भी बदला और आगे चलकर राजशेखर ने इसे कवि एवं काव्य परीक्षा का साधन माना। काव्य परीक्षा के प्राचीन भारत में अनेक केंद्र थे, जिनमें उज्जयिनी प्रमुख है। काव्य परीक्षा के रूप में समस्यापूर्ति का अधिक विकास हुआ। भोज प्रबंध से ज्ञात होता है कि महाराज भोज समस्यापूर्ति द्वारा ही कवियों की काव्य प्रतिभा की परीक्षा लिया करते थे और परीक्षोत्तीर्ण कवियों को अनेक पुरस्कार देते थे। कवि एवं काव्य परीक्षा का यह क्रम आधुनिक काल तक चला आया, और इसमें पं० अंबिका दत्त व्यास जैसे उद्भट विद्वानों को भी बैठना पड़ा। विकास की गति बढ़ी और समस्यापूर्ति अपने चरमोत्कर्ष पर पहुँचकर साधन से साध्य बन गई—काव्य का एक अंग हो गई।

काव्य रूप में प्रतिपादित होकर आधुनिक काल में समस्यापूर्ति ब्रज भाषा के माध्यम से लगभग समस्त उत्तरी भारत—गढ़वाल और कुमायूं से लेकर सागर (मध्य प्रदेश) तक और गुजरात से लेकर बंगाल तक प्रचलित हुई। काशी कांकरौली बिसवाँ कानपुर आजमगढ़ दमोह आदि प्रमुख स्थानों पर अनेकानेक कवि समाज स्थापित किए गए। मध्य प्रदेश में स्वर्गीय 'भानु'जी ने अनेक कवि-संस्थाएँ स्थापित की जिनमें समस्यापूर्ति की अजस्र धारा प्रवाहित होती रही। कालांतर में कुछ विद्वानों ने समस्यापूर्ति के लक्षण एवं उसके भेदों पर प्रकाश डाला। संस्कृत ग्रंथों में शब्द कल्पद्रुम का इस दृष्टि से विशेष उल्लेख किया जा सकता है, जिसमें समस्या के लक्षणों पर विस्तृत प्रकाश डाला गया है। हिंदी में जगन्नाथ प्रसाद भानु ने अपने काव्य प्रभाकर ग्रंथ में समस्यापूर्ति के विविध प्रकारों पर प्रकाश डाला है तथा डॉ० रामशंकर शुक्ल 'रसाल' ने अपने दो लेखों में समस्या के विविध भेदों पर विचार किया है जिनका कि प्रस्तुत प्रबंध में उल्लेख किया गया है। समस्यापूर्ति का इतना प्रचलन हुआ कि इसने उर्दू साहित्य को भी प्रभावित किया और कुछ तो फारसी काव्य से अनुप्राणित होने के कारण और कुछ हिंदी समस्यापूर्ति से प्रभावित होकर उर्दू में भी 'तरह' शायरी का प्रचलन हुआ।

हिंदी के रीतिकालीन काव्य का अनुसरण करने के कारण समस्यापूर्ति-काव्य में भी शास्त्रीय पद्धति का पालन अधिक हुआ है। अधिक चमत्कार-मूलक तथा स्थूल अलंकारो के साथ-साथ कुछ सूक्ष्म अलंकारों का भी प्रयोग हुआ है। समस्यापूर्ति की अधिकांश रचनाएँ व्रज-भाषा में ही हुई है, किंतु खडी बोली और अवधी में भी इसका अभाव नहीं है। छंद-चयन में वैसे तो लगभग सभी मात्रिक एवं वर्ण-वृत्तों का प्रयोग हुआ है, किंतु विशेषकर कवित्त, सवैया तथा घनाक्षरी छंद ही इस काव्य के लिये अधिक उपयुक्त हैं। इसी से इन छंदों का समस्यापूर्ति-काव्य में बाहुल्य है। कवित्त-सवैया तो समस्यापूर्ति के अपने छंद हो गए हैं। ध्वनि की दृष्टि से अधिकांश समस्यापूर्ति-काव्य में रसध्वनि अथवा असंलक्ष्यक्रम व्यंग्यध्वनि का अधिक प्रयोग हुआ है। भावों की विविधता तो इस काव्य की अपनी विशिष्टता ही है। रस की दृष्टि से उन्ही रसों की पूर्तियाँ की गई हैं, जो काव्य-रुचि को किसी प्रकार का व्याघात न पहुँचाएँ। इसी से समस्यापूर्ति-काव्य में वीभत्स रस की पूर्तियाँ नहीं ही मिलती हैं। भावों की संसृष्टि के साथ चमत्कारोत्पादन के लिये उक्ति-वैचित्र्य तथा कल्पना का सहारा लिया गया है। उक्ति-वैचित्र्य में यह काव्य अप्रतिम है। उक्ति-वैचित्र्य का प्रयोग अधिकतर भावोत्कृष्टता लाने के लिये ही किया गया है, किंतु कही-कही वस्तु-चित्रण तथा भाषा-व्यंजकता के रूप में भी इसका प्रयोग पाया जाता है। कल्पना का प्रयोग कुछ तो परंपरा-मूलक रहा है, किंतु कहीं-कहीं भाव-गांभीर्य लाने मे भी इसका समुचित समावेश किया गया है। कुछ दुरारूढ़ कल्पनाएँ भी की गई हैं, जो भाव-सौंदर्य में वृद्धि न करते हुए केवल चमत्कार-प्रदर्शन तक ही सीमित रह गई हैं, किंतु अधिकतर कल्पना का क्षेत्र मानव-जीवन ही रहा है। आकाश में उड़ते हुए भी समस्यापूर्तिकार कवियों की दृष्टि सदैव पृथ्वी की ओर रही है। इस प्रकार हम देखते है कि भाव, रस, ध्वनि, भाषा, छंद, अलंकार तथा उक्ति-वैचित्र्य एवं कल्पना आदि के समुचित प्रयोग से समस्यापूर्ति-काव्य अपना विशेष महत्त्व रखता है।

समस्यापूर्ति को काव्य के रूप में ग्रहण करके ही उपर्युक्त विवेचना की गई है, किंतु कुछ विद्वानों का इससे मतभेद है। वे समस्यापूर्ति को एक कला मानते हैं, और अपने मत के समर्थन में काम-सूत्र की उपायभूत चौंसठ कलाओं का उल्लेख करते हैं, जिनमें समस्यापूर्ति भी एक कला मानी गई है। इसके विपरीत अन्य विद्वान् समस्यापूर्ति-काव्य की वर्तमान स्थिति देखते हुए स्पष्ट रूप से इसे काव्य का एक स्वरूप मानते है। समस्यापूर्ति-काव्य के उद्देश्य एवं उसकी उपयोगिता देखकर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि समस्यापूर्ति उस मिलन-बिंदु पर स्थित है, जहाँ एक ओर काव्य-धारा निकल जाती है, दूसरी ओर कला; एक ओर से भावुकता का आगमन होता है, दूसरी ओर से बुद्धि-तत्त्व का मिलन, तथा एक ओर यह मुक्तक-

काव्य का रूप धारण करती है और दूसरी ओर संदर्भ-बहुल होने के कारण प्रबंध काव्य की-सी छटा दिखलाती है। इस प्रकार यह काव्य कितना समन्वयशील है यह इसकी उपर्युक्त विवेचना से स्पष्ट हो जाता है। समस्यापूर्ति एक कला है पर इस कला के द्वारा सुंदर मुक्तक-काव्य की सृष्टि हुई है। कला होकर भी समस्यापूर्ति मुक्तक काव्य का रूप ग्रहण कर सकी, यह इसकी अपनी विशिष्टता है। अन्य कलाएँ न तो काव्य के रूप में ग्रहण की जा सकीं और न कोई दूसरा काव्य रूप ही कला माना गया। यह समस्यापूर्ति ही थी जो काव्य होकर भी कला कहलाई और कला होते हुए भी काव्य के पद पर आसीन हो सकी।

साहित्य तथा समाज अथवा काव्य और जीवन का घनिष्ठ संबंध माना गया है और यह भी कहा गया है कि काव्य में जन जीवन की आलोचना होनी चाहिए। इस दृष्टि से समस्यापूर्ति अपनी सीमित परिधि में ही जन जीवन के बराबर साथ रही है। इसका निर्माण ही समाज के मनोरंजन के लिये हुआ है। समाज को छोड़ कर इस काव्य की रचना हो नहीं हो सकती। समस्यापूर्तिकार कवि मानव जीवन से ही अपने काव्य की सामग्री ग्रहण करता है।

समस्यापूर्ति रूप में ऐसी भी रचनाएँ हुई हैं जिनके द्वारा तत्कालीन राजनीतिक आर्थिक सामाजिक एवं सांस्कृतिक स्थितियों पर भी प्रकाश पड़ता है। समस्यापूर्ति द्वारा अनेक प्रकार का प्रचार भी किया गया। राष्ट्रीय चेतना के जगाने में भी इसका अपना स्थान है। कुछ ऐसी भी रचनाएँ हुई हैं जिनके द्वारा कवि का आत्मपरिचय भी मिल जाता है। जैसे—'उमर हमारी है', इस समस्यापूर्ति से कवि का संक्षिप्त जीवन परिचय सहज ही में मिल जाता है। इसके अतिरिक्त 'कवि बन जावेंगे' 'उपदेश देते हैं' आदि समस्यापूर्तियों से तत्कालीन कवि-समाजों की आलोचना की गई है तथा 'देश हित विचारो', 'नागरी प्रचार करि दीजो है' आदि से भाषा एवं देश के प्रति तत्कालीन समाज का दृष्टिकोण स्पष्ट हुआ है। तात्पर्य यह है कि सामाजिक वातावरण में निर्मित होकर यह काव्य सदैव समाज-सापेक्ष रहा यही इसका मूल्य है।

प्रश्न हो सकता है कि यदि यह काव्य समाज मूलक था तो यह नष्ट क्यों हो गया? इसका उत्तर भी बहुत सरल है। समाज सदैव एक समान नहीं रहता उसमें परिवर्तन होते रहते हैं। कभी उसका उत्थान होता है कभी पतन। इस परिवर्तनशीलता के कारण समस्यापूर्ति का भी ह्रास हो गया किंतु इसके ह्रास का खेद नहीं। खेद तो तब होता जब इसका अस्तित्व ही समाप्त हो गया होता पर ऐसा नहीं हो सका है। समस्यापूर्ति की मूल प्रवृत्ति आज भी साहित्य के विविध क्षेत्रों में कार्य कर रही है। आज केवल काव्य में ही नहीं वरन् निबंध कहानी तथा नाटक में भी विषय देकर उन पर रचनाएँ कराई जाती हैं। वाक

प्रतियोगिता में यह प्रवृत्ति सबसे अधिक पाई जाती है। आशुकविता की ही भाँति आज भी वाक्-प्रतियोगिता में तत्क्षण विषय दिए जाते हैं, जिनसे प्रतियोगिता में भाग लेनेवाले वक्ताओं की प्रतिभा की परीक्षा ली जाती है।

यदि जीवन में चित्र-कला का महत्त्व है, पेंटिंग अपना स्थान रखती है, तक्षण एवं वास्तुकलाओं का उपयोग है; तथा यदि काव्य का जीवन से संबंध है, तो समस्यापूर्ति भी हमारे जीवन को रसमय करनेवाली एक अनुपम वस्तु है, जो हमारे जीवन के दोनो पक्षों—हृदय एवं मस्तिष्क—का समुचित प्रतिनिधित्व करती है। इसके द्वारा उच्च स्तरीय व्यक्तियों के लिये स्वस्थ मनोरंजन का आयोजन होता है। इस मनोरंजन के साथ उनमें काव्य-अभिरुचि जाग्रत् होती है। इसके अतिरिक्त समस्यापूर्ति के प्रचलन से कवि-प्रतिभा को अभ्यास प्राप्त होता है। उसमें किसी विषय पर लिखने का आत्मविश्वास जाग्रत् होता है। और, फिर ये कवि अन्य विषयों पर भी लिख सकते है। समस्यापूर्ति द्वारा प्राप्त मनोरंजन सर्वोत्कृष्ट है। इसके लिये न किसी विस्तृत क्रीड़ा-भूमि की अपेक्षा है, न क्रीड़ा-सामग्री की आवश्यकता। कितना सरल, कितना सूक्ष्म है, यह मनोरंजन, जो कि मनुष्य के मन को प्रसन्न करने के साथ-साथ उसके हृदय को भी विना प्रभावित किए नहीं रहता। नवोदयशील प्रतिभाएँ समस्यापूर्ति से प्रेरणा ग्रहण करती हैं, और अपनी काव्य-भूमि का आभास पा जाती हैं। इसके द्वारा न केवल व्यष्टि-रूप में काव्य-रुचि उत्पन्न होती है, अपितु समष्टि-रूप में काव्य की अभिरुचि जागती है और संवेदनशीलता के संस्कार बनते है, अतएव इस प्रकार का ललित काव्य आज भी कुछ समुचित परिवर्तनों के साथ ग्राह्य है।

सहायक पुस्तकों की सूची

अकबरनामा : अबुलफ़ज़ल
अकबरी दरबार के हिंदी-कवि : डॉ० सरजूप्रसाद अग्रवाल
अग्निपुराण : कात्यायन
अभिधान राजेंद्र : (प्राकृत-शब्द-कोष) विजयराजेंद्र सूरीश्वर
अलंकार शेखर : केशव मिश्र
आलमगीर : मार्च, १९३७ ई०
आलमगीर : एप्रिल, १९३७ ई०
आलमगीर : दिसंबर, १९३७ ई०
इतिहास-प्रवेश : राजस्थान संस्करण जयचंद्र विद्यालंकार
इंडो आर्यन ऐंड हिंदी- : डॉ० सुनीतिकुमार चटर्जी
उर्दू-साहित्य का इतिहास : राम बाबू सक्सेना, अनु० श्रीरामचंद्र टंडन, श्रीशालग्राम श्रीवास्तव
उर्दू-साहित्य का इतिहास : डॉ० एहतिशामहुसैन
ऐन इंट्रोडक्सन टु दि स्टडी ऑफ़् लिटरेचर : विलियम हेनरी हडसन
कवि-कंठाभरण : क्षेमेंद्र
कविता-कुसुम : सं० गोपालदत्त पंत
कविता-कुसुमाकर : प्रकाशक श्रीविद्या-विभाग, काकरौली
कविता-कौमुदी : भाग १, रामनरेश त्रिपाठी
कविता-प्रचारक (मासिक) : ऑक्टोबर, १९५३ ई०
काम-सूत्र : वात्स्यायन
काव्य और कला तथा अन्य निबंध : जयशंकर 'प्रसाद'
काव्य-कला : संग्रहकार, साहबप्रसादसिंह
काव्य-कलानिधि (मासिक) : मई, १९०७ ई०
काव्य-कलानिधि (मासिक) : जुलाई, १९०७ ई०
काव्य-कलामिनी : संपादक, सीताराम शर्मा
काव्य-कल्प-लता-वृत्ति : अमरचंद्रयति
काव्य-कुंज : भवानीफेर शुक्ल
काव्यादर्श : दंडी

काव्यानुशासन — हेमचंद्र
काव्य-प्रभाकर — जगन्नाथप्रसाद 'भानु'
काव्य-मीमांसा — राजशेखर
काव्य-सुधाकर (त्रैमासिक) — षष्ठ वर्ष, १९६१ वि०
काव्य-सुधाकर (मासिक) — सितंबर, १९०२ ई०
काव्य-सुधाकर (त्रैमासिक) — द्वितीय प्रकाश, १८९८ ई०
काव्य सुधाकर — तीसरा प्रकाश, षष्ठ वर्ष, १९६१ वि०
काव्य-सुधाकर — चतुर्थ प्रकाश, १८९८ वि०
काव्य-सुधाकर (त्रैमासिक) — द्वितीय वर्ष, पूर्ण प्रकाशन, १८९९ ई०
काव्य-सुधाकर (त्रैमासिक) — षष्ठ वर्ष, चैत्र, वैशाख, ज्येष्ठ, १९६१ वि०
काव्य-सुधाकर (त्रैमासिक) — ३० नवंबर, १९०० ई०
काव्य-सुधाकर : मार्च, एप्रिल, मई, १८९८ ई०
काव्य-शास्त्र — डॉ० भगीरथ मिश्र
काव्यालंकार-सूत्र — वामन
काशी-कवि मंडल — (समस्यापूर्ति) प्रथम भाग
काशी-कवि-समाज — (समस्यापूर्ति) प्रथम भाग
काशी-कवि-समाज — (समस्यापूर्ति) द्वितीय भाग
काशी-कवि-समाज — (समस्यापूर्ति) तृतीय भाग
गुलशनए शोअरा — दिसंबर, १८५९ ई०
गुलशनए शोअरा — जनवरी, १८६० ई०
गुलशनए शोअरा — मार्च, १८६० ई०
चहार मकाला (फोर डिसकोर्सेज) ऑफ् — निज़ामी-ए-अरूदी ऑफ् समरकंद
चिंतामणि — आचार्य रामचंद्र शुक्ल
छंद-प्रभाकर — जगन्नाथप्रसाद 'भानु'
तरानए कफस — संग्रहकार, कृष्णकांत मालवीय
दि फेर-बत्तीसी — संग्रहकार, कन्हैयालाल मास्टर १९०१ ई० विद्या विलास प्रेस
देव और उनकी कविता — डॉ० नगेंद्र
द्विजेश-दर्शन — बलरामप्रसाद मिश्र 'द्विजेश'
ध्वन्यालोक — आनंदवर्धन
नाट्य-शास्त्र — भरत मुनि
नवीन संग्रह — हफीजुल्लाहखाँ

पल्लव : पंत
प्रबंध-पद्म : 'निराला'
फरहंगे आमरे: (कोष) : मौलाना अब्दुल्ला खाँ
बहारेस्ताने जामी : लेखक, जामी
ब्रिटिशकालीन भारत का इतिहास : पी० ई० राबर्ट्स, अनु०, आर० आर० सेठी
बग़ोदर: : डॉ० इक़बाल
भारती-भूषण : श्रीअर्जुनदास केडिया
भारतेंदु-ग्रंथावली (दूसरा भाग) : ब्रजरत्नदास
भोज-प्रबंध : बल्लाल सेन
मतिराम-ग्रंथावली : संपा०, पं० कृष्णविहारी मिश्र
मध्यकालीन हिंदी-कवयित्रियाँ : डॉ० सावित्री सिन्हा
माधव-मधुप : माधवचरण द्विवेदी 'माधव'
माधुरी : वर्ष ५, खंड १, संख्या ५, १९१६ ई०
माधुरी : वर्ष ९, खंड १, संख्या ६, जनवरी-जून १९३१ ई०
माधुरी : मार्च, १९३१ ई०
माधुरी : माघ, १९९१ वि०
मिश्र-बंधु-विनोद (प्र० भाग) : तृतीय संस्करण मिश्रबंधु
मिश्र-बंधु-विनोद (चौथा भाग) : तृतीय संस्करण मिश्रबंधु
रघुवंश : कालिदास
रस-चंद्रिका : बालकृष्ण (नागरी-प्रचारिणी सभा-पुस्तकालय, काशी)
रस-मीमांसा : आचार्य रामचंद्र शुक्ल
रस-गंगाधर : पंडितराज जगन्नाथ
रसिक-वाटिका : जुलाई, १८९९ ई०
रसिक-वाटिका : मई, १८९८ ई०
रसिक-वाटिका : सितंबर, १८९८ ई०
रसिक-वाटिका : नवंबर, १८९९ ई०
रसिक-वाटिका : जून, १८९७ ई०
रसिक-वाटिका : जनवरी, १८९७ ई०
रसिक-वाटिका : जनवरी, १८९७ ई०
रसिक-वाटिका : फ़रवरी, १८९८ ई०

रसिक-वाटिका : दिसंबर, १९०० ई०
रसिक-वाटिका : मई, १९०० ई०
रसिक-वाटिका एप्रिल, १८९८ ई०
रसिक वाटिका सितंबर, १८९९ ई०
रसिक- वाटिका अगस्त, १८९७ ई०
रसिक-मित्र (कानपुर) एप्रिल, १८९८ ई०
रसिक मित्र (कानपुर) नवंबर, १८९८ ई०
रसिक-रहस्य नवंबर, १९०७ ई०
रसिक विनोदिनी फाल्गुन, १८८९ वि० साहित्योपाध्याय 'राम'
रहनुमाए तालीम जनवरी, १९२९ ई० सपा०, जोरामल सियानी
वर्ण-रत्नाकर ज्योतिरीश्वर ठाकुर
वाल्मीकि-रामायण वाल्मीकि
विक्टोरिया रानी सपा०, रामकृष्ण वर्मा
विज्ञ-वृंदावन (पाक्षिक) अंक ३, अगस्त, १८९३ ई०
विज्ञ-वृंदावन (पाक्षिक) अंक ८, ९, १०, ११, ऑक्टोबर, १८९२ ई०
समस्यापूर्ति के छंद (हस्त लिखित) ले०, आतम कवि (नागरी प्रचारिणी सभा, काशी)

सरस्वती नवंबर, १९०० ई०
सरस्वती सितंबर, १९५६ ई०
संजय (मराठी मासिक) फरवरी, १९५५ ई०
संजय (मराठी मासिक) दिसंबर, १९५५ ई०
संजय (मराठी मासिक) जनवरी, १९५६ ई०
संजय (मराठी मासिक) मई, १९५६ ई०
संजय (मराठी मासिक) सितंबर, १९५६ ई०
संजय (मराठी मासिक) दिसंबर, १९५६ ई०
संस्कृत के विद्वान् और पंडित रामचंद्र मालवीय
साहित्य और सौंदर्य डॉ० फतेहसिंह
साहित्य का मर्म आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी
साहित्य जिज्ञासा आचार्य ललिताप्रसाद शुक्ल
साहित्य-दर्पण विश्वनाथ

साहित्य-सुषमा : संपा०, नंददुलारे वाजपेयी,
: लक्ष्मीनारायण मिश्र
साहित्यालोचन : डॉ० श्यामसुंदरदास
सुकवि : एप्रिल, १९२९ ई०
सुकवि : सितंबर, १९५० ई०
सुकवि : ऑक्टोबर, १९४८ ई०
सुकवि : अगस्त, १९५१ ई०
सुकवि : जून, १९५१ ई०
सुकवि : सितंबर, १९२८ ई०
सुकवि : जनवरी, १९३५ ई०
सुकवि : फ़रवरी, १९४९ ई०
सुकवि : मई, १९२६ ई०
सुकवि : दिसंबर, १९३४ ई०
सुकवि : जून, १९२९ ई०
सुकवि : जुलाई, १९२९ ई०
सुकवि : मई, १९३१ ई०
सुभाषित और विनोद (प्र० भाग) : रामचंद्र वर्मा
सुभाषित और विनोद : गुरुप्रसाद शुक्ल
सुभाषित पद्य-मुक्तावली : प्रकाशक त्रिविक्रम मिश्र, १९१५ ई०
हरिश्चंद्र-कौमुदी (मासिक) : सितंबर, १८९५ ई०
हरिश्चंद्र-मैगजीन : मई, १८७४ ई०
हिंदी-विश्व-कोष : नगेंद्रनाथ
हिंदी-साहित्य : डॉ० श्यामसुंदरदास
हिंदी-साहित्य का इतिहास : डॉ० रामचंद्र शुक्ल
हिंदी-साहित्य का इतिहास : डॉ० रामशंकर शुक्ल 'रसाल'
हिंदुत्व : रामदास गौड़